हिन्दू धर्म की रिडल

बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर

की अंग्रेजी पुस्तक

'Riddle In Hinduism'

का मुकम्मल एवं प्रामाणिक अनुवाद

अनुवाद एवं संपादन

डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात

हिंदी जगत में प्रथम बार बाबासाहेब 'भारतरत्न' डॉ. बी.आर. आंबेडकर कृत
'**Riddles in Hinduism**' का मुकम्मल, विश्वसनीय एवं प्रामाणिक अनुवाद

हिंदू धर्म की रिडल

भारतरत्न डॉ. बी.आर. आंबेडकर

एम.ए., पी-एच.डी., डी.एस.सी., एल.एल.बी., डी.लिट्., बार-ॲट-ला

अनुवाद एवं संपादन

डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात

सम्यक प्रकाशन

प्रथम संस्करण : 2010 (बुद्धाब्द 2555)

ISBN : 978-93-80688-94-7

प्रकाशक : **सम्यक प्रकाशन**
32/3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली–110063-08
दूरभाष : 65706888, 9810161823
email : budhdharam@bol.net.in
web : www.samyakprakashan.com

© अनुवादकीय सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य : 200 रुपये

रचना : **हिंदू धर्म की रिडल**
रचनाकार : डॉ. बी.आर. आंबेडकर
अनुवादक : डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात
आवरण : शान्त कला निकेतन
शब्दांकन : संदीप आर्ट एण्ड ग्राफिक्स

मुद्रक : गौतम प्रिंटर्स, नई दिल्ली

Hindu Dharma Ki Riddle (Hindi) by Dr. B.R. Ambedkar

प्रकाशकीय

बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर की अंग्रेजी-भाषीय अमरकृति "Riddles in Hinduism" (रिडल्ज़ इन हिन्दुइज़्म) के हिन्दी अनुवाद को प्रकाशित करने के अवसर पर यह बताना नितांत जरूरी है कि बाबासाहेब द्वारा लिखी गई एवं हमारे द्वारा प्रकाशनाधीन पुस्तक 'हिन्दू धर्म की रिडल' कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण रचना है। वास्तव में बाबासाहेब द्वारा यह पुस्तक मूलतः अंग्रेजी भाषा में "Riddles in Hinduism" के नाम से लिखी गई थी या यूं कहिए कि इस पुस्तक का लिखा जाना जारी था। बाबासाहेब के परिनिर्वाण के समय तक इस पुस्तक के कुछ अध्याय ही लिखे गए थे। इसलिए यह पुस्तक उनके जीवनकाल में प्रकाशित नहीं हो सकी थी। बाबासाहेब के परिनिर्वाण के पश्चात उनकी सम्पत्ति के साथ-साथ उनकी अप्रकाशित रचनाओं पर भी परिवार में कलह उत्पन्न हो गया। अंततः न्यायालय के आदेश पर उनकी अप्रकाशित रचनाओं को सील (तालाबंद) कर दिया गया। इस घटना से वे लोग बहुत दुखी और आहत हुए जो बाबासाहेब की नई-नई रचनाओं के माध्यम से मार्गदर्शन ग्रहण करते और अपने आंदोलन को गतिमान करने को आतुर रहते थे।

अंततः एक लंबी प्रतीक्षा के पश्चात अदालत की कैद से बाबासाहेब का साहित्य मुक्त हुआ और इस ग्रंथ का अंग्रेजी भाषा में प्रकाशन शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार द्वारा 1987 में करा दिया गया। आंबेडकरी जगत ने इस पुस्तक के प्रकाशन पर संतोष की सांस ली। वहीं दूसरी ओर महाराष्ट्र का प्रतिक्रियावादी वर्ग इस ग्रंथ की विषयवस्तु पढ़कर भड़क उठा और इस ग्रंथ के विरोध में खुलकर सामने आ गया। विरोध का आरंभ हुआ माधव गडकरी के एक लेख से जो मराठी दैनिक 'लोकसत्ता' में प्रकाशित हुआ था। गडकरी का कहना था कि "Riddles in Hinduism" में जोड़ा गया "The Riddle of Rama and Krishna" (राम और कृष्ण की पहेली) शीर्षक वाला Appendix (परिशिष्ट) प्रामाणिक नहीं लगता। ऐसा गंदा लेखन कार्य बाबासाहेब के हाथों से कभी हो ही नहीं सकता। इसलिए जिस प्रकार पेट में भयंकर पीड़ा होने पर उससे छुटकारा पाने के लिए Appendix (एपिंडिक्स) का ऑपरेशन करके उसे काटकर फेंक दिया जाता है, उसी प्रकार इस परिशिष्ट को भी इस पुस्तक से निकालकर बाहर कर देना चाहिए।

माधव गडकरी के इस लेख ने आग में घी डालने का काम किया। बाबासाहेब की

इस महान कृति के विरोध में महाराष्ट्र के प्रतिक्रियावादी लोग आंदोलित हो उठे। मौके का लाभ उठाने की नीयत से शिवसेना भी मैदान में कूद पड़ी। मराठा महासंघ के एडवोकेट शशिकांत पवार भी इस विरोध प्रदर्शन में शामिल हो गए और जगह-जगह प्रदर्शन और सभाएं आयोजित होने लगीं। शिवसेना ने इसे बड़ा मुद्दा बना लिया और कहा कि हमसे अपने देवी-देवताओं का अपमान सहन नहीं होगा। शिवसेना की अगवानी में करीब 25 हजार लोगों ने मुंबई विधानसभा के सामने प्रदर्शन करके इस पुस्तक के "रिडल ऑफ राम एण्ड कृष्ण" वाले भाग को निकालने की मांग की।

बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की बहादुर जनता ने प्रतिक्रियावादी ताकतों के इस तमाशे को बाबासाहेब का अपमान समझा, इसलिए उससे बाबासाहेब की शान के खिलाफ यह षड्यंत्र देखा न गया। अतः उसने भी लामबंद होकर पुस्तक के समर्थन में, करीब 50 हजार लोगों ने, मुंबई विधानसभा के सामने प्रबल प्रदर्शन किया। आंबेडकरी जनता के प्रदर्शन के जवाब में हिंदुओं की ओर से इससे भी जबरदस्त प्रदर्शन हुआ, करीब एक लाख लोगों का। हिंदुओं के इस प्रदर्शन के विरोध में और बाबासाहेब की पुस्तक के समर्थन में हमारे लोगों की ओर से लगभग डेढ़ लाख लोगों ने प्रदर्शन किया। आंबेडकरी जनता के जवाब में शिवसेना की ओर से जब दो लाख आदमियों ने पुस्तक पर प्रतिबंध की मांग करते हुए विरोध प्रदर्शन किया तो जैसे बाबासाहेब के मुर्दा आंदोलन में जान पड़ गई। आर.पी.आई. के सभी गुट, समता सैनिक दल, भारतीय बौद्ध महासभा तथा सभी भिक्खुसंघ, माई साहेब सविता आंबेडकर-सहित सब के सब ने संगठित होकर पांच लाख की भारी संख्या के साथ संयुक्त रूप में प्रदर्शन कर एक अनूठा इतिहास रच डाला। पुस्तक के समर्थन में यह प्रदर्शन इतना प्रचण्ड था कि इसके कारण सारी मुम्बई नगरी ठहर-सी गई। जिधर देखो उधर भीम-सैनिक ही दिखाई पड़ते थे। सबने एक स्वर में सरकार को चेतावनी दी कि इस पुस्तक के प्रकाशन पर प्रतिबंध तो क्या हमें इसमें से एक कॉमा तक हटाना स्वीकार नहीं है। अगर हमारी भावनाओं का आदर नहीं हुआ तो अगली बार हम 10 लाख की संख्या के साथ प्रदर्शन करेंगे, क्योंकि अब यह हमारे जीवन और मरण का प्रश्न बन चुका है। इस आंदोलन ने जहां-तहां हिंसक रूप भी धारण कर लिया। जिसमें कई भीम सैनिक जख्मी हुए। सुधाकर चिबंडे नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। वास्तव में वह बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की आन-बान-शान की रक्षा करते-करते शहीद हुआ। आज वह व्यक्ति आंबेडकरी आंदोलन में मरकर भी अमर है।

इस प्रचण्ड एवं ऐतिहासिक प्रदर्शन का परिणाम यह हुआ कि शिवसेना के हौसले पस्त हो गए। बाकी घटक भी बगले झांकने लगे। एक प्रकार से महाराष्ट्र के प्रतिक्रियावादी यानी आंबेडकर-विरोधी संगठन अपनी ही चाल में फंस चुके थे। उन्हें लगता था कि बाबासाहेब की पुस्तक पर प्रतिबंध लगवाकर हम हिंदू जनता के वोट

बहुत आसानी से बटोर लेंगे। लेकिन जब उन्होंने देखा कि हमारे विरोध में सारे आंबेडकरी संगठन लामबंद हो रहे हैं, तो उन्होंने मैदान छोड़ने के बहाने ढूंढ़ने आरंभ कर दिए। मध्यस्थता करने के लिए दलाल खोजे जाने लगे।

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि इस पूरे प्रकरण में महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय शंकरराव चव्हाण की भूमिका बहुत सराहनीय रही। उन्होंने बहुत कठोर रुख अपनाया जिसने प्रतिक्रियावादी आंदोलन को घुटने टेकने के लिए मजबूर कर दिया। कारण यह कि मुख्यमंत्री भीम सैनिकों की संगठित शक्ति का लोहा मान चुके थे। अंततः लगातार कई बैठकों में तय किया गया कि पुस्तक में एक पंक्ति का फुटनोट लिख कर यह स्पष्ट कर दिया जाए कि 'पुस्तक की सारी सामग्री से सरकार सहमत नहीं है।' बस इतनी सी बात लिखवाकर महाराष्ट्र की धरती से उस आंदोलन को वापस ले लिया गया, किन्तु आंबेडकरी आंदोलन के सांगठनिक इतिहास एवं ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से 'न भूतो न भविष्यति' वाली कहावत तो चरितार्थ हो ही गई थी।

इतना विराट आंदोलन हो जाने के कारण भारत के जनमानस में यह जिज्ञासा बनी रही कि आखिर पुस्तक में बाबासाहेब ने लिखा क्या है। जनता अपने मुक्तिदाता की लेखनी के कमाल को अच्छी तरह समझ/पढ़ लेना चाहती थी। ऐसी घड़ी में अनुवादक के रूप में एक और केवल एक ही नाम पर सबकी नजर टिक गई—वह नाम था स्वनामधन्य विद्वान—डॉ. भदंत आनन्द कौसल्यायन जी का, जो एक महान बौद्ध भिक्खु ही नहीं अपितु कमाल के बौद्ध विद्वान एवं अनुवादक भी थे। उन्होंने इससे पूर्व भी बाबासाहेब की कई पुस्तकों का सफल अनुवाद किया था। उनके सामने "Riddles in Hinduism" का अनुवाद करने का प्रस्ताव रखा गया तो वे मुस्करा कर बोले—'यह तो ठीक है कि इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद होना चाहिए, यह भी ठीक है कि यह अनुवाद मेरे द्वारा ही होना चाहिए। मगर यह बात ठीक नहीं होगी कि इतनी बड़ी और कठिन पुस्तक का अनुवाद करने के लिए आप जल्दबाजी करें। इसके लिए आपको कुछ समय देना होगा।'

उनके शिष्यों ने भंते जी से निवेदन की मुद्रा में कहा, 'भंते जी! आप किसी अन्य पुस्तक का अनुवाद आराम से कर लेना, मगर इस ग्रंथ का अनुवाद तो तुरंत कर दें।'

भंते जी का कहना था कि भई मैं कोई मशीन तो हूं नहीं। यह काम ही कुछ ऐसा है, जिसमें काफी समय लग जाता है।

खैर यह तय हुआ कि आंदोलन के कारण हमारी जनता में जो उत्साह बना हुआ है, इससे पहले कि वह शांत पड़ जाए, हमें जल्दी से जैसा भी बन पड़े, इसका हिंदी अनुवाद प्रकाशित कर देना चाहिए।

बस फिर क्या था, आनन-फानन में संक्षिप्त रूप में ही सही पूज्य भदंत आनन्द

कौसल्यायन जी के द्वारा इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद 'हिन्दू धर्म की रिडल' नाम से प्रकाशित कर दिया गया और इसी के साथ भंते जी से निवेदन किया गया कि समय मिलने पर आप इस ग्रंथ का मुकम्मल अनुवाद भी अवश्य ही कर दें। भंते जी ने भी अपने शिष्यों का आग्रह स्वीकार किया, किंतु वयोवृद्ध होने के कारण भंते जी का स्वास्थ्य दिन-ब-दिन बिगड़ता गया और इस ग्रंथ के हिंदी भाषा में मुकम्मल अनुवाद का सपना, सपना ही बना रह गया। यह बात सन 1988 की है। तब से अब तक भारत की आंबेडकरी जनता इसी अनुवाद के सहारे अपना ज्ञानार्जन करती आ रही है। कहने को तो समाज में विद्वानों और अनुवादकों की बाढ़-सी आई हुई है, फिर भी इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद मुकम्मल रूप में प्रकाशित होने को वर्षों तक तरसता रहा!

एक बात और, बहुत दिनों के पश्चात केन्द्रीय सरकार के सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा **बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर : संपूर्ण वांगमय** के अंतर्गत बाबासाहेब की अंग्रेजी रचनाओं को हिंदी भाषा में प्रकाशित किया जाने लगा, तो 'रिडल्स इन हिन्दूज्म' को भी इस शृंखला के 7वें खण्ड के रूप में छापने की कृपा की गई। कहने को तो यह ग्रंथ पुस्तक के मुकम्मल पाठ का मुकम्मल हिंदी अनुवाद है, किन्तु इस ग्रंथ में गलतियों की इतनी अधिक भरमार है, कि उन्हें देखकर कभी-कभी सरकार की नियत पर ही शंका होने लगती है। यह तो स्पष्ट है कि ये हिंदी अनुवाद सरकार ने बहुत भारी मन से करवाए और प्रकाशित किए हैं, इसीलिए उसने सोचा कि क्यों न हिंदी भाषा में अनुवाद करने के बहाने बाबासाहेब की धारदार विचारधारा को ही खोटा करने का काम कर लिया जाए। इसलिए उसने जैसे त्रुटिपूर्ण एवं अर्थ का अनर्थ करने वाले अनुवाद करवाए, उसे देखकर लगता है जैसे चोरों के हाथों मोरों को मरवाने का ठेका दे दिया गया हो।

सरकार बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की विचारधारा के साथ छेड़छाड़ करे तो करे, मगर बाबासाहेब की समर्पित जनता ने भी इस अभाव की पूर्ति करने के काम की घोर उपेक्षा ही की। शायद बाबासाहेब की जनता और आंबेडकरी विद्वानों को शासकों के मुंह की ही तरफ देखने की आदत-सी बन गई है। इसीलिए मुझे पिछली पंक्तियों में लिखना पड़ा कि इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद मुकम्मल रूप में प्रकाशित होने को वर्षों तक तरसता रहा!

दूसरी ओर हमारी धर्मनिरपेक्ष सरकार है जो वास्तव में न तो धर्म-निरपेक्ष है और न ही जाति-निरपेक्ष। डॉ. आंबेडकर संसार के उत्कृष्ट विद्वानों में गिने जाते हैं, मगर हमें लगता है कि मनु महाराज के रास्ते पर चलने वाली भारत सरकार डॉ. आंबेडकर को कभी क्षमा नहीं करेगी। क्योंकि उन्होंने एक अछूत होते हुए भी महान विद्या ने विभूषित होने का अपराध जो किया था। आज हमारी सरकारों का यह हाल है कि वह डॉ. आंबेडकर एवं उनके अमर साहित्य के प्रति पक्षपात किए बिना नहीं रह सकतीं। बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के साहित्य के प्रति सरकारी षड्यंत्र का एक मुंह बोलता

प्रमाण देखिए—17 अप्रैल 2007 के दैनिक हिंदुस्तान में एक समाचार प्रकाशित हुआ कि "गांधीजी के 100 खंडों वाले संपूर्ण वांगमय में सरकार को कोई त्रुटि नज़र आ गई है, जिसे मात्र 6 महीने में पुनर्संपादित कर प्रकाशित कर दिया जाएगा।"

योजना के अनुसार 6 महीने में बड़े-बड़े 100 खंडों का पुनर्प्रकाशन हो भी गया। एक बात और—गांधीजी के वांगमय का कोई भी खंड समाप्त होने से पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जाता है। गांधी वांगमय के प्रकाशन के प्रति सरकार की त्वरित प्रतिबद्धता देखकर हमें कोई आश्चर्य नहीं होता किंतु यह देखकर दुख अवश्य होता है कि बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के नाम का ढ़िंढोरा पीटने वाली सरकारों की बाबासाहेब के साहित्य प्रकाशन के प्रति प्रनिबद्धता आखिर कहां भटक जाती है! इस देश के मूलनिवासी, दलित, वंचित, प्रताड़ित लोग अपने मुक्तिदाता के प्रति न्याय के लिए आखिर कब तक तरसते रहेंगे? क्या ये लोग इस देश के नागरिक नहीं? उक्त तथ्यों के आलोक में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महाराष्ट्र की सरकार हो या भारत की केंद्रीय सरकार—ये सब बाबासाहेब के नाम को अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए भुनाना ही जानते हैं। मगर दूसरी ओर आंबेडकरी विचार को कैद करने के काम में बिलकुल भी नहीं चूकते। हमारा समाज बहुत भोला-भाला और भुलक्कड़ स्वभाव का है। उसे ध्यान ही नहीं कि गांधीजी के 100 खण्डों को मात्र 6 महीने में प्रकाशित करने वाली सरकार ने बाबासाहेब के 42 खण्डों में से मात्र 22 खण्डों को छापने में एक तिहाई शताब्दी खपा दी। आंबेडकरी वांगमय के जो खण्ड समाप्त हो गए, उन्हें पुनर्प्रकाशित न करना तो बिलकुल ही अलग तरह का षड्यंत्र है। काश! यह सरकार जाति निरपेक्ष होकर कार्य करती तो कितना भला होता इस देश का।

सरकारी षड्यंत्र के प्रतिकार में सम्यक प्रकाशन ने देर से ही सही, पर अब कमर कस ली है। हमारी सरकारें बेशक बाबासाहेब के विचारों को खोटा करने में लगी रहें; परंतु हम अपने सक्षम विद्वानों की योग्यता के बल पर बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के विचारों की रक्षा करते हुए उसे सर्वशुद्ध रूप में प्रस्तुत करने का काम जारी रखेंगे।

जैसा कि हम पीछे बता आए हैं कि कुछ विशेष परिस्थितियों में इस पुस्तक का अनुवाद पंजाब में जन्मे प्रसिद्ध विद्वान एवं बौद्ध भिक्खु डॉ. आनंद कौसल्यायन जी द्वारा किया गया था। इस पुस्तक का न केवल मुकम्मल अपितु सर्वशुद्ध अनुवाद आज पंजाब के ही दूसरे विद्वान सपूत स्वनामधन्य डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात जी द्वारा किया गया है।

सन 2010 में डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात जी की एक बड़े महत्व की पुस्तक सम्यक प्रकाशन ने छापी थी—"बुद्ध धम्म, बुद्धिवाद व आंबेडकर।" उसका प्रकाशकीय लिखते समय मैंने लिखा था "डॉ. सुरेन्द्र अज्ञात आंबेडकर-बौद्ध साहित्यिक जगत के लेखकों में 'लेखकराज' और विद्वानों में 'विद्वानों के सरताज' हैं।" किंतु इस पुस्तक की अनुवादकीय परिपक्वता एवं गुणवत्ता को देख-परखकर हमारे सुधी पाठकों को भी अब कहना ही पड़ेगा कि वे अनुवाद की कला में भी लाजवाब हैं, अनुपम हैं, लासानी हैं।

इसका कारण यह है कि वे न केवल संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के अधिकार-प्राप्त विद्वान हैं, अपितु इण्डोलॉजी (भारतीय धर्म शास्त्रों) के भी मूर्धन्य विद्वान हैं। वे कमाल के विद्वान हैं, विलक्षण मेधा के धनी हैं, घनघोर बुद्धिवादी हैं। इससे भी बड़ी बात यह है कि आंबेडकरी-बौद्ध आंदोलन के प्रति उनका समर्पण एवं उनकी प्रतिबद्धता अटल है एवं अचल है। जबसे हमने उन्हें अपने निकट पाया है, उनकी निष्ठा को कभी विचलित होते नहीं देखा।

हमारा दावा है कि इस पुस्तक के अध्ययन से किसी को गलती से भी यह अहसास नहीं होगा कि इस पुस्तक की सामग्री अनूदित है। इस पुस्तक के अनुवाद को इतना सहज एवं सुग्राह्य बनाने में डॉ. अज्ञात जी को पुस्तक का प्रूफ बिना किसी आलस्य के कई बार बांचना पड़ा। उनके कई वर्षों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप ही इस उत्कृष्ट अनुवाद-कार्य में सफलता प्राप्त हो सकी है।

आशा की जाती है कि निकट भविष्य में बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की दो अनमोल रचनाओं—1. प्राचीन भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति तथा 2. हिन्दुत्व का दर्शन—का भी मुकम्मल एवं सर्वशुद्ध अनुवाद डॉ. अज्ञात जी द्वारा प्रस्तुत कर दिया जाएगा। बाबासाहेब की इन पुस्तकों के विषय अत्यंत गंभीर एवं जटिल हैं। कारण यह कि ये दोनों पुस्तकें भी इण्डोलॉजी से संबंधित हैं, जिनमें प्राचीन धर्मग्रंथों और उनके संदर्भों की भरमार है। इसलिए इन पुस्तकों का अनुवाद किसी मामूली अनुवादक के बूते से बाहर की बात है। डॉ. अज्ञात जी जैसी मेधा का विद्वान ही इस जटिल कसौटी पर खरा उतर सकता है। डॉ. अज्ञात जैसे सुलझे हुए कुशल अनुवादक के अभाव के कारण ही बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की इन रचनाओं के अनुवाद को अभी तक सम्यकता (Perfection) प्राप्त नहीं हो सकी।

अपने पाठकों की सुविधा के लिए हमने बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की अमर कृति 'शूद्रों की खोज' से 'शूद्रों की रिडल' को पुस्तक के अंत में नए परिशिष्ट के रूप में सम्मिलित किया है। आशा है हमारे सुधी पाठकवृंद के लिए हमारा यह प्रयास निश्चय ही उपयोगी रहेगा।

आज हमें यह घोषणा करते हुए अपार हर्ष एवं गर्व की अनुभूति हो रही है कि "Riddles in Hinduism" का यह अनुवाद, हिंदी जगत का सर्वप्रथम सर्वशुद्ध एवं मुकम्मल अनुवाद है। डॉ. अज्ञात जी इस महत् योगदान के लिए समस्त आंबेडकरी और बौद्ध जगत की ओर से कोटिशः धन्यवाद के पात्र हैं। अनुवाद कार्य में डॉ. अज्ञात का हाथ बंटाने के लिए उनकी धम्मपत्नी माननीया सोमा सबलोक एवं उनके सुपुत्र अभिनव अज्ञात का योगदान भी अत्यंत सराहनीय रहा। हम उनके प्रति भी मनपूर्वक आभार व्यक्त करते हैं।

26 जनवरी, 2011 **—शान्ति स्वरूप बौद्ध**

बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर

एम.ए., पी-एच.डी. (कोलम्बिया), डी.एससी. (लण्डन) एलएल.डी. (कोलम्बिया),
डी.लिट्. (उस्मानिया), बार-ॲट-लॉ (लण्डन), भारतरत्न

जन्म : 14 अप्रैल 1891 परिनिर्वाण : 6 दिसम्बर 1956

दो शब्द

'भारतरत्न' बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर की अद्वितीय पुस्तक—Riddles in Hinduism : An Exposition to Enlighten the Masses—अभी महाराष्ट्र सरकार ने प्रकाशित नहीं की थी कि माननीय लाहौरीराम बाली के प्रयत्नों से Riddle of Rama की पांडुलिपि मुझे मिल गई. यह 1984-85 की बात होगी. तभी उसका मैंने हिन्दी में अनुवाद किया, जो भीम पत्रिका प्रकाशन ने प्रकाशित किया और संपूर्ण पुस्तक की अतीव उत्सुकतापूर्ण प्रतीक्षा शुरू हो गई.

उधर बाबासाहेब के अप्रकाशित साहित्य को प्रकाशित करने के लिए सरकार पर दबाव बढ़ता गया. समता सैनिक दल के माध्यम से मैं भी इस आंदोलन से जुड़ा था. आखिर प्रतीक्षा की घड़ियां खतम हुईं और 1987 में बाबासाहेब की लोह-लेखनी का कमाल—Riddles in Hinduism—सबके सामने आ ही गया.

अब 'राम और कृष्ण की पहेली' को एक साथ हिन्दी में अनूदित करके प्रस्तुत करने का कार्यक्रम बना. तभी कुछ शरारती तत्त्वों द्वारा मूल पुस्तक में से 'राम और कृष्ण की पहेली' को निकालने का आंदोलन आरंभ कर दिया गया. यह भी मांग रखी गई कि इस अंश को प्रतिबंधित कर दिया जाए. पूरी की पूरी पुस्तक सरकार द्वारा वापस लेने और प्रतिबंधित घोषित करने के लिए शरारती तत्त्वों ने हायतौबा मचाई.

आंबेडकर के शेर इस गुंडागर्दी को कैसे सहन कर सकते थे? बाबासाहेब का जो साहित्य पहली बार प्रकाश में आया था और जिसको प्रकाशित करने के लिए वर्षों से आंदोलन व कानूनी संघर्ष चल रहा था, उसी को प्रतिबंधित करने की मांग ने स्थिति को विस्फोटक बना दिया। लाखों लोग इसके विरोध में सड़कों पर उतर आए. लाठीचार्ज हुए. गोलियां चलीं. आखिर शहीदों का खून रंग लाया और महाराष्ट्र सरकार को यह कहना पड़ा कि न पुस्तक प्रतिबंधित होगी, न उसमें से एक कौमा तक बदला या निकाला जाएगा.

'राम और कृष्ण की पहेली' का हिन्दी अनुवाद इस आंदोलन में शहीद हुए **सुधाकर चिबंडे** को समर्पित किया गया.

पंजाबी पाठकों की जबरदस्त मांग के मद्देनजर मैंने पंजाबी अनुवाद तैयार किया जो 1988 में छपा. यह भी शहीद सुधाकर चिबंडे को ही समर्पित किया गया.

'राम और कृष्ण की पहेली' वस्तुतः बाबासाहेब की पुस्तक का मुख्य अंश नहीं है, यह तो पुस्तक का अंतिम परिशिष्ट है.

पुस्तक तीन भागों में विभक्त है—1. धार्मिक, 2. सामाजिक और 3. राजनीतिक.

पहले भाग में 15 रिडल और 5 परिशिष्ट हैं. दूसरे भाग में 16 से लेकर 20 तक 5 रिडल हैं और 2 परिशिष्ट हैं, तथा तीसरे भाग में 21 से 24 तक 4 रिडल हैं और 1 परिशिष्ट है. यह अंतिम एक परिशिष्ट ही 'राम और कृष्ण की पहेली' है.

हिन्दूइज्म पर लिखी गई यह अद्वितीय व विचारोत्तेजक पुस्तक है. इसमें वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों, उपनिषदों, दर्शनशास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों का जिस तरह से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, वह लासानी है.

बाबासाहेब को संस्कृत पढ़ने से रोका गया था; क्योंकि एक 'अछूत' इस कथित देवभाषा का अध्ययन नहीं कर सकता था! फिर भी उन्होंने अपने प्रयत्नों से इस भाषा के साहित्य का जैसा तलस्पर्शी अध्ययन किया और इसकी जिस तरह की उच्चस्तरीय समीक्षा की, उसे देखकर हैरानी होती है.

उनके अन्य अनेक ग्रंथ भी उनके अप्रतिम वैदुष्य के साक्षी हैं.

हिन्दूइज्म के कितने ही स्वयंभू ठेकेदारों ने उन वैदिक व प्राचीन पुस्तकों के नाम तक भी नहीं सुने होंगे, उन्हें पढ़ने की तो बात ही छोड़ें, जिनकी बाबासाहेब ने विद्वत्तापूर्ण ढंग से इस पुस्तक में असंगतियां और विसंगतियां दर्शाई हैं.

यह ग्रंथ समीक्षात्मक है, परंतु बहुत ही संतुलित, तर्कसंगत एवं संयमित भाषा शैली में प्रस्तुत किया गया है. कहीं पूर्वाग्रह नहीं, कहीं दुर्भावना नहीं, कहीं हठधर्मिता नहीं, हर बात प्रमाण-पुरस्सर. ऐसे ग्रंथ की रचना बाबासाहेब जैसे भारतीय-संविधान के मुख्य शिल्पी की कलम से ही संभव थी.

ऐसी पुस्तक को अनूदित करना टेढ़ी खीर है, जिसमें वेदों से लेकर पुराणों तक के पात्र, संदर्भ, सिद्धांत, विशिष्ट शब्द आदि प्रयुक्त हुए हैं. इस सबको प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने के लिए मूल स्रोतों का अवलोकन अपेक्षित है, जो श्रमसाध्य कार्य है. वह पूरी ईमानदारी से किया गया है, क्योंकि प्रामाणिकता हमारे लिए सर्वोपरि रही है। इसीलिए अनुवाद व संपादन कार्य एक दृष्टि से एक सृजनात्मक अनुभव बन गया है. यह भी अपने आप में एक प्राप्ति से कम नहीं.

जब 1988 में हिंदी और पंजाबी में 'राम और कृष्ण की पहेली' को प्रस्तुत किया था, तब अनेक प्रकार की सीमाओं के कारण पूरी पुस्तक को हिन्दी में प्रस्तुत कर पाना संभव नहीं हुआ था, यद्यपि मन में उत्कट इच्छा उमड़ रही थी. यह अवसर वर्षों बाद अब उपलब्ध हुआ है, जिसका सारा श्रेय बौद्ध विश्व के विश्रुत बौद्धाचार्य शांति स्वरूप बौद्ध जी को है. इसके लिए बौद्ध जगत उनका व उनके सम्यक प्रकाशन का सम्यक्तया आभारी रहेगा, यह अलग से कहने की, मैं समझता हूं, जरूरत नहीं रह जाती.

अलमारियों और ट्रंकों से ढूंढ-ढूंढकर मूल स्रोत उपलब्ध करवाने में मेरे बेटे अभिनव अज्ञात ने बहुत परिश्रम किया है, यद्यपि वह स्वयं उच्चतर अध्ययन में व्यस्त है, उसके लिए हार्दिक शुभकामनाएं.

अपनी पत्नी सोमा सबलोक, सहायक स्टेट प्रोजेक्ट डायरेक्टर, सर्वशिक्षा अभियान, पंजाब, के बहुमूल्य सुझावों के लिए भी आभारी हूं.

—सुरेन्द्र अज्ञात (डॉ.)

परिचय

यह पुस्तक उन आस्थाओं को उद्घाटित करती है, जिन्हें ब्राह्मण तत्वज्ञान का नाम देते हैं। यह उन सामान्य हिन्दू-जनों के लिए है, जो यह जानना चाहते हैं कि ब्राह्मणों ने उन्हें किस दलदल में फंसा दिया है, और इसका उद्देश्य उन्हें विवेक का रास्ता दिखाना है।

ब्राह्मणों ने यह प्रचारित किया कि हिन्दू सभ्यता सनातन है, मतलब अपरिवर्तनीय है। बहुत से यूरोपीय विद्वानों ने भी यही राग अलापा है, जिनका कहना है कि हिन्दू सभ्यता अडिग-अटल है। इस पुस्तक में मैंने यही बताने की चेष्टा की है कि यह धारणा तथ्यपरक नहीं है और हिन्दू सभ्यता समय-समय पर बदलती रही है तथा अक्सर इसमें भारी बुनियादी परिवर्तन हुए हैं। 'अहिंसा की पहेली' (पृ. 109) और 'अहिंसा से हिंसा की ओर वापसी' (पृ. 114) पहेलियों पर दृष्टिपात करें। मैं लोगों को यह अहसास कराना चाहता हूं कि हिन्दूधर्म सनातन नहीं है।

पुस्तक का दूसरा उद्देश्य हिन्दुओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना है कि ब्राह्मणों ने क्या-क्या चालें चलीं और उन्हें यह अहसास कराना है कि ब्राह्मणों ने उन्हें कितना छला, कितना गुमराह किया।

पुस्तक को पढ़ने से यह पता चलेगा कि ब्राह्मणों में एकाएक बदलाव कैसे आया। एक समय वे वैदिक देवताओं की पूजा करते थे। फिर एक समय ऐसा आया कि उन्होंने वैदिक देवताओं को किनारे कर दिया और अवैदिक देवताओं को नमन करने लगे। कोई उनसे पूछे कि इन्द्र, वरुण, ब्रह्म और मित्र देवता कहां हैं, जिनका वेदों में उल्लेख है। वे सभी नदारद हो गए। क्यों? इसलिए कि इन्द्र, वरुण और ब्रह्म की पूजा करना लाभप्रद नहीं रहा। बात यहीं तक नहीं है कि ब्राह्मणों ने वैदिक देवताओं को पूजना छोड़ दिया, बल्कि ऐसे उदाहरण भी हैं कि वे मुस्लिम पीरों के मुरीद बन गए और उन्हें पूजने लगे।

इस संबंध में एक ज्वलंत उदाहरण है। बंबई (अब मुंबई) के पास कल्याण में पहाड़ी की चोटी पर एक पीर बाबा मलंगशाह की मशहूर दरगाह है। यह बहुत ही प्रसिद्ध दरगाह है। हर साल वहां उर्स लगता है और चढ़ावा चढ़ाया जाता है। दरगाह का पीर एक ब्राह्मण है जो मुसलमान पीरों जैसी पोशाक पहने वहां विराजमान रहता है और चढ़ावा बटोर लेता है। यह सब कमाई का धंधा है, धर्म जाए भाड़ में। ब्राह्मण को सिर्फ दक्षिणा से गरज है। दरअसल ब्राह्मणों ने धर्म को व्यापार बना रखा है। जरा ब्राह्मणों की श्रद्धाहीनता की तुलना यहूदियों की अपने

देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा से करें जब विजेता नबूकदनेस्सर ने उन्हें अपना धर्म त्यागकर उस धर्म अपनाने को मजबूर किया था।[1]

"राजा नबूकदनेस्सर ने एक स्वर्ण मूर्ति बनवाई, जिसकी ऊंचाई साठ हाथ और चौड़ाई छह हाथ थी। उसने उसे बेबीलोन प्रांत के मैदान दुरा में स्थापित कराया।

तब राजा नबूकदनेस्सर ने राजकुमारों, न्यायाधीशों, कोषाधिपतियों, अमात्यों और प्रांतों के सभी शासकों आदि को बुलाया कि वे मूर्ति के समर्पण के समय उपस्थित हों। राजकुमार, शासक, न्यायाधीश, कोषाधिपति, अमात्य और प्रांतों के शासक आदि उस समय उपस्थित रहे जब राजा द्वारा बनवाई गई मूर्ति स्थापित व समर्पित हुई।

तब अग्रदूतों ने ऊंचे स्वर में कहा, 'हे लोगो! हे शासको! बहुभाषाविदों! तुम्हारे लिए आदेश है कि जिस समय तुम विविध संगीत स्वरों में वाद्यवृंद सुनो तो नबूकदनेस्सर द्वारा निर्मित इस स्वर्ण-मूर्ति को साष्टांग दंडवत् (प्रणाम) कर इसकी पूजा करो।

और जो भी दंडवत् नहीं करेगा, उसे दहकती भट्टी में झोंक दिया जाएगा।

इसलिए उस समय जब लोगों, शासकों और बहुभाषाविदों ने विभिन्न वाद्यों का नाद सुना तो सभी लोग लेट गए और उन्होंने नबूकदनेस्सर द्वारा स्थापित मूर्ति की पूजा की।

तभी कुछ चालडीआ निवासी वहां आए और उन्होंने यहूदियों पर दोषारोपण किया।

उन्होंने राजा नबूकदनेस्सर से कहा, हे राजा, तू अमर रहे।

हे राजा! तूने एक आदेश जारी किया है कि जब कोई व्यक्ति, विशेष वाद्यवृंद सुने तो वह झुक जाए और स्वर्ण-मूर्ति की पूजा करे। जो झुक कर पूजा के आदेश का पालन नहीं करेंगे, उन्हें दहकती भट्टी में झोंक दिया जाएगा।

कुछ ऐसे यहूदी हैं जो श्रीमन् के आदेश से बेबीलोन में बसे हैं। वे हैं, शद्रक, मेशक, अबेद-नगो। हे राजा! ये तेरे आदेश का पालन नहीं करते, ये तेरे देवता को आदर नहीं देते, अर्चना भी नहीं करते, तेरे द्वारा स्थापित मूर्ति को नहीं पूजते।'

तब नबूकदनेस्सर ने कुपित हो आदेश दिया कि शद्रक, मेशक और अबेद-नगो को पेश किया जाए। तब वे राजा के सामने लाए गए।

नबूकदनेसर ने उनसे पूछा—'क्या यह सच है शद्रक, मेशक, अबेद-नगो कि तुम मेरे देवता को दंडवत् नमन नहीं करते, स्वर्ण-मूर्ति की पूजा नहीं करते जो मैंने स्थापित की है।

---

1. नीचे जो विवरण दिया गया है, वह डेनियल अध्याय 3, पद्य 1 से 23 (ओल्ड टैस्टामैंट) से है।

अब तुम तैयार रहो। जब तुम वाद्यों की आवाज सुनो तो झुककर उस मूर्ति की पूजा करो, जो मैंने बनवाई है। परन्तु यदि तुम पूजा नहीं करोगे तो तुम्हें तुरंत दहकती भट्टी में झोंक दिया जाएगा। फिर ऐसा कौन-सा देवता है जो तुम्हें मेरे हाथों से बचा लेगा।'

शद्रक, मेशक और अबेद-नगो ने राजा से कहा, 'हे नबूकदनेस्सर, इस मामले में हम तेरी परवाह नहीं करते। अगर ऐसा होता है, तो जिस देवता की हम सेवा करते हैं, वह हमें उस दहकती भट्टी से निकाल लेगा और हे राजा, वह हमें तेरे हाथों से भी बचा लेगा।

तो हे राजा, यह जान ले, यदि ऐसा नहीं होता है तो हम तुम्हारे देवताओं की सेवा नहीं करेंगे और न ही इस स्वर्ण-मूर्ति की पूजा करेंगे जो तूने स्थापित की है।' तब नबूकदनेस्सर आग-बबूला हो गया और उसके चेहरे की रंगत बदल गई। उसने आदेश दिया की भट्टी को सात गुना गर्माएं। फिर उसने सबसे शक्तिशाली व्यक्तियों से कहा कि वे शद्रक, मेशक और अबेद-नगो को बांधकर दहकती भट्टी में डाल दें।

तब उन व्यक्तियों को उनके कोटों, जुराबों, टोपों और दूसरे कपड़ों समेत बांधकर दहकती भट्टी में डाल दिया गया; क्योंकि यह राजा का आदेश था। भट्टी भभक उठी थी। लपटों ने उन लोगों को झुलसा दिया, जो शद्रक, मेशक और अबेद-नगो को लाए थे।

और वे तीनों बंधे हुए व्यक्ति—शद्रक, मेशक और अबेद-नगो—दहकती भट्टी में गिर गए।"

क्या भारत के ब्राह्मणों में इतनी अटूट आस्था और इतनी श्रद्धा अपने देवताओं के प्रति हो सकती है?

बक्ले महोदय ने अपने ग्रंथ "हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन" में कहा है—

"यह स्पष्ट है कि जब तक संदेह नहीं उपजते, तब तक प्रगति असंभव है। हमने यह देखा है कि सभ्यता मानव के बौद्धिक ज्ञान के योगदान पर निर्भर रही है और इस बात पर अवलम्बित है कि इस ज्ञान को कहां तक संचारित किया गया है। परंतु लोग अपने ज्ञान से संतुष्ट होकर बैठ जाते हैं। उसमें और वृद्धि की गुंजाइश नहीं समझते। जो व्यक्ति अपने ज्ञान और विचारों को संपूर्ण मानते हैं, वे यह कष्ट नहीं करते कि उसके आधार को टटोलें। जो कुछ उन्होंने अपने पुरखों से सीखा और सुना है, उसके विपरीत कुछ कहा जाए तो उन्हें अजीब-सा लगता है। प्रायः भयानक भी लगता है। जब उनकी मानसिक स्थिति यह होती है तो नए सत्य को ग्रहण करना असंभव-सा लगता है जो उनके पूर्व अर्जित निर्णयों से मेल नहीं खाता।

"इस प्रकार सामाजिक प्रगति के लिए नए तत्वों की जानकारी आवश्यक होने पर भी ऐसे ज्ञान की भी निरख-परख की जानी चाहिए क्योंकि बिना संदेह के हम निरख-परख नहीं करेंगे और बिना इसके ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ज्ञान कोई धरोहर या जड़ तत्व नहीं है जो बिना उद्योग किए हमारे पास दौड़ा चला आएगा। इसके लिए उद्यम करना होगा, इसके लिए अध्यवसाय और बलिदान की आवश्यकता है। जिन्हें अंधकार का अहसास ही नहीं है, वे प्रकाश की खोज क्यों करेंगे? यदि कभी हम किसी बिन्दु पर सुनिश्चित हों, तो आगे विश्लेषण नहीं करते क्योंकि विश्लेषण व्यर्थ प्रतीत होता है और शायद वह भयावह हो सकता है। निरख-परख से पहले संदेह का उठना जरूरी है। हम संदेह को सूत्रधार मानते हैं जो प्रगति का जनक है।"

परंतु ब्राह्मणों ने तो संदेह की गुंजाइश ही नहीं छोड़ी क्योंकि उन्होंने बड़ी चालाकी से एक मंत्र फूंक दिया, लोगों में एक ढ़कोसला फैला दिया कि वेद इंसान की रचना ही नहीं हैं। यदि हिंदू मनीषा जड़ हो गई है और हिंदू सभ्यता तथा संस्कृति एक सड़े हुए बदबूदार पोखर की तरह हो गई है तो यह ढ़कोसला जड़मूल से खत्म करना होगा, यदि भारत को प्रगति करना है। वेद बेकार की रचनाएं हैं, उन्हें पवित्र या संदेह से परे बताने में कोई तर्क नहीं है। ब्राह्मणों ने इन्हें केवल इसलिए पवित्र और संदेहातीत बना दिया कि उन्होंने इनमें पुरुषसूक्त के नाम से एक क्षेपक जोड़ दिया था, जिसने ब्राह्मण को भूदेव बना दिया। कोई यह पूछने का साहस नहीं करता कि जिन पुस्तकों में कबीलाई देवताओं से प्रार्थना की गई है कि वे शत्रु का नाश कर दें, उनकी सम्पत्ति लूट लें और अपने अनुयायियों में बांट दें, वे संदेहातीत कैसे हो गईं? परंतु अब समय आ गया है कि हिंदू इस अंधे कुएं से बाहर आएं। उन सड़ियल विचारों को तिलांजलि दे दें जो ब्राह्मणों ने फैलाए हैं। इनसे मुक्ति पाए बिना भारत का कोई भविष्य नहीं है। मैंने हर तरह की जोखिम जानकर यह रचना की है। मैं इसके परिणामों से नहीं डरता। यदि मैं लोगों की आंखें खोलने में सफल होता हूं, तो मुझे प्रसन्नता होगी।

—बी.आर. आंबेडकर

विषय-सूची

प्रकाशकीय *3*
दो शब्द *9*
परिचय *11*

भाग : 1. धार्मिक

पहली पहेली	: कोई हिंदू क्यों है?	19
दूसरी पहेली	: वेदोत्पत्ति : ब्राह्मणों की व्याख्या अथवा वाग्जाल	22
तीसरी पहेली	: वेदों की उत्पत्ति : अन्य शास्त्रों के साक्ष्य	24
चौथी पहेली	: ब्राह्मणों ने सहसा क्यों घोषित किया कि वेद, संशयरहित और असंदिग्ध हैं?	30
पांचवीं पहेली	: ब्राह्मणों की इस माया की क्या तुलना कि वेद न मनुष्य रचित है, न ईश्वर-रचित?	33
छठी पहेली	: वेदों की विषय-सामग्री : क्या उनका कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य है?	42
सातवीं पहेली	: समय का फेर : ब्राह्मणों ने कैसे घोषित कर दिया कि वेद उनके सभी शास्त्रों से तुच्छ हैं?	58
आठवीं पहेली	: वेद के विरुद्ध उपनिषदों का घोषित युद्ध	66
नौवीं पहेली	: उपनिषद् वेदों के अधीनस्थ कैसे बने?	71
दसवीं पहेली	: ब्राह्मणों ने हिंदू देवताओं को एक-दूसरे से क्यों लड़ाया?	74
ग्यारहवीं पहेली	: ब्राह्मणों ने देवताओं का उत्थान-पतन क्यों किया?	82
बारहवीं पहेली	: ब्राह्मणों ने देवताओं के मुकुट उतारकर देवियों की ताजपोशी क्यों की?	101
तेरहवीं पहेली	: अहिंसा की पहेली	109
चौदहवीं पहेली	: हिंसा की ओर वापसी	114
पन्द्रहवीं पहेली	: अहिंसक देवता के साथ रक्त-पिपासु देवी का संबंध क्यों?	118
परिशिष्ट	1. वेदों की पहेली	128
	2. वेदांत की पहेली	149
	3. त्रिमूर्ति की पहेली	159
	4. स्मार्त धर्म और तांत्रिक धर्म	173
	5. वेद अकाट्य हैं	179

भाग : 2. सामाजिक

सोलहवीं पहेली : चातुर्वर्ण्य : क्या ब्राह्मणों को अपनी उत्पत्ति का सही ज्ञान है? 185

सत्रहवीं पहेली : चार आश्रम–उनका कारण और परिणति 202

अठारहवीं पहेली : मनु का पागलपन अथवा मिश्रित जातियों की उत्पत्ति की ब्राह्मणवादी व्याख्या 211

उन्नीसवीं पहेली : पितृत्व से मातृत्व की ओर–ब्राह्मणों को इससे क्या मिला? 223

बीसवीं पहेली : कलिवर्ज्य अथवा पाप को पापकर्म घोषित किए बिना स्थगन की ब्राह्मणवादी कला 230

परिशिष्ट 1. वर्णाश्रम-धर्म की पहेली 233

2. अनिवार्य वैवाहिक अवस्था 263

भाग : 3. राजनीतिक

इक्कीसवीं पहेली : मन्वंतर का सिद्धांत 275

बाईसवीं पहेली : ब्रह्म धर्म नहीं है, ब्रह्म किस काम का? 281

तेइसवीं पहेली : कलियुग : ब्राह्मणों ने इसे अनन्त क्यों बनाया? 287

चौबीसवीं पहेली : कलियुग की पहेली 304

परिशिष्ट 1. राम और कृष्ण की पहेली 320

अतिरिक्त परि. : शूद्रों की रिडल 339

अनुक्रमणिका 357

भाग - 1

धार्मिक

पहली पहेली

कोई हिंदू क्यों है?

भारत विभिन्न समुदायों से मिलकर बना है। इसमें पारसी हैं, ईसाई हैं, मुसलमान और हिंदू हैं। इन समुदायों का आधार प्रजातीय (racial) नहीं है। इनका आधार सच में धार्मिक ही है। यह एक सतही सोच है। यह जानना दिलचस्प है कि कोई पारसी क्यों पारसी है? एक ईसाई क्यों ईसाई है? एक मुसलमान क्यों मुसलमान है और एक हिंदू क्यों हिंदू है? पारसी, ईसाई और मुसलमान के साथ तो आसानी है। किसी पारसी से पूछिए कि वह अपने आपको पारसी क्यों कहलाता है? तो उसे इसका जवाब देने में कोई कठिनाई नहीं होगी। वह कहेगा कि वह जरथूस्त्र को मानता है, इसलिए वह पारसी है। यही सवाल किसी ईसाई से कीजिए। उसे भी जवाब देने में कठिनाई नहीं होगी। वह ईसाई है क्योंकि वह ईसा मसीह में विश्वास रखता है। यही सवाल किसी मुस्लिम से किया जाए तो उसे भी इसका जवाब देने में संकोच नहीं होगा। वह कहेगा कि वह इसलाम में यकीन करता है और इसीलिए वह मुसलमान है।

अब यही सवाल आप किसी हिंदू से पूछिए। निःसंदेह वह बिलकुल हैरान हो जाएगा और उससे कोई जवाब देते नहीं बनेगा। अगर वह कहता है कि वह इसलिए हिंदू है कि वह उसी देव की आराधना करता है, जिसकी हिंदू समाज करता है तो उसका यह जवाब सही नहीं होगा, क्योंकि हिंदू किसी एक ही देव की पूजा नहीं करते। कुछ हिंदू एकेश्वरवादी हैं, कुछ बहुदेववादी तो कुछ सर्वेश्वरवादी हैं। यहां तक कि जो एकेश्वरवादी हैं, वे भी किसी एक ही देव की पूजा नहीं करते। कुछ विष्णु की पूजा करते हैं, कुछ शिव की, कुछ राम की तो कुछ कृष्ण की। कुछ हैं जो देवताओं की पूजा नहीं करते। वे देवियों की पूजा करते हैं। इस पर भी, वे सब उन्हीं देवियों की पूजा नहीं करते। वे अलग-अलग देवियों को पूजते हैं। कुछ काली को पूजते हैं, कुछ पार्वती को, तो कुछ लक्ष्मी को।

अब बहुदेववादियों की बात करें तो वे सभी देवों को पूजते हैं। वे विष्णु और शिव की पूजा करेंगे तो राम और कृष्ण की भी। वे काली, पार्वती और लक्ष्मी की पूजा करेंगे। एक हिंदू शिवरात्रि का व्रत रखेगा, क्योंकि वह शिव के लिए पवित्र है। वह एकादशी के दिन व्रत रखेगा क्योंकि वह विष्णु के लिए पवित्र है। वह शिव को प्रसन्न करने के लिए बेल वृक्ष रोपेगा और तुलसी का पौधा लगाएगा क्योंकि वह विष्णु को प्रिय है।

हिन्दू बहुदेववादियों की वंदना केवल हिंदू देवों तक ही सीमित नहीं है। हिंदू को

मुस्लिम पीर अथवा ईसाई प्रभु की पूजा से भी कोई संकोच नहीं है। हजारों हिन्दू तो ऐसे भी हैं जो मुसलमान पीरों के मज़ारों पर चादरें चढ़ाते हैं। दरअसल कुछ स्थानों पर मुसलमान पीरों के पुजारी वंश से ब्राह्मण हैं और वे मुसलमान पीरों जैसी अलफी पहनते हैं। हजारों हिंदू बंबई के पास ईसाई देवी मांट मौली की पूजा करते हैं।

मुस्लिम और ईसाई देवताओं को सिजदा तो कुछ खास मौकों पर ही किया जाता है, परंतु इससे ज्यादा स्थायी कुछ सतत् आस्थाएं भी हैं। अनेक ऐसे हिंदू नामधारी व्यक्ति हैं जिनकी आस्था में इस्लामी अंश काफी ज्यादा है। इनमें से उल्लेखनीय वे हैं, जो विचित्र पंचप्रिय पंथ को मानने वाले हैं। वे पांच गुमनाम मुस्लिम पीरों के मुरीद हैं, और उन्हें मुर्गों की कुर्बानी देते हैं, और इस काम के लिए मुस्लिम दफाली फकीर की पुरोहिताई की सेवा लेते हैं। पूरे भारत में ऐसे हिंदुओं की कमी नहीं जो मुसलमानों के सखी सरवर (पंजाब में) जैसे मजारों, दरगाहों की जिआरत करते हैं।

"मलकानों" के बारे में ब्लंट महोदय ने कहा है कि आगरा और आस-पास के जिलों में, खास तौर पर मथुरा, एटा और मैनपुरी जिलों में वे हिंदुओं से मुसलमान बने हैं। वे राजपूतों, जाटों और बनियों के वंशज हैं। वे आमतौर से अपने को मुसलमान नहीं मानते, बल्कि अपनी मूल जाति बताते हैं। कभी-कभी वे खुद को मलकान भी कहते हैं। उनके नाम हिंदुओं जैसे ही हैं और वे मंदिरों में पूजा करते हैं। वे अभिवादन में "राम राम" कहते हैं। उनका शादी-व्यवहार खास तौर पर आपस में ही है। दूसरी तरफ वे मस्जिदों में नमाज अदा करते हैं, खतना कराते हैं, मुर्दों को दफ़नाते हैं और जान-पहचान के मुसलमानों के साथ खाते-पीते हैं।

गुजरात में मटिया कुनबी जैसे कई ऐसे संप्रदाय हैं जो अपने खास अनुष्ठानों में ब्राह्मणों को बुलाते हैं, लेकिन पीराना संत इमाम शाह और उनके वारिसों के मुरीद हैं और मुसलमानों की तरह मुर्दों को दफनाते हैं। शेख दास लोग अपने यहां शादी-विवाह में पंडित और काजी दोनों को बुलाते हैं। मोमन सुन्नत कराते हैं, मुर्दों को दफ़नाते हैं और गुजराती में कुरान पढ़ते हैं। लेकिन अन्य कामों में उनके रीति-रिवाज हिंदुओं जैसे ही हैं।

अगर कोई यह कहे कि वह इसलिए हिंदू है, क्योंकि वह हिंदू धर्म में आस्था रखता है तो उसका उत्तर सही नहीं होगा क्योंकि हिंदुओं का कोई निश्चित पंथ ही नहीं है। जो लोग हिंदू समझे जाते हैं, उनके विश्वास आपस में एक-दूसरे से बिलकुल अलग हैं, जबकि ईसाइयों और मुसलमानों के साथ ऐसा कम ही है। हिंदुओं की मूल धार्मिक आस्थाएं भी बिलकुल अलग हैं, कुछ कहते हैं कि सभी हिंदू-शास्त्र उन्हें स्वीकार्य हैं परंतु कुछ हिंदू तंत्रों का तिरस्कार करते हैं। कुछ लोग वेदों को प्रमुखता से मानते हैं तो दूसरे कर्मवाद और पुनर्जन्म में विश्वास को अनिवार्य मानते हैं।

पंथों और सिद्धांतों का मिला-जुला समूह ही हिंदुत्व है। इसकी छत्रछाया में पलते हैं एकेश्वरवाद, बहुदेववाद और सर्वेश्वरवाद, महान देवता शिव और विष्णु के उपासक अथवा उनके नारी प्रतिरूप, साथ ही दैवी मातृ शक्तियों, वृक्षों, चट्टानों और धाराओं में बसी हुई आत्माओं

और संरक्षक ग्राम्य देवताओं के उपासक; ऐसे व्यक्ति, जो अपने देवताओं को सभी तरह की बलि देते हैं और ऐसे व्यक्ति, जो अहिंसक हैं और जिन्हें "वध" शब्द से ही घृणा है, जिनके धार्मिक अनुष्ठानों में मात्र प्रार्थनाएं और मंत्रोच्चारण सम्मिलित हैं और ऐसे भी जो धर्म के नाम पर अकथनीय आडंबरों में लिप्त हैं और इनमें अनेक हैं, जो कुल मिलाकर शास्त्रद्रोही हैं और कई तो ब्राह्मणों की सत्ता को ही नकारते हैं, या कम से कम उनके धर्माचार्य गैर-ब्राह्मण हैं।

अगर कोई यह कहे कि वह इसलिए हिन्दू है क्योंकि वह अन्य हिंदुओं के समान रीति-रिवाज का पालन करता है, तो यह भी झूठ होगा क्योंकि सभी हिंदुओं के रीति-रिवाज एक समान नहीं हैं।

उत्तर भारत में सपिण्डगोत्र में विवाह की प्रथा नहीं है। परंतु दक्षिण में चचेरे-ममेरे बहन-भाइयों में वैवाहिक संबंध प्रचलित हैं। नारी के सतीत्व के नियमों के संबंध में सर्वोच्च मान्यताएं हैं। कुछ जातियों में इसमें विशेष रूप से विवाह पूर्व काफी ढील दी जाती है। कहीं-कहीं लोग अपनी बेटी को धार्मिक वेश्यावृत्ति के लिए समर्पित भी कर देते हैं। कुछ इलाकों में स्त्री स्वच्छंद है तो कहीं-कहीं वह पर्दानशीन है। कुछ जगहों पर वे लंहगा पहनती हैं तो कहीं सलवार या कुछ और।

अगर कोई यह कहे कि वह इसलिए हिंदू है क्योंकि वह जातिप्रथा को मानता है, तो उसका यह जवाब भी संतोषजनक नहीं होगा। वह बिलकुल सच है कि किसी हिंदू को इससे कोई सरोकार नहीं कि उसके पड़ोसी की क्या आस्थाएं हैं, पर यह जानना उसका परम धर्म है कि वह उसके साथ खान-पान कर सकता है या नहीं। दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह हुआ कि जातिवाद हिंदू धर्म की आत्मा है और जो व्यक्ति किसी मान्यता-प्राप्त हिंदू जाति से संबद्ध नहीं है, वह हिंदू हो ही नहीं सकता। बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। जात-पांत में उनकी आस्था ही काफी नहीं है। जात-पांत तो ईसाइयों और मुसलमानों में भी दीमक की तरह घुसी हुई है। खान-पान में बेशक न हो, लेकिन शादी-व्यवहार में तो वह हर जगह व्याप्त है। लेकिन बस इसी वजह से वे हिंदू नहीं कहलाते। उनमें दोनों बातों का होना जरूरी है। उसे हिंदू होना चाहिए और जात-पांत में विश्वास रखना चाहिए। अब फिर वही सवाल उठता है कि हिंदू हैं कौन? इस संदर्भ में हम जहां के तहां खड़े हैं।

क्या हरेक हिंदू के सामने यह सवाल नहीं है कि उसके अपने धर्म के बारे में इतनी ऊहापोह क्यों है? इतनी उलझन क्यों है? वह ऐसे मामूली सवालों का जवाब क्यों नहीं दे पाता; जिनका उत्तर प्रत्येक पारसी, प्रत्येक ईसाई और प्रत्येक मुसलमान के पास है। क्या यह उचित समय नहीं है कि वह आत्मावलोकन करे कि क्या कारण हैं, जिनके फलस्वरूप यह धार्मिक अव्यवस्था बनी हुई है?

दूसरी पहेली

वेदोत्पत्ति : ब्राह्मणों की व्याख्या अथवा वाग्जाल

शायद ही कोई हिंदू होगा जो वेदों को अपने धर्म का पवित्रतम ग्रंथ न मानता हो। फिर भी अगर किसी हिंदू से पूछा जाए कि वेदों की उत्पत्ति कैसे हुई तो इस सीधे-सादे सवाल का कोई साफ-साफ जवाब देना उसके लिए मुश्किल होगा। बेशक अगर आप किसी वैदिक ब्राह्मण से यही सवाल करें तो वह कहेगा कि वेद सनातन हैं। परंतु इस सवाल का यह जवाब नहीं है। सबसे पहले तो 'सनातन' शब्द का मतलब क्या है?

'सनातन'[1] शब्द की सबसे अच्छी व्याख्या कुल्लूक भट्ट ने *मनुस्मृति* के भाष्य के प्रथम अध्याय, श्लोक 22-23 में की है। कुल्लूक भट्ट 'सनातन' शब्द की व्याख्या करते हुए कहता है–

> 'सनातन' का अर्थ है 'अनादि, अनन्त'। वेदों की दिव्य उत्पत्ति का सिद्धांत मनु ने प्रतिपादित किया। वही वेद पूर्व सृष्टि कल्प से ही ब्रह्मा की श्रुति में संरक्षित है, जो दिव्यात्मा है। वर्तमान कल्प के आरंभ में यही वेद थे, उसे अग्नि ने सुनाया, वायु ने सुनाया और सूर्य ने सुनाया। इसे अमान्य नहीं किया जा सकता, क्योंकि वेद कहता है कि *ऋग्वेद* अग्नि की देन है, *यजुर्वेद* वायु की और *सामवेद* सूर्य ने दिया है।

कुल्लूक भट्ट की बात समझने से पहले कल्प का मतलब समझना जरूरी है।

कल्प वैदिक ब्राह्मणों की काल गणना है। ब्राह्मणों ने काल की गणना इस प्रकार से की है–1. वर्ष, 2. युग, 3. महायुग, 4. मन्वंतर और 5. कल्प।

वर्ष को बड़ी सरलता से समझा जा सकता है। यह साल का समानांतर शब्द है।

युग कितनी अवधि का होता है, इस पर आम राय नहीं है।

महायुग चार युगों को मिलाकर एक बनता है–1. कृतयुग, 2. त्रेता युग, 3. द्वापर और 4. कलियुग। चार युगों का यही क्रम रहता है। जब पहला युग बीत जाता है तो दूसरा युग शुरू होता है। यही क्रम आगे भी चलता है। जब एक चक्र पूर्ण हो जाता है तो महायुग होता है।

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 6.*

प्रत्येक महायुग की शुरुआत कृतयुग से होती है और कलियुग पर उसका अंत होता है।

महायुग और कल्प को लेकर कोई अनिश्चितता नहीं है। इकहत्तर महायुगों का एक कल्प होता है, फिर भी महायुग और मन्वंतर काल के अंतराल को लेकर कुछ अनिश्चितता है। एक मन्वंतर 71 महायुगों के बराबर होता है या "कुछ अधिक" जिसके विषय में कुछ निश्चित नहीं है। "कुछ अधिक" समय का क्या मतलब है—ब्राह्मण इस बारे में ठीक-ठीक कुछ नहीं बता पाते। परिणामस्वरूप मन्वंतर और कल्प के बीच का समय निर्धारित हो ही नहीं पाता।

लेकिन हमारे लिए इसका कोई विशेष महत्व नहीं। फिलहाल हम अपना ध्यान कल्प तक सीमित रखेंगे।

कल्प का सृष्टि और प्रलय से घनिष्ठ संबंध बताया गया है। सृष्टि उसका आरंभ है तो प्रलय में कल्प का अंत हो जाता है। इस तरह कल्प से वेदों की उत्पत्ति जुड़ी हुई है।

इसका मतलब यह हुआ कि कल्प जब शुरू होता है, तब सृष्टि की शुरुआत होती है और प्रत्येक कल्प में वेदों की नई शृंखला शुरू होती है। कुल्लूक यह कहना चाहते हैं कि प्रत्येक कल्प में नए वेदों की रचना होती है और ब्रह्मा अपनी स्मृति से उन्हें फिर से स्थापित करते हैं। इसीलिए वह वेदों को अनादि-अनंत कहते हैं अर्थात् वे सनातन हैं।

कुल्लूक भट्ट यह कहना चाहते हैं कि वेदों की उत्पत्ति स्मृति से होती है। अब असली सवाल तो यह है कि उनकी रचना किसने की? सवाल यह नहीं है कि उन्हें स्मृति से कौन सुनाता है? अगर हम यह मान लें कि प्रत्येक कल्प के आरंभ में उनकी पुनरावृत्ति होती है तो जब पहला कल्प शुरू हुआ था तो उनकी रचना किसने की? वेदों की उत्पत्ति अपने आप तो हो नहीं सकती और अगर वे अनन्त हों तो भी अनादि तो नहीं हो सकते। ब्राह्मण साफ-साफ क्यों नहीं बताते? वे इस तरह घुमा-फिराकर बात क्यों करते हैं?

तीसरी पहेली

वेदों की उत्पत्ति : अन्य शास्त्रों के साक्ष्य

I

वेदों की उत्पत्ति की खोज को वेदों के साथ ही शुरू किया जा सकता है। *ऋग्वेद* में वेदों की उत्पत्ति का सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। वह प्रसिद्ध पुरुष सूक्त में उपलब्ध है। उसके अनुसार एक पौराणिक पुरुष के यज्ञ से वेद उत्पन्न हुए जो *ऋग्वेद, यजुर्वेद* और *सामवेद* कहलाए।

सामवेद और *यजुर्वेद* में वेदों की उत्पत्ति के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है। जिस अन्य वेद में यह संदर्भ है वह है, *अथर्ववेद*। उसमें वेदों की उत्पत्ति की अनेक व्याख्याएं हैं। एक व्याख्या[1] इस प्रकार है–

> "काल से ऋक् (ऋचाएं) प्रस्फुटित हुईं यजुस् काल से उपजा।"

अथर्ववेद में इस विषय में दो अन्य मत हैं। इनमें से पहला मत बहुत विवेकपूर्ण नहीं है, और इसे अपनी भाषा में इस प्रकार[2] कहा जा सकता है–

> "घोषित करो कि स्कंभ (मुख्य सहायक) कौन है जो आदि ऋषियों, ऋक्, साम, यजुस्, पृथ्वी और ऋषियों का पालक है...
>
> "बताओ वह स्कंभ कौन है जिससे ऋचाएं प्रस्फुटित हुईं, जहां से वे यजुस् में संक्रमित हुईं, जिससे साम मंत्र उत्पन्न हुए। अथर्वन् और अंगिरस् की वाणी क्या है?"

स्पष्ट है कि यह उनके लिए चुनौती है जो कहते हैं कि ऋक्, साम और यजुर्वेद की उत्पत्ति स्कंभ से हुई।

अथर्ववेद की दूसरी व्याख्या यह है कि वेदों के प्रणेता इंद्र[3] हैं।

II

वेदों ने अपनी उत्पत्ति के बारे में बस इतना ही कहा है। वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रंथ आते हैं। हमें यह पड़ताल करनी ही चाहिए कि वे इस संबंध में क्या कहते हैं।

---

1. *अथर्ववेद 19, 54.3 मूइर द्वारा ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत खंड 3, पृ. 4*
2. *अथर्ववेद 10, 7.14 मूइर द्वारा ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत खंड 3, पृ. 3*
3. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 4*

शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण और *कौषीतकि ब्राह्मण* में ही वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

शतपथ ब्राह्मण में कई व्याख्याएं हैं। एक व्याख्या के अनुसार वेदों की उत्पत्ति प्रजापति[1] से हुई। उसके अनुसार–

"आरंभ में एकमेव प्रजापति ही था, उसकी इच्छा हुई कि मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो। उसने उपासना की, तप किया।"

"जब वह उपासनालीन थे, ध्यानस्थ थे तो तीन तत्त्वों की उत्पत्ति हुई–पृथ्वी, वायु और आकाश। उन्होंने इनमें ऊष्मा का संचार किया। उस ऊष्मा से तीन तेज उत्पन्न हुए, अग्नि जो शुद्ध करती है, पवन अथवा वायु और सूर्य। इन तीनों तेजों ने ऊष्मा का संचार किया। उनके ताप से तीन वेदों की उत्पत्ति हुई। अग्नि से *ऋग्वेद*, वायु से *यजुर्वेद*, सूर्य से *सामवेद*। उन्होंने इन तीन वेदों में ऊष्मा का संचार किया, उनमें से तीन तेजोमय तत्त्वों की उत्पत्ति हुई। "भूः" *ऋग्वेद* से, "भुवः" *यजुर्वेद* से और "स्वः" *सामवेद* से निकले। अब ऋग्वेद से अध्वर्यु बना और सामवेद से उद्गातृ बना और इन तीन विधाओं से ब्राह्मण का कार्य, इन तत्त्वों के माध्यम से, निर्धारित हुआ (अर्थात तीनों वेदों से संयुक्त रूप में निर्धारण हुआ)।"

शतपथ ब्राह्मण में प्रजापति से वेदों की उत्पत्ति[2] की इससे भिन्न व्याख्या भी है। उसके अनुसार प्रजापति ने जल से वेदों की रचना की। *शतपथ ब्राह्मण* के अनुसार–

"पुरुष प्रजापति की इच्छा हुई, 'मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो।' वह उपासना में बैठ गए, उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने सबसे पहले त्रयी विद्या अर्थात 3 वेदों की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा यह विद्या ब्रह्मांड का मूल है। वेदों के अध्ययन के पश्चात् पुरुष को स्थायी आधार मिलता है क्योंकि विद्या उसका मूल है। इस आधार पर प्रजापति ने कठोर तप किया। उन्होंने वाक् (वाणी) से जल की रचना की। उन्होंने वाक् की भी रचना की। उसके विस्तरण से जल "आपः" कहलाया। उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह "वर्" बना। उन्होंने चाहा "मेरा जल से विस्तार हो" इस त्रयी विद्या से वह जल में प्रविष्ट हुए। तब एक अण्डज उभरा। उन्होंने उसे सरकाया और कहा–"भव भव पुनर्भव"। तब विद्या का जन्म हुआ; त्रिवेद विज्ञान अर्थात त्रयी विद्या का। फिर पुरुष ने कहा, विद्या ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरुष के समक्ष सर्वप्रथम विद्या की रचना हुई, इसलिए यह उसका मुख बनी। इस प्रकार वेदों के ज्ञाता के विषय में कहा जाता है कि वह अग्नि के समान है क्योंकि विद्या अग्नि का मुख है।"

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 5*
2. *वही पृ. 8*

शतपथ ब्राह्मण में तीसरी व्याख्या इस[1] प्रकार दी गई है–

मैंने तुझे सागर में स्थापित किया, वही तेरा आसन है।

"मन सागर है। मानस सागर से वाक् (वाणी) द्वारा देवताओं ने कुदाली से वेद विद्या को खोदकर बाहर निकाला। तत्पश्चात इस मंत्र का उच्चारण किया–देवता जाने उन्होंने उस सामग्री को कहां रखा, जिसे देवों ने तेजधार कुदाली से खोदकर बाहर निकाला था। मन समुद्र है, वाक् तीव्रधार कुदाली है। वेद विद्या समिधा है। इस संदर्भ में इस मंत्र का उच्चारण किया। वह मन में समा गया।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन व्याख्याएं हैं। उसके अनुसार, वेदों के कर्ता प्रजापति हैं, और यह भी कि प्रजापति ने राजा सोम को बनाया और तत्पश्चात तीन वेदों की रचना[2] की गई। इस ब्राह्मण की दूसरी व्याख्या[3] का प्रजापति से कोई तात्पर्य नहीं। इसके अनुसार–

"वाक् (वाणी) अविनाशी है, यह पूज्यों में प्रथम प्रसूत है, वेदों की जननी और शाश्वतता का केंद्र बिंदु है, हम में आनंदोपार्जन कर वह यज्ञ में प्रवेश करती है। मेधावी ऋषि, मंत्रों के स्रष्टा, जिसका अनुग्रह, तप और कठोर उपासना से प्राप्त करते हैं, ऐसी रक्षा की देवी मेरा आह्वान सुनने को उद्यत हो।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण एक तीसरी व्याख्या भी देता है। वह कहता है कि वेद प्रजापति[4] की दाढ़ी से उत्पन्न हुए।

III

उपनिषदों में भी वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या का प्रयास हुआ है।

छान्दोग्य उपनिषद की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण के समान[5] है। अर्थात् ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से हुई, *यजुर्वेद* की वायु से और *सामवेद* की सूर्य से।

बृहदारण्यक उपनिषद में दो व्याख्याएं दी गई हैं। एक जगह उसमें कहा गया है[6]

"आर्द्र काठ से अग्नि उपजी, उससे भिन्न-भिन्न धुएं उठे, उसकी श्वास प्रक्रिया से महान *ऋग्वेद* बना, *यजुर्वेद* बना, *सामवेद* बना, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और विभिन्न प्रकार के भाष्य बने। यह सब उसका निश्वास है।"

एक और जगह कहा गया है–

"प्रजापति (जो मृत्यु अथवा निगलने वाला है) द्वारा वाच की रचना की गई तथा उसके और आत्मा के माध्यम से वेदों सहित समस्त चीजों का सृजन हुआ है।"

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 9-10*
2. *वही पृ. 8*
3. *वही पृ. 10*
4. *वही पृ. 10*
5. *वही पृ. 5*
6. *वही पृ. 8*

"उसी वाच और आत्मा के माध्यम से उसने सबका सृजन किया, चाहे वह ऋग्वेद हो, यजुस्, साम, छंद, यज्ञ या विभिन्न जीव-जंतु हों।"

तीन वेद, तीन तत्त्व हैं—वाणी, मन और श्वास। वाणी है ऋग्वेद, मन है यजुर्वेद और श्वास है *सामवेद*।"

IV

अब हम स्मृतियों पर आते हैं। *मनुस्मृति* में वेदों की उत्पत्ति के संबंध में दो सिद्धांत हैं। एक जगह तो[1] उसमें कहा गया है कि वेदों की रचना ब्रह्मा ने की है—

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ 21 ॥

अर्थ : उस ब्रह्मा ने सबके नाम (जैसे गौजाति का गौ इत्यादि) और कर्म (जैसे ब्राह्मण का वेद पढ़ना इत्यादि) सृष्टि के आदि में वेद के शब्दों से ही जानकर अलग-अलग बनाए।

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत्प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ 22 ॥

अर्थ : उस ब्रह्मा ने देवताओं का गण (समूल), प्राणियों का गण, कर्म ही है स्वभाव जिनका, ऐसे अप्राणी पाषाणादिकों का गण, और सूक्ष्म साध्यों का अर्थात् देव विशेषों का गण और सनातन (ज्योतिष्टोम आदि) यज्ञ उत्पन्न किया।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ 23 ॥

अर्थ : ब्रह्मा ने यज्ञ की सिद्धि के लिए ऋक्, यजु और साम इन सनातन वेदों को अग्नि, पवन और सूर्य से क्रमपूर्वक प्रकट किया।

एक और जगह[2] ऐसा प्रतीत होता है कि प्रजापति वेदों का जनक है, जैसा कि निम्नांकित से प्रकट है—

"ब्रह्मा ने ऋक् आदि तीनों वेदों से क्रमशः "अ, उ, म" इन तीन अक्षरों तथा "भूः भुवः स्वः" इन तीनों व्याहृतियों को निकाला है। परम श्रेष्ठ ब्रह्मा ने ऋक् आदि तीनों वेदों से "तत्" शब्द से प्रारंभ होने वाला इस सावित्री (अथवा गायत्री) का एक तिहाई पद निकाला है। ओमकार-पूर्विका ये तीनों—भूः भुवः स्वः—अनश्वर तत्त्व हैं और त्रिपदा गायत्री वेदों का मुख है।"

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 6*
2. *वही पृ. 7*

V

वेदों को लेकर पुराणों का कथन भी दिलचस्प है। *विष्णु पुराण*[1] में कहा गया है–

"फिर अपने पूर्व मुख से ब्रह्मा ने गायत्री, ऋक्, त्रिवृत्, सोमरथंतर और अग्निष्टोम यज्ञों को रचा। दक्षिण मुख से यजु, त्रैष्टुप छन्द, पंचदशस्तोम, वृहत्साम तथा उक्थ्य की रचना की। पश्चिम मुख से साम, जगति छन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्र को उत्पन्न किया तथा उत्तर मुख से उन्होंने एकविंशतिस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्यामण, अनुष्टूप छन्द और वैराज छन्द की सृष्टि की।"

भागवत पुराण[2] में कहा गया है--

"एक बार जब चतुर्मुख ब्रह्मा के मुख से वेद प्रस्फुटित हुए, तब वह यह जानने के लिए ध्यान लगा रहे थे कि मैं पहले की भांति सृष्टि का कैसे विस्तार करूं? उन्होंने अपने पूर्व मुख और अन्य मुखों से ऋक्, यजुस्, साम और *अथर्ववेद* की रचना की, उसी के साथ प्रशस्ति, यज्ञ, ऋचाएं और प्रायश्चित की भी सृष्टि हुई"।

"उस स्त्री की आंखों में प्रविष्ट होते हुए उस स्त्री से एक चतुष्पाद नर उत्पन्न हुआ जो ब्रह्मा की तरह कांतिमय, अवर्णनीय, सनातन, अक्षय, दैहिक संवेदनाओं और गुणों से रहित था, जो विशिष्ट मेधा से दमक रहा था, चंद्रमा की किरणों की तरह शुद्ध था और शब्दों में साकार था। ईश्वर ने *ऋग्वेद* की रचना की। उन्होंने अपनी आंखों से *यजुर्वेद* को बनाया, जिह्वा के छोर से सामवेद की रचना की और सिर से अथर्ववेद रचा। अपनी रचना के साथ ही ये वेद क्षेत्र (शरीर) को प्राप्त हो गए। फिर उन्हें वेदों के गुण प्राप्त हुए क्योंकि उन्हें अपने गृह प्राप्त (विंदंति) हुए। फिर इन वेदों ने अनादि सनातन ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति की, एक अपने गुणों से संपन्न स्वर्गीय पुरुष की रचना की।"

उसमें प्रजापति को भी स्रष्टा माना गया है–"जब जगदीश्वर सृष्टि करने की इच्छा से मन ही मन कुछ विचार करने लगे तब हिरण्यगर्भ अथवा प्रजापति के मुख से ओम् की ध्वनि प्रकट हुई। वह जगदीश्वर अपने को विभक्त करना चाहता था, उसने बार-बार विचार किया कि अपने स्वरूप का विभाजन कैसे करूं, इस विषय में मुझे संदेह है। 'हरिवंश' का इस बारे में कथन है–[3]

---

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 11

2. वही पृ. 11

3. वही पृ. 14

"ऐसा सोचते हुए भगवान के मुख से ओम् का उच्चारण हुआ। यह शब्द समस्त पृथ्वी, वायु और आकाश में ध्वनित हुआ। इस मन के परम तत्त्व को जब देवों के देव बार-बार उच्चारित कर रहे थे, तब उनके हृदय से वषट्कार प्रकट हुआ। इसके बाद पृथ्वी, वायु और अंतरिक्ष की सारभूता "भूः, भुवः, स्वः," महास्मृतिमयी व्याहृतियां जन्मीं। फिर छंदों में श्रेष्ठ देवी गायत्री पैदा हुई जो चौबीस अक्षरों से युक्त है। भगवान ने 'तत्' पद का स्मरण करके सावित्री मंत्र को प्रकट किया। फिर प्रजापति ने मंत्रों व कर्मकांड के साथ ऋक्, साम, अथर्व और यजु नामक चारों वेदों का प्रादुर्भाव किया।"

VI

इस प्रकार वेदों की उत्पत्ति से संबंधित ग्यारह भिन्न-भिन्न व्याख्याएं हमें उपलब्ध हैं–1. पुरुष के रहस्यात्मक यज्ञ से उत्पन्न हुए, 2. स्कंभ पर आधारित हैं, 3. उससे विलगित बालों और मुख से निकले, 4. इंद्र ने उत्पन्न किए, 5. काल से जन्मे, 6. अग्नि, वायु और सूर्य से उत्पन्न हुए, 7. प्रजापति और जल से पैदा हुए, 8. ब्रह्मा की श्वास हैं, 9. ईश्वर ने मानस सागर से खोदकर निकाला, 10. ब्रह्मा की दाढ़ी के बाल हैं, 11. वाच का विस्तार है।

एक सीधे से सवाल के इतने सारे हैरान कर देने वाले जवाब होना अपने आपमें एक पहेली है। ये जवाब जिन लेखकों ने प्रस्तुत किए, वे सब के सब ब्राह्मण हैं। वे एक ही वैदिक सिद्धांत के मानने वाले हैं। प्राचीन धार्मिक कहानियों को इन्होंने ही आगे बढ़ाया। इस सीधे से सवाल के ऐसे असंगत और अव्यवस्थित जवाब क्यों दिए गए?

चौथी पहेली

ब्राह्मणों ने सहसा क्यों घोषित किया कि वेद, संशयरहित और असंदिग्ध हैं?

वेदों का हिंदू धार्मिक ग्रंथों में बहुत ऊंचा स्थान है, यह एक अल्पकथन है। यह भी एक अपर्याप्त बयान है कि वेद हिंदुओं का पवित्र साहित्य है, क्योंकि वेद धर्म-ग्रंथ होने के साथ-साथ ऐसे ग्रंथ हैं जिनकी प्रामाणिकता पर संदेह व्यक्त नहीं किया जा सकता। वेद तो अचूक हैं। वेदों पर आधारित कोई भी तर्क अंतिम और निर्णायक होता है। इस पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता। यह वैदिक ब्राह्मण का सिद्धांत है और आमतौर पर सभी हिन्दू इसे मानते हैं।

I

इस सिद्धांत का आधार क्या है? इसका आधार यह मत है कि वेद अपौरुषेय हैं। जब वैदिक ब्राह्मण कहते हैं कि वेद अपौरुषेय हैं तो इसका अर्थ है इनकी रचना मनुष्य ने नहीं की है। मनुष्य की रचना नहीं होने के कारण इनमें त्रुटि, संशय और दोष नहीं हो सकता, जो मानव-रचना में संभव है और इसलिए ये अचूक हैं।

II

यह अबूझ है कि वैदिक ब्राह्मणों ने इस सिद्धांत को क्यों प्रतिपादित किया। क्योंकि एक समय था जब वैदिक ब्राह्मणों को स्वयं इनकी आधिकारिकता, निर्णय-जन्यता और प्रामाणिकता पर संशय था। वे वैदिक ब्राह्मण और कोई नहीं धर्म-सूत्रों के रचयिता ही थे—

हम गौतम धर्म-सूत्र से आरंभ करते हैं—

वह वेदों के अचूक होने के सवाल पर निम्नांकित नियम का प्रतिपादन करता है—

'वेद पवित्र विधान का स्रोत है।" 1-1

"और वेद-विज्ञों की परंपरा और व्यवहार है।" 1-2

"यदि समज्ञान के विद्वानों में मत-भिन्नता हो तो सुविधानुसार (किसी एक को मान्य समझने) का उसे अधिकार है।" 1-4

वशिष्ठ धर्म-सूत्र का मत इस प्रकार है–

"पवित्र विधान सुनिश्चित पाठ है अर्थात् वेद और ऋषि परंपरा।" 1-4

"विधान में संशय पर इन्हीं (दो स्रोतों शिष्टों का व्यवहार प्रमाण है)।" 1-5

बौधायन के विचार इस प्रकार हैं–

प्रश्न 1 अध्याय 1, कण्डिका।

1. पवित्र विधान प्रत्येक वेद में है।

2. हम उसी के अनुसार व्याख्या करेंगे।

3. पवित्र नियम में परंपरागत शिक्षा (स्मृति) का स्थान द्वितीय है।

4. शिष्टों का व्यवहार तृतीय।

5. संशय की अवस्था में–न्यूनतम दस सदस्यों का सम्मेलन (नियम के विवादित बिंदुओं पर निर्णय करें।)

आपस्तंब धर्म-सूत्र निम्नलिखित सूत्र में स्पष्ट कहता है–

"इसलिए अब हम योग्य कृत्यों को घोषित करते हैं, जो दैनिक जीवन की रीतियों का हिस्सा है।" 1-1

'इनका प्रमाण उनकी सहमति है जो नियमों को जानते हैं।" 1-2

"विधान का प्रमाण मात्र वेद है।" 1-3

शिष्टों के संबंध में वशिष्ठ धर्म-सूत्र और बौधायन धर्म-सूत्र ने यह पारिभाषित करने में विशेष सतर्कता बरती है कि शिष्ट कौन हो सकते हैं? वशिष्ठ धर्म-सूत्र कहता है–

"इच्छाओं से जिनका हृदय स्वतंत्र है", वे शिष्ट हैं।" 1-6

बौधायन शिष्टों की योग्यता बताने हेतु अति विस्तृत विवरण देते हैं, उनका कथन इस प्रकार है–

5. शिष्ट निःसंदेह (वे हैं) जो निःस्पृह और दर्पशून्य हैं, दस दिन तक के ही अन्न-संग्रह से संतुष्ट हैं। लालसा रहित हैं, पाखंड, क्रोध, लोभ, मोह और मद रहित हैं।"

6. "शिष्ट वे हैं, जो पवित्र विधान के अनुरूप वेद-वेदांग के अध्येता हैं। उनका सार निकाल सकते हैं, प्रामाणिक पाठ की व्याख्या करके निर्णय दे सकते हैं।"

बौधायन ने उस सभा के विषय में बहुत रोचक बात कही है जिसे निर्णय का अधिकार है। इस विषय में उसका कथन इस प्रकार है–

8. "वे उद्धरण भी देते हैं। (निम्नांकित मंत्र) "चार व्यक्ति, जिनमें से प्रत्येक एक वेद का ज्ञाता है, एक मीमांसक, जिसे अंगों का ज्ञान है, एक जो

पवित्र विधान उद्घोषित करता है और तीन व्यवस्थाओं के तीन ब्राह्मणों को मिलाकर कम से कम दस सदस्यों की एक सभा बनती है।"

9. "पांच, तीन अथवा एक निष्कलंक हो, जो पवित्र नियम का निर्णय दे। परंतु सहस्त्र मूर्ख मिलकर भी निर्णय नहीं दे सकते।"

"अशिक्षित ब्राह्मण काठ के हाथी और चर्म निर्मित कुरंग (मृग) के समान मात्र देखने की वस्तु है, काम की नहीं।"

धर्म-सूत्र[1] की इस समीक्षा से पता चलता है कि किसी विवाद पर निर्णय के चार माध्यम हैं—1. वेद, 2. स्मृति, 3. शिष्ट व्यवस्था, और 4. किसी सभा में चार विभिन्न विशेषज्ञों की सहमति। यह भी पता चलता है कि एक समय ऐसा भी था जब एकमात्र वेद ही भ्रमातीत संस्था नहीं थी। वह समय था वशिष्ट और बौधायन के धर्म-सूत्रों का युग। आपस्तंब वेदों की सत्ता को बिलकुल भी स्वीकार नहीं करता। उसने वैदिक ज्ञान को सभा के सदस्यों के चुने जाने की योग्यता मात्र बताया है, जबकि महत्वपूर्ण सभा थी जिसका किया हुआ निर्णय ही विधान था (संप्रभु विधान)। वेदों को आधिकारिक ग्रंथ नहीं माना जाता था और सभा की ही प्रामाणिक व्यवस्था थी, जिसमें विद्वान निर्णय लेते थे। गौतम के समय में वेदों को एकछत्र प्रमाण माना गया। एक समय था जब सभा का निर्णय ही एकमात्र प्रमाण होता था। यह बौधायन का ही युग था।

यह निष्कर्ष शतपथ ब्राह्मण के इस उद्धरण से भी पुष्ट किया गया है। इसमें कहा गया है—

(यहां अधूरा छोड़ दिया गया है, उद्धरण और इससे आगे की चर्चा भी नहीं दी गई है)

---

1. मैक्स मूलर के अनुसार धर्म-सूत्र का समय ईसा पूर्व 200 से 600 के बीच का था।

पांचवीं पहेली

ब्राह्मणों की इस माया की क्या तुलना कि वेद न मनुष्य रचित है, न ईश्वर-रचित?

वैदिक ब्राह्मण वेदों को अचूक कहने भर से संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने उससे भी आगे जाकर यह कहा कि वेद अपौरुषेय हैं। इसका मतलब है कि वेदों की रचना मनुष्यों ने नहीं की। इस सिद्धांत से वे सचमुच अचूक हो जाते हैं। मनुष्य की रचना नहीं होने से इसमें त्रुटि, संशय और दोष नहीं हो सकता जो मानव-रचना में संभव है। इसलिए ये अचूक हैं। फिर भी इस सिद्धांत पर अलग से विचार करना जरूरी है क्योंकि यह एक स्वतंत्र सिद्धांत है।

क्या सचमुच वेदों का लेखक कोई मनुष्य नहीं था? क्या वे सचमुच ही अपौरुषेय थे? इस विषय में सर्वश्रेष्ठ साक्ष्य अनुक्रमणी में है, जो प्राचीन संस्कृत साहित्य में विशेष प्रकार के साहित्य का हिस्सा है। अनुक्रमणी प्राचीन वैदिक साहित्य की क्रमवार विषय-सूची है। प्रत्येक वेद की अनुक्रमणी है। कहीं-कहीं एक से अधिक भी हैं। *ऋग्वेद* की सात अनुक्रमणियां उपलब्ध हैं, इनमें से पांच शौनक की, एक कात्यायन की और एक किसी अज्ञात विद्वान की तैयार की हुई है। *यजुर्वेद* की तीन हैं, इनमें तीन शाखाओं में से प्रत्येक की एक है। ये हैं, आत्रेयी, चारायणी और माध्यंदिन। *सामवेद* की दो अनुक्रमणियां हैं। एक का नाम **आर्षेय ब्राह्मण** है और दूसरी का **परिशिष्ट** है। *अथर्ववेद* की एक अनुक्रमणी है। इसका नाम **बृहत्-सर्वानुक्रमणी** है।

प्रोफेसर मैक्स मूलर के अनुसार कात्यायन की *ऋग्वेद* की सर्वानुक्रमणी अपने आप में मुकम्मल है। इसका महत्व इसलिए है क्योंकि इसमें (1) प्रत्येक मंत्र का प्रथम शब्द दिया गया है, (2) मंत्रों की संख्या दी गई है, (3) संकलन-कर्ता ऋषि और उसकी परंपरा का नाम, (4) देवता का नाम, और (5) प्रत्येक छंद का नाम दिया गया है। सर्वानुक्रमणी के संदर्भ से यह पता चलता है कि मंत्रों के लेखक ऋषिगण हैं और उनका संग्रह ऋग्वेद है। ऋग्वेद अनुक्रमणी के अनुसार यह साक्ष्य मिलता है कि यह वेद पौरुषेय है। अन्य वेदों के विषय में भी यही निष्कर्ष हो सकता है। अनुक्रमणियां यथार्थ है, यह बात ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से सिद्ध होती है जिनमें ऋषि अपने को वेदों के मंत्रों के रचयिता मानते हैं।

कुछ ऐसे उद्धरण निम्नांकित हैं–

"कण्वों ने तुम्हारे लिए स्तुति की है, उनकी स्तुति सुनो।" "हे इंद्र, अश्वों के सारथी, अपनी प्रभावोत्पादकता हेतु गौतम का मंत्र सुनो।"

"तेरे तेजवर्धनार्थ, हे ऐश्वर्यमान अश्विन्, मनस् (मन) द्वारा प्रभावोत्पादक मंत्रों की रचना की गई है।"

"हे अश्विन्, यह सार्थक उपासना मंत्र तेरे लिए गृत्समद ने रचा है।"

"हे इंद्र, तू प्राचीन है जो अश्वों को जोतता है, तेरे लिए गौतम के वंशज नोधस् ने नया मंत्र रचा है।"

"सो हे पुरोधा, प्रश्रय हेतु गृत्समद ने मंत्र (स्तुति) रचा है जैसे मनुष्य निर्माण करता है।"

"ऋषियों ने इंद्र के लिए एक प्रभावोत्पादक रचना की है और प्रार्थना की है।"

"हे अग्नि, ये मंत्र तेरे लिए रचे गए हैं, अपनी गउओं और अश्वों का सुख प्रदान करें।"

"हमारे पिता ने सप्त शीर्ष सूक्त बनाया है जो पवित्र सत्य से जन्मा है। इस चौथे महान मंत्र का सबके मित्र अयास्य ने आह्वान किया है।"

"हम रहूगणों ने अग्नि के लिए मधुभाषा में मंत्रोच्चारण किया है, हम उनका गुणगान करते हैं।"

"सो आदित्यों, अदिति और सत्ता संपन्न गण प्लाति पुत्र ने तुम्हारी स्तुति की है। गया ने स्वर्गीय देवों की प्रशस्ति गाई है।"

"इसी को वे ऋषि पुरोहित यज्ञकर्ता कहते हैं, स्तुति गायक, मंत्रोच्चारक कहते हैं, वही (अग्नि के) तीन शरीरों को जानता है। वही वरदानों की वर्षा करने वाला प्रमुख है।"

अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त और भी साक्ष्य हैं, जिनसे पता चलता है कि वेद अपौरुषेय नहीं हैं। स्वयं ऋषियों ने वेदों को मानव-रचित और ऐतिहासिक माना है। ऋग्वेद के मंत्र प्राचीन और आधुनिक ऋषियों के बीच भेद करते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

"अग्नि, जिसकी पूर्ववर्ती और साथ ही वर्तमान ऋषि भी स्तुति करते हैं, शुभ करेगा।"

"पूर्ववर्ती ऋषि ने संकटमोचन हेतु तेरा आह्वान किया।"

"मुझ वर्तमान ऋषि की ऋचाएं सुनो, इस वर्तमान (ऋषि) की।"

"इंद्र, तू पूर्ववर्ती ऋषियों के लिए एक आह्वान था, जिन्होंने अर्चना की–जैसे पिपासु के लिए जल। इस मंत्र द्वारा मैं तेरा आह्वान करता हूं।"

"पूर्ववर्ती ऋषियों, देदीप्यमान ऋषियों ने बृहस्पति के सम्मुख आह्लादपूर्ण स्वर में प्रस्तुति की।"

"हे मधवन्, किसी परवर्ती या पूर्ववर्ती पुरुष अथवा वर्तमान पुरुष में इतना पराक्रम नहीं।"

"क्योंकि (इंद्र के) पूर्ववर्ती आराधक हम हो सकते हैं। वे निष्कलंक, अप्राप्य और अनाहूत थे।"

"हे शक्तिमान देव! इस हेतु लोग तेरे आराधक हैं, जैसे कि पूर्ववर्ती मध्ययुगीन और परवर्ती तेरे मित्र थे और हे परम आहूत, सभी वर्तमान वय वालों की सोच।"

"हमारे पूर्व पिता इंद्र के लिए सात नवगव ऋषि अपने मंत्रों में भोजन की याचना करते हैं।"

"हमारे नवीनतम मंत्रों से गौरवांवित होकर, क्या आप हमें संपदा और संतति सहित भोजन देंगे?"

ऋग्वेद के गहन अध्ययन से पता चलेगा कि उसके ही पुराने और नए मंत्रों के बीच अंतर है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

"हमारे नवीनतम मंत्रों से गौरवांवित होकर, तुम हमें संपदा और संतति सहित भोजन दो।"

"हे अग्नि तूने देवताओं के मध्य हमारे नवीनतम आह्वान की घोषणा की थी।"

"हमारे नवीन मंत्र से तेरा वेग बढ़ेगा। पुरंदर हमें प्राणवान् आशीर्वाद दें।"

"शक्ति-पुत्र अग्नि को मैं एक नवीन ऊर्जावान मंत्र अर्पित करता हूं जो भाववाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।"

"जो नवीन अभिव्यक्ति अभी प्रस्फुटित हुई है, उसके द्वारा मैं शक्तिमान संरक्षक को मानस रचना प्रदान करता हूं"।

"हमारी सहायता हेतु गर्जन करने वाले पुंगव नया मंत्र तुझे उद्‌बोधित करें।"

"मैं पूर्वजों की भांति नवीन मंत्र द्वारा तुझे उत्प्रेरित करना चाहता हूं।"

"तेरी स्तुति में जो नए मंत्र रचे गए हैं, उनसे तू संतुष्ट हो।"

"हे सोभरी, इन युवा शक्तिमान और बुद्धिमान देवों के लिए नए मंत्रों का उच्चारण कर।"

"गर्जन करने वाले वृत्रहंता इंद्र, हम अनेक (पूजकों) ने तेरे लिए कई मंत्र रचे हैं, जो सर्वथा नवीन हैं।"

"मैं इस प्राचीन देव को संबोधित करूंगा। मेरी नई स्तुति, जिसकी उसे इच्छा है, उसे वह सुनें।"

"हम अश्वों, पशुधन और संपदा की कामना से, तेरा आह्वान करते हैं।"

इतने सारे साक्ष्य प्रस्तुत करने पर जब यह सिद्ध हो जाता है कि वेदों की रचना मनुष्य

ने की है तो फिर ब्राह्मणों ने कंठशक्ति से यह प्रचार क्यों किया कि वेद मानव-रचित नहीं हैं। यह एक पहेली है कि यह प्रचार किस उद्देश्य से किया गया?

इसके बावजूद भी अनेक प्रमुख दार्शनिक वेदों की सत्ता को स्वीकार करते थे, हालांकि वे यह नहीं मानते थे कि वेद सनातन अथवा अपौरुषेय हैं।

न्याय के दर्शन के संस्थापक गौतम का कहना था–

> "मंत्रों की भांति वेदों और आयुर्वेद की प्रामाणिकता ऐसे प्रवीण पुरुषों के कारण स्थापित हुई, जिन्होंने इसे प्रचारित किया। क्योंकि वेदों के प्रवीण स्रष्टा विद्वान थे, सत्यनिष्ठ थे, उसी का प्रमाण है कि वेदों की रचना ऐसे व्यक्तियों ने की और इसी कारण वेदों की प्रामाणिकता का आभास होता है। यह मंत्रों और *आयुर्वेद* के दृष्टांत देते हैं। मंत्र का अर्थ है ऐसा वाक्य जो विषादि का शमन करता है और *आयुर्वेद* वेद का अंग है, जिसमें वेद के लक्षण भी हैं। उसके विषय में इस दृष्टांत से अनुमान लगाया जाना चाहिए क्योंकि इन दोनों की सत्ता सामान्यतः स्वीकार्य है। कुछ इस सूक्ति की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। वही वेद हैं जिसमें प्रामाणिकता विद्यमान है अथवा मान्य है। ऐसे वेदत्व से किसी रचना की प्रामाणिकता का अनुमान किया जा सकता है।"

वैशेषिक दर्शन मानता है कि वेद प्रमाण हैं किंतु इसका आधार निम्नांकित है–

1. कि वेद मेधावी मानस की रचना हैं, और
2. इनका उद्‌भव दैवी है। इसलिए ये प्रामाणिक हैं।

सांख्य दर्शन के संस्थापक कपिल कहते हैं कि वेदों के सनातन होने का अनुमान नहीं किया जा सकता क्योंकि वेदों के अनेक पाठों में ही यह घोषणा है कि वे रचे गए हैं। इसमें इस बात का स्पष्ट खंडन किया गया है कि वेदों का उद्‌भव किसी दैवी शक्ति के सुविचारित प्रयासों से हुआ। सांख्य के अनुसार वेद प्रदीप्त सूर्य के समान हैं, जिनमें अपना ही प्रकाश है और वे अपनी पूर्णता दिखाने और सृष्टि को प्रकाशित करने के लिए अपनी ही शक्ति से प्रकाशमान हैं। चाहे वह भूत हो या भविष्य, विराट हो या क्षुद्र, निकटस्थ हो या दूरस्थ।

वेदांत-दर्शन दो भिन्न मत व्यक्त करता है। वह ब्रह्म को वेदों का स्रष्टा मानता है क्योंकि वह उद्‌गम और उद्‌गम का कारण भी है। उसने ब्रह्म को अनरनारी अर्थात नपुंसक परमात्मा कहा है, न कि स्रष्टा पुरुष। उसने वेदों को सनातन घोषित किया है और उनके एक स्वतंत्र नियंता की ओर भी संकेत किया है।

ब्राह्मणों को मात्र इसी से संतुष्टि नहीं होती कि वेदों की रचना मनुष्य ने नहीं की थी। वे तो इससे भी आगे जाकर यह कहते हैं कि स्वयं ईश्वर भी उनका स्रष्टा नहीं है। यह

सिद्धांत पूर्व मीमांसा के प्रणेता का है। इस सिद्धांत के पक्ष में जैमिनि के तर्क इतने विचित्र हैं कि इन्हें जानकर ही इनकी विचित्रता का आभास हो सकता है।

ब्राह्मण-दर्शन के ग्रंथ पूर्व मीमांसा में यह उल्लेख है कि वेद अपौरुषेय हैं। ग्रंथ के निम्नलिखित अंश इस तर्क को उजागर करते हैं।

पूर्व मीमांसा के रचयिता जैमिनि पहले न्यायवैशेषिक के कथन की विवेचना करते हैं; जिनका विचार है कि वेद परमेश्वर की कृति है। वह न्यायवैशेषिक के कथन का उल्लेख करते हैं।

मीमांसक का तर्क है कि–

> "वेदों का उद्‍गम अमूर्त परमेश्वर द्वारा संभव नहीं जिसके तालू अथवा उच्चारण के लिए कोई अंग ही नहीं है और इस कारण यह सोचा नहीं जा सकता कि वह शब्दों की अभिव्यक्ति कर सकता है। इस आपत्ति पर नैयायिक की प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं है क्योंकि उनके अनुसार चाहे परमेश्वर अमूर्त है फिर भी अपने भक्तों को कृतार्थ करने हेतु वह रूप धारण कर सकता है। इस प्रकार यह तर्क कि वेद पौरुषेय नहीं है, अमान्य है।"

फिर वह मीमांसकों के सिद्धांत पर आते हैं–

> "मैं अब इन संदेहों का निराकरण करता हूं कि इस पौरुषेयत्व का क्या अर्थ है जिसे प्रमाणित करना है। इसका तात्पर्य है, (1) किसी पुरुष द्वारा उत्पत्ति, जैसे हमारे द्वारा वेदों की उत्पत्ति, जब हम इनका दैनिक पाठ करते हैं अथवा, (2) इसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से कोई व्यवस्था है, जैसे अन्य स्रोतों से गृहीत ज्ञान से हमने स्वयं ग्रंथों की रचना की है। यदि पहले अर्थ को ग्रहण किया जाए तो कोई ही विवाद नहीं होगा।"
>
> यदि दूसरे भाव को ग्रहण किया जाए तो मेरा प्रश्न है कि क्या इस कारण वेदों को प्रामाणिक माना जाए कि वे अनुमान के आधार पर प्रामाणिक सिद्ध होते हैं (क) अथवा उन्हें इस कारण प्रामाणिक मानें कि वे दैवी वाक्य हैं, अर्थात उनमें अगम ज्ञान है।
>
> पहला विकल्प (क) यह है कि वेद इसलिए प्रामाणिक हैं क्योंकि यह अनुमान पर आधारित हैं और यह सही नहीं हो सकता, क्योंकि यह सिद्धांत तब गलत सिद्ध हो जाता है जब इसे मालती माधव या अन्य किसी लौकिक काव्य-ग्रंथ पर लागू किया जाता है (जिसमें शायद प्रामाणिकता से रहित अनुमान हैं।) और अगर दूसरी ओर आप कहते हैं कि (ख) वेदों की सामग्री अन्य प्रामाणिक ग्रंथों से भिन्न है, इससे भी दार्शनिक सहमत नहीं होंगे क्योंकि वेद वह वाक्य है जिसे अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता।

अब अगर यह प्रमाणित किया जा सके कि वेद-वाक्य ने मात्र उसी को प्रमाणित किया, जिसे अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता तो फिर हम उसी तरह के अंतर्विरोध में पड़ जाते हैं जैसे कि कोई व्यक्ति यह कहे कि उसकी मां एक बांझ औरत थी।

और यदि हम यह स्वीकार कर लें कि परमेश्वर ने कोई स्वरूप धारण किया होगा तो यह मान्य नहीं होगा, क्योंकि बिना किसी तत्त्व के उन्होंने ऐसा कुछ व्यक्त किया हो जो अतीन्द्रिय हो, यह संभव नहीं, वह भी तब जब कोई देश-काल और परिस्थिति न हो। यह भी नहीं सोचा जा सकता कि उनके नेत्र तथा दूसरी इंद्रियों में ऐसे ज्ञान-प्रसार की कोई शक्ति थी। पुरुष केवल वही जान सकता है, जो उसने साक्षात् देखा है।

किसी सर्वज्ञ रचयिता की कल्पना से असहमत होते हुए ही गुरु (प्रभाकर) ने कहा है–

> “जब किसी तत्त्व के संपूर्ण रूप को देखा गया हो तो वह कल्पना बहुत ही धुंधली अथवा अति सूक्ष्म होगी क्योंकि कोई भी इन्द्रिय अपने निश्चित धर्म से विरत नहीं हो सकती, जैसे श्रवणेंद्रिय किसी स्वरूप को देख नहीं सकती।”
>
> “इस प्रकार वेदों की सत्ता किसी अलौकिक ज्ञान से संपन्न नहीं है जो किसी कायिक (साकार) देव से प्राप्त हुआ हो।”

नैयायिकों के मत को खारिज करते हुए जैमिनि ने ये तर्क रखे हैं। उसके बाद जैमिनि ने यह सकारात्मक तर्क दिया है कि वेद किसी भी प्रकार ब्रह्म वाक्य नहीं हैं बल्कि उससे भी श्रेष्ठ हैं।

> “पूर्ववर्ती सूत्रों में उद्घोषित किया गया है कि ध्वनि और उसके अर्थ का संबंध सनातन है। वह चाहते हैं कि यह प्रमाणित करें कि यह सनातनता शब्द की सनातनता अथवा स्वर पर निर्भर है। वह सवाल के पहले हिस्से से शुरू करते हैं अर्थात् उस सिद्धांत से कि ध्वनि सनातन नहीं है।”
>
> “कुछ लोग अर्थात् न्याय दर्शन के मानने वाले यह कहते हैं कि ध्वनि एक रचना है क्योंकि हम देखते हैं कि यह आयास का परिणाम है, और अगर यह सनातन होता तो ऐसा नहीं होता।
>
> “कि अपने संक्रमण स्वभाव के कारण यह सनातन नहीं है अर्थात् यह एक क्षण में ही विलीन हो जाती है।”
>
> “क्योंकि इसके संबंध में हम क्रिया को “निकालना” कहते हैं अथवा हम ध्वनि निकालते हैं।”
>
> “क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों को इसकी अनुभूति तत्काल होती है और

परिणामतः श्रवणेन्द्रिय के तत्काल संपर्क में आती है—दूरस्थ और निकटस्थ। यदि यह सनातन और एकमेव होती तो ऐसा न होता।"

"क्योंकि ध्वनि के मूल और संशोधित दो रूप होते हैं "दधि अत्र" और "दध्य अत्र" के रूप में प्रस्तार के नियम से मूल ध्वनि ह्रस्व "इ" "य" में बदल जाती है। इस प्रकार जिस तत्त्व में परिवर्तन हो जाता है, वह सनातन नहीं है।"

"क्योंकि यदि अधिक संख्या में व्यक्ति समवेत ध्वनि करते हैं तो उनका विस्तार हो जाता है। फलतः उन मीमांसकों का सिद्धांत तथ्यहीन हो जाता है जो कहते हैं कि ध्वनि मानव-प्रयत्न से प्रकट ही की जाती है, उत्पन्न नहीं की जाती, क्योंकि सहस्रों वक्ता भी उसके अर्थ में विस्तार नहीं कर सकते जिसके स्वर का विस्तार करते हैं। जैसे एक सहस्र दीपक भी एक घड़े के आकार का विस्तार नहीं कर सकते।"

मीमांसकों के इस सिद्धांत कि ध्वनि प्रकट की जाती है और उसके उच्चारण उसे उत्पन्न नहीं कर सकते, के विरुद्ध इन आपत्तियों का जैमिनि ने उत्तर दिया है। जैमिनि कहते हैं—

"परंतु, दोनों सिद्धांतों के अनुसार, एक स्वीकार करता है कि ध्वनि की उत्पत्ति होती है और दूसरा कहता है कि वह मात्र प्रकट की जाती है, वह (ध्वनि) क्षणिक है। परन्तु इन दोनों मतों के अनुसार अभिव्यक्ति का सिद्धांत अगले सूत्र से प्रकट है, जो यथार्थ है।"

"काल विशेष में सनातन ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है, उसका कारण है कि कर्ता और कर्म का संपर्क नहीं बन पाता। ध्वनि शाश्वत है। उदाहरणार्थ—क्योंकि हम एक स्वर "क" से अवगत हैं जो हमें प्रायः सुनाई पड़ता है, क्योंकि यह सहज प्रक्रिया है तो हमें उसकी सहज कल्पना होती है। निस्तब्धता में जब किसी वक्ता के मुख से वायु का संयोजन और वियोजन होता है तो उससे वातावरण तरंगित होता है और इस प्रकार ध्वनि का आभास होता है जो सदैव विद्यमान रहती है, चाहे उसका आभास न भी होता हो। उसके संचरण पर आपत्ति का यह उत्तर है।"

"ध्वनि करना" का अर्थ है एक क्रिया अथवा "उच्चारण"।

"जैसे सूर्य का दर्शन एक साथ अनेक व्यक्ति करते हैं, वैसे ही ध्वनि भी एक साथ अनेक व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती है। ध्वनि सूर्य की भांति सर्वव्यापी है। यह कोई सूक्ष्म तत्त्व नहीं है, इसलिए सभी को समान रूप से ग्राह्य है चाहे कोई निकटस्थ हो अथवा दूरस्थ।"

"सूत्र 10 में वर्णित है कि "इ" स्वर "य" में परिवर्तित हो जाता है। वह

"इ" का रूपांतरण नहीं है बल्कि "य" एक भिन्न वर्ण है। स्पष्ट है कि ध्वनि का रूपांतरण नहीं होता।"

"जब कई व्यक्ति समवेत स्वर में बोलते हैं तो कोलाहल ही बढ़ता है, स्वर वही रहता है। कोलाहल का अर्थ है भिन्न-भिन्न दिशाओं से वायु के संयोजन-वियोजन का एक साथ कानों में प्रवेश। इसी कारण उसका विस्तार होता है।"

"ध्वनि सनातन होनी चाहिए क्योंकि वह अन्य लोगों तक अर्थ प्रेषित करती है। यदि वह सनातन न होती तो जब तक श्रोता उसका भाव जानता तब तक वह उपस्थित ही न रहती और इस प्रकार श्रोता भाव-ग्रहण करने से वंचित रह जाता क्योंकि वह उपस्थित ही नहीं रहती।"

"ध्वनि सनातन है क्योंकि वह सदैव सही और समान होती है और अनेक व्यक्ति उसे एक साथ समान रूप से सुनते हैं और यह नहीं माना जा सकता कि वे सभी गलती करें।"

"यदि "गौ" शब्द को 10 बार दोहराएं तो श्रोता कहेंगे कि दस बार "गौ" कहा गया है। वे यह नहीं कहेंगे कि "गौ" की ध्वनि के दस शब्द कहे गए हैं। इस प्रकार यह ध्वनि की शाश्वतता का एक और प्रमाण है।

"ध्वनि सनातन है क्योंकि हमारे पास यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि इसका क्षय हो जाता है।"

"परन्तु यह कहा जा सकता है कि ध्वनि वायु का रूपांतरण है क्योंकि इसका उद्गम वायु का संयोजन है, क्योंकि शिक्षा का कथन है कि ध्वनि के अनुरूप हवा निकलती है और इस प्रकार यह वायु से उत्पन्न होती है। इसलिए सनातन नहीं हो सकती।"

इस आपत्ति का निराकरण सूत्र 22 में किया गया है।

"ध्वनि वायु का रूपांतरण नहीं है। यदि ऐसा होता तो श्रवणेंद्रिय के समक्ष कोई संगत तत्व न होता जिसकी वह अनुभूति करती है। श्रवणेंद्रिय को वायु के किसी रूपांतरण की (जिसे नैयायिकों ने युक्ति संगत बताया है) अनुभूति न होती। कान की अनुभूति अमूर्त होती है।"

"वैदिक साहित्य में एक वाक्य उपलब्ध है जो कहता है कि ध्वनि सनातन है–"सनातन वाणी के साथ हे विरूप"। यद्यपि इस वाक्य का एक अन्य उद्देश्य है फिर भी वह ध्वनि की शाश्वतता घोषित करता है और इस प्रकार नाद ब्रह्म है।"

वेद सनातन हैं और मानव द्वारा सृजित नहीं हैं और न ही परमात्मा द्वारा रचित हैं, इस सिद्धांत के पक्ष में जैमिनि के यही तर्क हैं।

जिन तथ्यों पर उनका सिद्धांत आधारित था, वे एकदम सरल हैं।

पहली बात, ईश्वर अमूर्त है और उसके पास तालू नहीं है; और इसलिए वह वेदों का उच्चारण नहीं कर सकता।

दूसरी बात, यदि यह मान लें कि परमात्मा मूर्त है, तो वह (परमात्मा) उसकी अनुभूति नहीं कर सकता जो इंद्रियों की क्षमता से परे है जबकि वेदों में मानव की इंद्रियों की अनुभूति से परे की बातें हैं।

तीसरी बात, शब्द और उसके अर्थ के बीच संपर्क सनातन है।

चौथी बात, ध्वनि सनातन है।

पांचवीं बात, क्योंकि ध्वनि सनातन है इसलिए ध्वनि से उत्पन्न शब्द भी शाश्वत है।

छठी बात, क्योंकि शब्द सनातन है इसलिए वे वेद भी सनातन हैं और क्योंकि वेद सनातन हैं, इसलिए उनको रचने वाला न तो मनुष्य है और न ही परमात्मा।

इन तर्कों के बारे में हम क्या कह सकते हैं? क्या इससे अधिक अनर्गल भी कुछ हो सकता है? कौन मानेगा कि वेदों में ऐसा कुछ है जो मनुष्य की इंद्रियों की अनुभूतियों से परे है? कौन मानेगा कि शब्द और उसके अर्थ के बीच सनातन संबंध है? कौन मानेगा कि नाद उत्पन्न नहीं होता और न ही प्रकट हो सकता है बल्कि सनातन है?

इन अनर्गल मान्यताओं के बारे में हमें यह पूछना पड़ जाता है कि ब्राह्मणों ने एक हताशापूर्ण निष्कर्ष सिद्ध करने के लिए ऐसा हताशापूर्ण प्रयास क्यों किया? वे इससे क्या हासिल करना चाहते थे? क्या इसकी वजह यह थी कि वेदों ने चातुर्वर्ण्य का समर्थन किया और ब्राह्मणों को सबका स्वामी बना दिया गया?

छठी पहेली

वेदों की विषय-सामग्री : क्या उनका कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य है?

I

अगर हमें वेदों को बाध्यकारी और अचूक अथवा अकाट्य मानना है तो उसके उपदेशों में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य होने ही चाहिएं। हम कचरे को केवल इसलिए बाध्यकारी और अचूक नहीं मान सकते क्योंकि जैमिनि जैसे दार्शनिक ने इसे सही बताया है। क्या वेदों में कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक सामग्री है भी? वेदों को अकाट्य मानने वाला प्रत्येक हिंदू इस प्रश्न पर विचार करने को बाध्य है।

आधुनिक लेखक नहीं मानते कि वेदों का कोई आध्यात्मिक मूल्य है। इस संबंध में हम प्रो. मूइर के विचारों को ले सकते हैं। प्रो. मूइर[1] के अनुसार—

> "इन रचनाओं (वेदों) के स्वरूप और उन परिस्थितियों, जिनमें ये रची गईं, पता चलता है कि प्राचीन कवियों द्वारा गाई गईं ये रचनाएं उन व्यक्तियों की व्यक्तिगत अभिलाषाओं और भावनाओं का सहज वर्णन मात्र है जिन्होंने इन्हें सर्वप्रथम गाया था। इन गीतों में आर्य ऋषियों ने अपने पैतृक देवताओं को तरह-तरह की बलियां चढ़ाकर उनकी स्तुति की और उन्हें संतुष्ट होने का आह्वान किया और उनसे ऐसे अनेक वरदान मांगे जिनकी मानव-मात्र को लालसा होती है, जैसे स्वास्थ्य, संपदा, चिरायु, पशुधन, संतति, शत्रु पर विजय, पाप-मुक्ति और शायद स्वर्ग-सुख भी।"

बेशक यह एतराज किया जा सकता है कि सभी विदेशी विद्वान पूर्वाग्रह-ग्रस्त हैं, इसलिए उनके मत स्वीकार नहीं किए जा सकते। यह सुयोग है कि हम पूरे तौर पर विदेशियों पर निर्भर नहीं हैं। इस देश में भी उनके समान विचारधारा वाले विद्वान उपलब्ध हैं। इनमें सबसे सशक्त उदाहरण चार्वाक का है।

चार्वाक ने वेदों[2] के विरुद्ध जो तर्क दिए हैं, उन तर्कों का खंडन किया गया है। प्राचीन साहित्य में चार्वाकों का उल्लेख उनकी भर्त्सना के संदर्भ में किया गया है—

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3 (पृष्ठ का उल्लेख नहीं है)।*
2. *सर्व दर्शन संग्रह पृ. 10*

"आपको अगर इस बात पर आपत्ति है कि जब परलोक में सुख जैसा कुछ नहीं है तो बुद्धिमान व्यक्ति अग्निहोत्र क्यों करे, बलियां क्यों दे, जिन पर भारी अपव्यय होता है और थकान होती है। आपकी आपत्ति को कोई भिन्न साक्ष्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि अग्निहोत्रादि जीविकोपार्जन के साधन मात्र हैं, क्योंकि वेदों में तीन दोष हैं अर्थात् मिथ्याकथन, अंतर्विरोध और पुनरुक्ति। फिर ढोंगी लोग जो स्वयं को वैदिक पंडित बताते हैं, बहुत ही शरारती हैं। क्योंकि ज्ञान-मार्गियों की जड़ें खोदने के लिए कर्म-कांडी आ धमकते हैं और कर्मकांडियों के विरोधी ज्ञानमार्गी, कर्म-कांड की धज्जियां उड़ाने से नहीं चूकते हैं और अंत में तीनों वेद असंबद्ध चारणों का गेय काव्य है, जो पोंगापंथियों के वाक् चातुर्य के कारण आज तक विद्यमान है, और इसी कारण यह लोक धारणा प्रचलित है–

"अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापसवृत्ति, त्रिदंड धारण और भस्म मलना, ये उनकी कमाई के धंधे हैं", और बृहस्पति के कथनानुसार इनका "मनुष्यता और बुद्धि से कोई सरोकार नहीं है।"

बृहस्पति भी इसी मत के अनुयायी थे। चार्वाक की अपेक्षा बृहस्पति वेदों के विरुद्ध अधिक कठोर एवं उग्र थे। जैसा कि माधवाचार्य ने उद्धृत किया है। बृहस्पति[1] का तर्क है–

"स्वर्ग की कोई सत्ता नहीं है, मोक्ष कुछ नहीं है। न पुनर्जन्म होता है। न चार जातियों के कोई कर्म आदि प्रभाव डालते हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापस-वृत्ति, त्रिदंड धारणा, भस्म मलना... उनकी कमाई के धंधे हैं जिनमें बुद्धि और मनुष्यता का भाव नहीं है, ज्योतिष्टोम यज्ञ में यदि कोई जीव काट दिया जाता है और यदि वह सीधे स्वर्गगामी होता है तो बलिदाता अपने पिता की बलि क्यों नहीं दे देता?

यदि श्राद्ध से मृतक संतुष्ट होते हैं तो इहलोक में भी जब कोई यात्रा आरंभ करता है तो क्या यात्रा के प्रबंध करना अर्थात खाना साथ ले जाना व्यर्थ नहीं है?

यदि श्राद्ध से स्वर्ग में स्थित लोगों की संतुष्टि होती है तो इहलोक में नीचे बैठे लोगों को खिलाने से दूसरी मंजिल पर बैठा आदमी संतुष्ट क्यों नहीं होता?

जब तक जीवन है तो सुख से क्यों न रहें? क्यों न ऋण लेकर भी घी पिएं?

यदि मरणोपरांत देह भस्म बन जाती है तो वापस कैसे आ सकती है?

देह त्याग के पश्चात कोई यदि परलोक चला जाता है तो वह अपने परिजनों के मोह वश लौट क्यों नहीं आता?

इस प्रकार ये सब कमाई के साधन हैं, जो ब्राह्मणों ने बना रखे हैं।

---

1. *सर्व दर्शन संग्रह (पृ. संख्या का उल्लेख नहीं है)*

ये सभी संस्कार मृतकों के लिए हैं, इनका कोई फल नहीं मिलता। तीनों वेदों के स्रष्टा विदूषक, लालबुझक्कड़ और दुरात्मा हैं।

पंडितों के जर्भरी, तुर्फरी आदि वचन और रानी के लिए अश्लीलतापूर्ण पूजा का अश्वमेध यज्ञ में विधान है।

इनका अंवेषण लालबुझक्कड़ों ने किया और इसी कारण पुरोहितों को विभिन्न प्रकार से चढ़ावा दिया जाता है।

जबकि इसी प्रकार निशाचरों ने मांस भक्षण का विधान किया है।"

यदि चार्वाक और बृहस्पति के मत अमान्य हैं तो अन्य अनेक साक्ष्य विद्यमान हैं। वे साक्ष्य न्यायवैशेषिक, पूर्व और उत्तर मीमांसा दर्शनशास्त्रों में उपलब्ध हैं।

यह स्पष्ट है कि कुटिल लेखकों ने इन दर्शनशास्त्रों पर इकतरफा पाठ्यपुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने वेदों की प्रामाणिकता का औचित्य बताने से पहले यह होशियारी बरती है कि वेदों की सत्ता को चुनौती देने वाले उनके विरोधियों का मत उनकी पाठ्यपुस्तकों के पास भी न फटक सके। इस तथ्य से हम दो बातें प्रमाणित कर सकते हैं—(1) कि एक ऐसी विचारधारा थी जो वेदों को प्रामाणिक ग्रंथ स्वीकार करने के विरुद्ध थी, (2) कि वे सम्मानित विद्वान थे जिनके मत को वेदों की सत्ता स्वीकार करने वाले भी मानने को बाध्य थे। मैं न्याय और पूर्व मीमांसा में प्रस्तुत विमत को उद्धृत करता हूं।

न्यायदर्शन के प्रणेता गौतम वेदों की प्रामाणिकता के पक्षधर थे। उन्होंने सूत्र 57 में अपने विरोधियों के तर्क का सारांश दिया है जो इस तरह[1] है—

"वेद प्रमाण नहीं हैं क्योंकि इनमें मिथ्यावाद, अंतर्विरोध और पुनरुक्ति दोष है। शब्दप्रमाण जो प्रत्यक्ष साक्ष्यों से भिन्न है अर्थात् वेद प्रमाण नहीं है, क्यों? क्योंकि उसमें मिथ्यापन आदि के दोष हैं।"

"इन दोषों के संदर्भ में मिथ्यावाद इस तथ्य से प्रमाणित है कि कई बार हम देखते हैं कि पुत्र प्राप्ति के लिए दी गई बलि फलदायी नहीं होती। अंतर्विरोध यह है कि पूर्व और परवर्ती घोषणाओं में भिन्नता है। इस प्रकार वेद कहता है कि वह तब यज्ञ करता है जब सूर्योदय होता है। वह सूर्योदय से पूर्व यज्ञ करता है। जो सूर्योदय से पहले यज्ञ करता है श्वान (कुत्ता) उसका चढ़ावा लेकर भाग जाता है और दोनों ही बलिदाता का चढ़ावा उठाकर ले जाते हैं। फिर शब्दों के बीच अंतर्विरोध है जिनमें बलि की प्रेरणा है और उसकी निंदा भी है जिसके घातक परिणाम होते हैं। तब पुनरुक्ति के कारण वे प्रमाण नहीं हैं क्योंकि जो पहले कहा गया है उसकी तीसरी बार आवृत्ति होती है। अंत में भी पहली बात दोहराई जाती है। क्योंकि आदि, अंत के समान है और शब्दों की

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 113*

तीसरी आवृत्ति है। यह वाक्य पुनरुक्ति है। क्योंकि इस वाक्य विशेष में इन उदाहरणों के अनुसार एक-सा कथन होने के कारण और ये सभी रचनाएं एक व्यक्ति की हैं, इसलिए एक जैसी हैं और इनमें कोई प्रामाणिकता नहीं है।"

जैमिनि का संदर्भ देखें। वह वेद विरोधियों के विचारों[1] को पूर्व मीमांसा के सूत्र 28 और 32 में संक्षेप में उद्धृत करते हैं। सूत्र 28 कहता है–

> "यह भी आपत्ति की गई है कि वेद सनातन नहीं हो सकते, क्योंकि हम देखते हैं कि उनमें ऐसे व्यक्तियों का उल्लेख है जो सनातन नहीं हैं बल्कि जन्म और मृत्यु के पात्र हैं। इस प्रकार वेदों में कहा गया है "बबर प्रवाहणि की इच्छा है, सुरुबिंद औद्दालकि की इच्छा है" इसलिए वेद के संदर्भित वाक्यों में इन व्यक्तियों के जन्म-पूर्व उल्लेख संभव नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि ये वाक्य सादि हैं। इस प्रकार सनातन नहीं हैं। यह प्रमाणित है कि ये मानव कृतियां हैं।"

सूत्र 32 कहता[2] है–

> "यह प्रश्न किया गया है कि वेद कर्तव्यों का साक्ष्य कैसे हो सकते हैं जबकि उनमें ऐसी असंगत और अनर्गल बातें भरी पड़ी हैं, जैसे "कंबल और खड़ाऊं पहने एक बूढ़ा बैल द्वार पर खड़ा है और आशीष के गीत गा रहा है। संतान प्राप्ति की इच्छुक एक ब्राह्मणी कहती है, "हे राजन् बता, प्रतिपदा के दिन संभोग के क्या अर्थ हैं? अथवा यह कि "गउओं ने यज्ञ का उत्सव मनाया"।

निरुक्त के लेखक यास्क ने भी यही मत प्रकट किया है। वह कहता है–

पूर्वोक्त खंड में चार प्रकार की ऋचाएं हैं। (क) जो देवता की अनुपस्थिति में संबोधित हैं, (ख) जिनमें उसको समक्ष जानकर संबोधित किया गया है, (ग) जिनमें आराधक को उपस्थित और आराध्य को अनुपस्थित माना गया है। ये अत्यधिक हैं, (घ) जबकि जो स्वगत हैं ये यत्र-तत्र ही हैं। ऐसा भी हुआ है कि देवता की प्रशंसा बिना वरदान की कामना किए की गई है जैसे कि इस मंत्र में है (ऋ. वे. 1.32) "मैं इंद्र के शौर्य का वर्णन करता हूं" आदि। फिर बिना स्तुति किए वरदान की कामना की गई है, जैसे "मैं अपने चक्षुओं से अच्छा देखूं, मेरा मुख कांतिमान हो और मैं कानों से भली-भांति सुनूं। ऐसा (यजुर्) और यज्ञ सूत्रों में बार-बार कहा गया है। फिर इसमें हम शपथ और शाप भी देखते हैं। (ऋ. वे. 7, 104, 15) "यदि मैं यातुधानी हूं तो आज मैं मर जाऊं" (आदि)।

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 7*
2. *वही पृ. 80*

फिर हम देखते हैं कुछ विशिष्ट परिस्थितियों को दर्शाने वाले मंत्र हैं (ऋ. वे. 10, 29, 2) तब मृत्यु नहीं थी न अमरत्व आदि था। कुछ स्थितियों में विलाप भी लक्षित है जैसे कि इस मंत्र में (ऋ. वे. 10, 95, 14) "रूपवान देवता लुप्त हो जाएगा और कभी नहीं लौटेगा" आदि। कहीं लांछन और प्रशंसा भी है जैसा कि यह मंत्र कहता है (ऋ. वे. 10, 117, 6) "वह व्यक्ति जो अकेला खाता है, सिर्फ पापकर्म करता है" आदि। ऐसे ही द्यूत के विषय में मंत्र हैं (ऋ. वे. 10, 34, 13) द्यूत क्रीड़ा की निंदा की गई है—और कृषि कार्य की प्रशंसा। इस प्रकार जिन उद्देश्यों से ऋचाओं की सृष्टि हुई, ये विविध प्रकार के हैं।"

यास्क के ही शब्दों में—

"प्रत्येक मंत्र देवस्वरूप परमात्मा के लिए हैं जिससे ऋषि अपनी इच्छा पूर्ति के लिए प्रार्थना करता है।"

यदि यह प्रमाणित करने के लिए इतना भी पर्याप्त नहीं है कि वेदों में कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य नहीं है तो अन्य साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

जहां तक नैतिकता का सवाल है, तो ऋग्वेद में खास कुछ है ही नहीं और न ऋग्वेद नैतिकता का आदर्श ही प्रस्तुत करता है। इस संबंध में तीन उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

पहला यम-यमी संवाद है, जो आपस में भाई-बहन थे।

यमी कहती है—"मैं अपने मित्र (यम) को मित्रता के लिए आमंत्रित करती हूं। विशाल रेगिस्तान और महासागरों को पार करती हुई आई हूं, इस निर्जन भूमि पर (तुम्हारी) संतान जन्म ले, जो तुम्हारे जैसे पिता के महान गुणों से संपन्न हों।"

यम कहता है—"तुम्हारा मित्र अर्थात मैं ऐसी मित्रता की इच्छा नहीं रखता। एक ही मूल की होते हुए भी तुम्हारी प्रकृति दूसरे प्रकार की है। महान प्रजापति के बहादुर पुत्रों का स्वर्ग पर अधिकार है और वे हमें देख रहे हैं।"

यमी कहती है—"अमरत्व प्राप्त देवादि सहवास (संभोग) का सुख प्राप्त करते हैं जो मृत्यु लोक के लोगों के लिए वर्जित है। आप मुझसे वैसे ही सहवास करें जैसे सबका स्रष्टा (ब्रह्मा) अपनी पुत्री का पति बना।"

यम कहता है—"हमने वह कर्म नहीं किया जो पहले किया गया है। हम सत्यवादी हैं और इसलिए असत्य भाषण कैसे कर सकते हैं। गंधर्व (सूर्य) अंतरिक्ष जल धारण करने वाला और उसकी वधू हम दोनों के पिता-माता हैं, अतः हम सगे (भाई-बहन) हैं।"

यमी कहती है—"परमपिता प्रजापति ने हमें गर्भ में ही पति-पत्नी बना दिया। उसके कार्य में कोई बाधक नहीं। पृथ्वी और आकाश भी हमारे संबंध से परिचित हैं।"

यम कहता है—"हमारे प्रथम प्रणय को कौन जानता है? किसने यहां रहस्य से परिचित कराया है? मित्र और वरुण के स्थान दिन-रात के विषय में तू क्या कहती है? नरक की सजा कौन देता है?"

यमी कहती है—"यम की वासना मुझ यमी को एक शैया पर सोने के लिए विवश करे। मैं पत्नी के रूप में तुम पति को अपना सब कुछ समर्पित करती हूं। एक रथ के दो पहियों की भांति हम सहयोग कर वासना की पूर्ति करें।"

यम कहता है—"ईश्वर के दूत पृथ्वी पर सदा विचरण करते हैं और अपने नेत्र खुले रखते हैं। ओ विनाशिनी, शीघ्र किसी अन्य के साथ रमण कर जैसे कि एक गाड़ी के दो पहिए मिलते हैं और मेरा पीछा छोड़।"

यमी कहती है—"तुम्हारे ऊपर प्रत्येक पुजारी रात्रि और दिन न्यौछावर करे, सदैव सूर्य के नेत्र खुलें, तुम्हारे लिए युगल (रात और दिन) संयुक्त होकर आकाश और पृथ्वी की भांति मिलें। मैं यम के वियोग को सहन न कर सकूं।"

यम कहता है—"आगे चलकर ऐसा समय आएगा जब बहनें (पति के रूप में) उसे चुनेंगी जो उसका भाई नहीं होगा। इसलिए भाग्यशालिनी मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को अपना पति चुन और अपनी बाहों को उसका तकिया बना।"

यमी कहती है—"उस भाई के होने से क्या लाभ है जिसके रहते हुए भी बहिन पति-विहीन रहे। उस बहिन के होने से क्या लाभ है जिसके रहते हुए भी भाई दुख उठाए। मैं कामाहत होकर ऐसे वचन बोल रही हूं। तुम मेरे शरीर से अपना शरीर मिलाओ।"

यम कहता है—"हे यमी, मैं तुम्हारे शरीर से अपना शरीर नहीं मिलाना चाहता। जो अपनी बहिन से संभोग करता है उसे लोग पापी कहते हैं। हे सुंदरी! मेरे अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से आमोद-प्रमोद करो। तुम्हारा भाई यह काम करना नहीं चाहता।"

यमी बोली—"मुझे खेद है कि तुम बहुत कमजोर हो। मैं तुम्हारे मन को नहीं समझ पा रही हूं। रस्सी जिस प्रकार घोड़े को बांधती है और लता जिस प्रकार वृक्ष से लिपट जाती है, उसी प्रकार अन्य स्त्री तुम्हारा आलिंगन करती है।"

यम कहता है—"हे यमी। लता जिस प्रकार वृक्ष को लपेटती है, उसी प्रकार तुम मेरे अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का आलिंगन करो। तुम उस पुरुष का मन जीतने की कामना करो और वह पुरुष तुम्हारा मन जीतने की इच्छा करे। तुम उसी के साथ कल्याणकारी सहवास करो।

'राक्षसों का विनाश करने वाली अग्नि हमारी प्रार्थना स्वीकार करे। हमें उस दुरात्मा से त्राण दे जो व्याधि के रूप में तेरे भ्रूण आक्रांत करता है, जो काष्ठ की भांति तेरे गर्भाशय को नष्ट करता है।"

"अग्नि देव हमारी अर्चना को स्वीकार करें, उस नरभक्षी को नष्ट करें जो व्याधि के रूप में तेरे गर्भाशय पर दुष्प्रभाव डालता है, जो अंतःकाष्ठ की भांति तेरी कोख को रिक्त करता है।"

"दुरात्मा से हमें त्राण दे जो पुंसत्व का हरण करता है। गर्भ का नाश करता है, और नवजात शिशु का भी।"

"हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तेरी जंघाओं को विलग करता है, जो पति-पत्नी के बीच बाधा बनता है, जो तेरी कोख में प्रविष्ट होकर बीज का हरण करता है। हमें उस दुरात्मा से त्राण मिले जो भ्राता, पति अथवा प्रियतम के रूप में तुझ तक पहुंचता है और गर्भपात करना चाहता है।"

"हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तुझे नींद या अंधेरे में छल लेता है। तुझ तक आकर गर्भपात कर देता है।"

ऋग्वेद के कुछ मंत्रों अथवा प्रार्थनाओं को लेते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

1. हे वायु देव! तू कितना रूपवान है हमने मसालों से सोम रस बनाया है। आ, इसका पान कर और हमारी प्रार्थना स्वीकार कर—ऋग्वेद। 1.2.1

2. हे इंद्र देव! हमारे संरक्षण हेतु संपदा प्रदान कर। तेरे द्वारा प्रदत्त संपदा हमें सुख दे। चिरकालिक हो और शत्रु विनाश में सहायक हो। 1.8.1

3. पुरुषो! जब भी यज्ञ करो इंद्र अग्निदेव की स्तुति करना मत भूलें, उनका गुणगान करो और गायत्री-छंद में उनकी स्तुति करो। I.21.2

4. हे अग्निदेव! देव पत्नियों और त्वष्टा को ला, जो आने और सोमरस का पान करने को लालायित हैं। 1.22.9

5. हम प्रार्थना करते हैं, देव पत्नियां सभी उपलब्ध पंखों से और आनंदित होकर हमारे पास आएं। I.22.11

6. मैं प्रार्थना कर रहा हूं कि इंद्र, वरुण और अग्नि की पत्नियां मेरे पास आएं और सोम पिएं।

7. हे वरुण! हम तुझ से अनुनय कर रहे हैं कि अपना क्रोध शमन कर। हे असुर! तू पूर्ण बुद्धिमान है, हमें पाप मुक्त कर। I.24.14

8. हमारा सोमरस स्त्रियों द्वारा तैयार किया गया है जिन्होंने इसे श्रमपूर्वक मथा है। हे इंद्र! हम तेरी प्रार्थना करते हैं। आओ और इस सोम का पान करो। I.28.3

9. तेरे शत्रु जो तुझे कुछ अर्पित नहीं करते वे विलीन हो जाएं और जो अर्पित करते हैं, वे संपन्न हों। हे इंद्र! हमें उत्तम गाएं और अश्व प्रदान कर और विश्व में हमारी ख्याति फैला। I.29.4

10. हे अग्नि! हमारी राक्षसों से, धूर्त-शत्रुओं से, उनसे जो हमें घृणा करते हैं और हमारा वध करना चाहते हैं, रक्षा कर। I.36.15

11. हे इंद्र! तू वीर है। आ और हमारे द्वारा तैयार सोम का पान कर और हमें संपदा देने को तत्पर रह। जो तुझे कुछ अर्पण नहीं करते, उनकी संपत्ति का हरण कर और उसे हमें प्रदान कर। I.81.8-9

12. हे इंद्र! इस सोम का पान कर, जो सर्वश्रेष्ठ है, अमरता प्रदान करता है और अत्यधिक मादक है। I.84.4

13. हे आदित्य! हमारे पास आ, अपना आशीर्वाद हमें दे, जो हमें युद्ध में विजयी बनाए। तुम समृद्ध हो। तुम दानी हो। जैसे एक रथ कठिन मार्ग पर अग्रसर होता है, उसी प्रकार हमें संकटों से पार कर। I.106.22

14. हे मारुत!... तुम्हारे अनुयायी तुम्हारी प्रशस्ति गा रहे हैं। प्रसन्न होओ और आओ सोम पान के लिए निर्मित किए गए कुशा के आसन पर विराजमान होओ। 7 57.1-2

15. हे मित्र वरुण! हमने यज्ञ में तेरी आराधना की। इसे स्वीकार करने की कृपा कर हमें संकटों से बचा। 7.60, 12

ऋग्वेद में उल्लिखित बहुत से मंत्रों में से ये कुछेक हैं, किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह छोटा-सा नमूना ही उन सबके लिए पर्याप्त है।

मैं बता दूं कि मैंने ऋग्वेद और *यजुर्वेद* के बहुत से अश्लील अंशों को जान-बूझकर छोड़ दिया है। जिन्हें इस संबंध में जिज्ञासा है, वे ऋग्वेद के मंडल दस 85.37 के सूर्य–पूषन् संवाद और ऋग्वेद के मंडल दस 86.6 में इंद्र-इंद्राणी संवाद देख सकते हैं। *यजुर्वेद* के अश्वमेध प्रसंग में भी अश्लीलता व्याप्त है।

यदि इन अश्लीलताओं को छोड़ भी दें और ऋग्वेद के प्रार्थना वर्ग तक ही सीमित रहें तो भी क्या कोई कह सकता है कि ये प्रार्थनाएं नैतिक अथवा आध्यात्मिक उत्थान करने वाली हैं?

जहां तक दर्शन का सवाल है तो वह ऋग्वेद में नदारद है, जैसा कि कहा गया है "प्रत्येक मंत्र किसी देवता के लिए रचा गया है जिससे ऋषि का उद्देश्य इच्छापूर्ति का है और वह उसे संबोधित करता है।"

यदि यह प्रमाणित करने के लिए इतना भी पर्याप्त नहीं है कि वेदों में कोई नैतिक अथवा आध्यात्मिक मूल्य नहीं हैं तो अन्य साक्ष्य भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

जहां तक दार्शनिकता का सवाल है तो ऋग्वेद में प्रायः कुछ है ही नहीं। न ऋग्वेद नैतिकता का ही आदर्श प्रस्तुत करता है। प्रोफेसर विल्सन का कहना है कि ऋग्वेद में, जो वृहद्तम वेद है, बहुत कम सैद्धांतिक अथवा दार्शनिक प्रसंग आए हैं। इसमें विभिन्न विचारधाराओं के परवर्ती अंतर्बोध संबंधी कल्पनाओं का अभाव है। पुनर्जन्म सिद्धांत की ओर कोई संकेत नहीं है और न ही सृष्टि चक्र का कोई संदर्भ

है। वेद आर्यों के सामाजिक जीवन के दिग्दर्शन का एक लाभकारी सूचना स्रोत है। यह आदिम जीवन की प्रतिच्छाया है, जिसमें जिज्ञासा अधिक है, भविष्य की कल्पना नहीं है। इनमें बुराइयां अधिक, गुण बहुत कम हैं।

II

अब हम अथर्ववेद पर आते हैं और इसकी विषयवस्तु की पड़ताल करते हैं। इस संदर्भ में अच्छा से अच्छा मैं यही कर सकता हूं कि यहां अथर्ववेद की विषयसूची की तालिका प्रस्तुत करूं।

कांड I व्याधि हरण और दुरात्माओं को भगाने के लिए टोने-टोटके (भैषज्यानि)

V, 22 : तक्मन् (बुखार) और संबद्ध व्याधि टोने-टोटके,
VI, 20 : तक्मन् (बुखार) रोधी टोने-टोटके,
I, 25 : तक्मन् (बुखार) रोधी टोने-टोटके,
VII, 116 : तक्मन् (बुखार) रोधी टोने-टोटके,
V, 4 : तक्मन् हरण हेतु कुष्ठ नामक पौधे से प्रार्थना,
XIX, 39 : तक्मन् तथा अन्य रोग हरण हेतु कुष्ठ पौधे से प्रार्थना,
I, 12 : तक्मन्, शिरोपीड़ा और खांसी उत्पन्न करने वाली बिजली से प्रार्थना,
I, 22 : पांडुरोग (पीलिया) और संबद्ध व्याधि रोधी टोने-टोटके,
VI, 14 : हलस रोधी टोने-टोटके,
VI, 105 : कास रोधी टोने-टोटके,
I, 2 : देह से अतिस्राव रोधी टोने-टोटके,
II, 3 : जलस्रोत अतिस्राव रोधी टोने-टोटके,
VI, 44 : देह से अतिस्राव रोधी टोने-टोटके,
I, 3 : मलबंध और मूत्र-बंध रोधी टोने-टोटके,
VI, 90 : रुद्र के क्षेपण से उत्पन्न उदरशूल रोधी टोने-टोटके,
I, 10 : जलोदर रोधी टोने-टोटके,
VII, 83 : जलोदर रोधी टोने-टोटके,
VI, 24 : जलोदर, हृदय रोग और संबद्ध व्याधियों का प्रवाहित जल द्वारा उपचार,
VI, 80 : सूर्य से अनुनय,
II, 8 : क्षेत्रीय वंशानुगत व्याधि रोधी टोने-टोटके,
II, 10 : क्षेत्रीय वंशानुगत व्याधि रोधी टोने-टोटके,
III, 7 : क्षेत्रीय वंशानुगत व्याधि रोधी टोने-टोटके,
I, 23 : कुष्ठ रोग का काले पौधे से उपचार,
I, 24 : कुष्ठ रोग का काले पौधे से उपचार,

VI, 83 : कंठमाला के उपचार के टोने-टोटके,
VII, 76 : (क) कंठमाला उपचार,
: (ख) रसौली का उपचार,
: (ग) दोपहरी में सोमप्रभाव में गाया जाने वाला गीत,
VII, 74 : (क) कंठमाला का उपचार,
: (ख) ईर्ष्या तुष्टि के लिए टोना-टोटका,
: (ग) अग्नि देव से प्रार्थना,
VI, 25 : ग्रीवा और कंधे की कंठमाला दूर करने का टोना-टोटका,
VI, 57 : कंठमाला उपचार के रूप में मंत्र,
IV, 12 : अस्थि खंडन के उपचार में अरुंधती (लक्ष) का टोना-टोटका,
V, 5 : घावों के उपचार के प्रति सिल्की (लक्ष) अरुंधती से घाव का उपचार,
VI, 109 : घावों के उपचार हेतु काली मिर्च,
I, 17 : रक्तस्राव रोकने का टोना-टोटका,
II, 31 : कृमि-रोधी टोना-टोटका,
II, 32 : पशुओं में कृमि-रोधी टोना-टोटका,
V, 23 : बालकों में कृमि-रोधी टोना-टोटका,
IV, 6 : विष-रोधी टोना-टोटका,
IV, 7 : विष-रोधी टोना-टोटका,
VI, 100 : विष की प्रतिरोधी चीटियां,
V, 13 : सर्प-विष रोधी टोना-टोटका,
VI, 12 : सर्प-विष रोधी टोना-टोटका,
VII, 56 : सरिसृप, बिच्छू और कीट विष-रोधी टोना-टोटका,
VI, 16 : नेत्र-शोथ-रोधी टोना-टोटका,
VI, 21 : केश वृद्धि के लिए टोना-टोटका,
VI, 136 : केश वृद्धि के लिए नितौनी के साथ टोना-टोटका,
VI, 137 : केश वृद्धि के लिए टोना-टोटका,
IV, 4 : पुंसत्व-वृद्धि के लिए टोना-टोटका,
VI, 3 : उन्मादहारी के लिए टोना-टोटका,
IV, 37 : अजश्रृंगी के साथ राक्षसों, अप्सराओं और गंधर्वों से मुक्ति का टोना-टोटका,
II, 9 : पिशाच के अधीन व्याधि, दस प्रकार के काष्ठ के टोने-टोटके से उपचार,
IV, 36 : व्याधि मूलक पिशाच रोधी जादू-टोना,
II, 25 : पृश्नि-पर्णी लता द्वारा कण्व व्याधि के जनक पिशाच के लिए जादू-टोना,
VI, 32 : पिशाच भगाने वाले जादू-टोने,
II, 4 : व्याधि और पिशाच रोधी गंगीदा वृक्ष द्वारा तैयार ताबीज,

XIX, 34-35 : व्याधि और पिशाच रोधी गंगीदा द्वारा तैयार ताबीज,
VI, 85 : वरण वृक्ष द्वारा बने ताबीज से रोग-हरण का जादू टोना
VI, 127 : सर्व-रोग हारी किपुदद्रु,
XIX, 38 : गुग्गल की उपचार शक्ति,
VI, 91 : जौ और जल सर्व-रोगहारी,
VIII, 7 : सर्व-रोगहारी बूटियों और इंद्रजाल के मंत्र,
VI, 96 : सर्व-रोगहारी जड़ी-बूटियां,
II, 33 : आरोग्य के जादू-टोने,
IX, 8 : सर्व-रोग रोधी जादू-टोने,
II, 29 : दीर्घायु और रोग-भगवाने व समृद्धि लाने का जादू-टोना,

कांड II दीर्घायु और स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनाएं (आयुष्यानि)

III, 2 : स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए प्रार्थना,
II, 28 : दीर्घायु के लिए प्रार्थना,
III, 31 : स्वास्थ्य और दीर्घायु के लिए प्रार्थना,
VII, 53 : दीर्घायु के लिए प्रार्थना,
VIII, 1 : मृत्यु-भय से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना
VIII, 2 : मृत्यु-भय से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना
V, 30 : व्याधि और मृत्यु से मुक्ति पाने हेतु प्रार्थना
IV, 9 : साल्वे (अंजना) जीवन और अंगों का रक्षक
IV, 10 : सीपी/मोती और उसके खोल का ताबीज दीर्घायु व समृद्धि देने वाला है।
XIX, 26 : सोना दीर्घायु का ताबीज

कांड III पिशाचों, जादूगरों और शत्रुओं को शाप (अभिकारिकानि तथा कृत्याप्रतिहरणम्)

I, 7 : जादूगरों और पिशाचों को शाप,
I, 8 : जादूगरों और पिशाचों को शाप,
I, 16 : पिशाचों और जादूगरों के विरुद्ध सीसे (Lead) से जादू-टोना,
VI, 2 : राक्षसों के विरुद्ध सोम से की आहुति देकर प्रार्थना,
II, 14 : पुरुषों, पशुओं और गृहस्थी के लिए अनिष्टकारी पिशाचनियों के विरुद्ध जादू-टोना,
III, 9 : विष्कंध और कबव नामक अनिष्टकारी राक्षसों के विरुद्ध शाप,
IV, 20 : एक गुल्म विशेष के साथ जादू-टोना जो राक्षस और शत्रु का नाम बताएगा,
IV, 17 : अपामार्ग पौधे से जादूगर, राक्षस और शत्रु रोधी जादू-टोना,
IV, 18 : अपामार्ग पौधे से जादूगर, राक्षस और शत्रु रोधी जादू-टोना,

IV, 19 : राक्षसों और जादूगरों के विरुद्ध अपामार्ग पौधे के रहस्यात्मक गुण,
VII, 65 : शाप और पाप कर्मों के फल के विरुद्ध अपामार्ग का जादू-टोना,
X, 1 : जादूगर रोधी जादू-टोना,
V, 14 : जादूगर रोधी जादू-टोना,
V, 31 : जादूगर रोधी जादू-टोना,
VIII, 5 : संरक्षण के लिए स्रक्ति (=तिलक) वृक्ष की लकड़ी से बने रक्षाकवच (ताबीज) से प्रार्थना,
X, 3 : वरण (बरना) वृक्ष से बने ताबीज का गुणगान,
X, 6 : खदिर (खैर=कत्था) वृक्ष की लकड़ी से बने ताबीज का गुणगान,
IX, 16 : विश्वासघात, षड्यंत्र से रक्षा के लिए वरुण से प्रार्थना,
II, 12 : शुभ कार्यों में विघ्नकारी शत्रु को शाप,
VII, 70 : शत्रु की बलि को विफल करना,
II, 7 : एक विशेष पौधे की सहायता से शाप और अनिष्टकारी षड्यंत्र रोधी जादू-टोना,
III, 6 : अश्वगंधा द्रुम से शत्रुनाश,
VI, 75 : शत्रुनाशी प्रार्थना (नैवेद्यम् हविः),
VI, 37 : अनिष्टकारी तांत्रिक कार्यों के विरुद्ध जादू-टोना,
VII, 13 : शत्रु की शक्ति के हरण के लिए जादू-टोना,

खंड IV स्त्री-विषयक जादूटोना (स्त्रीकर्माणि)

II, 36 : पति प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VI, 60 : पति प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VI, 82 : पत्नी प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VI, 78 : दंपति को आशीर्वाद,
VII, 36 : नव विवाहितों द्वारा उच्चारणीय प्रणय के लिए जादू-टोना,
VII, 37 : दुल्हन द्वारा दूल्हे के प्रति उच्चारणीय जादू-टोना,
VI, 81 : गर्भधारण के लिए गंडा (ताबीज),
III, 23 : पुत्र प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VI, 11 : पुत्र प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VII, 35 : किसी स्त्री को बंध्या बनाने के लिए झाड़-फूंक,
VI, 17 : गर्भपात रोधी जादू-टोना,
I, 34 : किसी स्त्री का प्रणय पाने के लिए जादू-टोना,
II, 30 : किसी स्त्री का प्रणय पाने के लिए जादू-टोना,
VI, 8 : किसी स्त्री का प्रणय पाने के लिए जादू-टोना,
VI, 9 : किसी स्त्री का प्रणय पाने के लिए जादू-टोना,

VI, 102 : किसी स्त्री का प्रणय पाने के लिए जादू-टोना,
III, 25 : किसी स्त्री के कामुक आकर्षण के लिए जादू-टोना,
VII, 38 : किसी स्त्री का प्रणय पाने के लिए जादू-टोना,
VI, 130 : किसी स्त्री की वासना उद्दीप्त करने के लिए जादू-टोना,
IV, 5 : गुप्त मिलन के लिए जादू-टोना,
VI, 77 : आवारा स्त्री की वापसी के लिए जादू-टोना,
VI, 18 : ईर्ष्या रोधी जादू-टोना,
I, 14 : किसी स्त्री द्वारा अपनी सौत के विरुद्ध झाड़-फूंक,
III, 18 : सौत के विरुद्ध जादू-टोना,
VI, 138 : किसी स्त्री की कामुकता रोधी तंत्र,
I, 18 : किसी स्त्री की पिशाच वृत्ति का शमन,
VI, 110 : दुष्ट ग्रह में जन्मे शिशु के प्रथम दो दांत उलटे निकलने पर अनुष्ठान,

कांड V राजकार्य संबंधी जादू-टोने (राजककर्माणि)

IV, 8 : राज्याभिषेक पर प्रार्थना,
III, 3 : निर्वासित राज्य की पुर्नस्थापना के लिए जादू-टोना,
III, 4 : राजा के निर्वाचन पर प्रार्थना,
IV, 22 : किसी राजा की श्रेष्ठता प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
III, 5 : राज्य शक्ति में वृद्धि के लिए पर्ण द्रुम से बने ताबीज की प्रशंसा,
I, 9 : इहलोक और परलोक में सफलता के लिए प्रार्थना,
VI, 38 : ऐश्वर्य और शक्ति के लिए प्रार्थना,
VIII, 8 : युद्ध संबंधी जादू-टोना,
I, 19 : बाण घाव रोधी जादू-टोना,
III, 1 : शत्रु को भ्रमित करने वाला जादू-टोना,
III, 2 : शत्रु को भ्रमित करने वाला जादू-टोना,
VI, 97 : राजा के पक्ष में युद्ध पूर्व जादू-टोना,
VI, 99 : राजा के पक्ष में युद्ध पूर्व जादू-टोना,
XI, 9 : युद्ध में सहायता हेतु अर्बुदि और न्यर्बुदि से प्रार्थना,
XI, 10 : युद्ध में सहायता के लिए त्रिशमधि से प्रार्थना,
V, 20 : युद्ध-नाद का मंत्र,
V, 21 : युद्ध नाद शत्रु भय मंत्र,

कांड VI सभा में अनुकूलता व प्रभाव वृद्धि हेतु जादू-टोना (सामनस्यानि)

III, 30 : अनुकूलता प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VI, 73 : विरोध निवारण के लिए जादू-टोना,

VI, 74 : विरोध निवारण के लिए जादू-टोना,
VII, 52 : संघर्ष और रक्तपात-रोधी जादू-टोना,
VI, 64 : विरोध निवारण के लिए जादू-टोना,
VI, 42 : क्रोध-निवारण के लिए जादू-टोना,
VI, 43 : क्रोध-निवारण के लिए जादू-टोना,
VII, 12 : सभा में प्रभाव जगाने के लिए जादू-टोना,
II, 27 : विवाद में शत्रु विरोधी जादू-टोना,
VI, 94 : किसी को अपनी इच्छा का गुलाम बनाने के लिए जादू-टोना,

कांड VII गृहस्थी, कृषि, पशुधन, व्यापार, द्यूत और स्वजनों की समृद्धि हेतु जादू-टोना

III, 12 : गृह निर्माण के लिए प्रार्थना,
VI, 142 : अन्न-रोपण के समय आशीर्वाद,
VI, 79 : अधिक अन्न प्राप्ति के लिए जादू-टोना,
VI, 50 : कृषि-नाशी-कीटों की झाड़-फूंक,
VII, 2 : बिजली गिरने से अन्न की रक्षा के लिए जादू-टोना,
II, 26 : पशुधन की समृद्धि के लिए जादू-टोना,
III, 14 : पशुधन की समृद्धि के लिए जादू-टोना,
VI, 59 : पशुधन रक्षा के लिए अरुंधती पौधे से प्रार्थना,
VI, 70 : गाय की बछड़े के प्रति ममता बढ़ाने के लिए जादू-टोना,
III, 28 : जुड़वां बछड़ों के लिए अनुष्ठान मंत्र,
VI, 92 : चपल घोड़े के दान का जादू-टोना,
III, 13 : नदी से नई नहर के लिए जादू-टोना,
VI, 106 : अग्नि से रक्षा के लिए जादू-टोना,
IV, 3 : जंगली-जंतुओं और दस्युओं के विरुद्ध चरवाहों का जादू-टोना,
III, 15 : व्यापारी की प्रार्थना,
IV, 38 क : द्यूत क्रीड़ा में सफलता के लिए जादू-टोना,
ख : भटके हुए बछड़ों की वापसी के लिए प्रार्थना,
VII, 50 : जुए में जीत के लिए प्रार्थना,
VI, 56 : घरों में सरीसृप रोधी झाड़-फूंक,
X, 4 : पेडू अश्व का आह्वान मंत्र जो सरीसृप रोधी है,
XI, 2 : भय मुक्ति के लिए भव और सर्व से प्रार्थना,
VII, 9 : खोई संपत्ति पाने के लिए जादू-टोना,
VI, 128 : ऋतुदेव का अनुष्ठान,
XI, 6 : आपदा मुक्ति के लिए सर्वदेव-प्रार्थना,

कांड VIII पाप और अपवित्रता के प्रायश्चित के लिए अनुष्ठान

VI, 45 : मानसिक उत्पात विरुद्ध जादू-टोना,
VI, 26 : दुराचार रोधी जादू-टोना,
VI, 114 : बलि में अशुद्धि से बचने के लिए अनुष्ठान जादू-टोना,
VI, 115 : पाप के विरुद्ध अनुष्ठान,
VI, 112 : ज्येष्ठ भ्राता के पराभव के लिए अनुष्ठान,
VI, 113 : विशिष्ट जघन्य अपराधों से बचने के लिए अनुष्ठान,
VI, 120 : पाप मुक्ति के बाद स्वर्ग के लिए प्रार्थना,
VI, 27 : अशुभ पक्षी समझे जाने वाले कपोत के विरुद्ध जादू-टोना,
VI, 29 : अशुभ समझे जाने वाले कपोत और उलूक के विरुद्ध जादू-टोना,
VI, 64 : अशुभ पक्षी के प्रभाव से ग्रस्त व्यक्ति के प्रति अनुष्ठान,
VI, 46 : दुस्वप्नों से बचने के लिए झाड़-फूंक,
VII, 115 : दुर्गुण निवारण और सद्गुणों के लिए जादू-टोना,

III

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि अथर्ववेद मात्र जादू-टोनों, इंद्रजाल और जड़ी-बूटियों की विद्या है। इसका चौथाई भाग जादू-टोनों और इंद्रजाल से युक्त है। लेकिन यह सच नहीं है कि केवल अथर्ववेद में जादू-टोने और इंद्रजाल की भरमार है; ऋग्वेद भी इससे अछूता नहीं है। उसमें भी काले जादू-टोनों और इंद्रजाल संबंधी मंत्रों की भरमार है। मैं ऐसे विषयों पर कुछ सूक्त उद्धृत करता हूं–

सूक्त - XVII (145)

इस मंत्र का देवता अथवा उद्देश्य सौत से छुटकारा पाना है। ऋषि इंद्राणी है, अंतिम मंत्र का छंद पंक्ति है, शेष अनुष्टुप है।

1. मैंने यह अतिशक्तिशाली बल्लरी प्राप्त की है, जो सौत का विनाश करती है, जिसके द्वारा वह स्त्री अपने पति को पुनः प्राप्त करती है।
2. हे शुभ देवों द्वारा प्रेषित, शक्तिशाली (गुल्म) मेरी सौत का नाशकर और मेरे पति को केवल मेरा बना।
3. हे श्रेष्ठ (गुल्म), मैं भी श्रेष्ठों में श्रेष्ठ बनूं और वह जो मेरी सौत है, घृणितों में घृणित बने।
4. मैं उसका नाम भी नहीं लूंगी, कोई उससे प्रसन्न न हो, अन्य सौतों को दूर भगा।
5. मैं विजयी हूं, तू विजेता है, हम दोनों शक्तिशाली होने के कारण सौत पर विजयी होगें।
6. मैं तुझे विजयी बनाती हूं। हे जड़ी, मैं तुझे अपने सिरहाने रखती हूं, मुझे और विजयी बना। तेरा मानस मुझसे मिल जाए जैसे एक गाय अपने बछड़े से मिलती है। वह जल की भांति अबाध प्रवाहित हो।

सूक्त - IV (155)

एक और चौथे मंत्र का देवता दुर्भाग्य नाशक (अलक्ष्मीघ्न) है, 2 और 3 का ब्रह्मणस्पति, 5 का विश्वेदेव, भारद्वाज पुत्र सृबिन्द ऋषि हैं। छंद अनुष्टुप् है।

1. दीनहीन, अभागी, कुरूप (देवी) उन शोषितों के साथ अपने पर्वत पर जा, मैं तुझे सृबिन्द के कार्यों से डरा कर भगाता हूं।
2. वह इससे डरे (संसार), दूसरे से डरे (संसार), सर्वगर्भक्षरण करने वाली से, तीव्र शृंगमय बृहस्पति आ, कष्टों को दूर कर।
3. उस काष्ठ को ग्रहण कर जो गहन समुद्र में मनुष्य से दूर बहता है। अदमनीय (देवी) दूर समुद्र में जा।
4. असंगत स्वरों का जाप करने वाले जब सहज रूप से बढ़ते हैं, तू उन्हें भगाता है। इंद्र के सभी शत्रुओं का नाश हो गया, वे पानी के बुलबुलों की भांति विलीन हो गए।
5. ये (विश्वेदेव) चुराए गए पशु लौटा ला उन्होंने अग्नि जागृत की, उन्होंने देवताओं को भोजन दिया, उन्हें कौन जीत सकता है?

सूक्त - XII (163)

क्षय रोग निवारण–ऋषि कश्यपपुत्र विव्रीहन है। छंद है अनुष्टुप्।

1. मैं तेरा चक्षु रोग हरण करता हूं। तेरी शिरोपीड़ा, तेरी नासिका, कर्ण, ठोड़ी, मानस, जिह्वा का रोग हरण करता हूं।
2. तेरी ग्रीवा, तेरी नासिका, तेरी अस्थियों, तेरे संधि-क्षेत्रों, तेरे बाहु, तेरे स्कंध और तेरी कलाइयों का रोग हरता हूं।
3. मैं तेरी अंतड़ियों, तेरी गुदा, उदर, हृदय, गुर्दे, यकृत और अंगों का रोग मिटाता हूं।
4. मैं तेरी जंघाओं, घुटनों, एड़ियों, पंजों, कमर, नितंबों और गुप्तांगों का रोग हरता हूं।
5. मैं तेरे मूत्र-मार्ग, मूत्र-ग्रंथि, बालों, नाखूनों, समस्त शरीर का रोग नष्ट करता हूं।
6. मैं तेरे प्रत्येक अंग, प्रत्येक बाल, प्रत्येक जोड़, जहां भी रोग हो, उस को मिटाता हूं।

और क्या चाहिए जिससे स्पष्ट हो कि वेदों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे आध्यात्मिक अथवा नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता हो? न तो उनकी विषय-वस्तु और न ही उनका स्वरूप, वेदों को अकाट्य ठहराता है, जिसके ढोल पीटे गए हैं। तो फिर ब्राह्मणों ने उन पर पवित्र और अचूक होने का मुलम्मा चढ़ाने के लिए इतनी मशक्कत क्यों की?

सातवीं पहेली

समय का फेर : ब्राह्मणों ने कैसे घोषित कर दिया कि वेद उनके सभी शास्त्रों से तुच्छ हैं?

I

हिंदुओं के धार्मिक साहित्य में, 1. वेद, 2. ब्राह्मण, 3. आरण्यक 4. उपनिषद, 5. सूत्र, 6. इतिहास, 7. स्मृति, और 8. पुराण सम्मिलित हैं।

जैसा कि कहा गया है, एक समय था जब उनका महत्त्व एक समान था। उनके बीच श्रेष्ठता अथवा हीनता, पवित्रता अथवा लौकिकता, काट्य अथवा अकाट्य का कोई भेद नहीं था।

बाद में, जैसा कि हमने कहा है, वैदिक ब्राह्मणों ने सोचा कि वेदों और दूसरे धार्मिक साहित्य में अंतर होना चाहिए। उन्होंने वेदों को न केवल अन्य साहित्य से श्रेष्ठ घोषित कर दिया, अपितु उन्हें पावन और अमोघ भी बना दिया। वेदों को अकाट्य सिद्ध करने के सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने पवित्र ग्रंथों को दो वर्गों में बांट दिया– 1. श्रुति और 2. अश्रुति। पहले विभाजन में उन्होंने आठ अंगों में से केवल दो को श्रेष्ठ रखा–1. संहिता और 2. ब्राह्मण। शेष को उन्होंने अश्रुति घोषित कर दिया।

II

यह बताना संभव नहीं कि यह अंतर सबसे पहले कब किया गया। लेकिन यह सवाल ज्यादा अहम है कि यह भेद किस आधार पर किया गया। इतिहास और पुराणों को क्यों छोड़ दिया गया? आरण्यक और उपनिषद क्यों छांट दिए गए? सूत्रों को क्यों वंचित किया गया? यह तो समझा जा सकता है कि इतिहास और पुराणों को श्रुति के लेबल से क्यों वंचित किया गया। जिस समय यह भेद किया गया, तब ये इतने आरंभिक और अविकसित थे कि उन्हें शायद ब्राह्मणों में सम्मिलित कर लिया गया। साथ ही यह बात भी समझ में आती है कि आरण्यकों का श्रुति के अंग के रूप में उल्लेख करना जरूरी नहीं था। उपनिषद और सूत्रों का सवाल एक पहेली बना हुआ है। इन्हें श्रुति से अलग क्यों रखा गया? उपनिषदों के सवाल पर एक अन्य अध्याय में अलग से विचार किया गया है। यहां तो सूत्रों के बारे में विचार करना है क्योंकि सूत्रों को श्रुति में समाहित न करने के कारणों को समझ पाना कठिन है। अगर यह बात तर्कसम्मत है कि ब्राह्मणों को श्रुति में

सम्मिलित किया जाना चाहिए तो उसी तर्क की कसौटी पर यह सूत्रों को शामिल न करने की बात खरी नहीं उतरती, जैसा कि प्रोफेसर मैक्स मूलर कहते हैं–

> "हम इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार कोई देश अपनी राष्ट्रीय काव्य रचना का श्रेय किसी अलौकिक पुरुष को दे सकता है। विशेष रूप से तब जब कि उस काव्य में देवों को संबोधित प्रार्थनाएं और मंत्र समाविष्ट हों। परंतु ब्राह्मण ग्रंथों के गद्य-साहित्य के विषय में यह कहना कठिन है। ब्राह्मण ग्रंथ स्पष्ट रूप से मंत्रों की अपेक्षा बाद की रचनाएं हैं। इसी कारण इन्हें श्रुति में समाहित किया गया होगा क्योंकि सूक्तों की साधारण प्राचीन कविता से नहीं, बल्कि इन्हीं धर्मशास्त्रीय रचनाओं से ब्राह्मणों के अधिकाधिक महत्वाकांक्षी दावों के लिए एक अनुमानित प्रामाणिकता हासिल की जा सकती थी। लेकिन, हालांकि हमें उन तर्कों को कोई महत्व देने की जरूरत नहीं है जिनके माध्यम से ब्राह्मणों ने मंत्रों और ब्राह्मण ग्रंथों की समकालिक उत्पत्ति सिद्ध करने की कोशिश की, फिर भी इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हमें इस सामान्य मत को उतना ही व्यर्थ मानकर अस्वीकार क्यों नहीं कर देना चाहिए, जिसके अनुसार भारत के लौकिक (अधार्मिक) साहित्य और सूत्रों की तुलना में ब्राह्मण ग्रंथ और मंत्र दोनों ही अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन हैं। ऐसा होना आम बात है कि पवित्र ग्रंथों में बाद की रचनाओं को प्राचीन रचनाओं के साथ ही जोड़ दिया जाता है जैसा कि ब्राह्मण ग्रंथों के साथ हुआ। किंतु हम कठिनाई से ही यह विश्वास कर सकते हैं कि जब तक कोई पक्ष इन उपेक्षित रचनाओं के सिद्धांत विशेष की प्रामाणिकता अमान्य घोषित करने के लिए प्रयत्नशील न हो, पुराने और युक्ति-युक्त अंशों को पवित्र रचनाओं से हटा दिया जाए और उन्हें बाद की रचनाएं बता दिया जाए। इसे मानने का कोई आधार सूत्रों के परवर्ती साहित्य में नहीं दिखाई देता। हमें ब्राह्मणों और मंत्रों की अपेक्षा उनके परवर्ती होने के सिवाय ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि सूत्रों को श्रुति न बनाया जाए। क्या ब्राह्मण ग्रंथकारों को स्वयं ज्ञात था कि ऋषियों की अधिकांश रचनाओं और ब्राह्मण ग्रंथों के उद्‌भव के बीच युगों का अंतराल है? इस सवाल का जवाब बिना संकोच 'हां' में दिया जा सकता है। किंतु जिस दुस्साहस के साथ भारतीय ब्रह्मज्ञानियों ने ब्राह्मण ग्रंथों को वही पद और उनका काल मंत्रों के समान निर्धारित किया, उससे यह प्रकट होता है कि इसका कोई विशिष्ट कारण रहा होगा कि सूत्रों को उतनी ही पावनता और प्राथमिकता न दी जाए।"

सूत्रों को श्रुति की श्रेणी में न रखना एक पहेली है जिसका निराकरण किया जाना चाहिए।

इस विषय पर अनुसंधान करने वाले विद्वानों के सामने दूसरी पहेलियां भी हैं। उनका संबंध सूत्रों की श्रेणी में आने वाले साहित्य की विषय-सामग्री में परिवर्तन और उनकी सापेक्ष प्रामाणिकता से है।

ऐसी एक पहेली का संबंध उस प्रकार के साहित्य से है, जिसे ब्राह्मण कहा जाता है। एक समय ब्राह्मण ग्रंथ श्रुति की श्रेणी में आते थे। परंतु लगता है, कालांतर में उनका वह स्थान नहीं रहा। स्मृति के निम्नांकित उद्धरण को देखने से लगता है कि मनु[1] ने "ब्राह्मण ग्रंथों" को श्रुति की श्रेणी से हटा दिया–

> "श्रुति का अर्थ है वेद और 'स्मृति' का अर्थ है विधान। इनकी विषय-सामग्री पर तर्क नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें कर्तव्य बोध है। जो ब्राह्मण बुद्धिवादी ग्रंथों के आधार पर ज्ञान के इन दो स्रोतों की निंदा करें, उन्हें संशयवादी और निंदक जानकर बहिष्कृत किया जाए...जो कर्तव्य का ज्ञान चाहते हैं, उनके लिए श्रुति सर्वोच्च सत्ता है।"

ब्राह्मण ग्रंथों को श्रुति से क्यों निकाला गया?

III

अब हम उस साहित्य पर आते हैं, जिसे **स्मृति** कहते हैं, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति हैं। स्मृतियों की संख्या लगातार बढ़ती रही और यह सिलसिला अंग्रेजों के आगमन तक जारी रहा। मित्रमिश्र 57 स्मृतियों का, नीलकंठ 97 का और कमलाकर 131 स्मृतियों का उल्लेख करते हैं। हिन्दू जिस धार्मिक साहित्य को पवित्र समझते हैं उसमें स्मृति साहित्य अपेक्षाकृत अधिक है।

वेदों और स्मृतियों के परस्पर रिश्ते के बारे में अनेक बातें हैं।

पहली बात यह है कि जैसा बौधायन, गौतम और आपस्तंब के धर्मसूत्रों को धर्मशास्त्र में स्थान प्राप्त था, वैसी मान्यता स्मृति को प्राप्त नहीं थी[2]। स्मृति का संबंध मूल रूप से संस्कारों और परंपराओं से था। समाज के विद्वान उसकी अनुमति देते और अनुशंसा करते थे। जैसा कि प्रोफेसर अल्तेकर का मत है–

> "आरंभ में अपने लक्षण और विषय-सामग्री के कारण स्मृति सदाचार के समान थी और वही उसका आधार था। स्मृतियां अस्तित्व में आईं तो स्वाभाविक तौर पर सदाचार का दायरा सिमट गया, क्योंकि उसको अधिकांशतः संहिताओं में बांध लिया गया था। उन्होंने उसे उन प्राचीन

---

1. *कुछ लोग तर्क कर सकते हैं कि 'वेद' शब्द में ब्राह्मण भी संकलित हैं। यह वास्तव में एक सच्चाई है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मनु ने 'श्रुति' को सीमित अर्थ में प्रयुक्त किया ताकि 'ब्राह्मणों' को अलग रखा जाए। इस कथन की पुष्टि इस बात से होती है कि मनुस्मृति में ब्राह्मणों का उल्लेख नहीं है सिवाय एक स्थान के (4.100) जहां वह कहता है कि मंत्रों का ही अध्ययन किया जाना चाहिए।*
2. *इस विषय पर काणे मेमोरियल वाल्यूम, पृ. 18-25 पर प्रो. अल्तेकर का प्रभावपूर्ण लेख "धर्म के स्रोत के रूप में स्मृतियों का स्थान" देखें।*

प्रथाओं से जोड़ना आरंभ कर दिया जो स्मृतियों में संहिताबद्ध नहीं थीं या जो नई थीं और वे क्योंकि आरंभिक धर्मशास्त्रों तथा स्मृतियों में संहिताबद्ध हो गई थीं, इस कारण उनको सामाजिक मान्यता मिल गई थी।"

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि स्मृतियां वेद अथवा श्रुति से भिन्न समझी जाती थीं। जहां तक उनकी मान्यता और प्रामाणिकता का सवाल था, तो उनका आधार बिलकुल अलग था। श्रुतियों को दैवी मान्यता मिली हुई थी। स्मृतियों की मान्यता सामाजिक थी। उनकी प्रामाणिकता के संबंध में पूर्व मीमांसा में दो नियमों का प्रावधान किया गया था। प्रथम नियम यह है कि यदि श्रुति के दो पाठों में भिन्नता है तो दोनों प्रामाणिक हैं और यह समझा जाता था कि वेदों में विकल्प था कि उनमें से किसी एक को स्वीकार कर लिया जाए। दूसरा नियम यह है कि यदि स्मृति का कोई पाठ श्रुति के विपरीत है तो उसे तत्काल रद्द कर दिया जाए। ये नियम कठोरता से माने जाते थे और इसके परिणामस्वरूप स्मृतियों को न तो वेदों के बराबर स्थान मिला और न उनके समान प्रमाणिकता।

यह तथ्य चकित करने वाला है कि एक समय ऐसा आया कि ब्राह्मणों ने पलटी खाई और स्मृतियों को वेदों से श्रेष्ठ घोषित कर दिया। प्रोफेसर अल्तेकर ने कहा है–

"स्मृतियों ने श्रुतियों के कुछ सिद्धांतों को वास्तव में निरस्त कर दिया जो तत्कालीन युग की भावना के अनुरूप नहीं थे अथवा जिनका स्मृतियों से टकराव था। वैदिक परंपरा के अनुसार सुबह देव कर्म और अपराह्न (दोपहर बाद) पितृ-कर्म करने का विधान था। कालांतर में पितृ-तर्पण लोकप्रिय हो गया और सुबह किया जाने लगा क्योंकि प्रातःस्नान दिनचर्या में सम्मिलित हो गया। यह तरीका उपर्युक्त नियम के अनुसार वैदिक प्रथा का प्रत्यक्ष उल्लंघन था। *स्मृति-चंद्रिका* के लेखक देवमूभट्ट ने कहा है कि इसमें कोई आपत्ति नहीं है। श्रुति नियम को समझा गया कि उसमें पितृ-तर्पण का उल्लेख है, पितृ-कर्म का नहीं। श्रुति साहित्य से पता चलता है कि विश्वामित्र ने शुनःशेप को गोद ले लिया था, हालांकि उनके अपने एक सौ पुत्र जीवित थे। इस प्रकार यह अनुमति मिलती है कि किसी व्यक्ति के भले ही अपने अनेक पुत्र जीवित हों, वह किसी अन्य के पुत्र को गोद ले सकता है। परंतु मित्रमिश्र के अनुसार यह व्यवस्था दोषपूर्ण है। हम यह कल्पना कर सकते हैं कि स्मृतियों की प्रथाएं भी श्रुति व्यवस्थाओं पर आधारित हैं, जो इस समय उपलब्ध नहीं हैं, परंतु उनका अस्तित्व माना जा सकता है।"

"वैदिक कथन "न शिशो 'जनेऽन्यजातमस्ति" निश्चय ही पुत्र गोद लेने की प्रथा के विरुद्ध है, जिसे कालातीत में स्मृति साहित्य में अनुसंशित किया गया। यह एक स्पष्ट उदाहरण है कि किस प्रकार स्मृति ने श्रुति को ठिकाने लगा दिया। परंतु मित्रमिश्र के अनुसार इस प्रथा में कोई दोष नहीं है। श्रुति का

कथन मात्र अर्थवाद है। यह अपनी ओर से कोई निर्देश नहीं देती। दूसरी ओर स्मृतियों ने दत्तक पुत्र की व्यवस्था की है जिससे कि होम आदि उपयुक्त रीति से संपन्न हो सकें। इस प्रकार स्मृति के पाठ द्वारा अर्थवाद-परक श्रुति को ठीक ही निरस्त किया जा रहा है, जिसके लिए विधि (आदेश) मौजूद है।"

"कालांतर में वैदिक निर्देशों के विपरीत सती-प्रथा शुरू हुई। वेद आत्महनन के विरोध में है। फिर अपरार्क ने तर्क दिया है कि श्रुति के साथ भिन्नता होने से वह प्रथा अवैध नहीं हो जाती क्योंकि श्रुति में एक सामान्य सिद्धांत के रूप में आत्महत्या का निषेध किया गया है, जबकि स्मृति में विधवा के संबंध में इसके अपवादों की व्यवस्था है।"

सती-प्रथा और दत्तक-प्रथा ठीक है अथवा नहीं, यह एक अलग सवाल है। समाज ने उन्हें जैसे-तैसे स्वीकार कर लिया। स्मृतियों ने उन्हें सैद्धांतिक मान्यता दे दी और वेदों की सत्ता के विरुद्ध जाकर भी उन प्रथाओं का बचाव किया।

सवाल यह उठता है कि वेदों की श्रेष्ठता के लिए इतना अधिक संघर्ष करके बाद में उन्हीं वेदों का स्थान गिराकर स्मृतियों को क्यों वेदों के ऊपर रखा गया? उन्होंने वेदों को देवों से भी अधिक मान्यता दी फिर उन्हें घसीटकर स्मृतियों से भी नीचे क्यों डाल दिया, जबकि स्मृतियों को मात्र सामाजिक मान्यता प्राप्त थी?

उन्होंने जो उपाय किए, वे इतने विदग्ध और कृत्रिम थे कि हम यह सोचे बगैर रह ही नहीं सकते कि इसके पीछे कोई खास उद्देश्य अवश्य रहा होगा जो स्मृतियों को वेदों से श्रेष्ठ माना जाने लगा।

यह स्पष्ट करने के लिए कि उनके तर्क कितने कृत्रिम, चतुराई भरे और हताशापूर्ण थे, यह उचित होगा कि उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाए।

एक कृत्रिम तर्क का उदाहरण सामने आता है जब हम बृहस्पति के कथन पर विचार करते हैं। उनके अनुसार श्रुति और स्मृति ब्राह्मण की दो आंखें हैं। यदि उनमें से एक फूट जाएगी तो वह काना हो जाएगा।

एक चतुराई भरे तर्क के उदाहरण के रूप में कुमारिल भट्ट की दलील पर भी विचार किया जा सकता है। उनका तर्क अनुपलब्ध श्रुति के सिद्धांत पर आधारित है। स्मृतियों के नाम पर यह कहा गया कि उनके मत को रद्द नहीं किया जा सकता चाहे वह श्रुति के प्रतिकूल भी क्यों न हों; क्योंकि हो सकता है कि वास्तविक रूप में यह अनुपलब्ध श्रुति पर आधरित अतःविरोध श्रुति और स्मृति में नहीं है, बल्कि यह विरोध विद्यमान और अनुपलब्ध श्रुति के बीच है। इस प्रकार स्मृति को अनुपलब्ध श्रुति बना दिया गया।

ब्राह्मणों ने स्मृतियों को वेदों से श्रेष्ठ भी नहीं माना तो कम से कम उनको बराबर का दर्जा देने के लिए, उनके समान स्थान देते हुए एक तीसरा उपाय खोज

लिया। यह अत्रि स्मृति में सन्निहित है। अत्रि का कहना है कि जो स्मृतियों की सत्ता स्वीकार नहीं करते, वे शाप के भागी हो सकते हैं। अत्रि का सिद्धांत है कि ब्राह्मण श्रुति और स्मृति के संयुक्त अध्ययन की परिणति है। यदि कोई व्यक्ति मात्र वेदों का पाठ करता है और स्मृति की अवमानना करता है तो उसे तत्काल यह शाप दिया जा सकता है कि वह 21 योनियों तक जानवर बने।

ब्राह्मणों ने स्मृतियों को श्रुति के समान रखने के ऐसे उपाय क्यों किए? उनका उद्देश्य क्या था? उनका अभिप्राय क्या था?

प्रोफेसर अल्तेकर के इस तर्क को पर्याप्त नहीं माना जा सकता कि स्मृतियों को वेदों पर इसलिए प्रभुत्व प्रदान किया गया क्योंकि उन्होंने बाद में उपजे परंपरागत नियमों को न्याय-संगतता प्रदान की। यदि यही बात थी तो वैदिक काल में भी विधि-विधान थे तथा प्रथाएं बाद में उपजीं और अगर दोनों के बीच कोई टकराव था तो इस तर्क को समझा सकता था कि स्मृतियों ने प्रगतिशील सिद्धांतों को मान्यता इस कारण दी गई कि उनमें टकराव दूर कर दिया गया था। बात ऐसी नहीं है। वेदों में विधि-विधान नहीं है। प्रोफेसर काणे का मत है–

> "सभी कानून प्रथाओं के रूप में थे और प्रथाओं को मान्यता प्रदान करना आवश्यक नहीं था क्योंकि वे नागरिकों द्वारा मान्यता प्राप्त थीं। दूसरे, स्मृतियों को वेदों की अपेक्षा प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। चातुर्वर्ण्य के सिवाय जिसके विषय में सर्वविदित है और पूजा-अर्चना की विधियों को छोड़कर समाज में विकास के सभी द्वार वेदों ने खुले छोड़े हुए थे। स्मृतियों ने वेदों के अप्रगतिशील तत्त्वों जैसे चातुर्वर्ण्य सिद्धांत आदि को ले लिया तथा उसका जमकर प्रचार किया और उन व्यवस्थाओं को समाज के एक वर्ग के मत्थे मढ़ दिया।"

इस प्रकार कुछ और कारण भी हो सकते हैं, जिनके आधार पर ब्राह्मणों ने वेदों की अपेक्षा स्मृतियों को अधिक सम्मान दिया।

ब्राह्मणों को अपनी पहली कलाकारी से संतोष न हुआ। उन्होंने एक चाल और चली।

कालांतर में स्मृतियों के पश्चात पुराण आए। वे कुल मिलाकर 36 हैं। इसमें 18 पुराण और उतने ही उप-पुराण हैं। एक प्रकार से तो सभी पुराणों की विषय-सामग्री एक जैसी ही है। उनका कथ्य विश्व की सृष्टि, पालन और संहार है। लेकिन उनकी शेष विषय-सामग्री बिलकुल अलग है। कुछ में ब्रह्मा की उपासना है, तो कुछ में शिव और विष्णु की; परंतु कुछ में वायु, अग्नि और सूर्य की उपासना है तथा कुछ में अन्य देवी-देवताओं की उपासना की संस्तुति है।

जैसा कि हम बता चुके हैं, किसी समय श्रुति में पुराण सम्मिलित नहीं थे। लेकिन

उसके बाद एक क्रांतिकारी बदलाव आया। जिन पुराणों को श्रुति से अलग रखने का कारण उनकी नितांत लौकिकता बताया गया था, वही अब वेदों से भी श्रेष्ठ हो गए।

वायु पुराण के अनुसार,[1]

> "सर्वप्रथम सभी शास्त्र, पुराण ब्रह्मा के मुख से प्रस्फुटित हुए। तदुपरांत वेद।"

मत्स्य पुराण तो वेदों से पुराणों का केवल पूर्ववर्ती होना ही घोषित नहीं करता बल्कि वह उनकी अनंतता के गुणों और नाद के साथ तादातम्य को भी उनमें मानता है। पहले केवल वेदों को इन गुणों से संपन्न बताया जाता था।

उसके अनुसार—[2]

> "सर्वप्रथम अविनाशी पितामह (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए, फिर वेद, उसके अंगोपांग तथा उनके पाठ के विभिन्न साधन जन्मे और प्रकट हुए। ब्रह्मा ने जिन शास्त्रों को जन्म दिया उनमें सैकड़ों कोटि-कोटि मंत्रों वाले सनातन, नाद-जनित शुद्ध शास्त्र, पुराण प्रथम था। फिर उनके मुख से वेदों का उद्गम हुआ, तभी मीमांसा और न्याय तथा अष्ट प्रमाण जन्मे।"

भागवत पुराण में वेदों के समान प्रामाणिकता का दावा है। उसके अनुसार—[3]

> ब्रह्मरात का निर्णय है कि जो पुराण भागवत कहलाता है वह वेदों के समान है।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण ने साधिकार दावा किया है कि वह वेदों से श्रेष्ठ है। उसके अनुसार—[4]

> "जिस श्रद्धेय ऋषि के विषय में आपने प्रश्न किया है और जो आपकी इच्छा है, वह सब मुझे ज्ञात है। वह है पुराणों का सार अति विख्यात ब्रह्मवैवर्त्त पुराण जो समस्त पुराणों, उप-पुराणों और वेदों की त्रुटियों का परिष्कार करता है।"

ब्राह्मणों की यह दूसरी पहेली है जिसके अनुसार उन्होंने अपने पवित्र ग्रंथों को प्राथमिकता, प्रमुखता और प्रामाणिकता दी।

वेदों के पतन की कथा का यहीं अंत नहीं हो जाता। पुराणों के बाद साहित्य का एक और रूप सामने आया—'तंत्र'[5]। इनकी संख्या भी काफी ज्यादा है। शंकराचार्य ने 64 तंत्र गिनाए हैं। इनके अतिरिक्त भी बहुत से होंगे।

इस साहित्य का लेखक दत्तात्रेय को बताया जाता रहा है जो हिंदू त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अवतार कहे जाते हैं, उन्हें इस प्रकार तीन सर्वोच्च देवों के समान ज्ञान

---

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 27

2. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट पृ. 28

3. मूइर ने उद्धृत किया है, खंड 3

4. मूइर ने उद्धृत किया है, खंड 3

5. स्मार्त धर्म और तांत्रिक धर्म पर और ज्यादा विचार के लिए इस भाग का परिशिष्ट 4 और 5 देखें।

का संगम कहा गया है। किंतु वे मात्र शिव पर निर्भर हैं जिन्होंने अपनी पत्नी दुर्गा अथवा काली को रहस्यात्मक सिद्धांत और अनुभव बताए, जो उनके भक्तों को ज्ञात होने चाहिए और जिनका उन्हें अनुशीलन करना चाहिए। कहा गया है कि यह प्रामाणिक अथवा उच्च परंपरा उनके केन्द्रीय अर्थात् पंचम मुख से प्रकट हुई। क्योंकि यह परम पावन और गुह्य ज्ञान है, इसलिए यह अदीक्षितों के समक्ष प्रकट नहीं होना चाहिए। इन्हें **आगम** कहा गया है। इस प्रकार वे निगम अर्थात वेदों के ज्ञान, धर्मशास्त्रों और अन्य ग्रंथों से भिन्न हैं।

तंत्र विशेष रूप से शाक्तों और उनके विभिन्न संप्रदायों के धार्मिक ग्रंथ हैं। तांत्रिकों की कई शाखाएं हैं और ये तांत्रिक अपनी अलग-अलग परंपराओं को मानते हैं और उनके अंतरंग अनुयायियों के अतिरिक्त ये परंपराएं और किसी के लिए भी अबूझ ही हैं। दक्षिणाचारियों के कर्म-कांड शुद्ध और वेदानुकुल बताए गए हैं, जबकि वामाचारियों के कर्मकांड केवल शूद्रों के लिए बताए गए हैं।

तंत्रों के उपदेश पुराणों की तरह भक्तिमार्ग पर आधारित हैं और उपनिषदों एवं ब्राह्मणों के कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्ग से श्रेष्ठ कहे जाते हैं। इनमें एक देव की उपासना का निर्देश दिया गया है, विशेष रूप से शिव की पत्नी का, जिन्हें **जगतजननी** कहा गया है। इन सभी रचनाओं में नारी गुणों को साकार मानकर प्रमुखता दी गई है। पुरुषों की प्रायः उपेक्षा की गई है।

वेदों और तंत्रों में क्या संबंध है? मनुस्मृति के विख्यात भाष्यकार कुल्लूक भट्ट तो बिना संकोच कहते हैं कि श्रुति के दो अंग हैं, वेद और तंत्र। इसका मतलब यह हुआ कि वेद और तंत्र का स्तर समान है। कुल्लूक भट्ट की तरह वैदिक ब्राह्मणों ने वेदों और तंत्रों को समान माना है बल्कि तंत्र लेखक तो चार कदम आगे हैं। उनका दावा है कि वेद शास्त्र और पुराण एक आम औरत की तरह हैं, जबकि तंत्र एक कुलीन स्त्री के समान हैं। इसका अभिप्राय यही है कि तंत्र तो वेदों से श्रेष्ठ हैं।

इस सर्वेक्षण से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि ब्राह्मणों को अपने धार्मिक साहित्य में कभी अटल विश्वास नहीं रहा। वे यह बताने के लिए जूझते रहे कि वेद केवल पवित्र ग्रंथ ही नहीं बल्कि अकाट्य हैं। उन्होंने बस यही नहीं कहा कि वे अकाट्य हैं, बल्कि उन्होंने इस संबंध में मनगढंत सिद्धांत और तर्क प्रस्तुत किए। इसके बाद वेदों को पहले उन्होंने स्मृतियों से हीन बताया, फिर पुराणों से और अंत में तंत्र से भी नीचे डाल दिया। लाख टके का सवाल यह है कि आखिर ब्राह्मणों ने अपने पवित्रतम ग्रंथ—वेदों—की यह दुर्दशा क्यों की कि वे स्मृतियों, पुराणों और तंत्र तक से तुच्छ हो गए?

आठवीं पहेली

वेद के विरुद्ध उपनिषदों का घोषित युद्ध

वेदों के संदर्भ में उपनिषदों की स्थिति क्या है? क्या वे एक-दूसरे के पूरक हैं या फिर विरोधी? सचमुच कोई हिंदू अब यह स्वीकार नहीं करेगा कि वेद और उपनिषद एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। इसके विपरीत यह अवधारणा है कि उनके बीच कोई विरोध नहीं है और दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्या यह विश्वास सुदृढ़ है?

इस विश्वास का प्रमुख कारण यह है कि उपनिषदों का दूसरा नाम **वेदांत** है। वेदांत के दो अर्थ हैं। एक के अनुसार वे वेदों का अंतिम भाग हैं। दूसरा अर्थ यह है कि ये वेदों का सार है। वेदांत शब्द क्योंकि उपनिषद का दूसरा नाम है इसलिए उसके ये अर्थ उपनिषदों ने अंगीकार कर लिए। इसी अर्थ के कारण यह धारणा है कि वेद और उपनिषदों में कोई विरोध-भाव नहीं है।

उपनिषद शब्द के ये अर्थ किस हद तक तथ्यों पर आधारित हैं? पहले तो यही है कि 'वेदांत' शब्द का अर्थ जान लिया जाए। वेदांत का मूल अर्थ क्या था? क्या इसका अर्थ वेदों का अंतिम अंग है?

जैसा कि प्रोफेसर मैक्स मूलर[1] कहते हैं—

> "वेदांत एक तकनीकी शब्द है और मूल रूप में इसका मतलब वेदों का अंतिम अंश नहीं है और न ही वैदिक साहित्य का अंतिम अध्याय है। अपितु वेदों का अंतिम मनोरथ है। तैत्तिरीय आरण्यक (संपादक राजेन्द्र मित्र. पृ. 820) जैसे ग्रंथों में कुछ ऐसे वाक्यांश हैं, जिनसे भारतीय और यूरोपीय विद्वानों को भ्रांति हुई है कि वेदांत का सरल सा अर्थ है—वेदों का उपसंहार—**यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदांते च प्रतिष्ठितः।** 'ओम से वेद का आरंभ होता है और उसी से वेद का समापन होता है।' यहां वेदांत का जो सीधा अर्थ है वह वेदादौ (=वेद के शुरू में) के विपरीत है जैसा कि सायण ने इसका अनुवाद किया है, उसका अनुवाद वेदांत अथवा उपनिषद के रूप में करना एकदम असंभव है। वेदांत तो दर्शन के अर्थ में तैत्तिरीय आरण्यक पृष्ठ 817 में आया है। नारायणीय उपनिषद के एक मंत्र में, जिसकी आवृत्ति मुंडक उपनिषद 3,2,6, में

---

1. दि उपनिषद (एस.बी.ई.) खंड 1, भूमिका

तथा अन्यत्र भी हुई है। कहा गया है–'वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः' अर्थात् जो विद्वान वेदांत-मर्मज्ञ हैं, उनके अनुसार वह वेदों का उपसंहार नहीं और श्वेताश्वतर उप. 6, 22 कहता है कि **वेदांते परं गुह्यम्** वेदांत में सर्वोच्च रहस्य है। कालांतर में वेदांत शब्द बहुवचन के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। जैसे–क्षुरिकोपनिषद्, 10 (बिबलि इंड, पृ. 210) में–**"पुण्डरीकेति वेदांतेषु निगद्यते"** 'इसे वेदांतों में पुंडरीक कहा गया है', वेदांतों अर्थात छांदोग्य तथा अन्य उपनिषदों में यह कहीं भी वेद का अंतिम ग्रंथ या भाग नहीं कहा गया है।"

इस संबंध में गौतम धर्म-सूत्र में और भी स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध है। अध्याय 19 के बारहवें मंत्र (सूत्र) में शुद्धीकरण पर गौतम का कथन है–

"शुद्धीकरण के ग्रंथ हैं–उपनिषद, वेदांत, संहिताएं–सभी वेदों के पाठ" आदि।

इससे यह स्पष्ट है कि गौतम के समय उपनिषद और वेद अलग-अलग माने जाते थे और उपनिषद वेदों का अंग नहीं थे। हरदत्त ने अपने भाष्य में कहा, "आरण्यकों के वे अंश जो (उपनिषद) नहीं हैं, वेदांत कहलाते हैं। यह निर्विवाद साक्ष्य है कि उपनिषद वैदिक साहित्य से भिन्न थे और वे वेदों का अंग नहीं थे।

भगवद्गीता में वेद के उल्लेख से भी इसी विचार को बल मिलता है। भगवद्गीता में वेद शब्द का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। माननीय भट्ट[1] के अनुसार इस शब्द का प्रयोग इस भाव से किया गया है कि लेखक ने इसमें उपनिषदों को सम्मिलित नहीं किया है।

उपनिषदों की विषयवस्तु भी वेदों से भिन्न है। यह दूसरा तर्क है कि उपनिषद वेदों का अंग नहीं है। 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति क्या है? यह अस्पष्ट है। अधिकांश यूरोपीय विद्वान उपनिषद की व्युत्पत्ति "षद्" धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है "बैठना"। इसके पूर्व दो उपसर्ग "नि" और 'उप' हैं जिसमें "नि" का अर्थ है "नीचे" और "उप" का आशय है "निकट"। इस प्रकार इसका आशय है सत्र अथवा सभा। जिसका तात्पर्य है गुरु के निकट बैठकर उसका उपदेश सुनना। यही कारण है कि त्रिकांडशेष में उपनिषद की व्याख्या 'समीप सदन' अथवा किसी व्यक्ति के पास बैठना है।

लेकिन प्रो. मैक्स मूलर के अनुसार, इस व्युत्पत्ति को स्वीकार करने में दो आपत्तियां हैं। पहली बात तो यह है कि ऐसा लगता है कि यह शब्द वेद के किसी अन्य अंश और उपनिषद कहे जाने वाले अध्यायों के लिए प्रयुक्त हुआ होगा और यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इसके अर्थ असीमित कैसे किए गए। फिर सत्र या सभा के रूप में उपनिषद का प्रयोग कभी सामने नहीं आता। जहां भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है, इसका अर्थ है ज्ञान अथवा गुह्य ज्ञान, या फिर दार्शनिक ग्रंथों के शीर्षकों के लिए हुआ है, जिनमें गुह्य ज्ञान निहित हैं।

---

1. *सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट, खंड 2, पृ. 275*

प्रोफेसर मैक्स मूलर ने शंकर की एक अन्य व्याख्या का उल्लेख किया है जो तैत्तिरीय उपनिषद 2,9 के भाष्य में है। उनके अनुसार उपनिषद से परम आनन्द प्राप्त होता है **"परं श्रेयोऽस्यां निषन्नम्"** इसी कारण इसे उपनिषद् कहते हैं। इस संबंध में प्रो. मैक्स मूलर कहते हैं–

> "आरण्यकों में ऐसी व्युत्पत्तियों की भरमार है जो वास्तविक नहीं, शब्दों के साथ खिलवाड़ है, जिसे से जैसे-तैसे कुछ अर्थ निकल आता है।"

फिर भी, प्रो. मैक्स मूलर 'उपनिषद' शब्द का मूल "षद्" धातु से विनाश के अर्थ में मानते हैं, अर्थात् ऐसा ज्ञान जो मोक्ष के साधन के लिए ब्राह्मणों के ज्ञान से अज्ञान का विनाश करता है। प्रो. मैक्स मूलर का कथन है कि भारतीय विद्वान उपनिषद का यही अर्थ निकालने पर सर्वसम्मत हैं।

अगर यह मान लिया जाए कि उपनिषद शब्द का जो अर्थ मैक्स मूलर सुझाते हैं वह सही है तब यह एक ऐसा साक्ष्य होगा जिसके अनुसार यह दिखाया जा सकता है कि हिंदुओं का आम विश्वास सही नहीं है और वेदों तथा उपनिषदों की विषयवस्तु एक-दूसरे की पूरक नहीं बल्कि विरोधी है। और बेशक उपनिषदों की विचार-पद्धति वेदों के प्रतिकूल है। यह सिद्ध करने के लिए कुछ उपनिषदों के उदाहरण पर्याप्त होंगे।

मुण्डकोपनिषद् का कथन है–

> "1. सभी देवताओं में सबसे पहले विश्वनियंता, जगतपालक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने ज्येष्ठतम पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी जो समस्त ज्ञान का आधार है। 2. अथर्वा ने यह ज्ञान, जो उन्हें ब्रह्मा से मिला था, अंगिरस् को दिया; उन्होंने भारद्वाज की संतति सत्यवह को समझाया जिन्होंने किंवदंतियों के अनुसार यह ज्ञान अंगिरस् को दिया। 3. शौनक पूर्ण शिष्टाचारपूर्वक अंगिरस् के पास गए और पूछा–"हे आदरणीय ऋषि, वह कौन-सा साधन है जिससे इस संपूर्ण जगत का ज्ञान हो सकता है?" 4. अंगिरस् ने उत्तर दिया, ये दो विधाएं पवित्र विद्याओं के ज्ञाता ऋषियों के अनुसार इस प्रकार जानी जाती हैं, एक श्रेष्ठ और दूसरी अश्रेष्ठ। 5. अश्रेष्ठ विद्याएं हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, स्वराधात, कर्मकांड व्याकरण, भाष्य, पिंगल और खगोल-शास्त्र। श्रेष्ठ विद्या वह है जिससे अक्षय का ज्ञान होता है, जिसका आशय उपनिषदों से है।"

छांदोग्य उपनिषद् के अनुसार–

> (1) "नारद सनत्कुमार के पास गए और कहा–"मुझे उपदेश करें"। नियमानुसार आए हुए नारद से सनत्कुमार ने कहा–तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे का उपदेश करूंगा।" (2) नारद ने उत्तर दिया, "मैं ऋग्वेद पढ़ा हूं। यजुर्वेद, सामवेद और

चौथा अथर्ववेद भी जानता हूं। इनके अतिरिक्त इतिहास, पुराण रूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, कल्प शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प, छंद और ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुड़विद्या, देवशास्त्र–यह सब मैं जानता हूं। (3) यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हूं, आत्मा को मैं नहीं जानता। मैंने आप जैसे पूज्यजनों और महापुरुषों से सुना है कि आत्मज्ञानी शोक को पारकर जाता है। मैं तो शोक करता हूं। आप ऐसे शोकग्रस्त मुझ को शोक से पारकर देवें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त कर देवें। ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा–"अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो, वह नाममात्र ही है"। (4) क्योंकि ऋग्वेद नाम है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद, पांचवां वेद इतिहास पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेद विद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़, संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र–ये सब भी नाम ही हैं। इसलिए तुम नाम की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो। (5) वह जो नाम ब्रह्म है, ऐसी उपासना करता है, जहां तक नाम की गति है, वहां तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो "यह ब्रह्म है" इस प्रकार नाम की उपासना करता है। (नारद ने कहा) हे भगवन्, क्या नाम से बढ़कर भी कोई वस्तु है। सनत्कुमार ने कहा नाम से भी बढ़कर वस्तु है। तब नारद ने कहा–हे भगवन्, मुझे उसका ही उपदेश करें।"

बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार–

"इस सुषुप्तावस्था में पिता अपिता हो जाता है, माता अमाता हो जाती है अर्थात् जन्य जनक भाव संबंध नहीं रह जाता। लोक अलोक हो जाते हैं। देव अदेव और वेद अवेद हो जाते हैं, अर्थात् सभी साध्य-साधन का अभाव हो जाता है। यहां पर चोर अचोर हो जाता है। भ्रूण हत्यारा अभ्रूण हत्यारा हो जाता है। चांडाल-चांडाल नहीं रह जाता है। पुल्कस अपुल्कस हो जाता है। (शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न संतान को चांडाल कहते हैं। शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न संतान को निषाद कहते हैं एवं निषाद से क्षत्रिय में उत्पन्न संतान को पुल्कस कहते हैं।) श्रमण और वानप्रस्थी अतापस हो जाता है, अर्थात् किसी वर्णाश्रम-धर्म की या पुण्य-पाप की प्रतीति नहीं होती। उस समय यह पुरुष पुण्य से असंबद्ध तथा पाप से भी संबंध रहित हो जाता है, क्योंकि तब वह हृदय के समस्त शोकों को पार कर जाता है।"

कठोपनिषद् का कहना है–

"आत्मा उपदेश से प्राप्य नहीं, न ही ज्ञान से और न पठन से प्राप्य है। वह

उसी को प्राप्त होती है जिसे वह चाहती है, जिसे यह चुनती है। आत्मा उसी को अपना शरीर प्रत्यक्ष करती है, जिसे वह चुन लेती है।"

"यद्यपि आत्मा का ज्ञान कठिन है तथापि समुचित साधनों से उसे जाना जा सकता है। वह (लेखक) कहता है, उपदेश से या वेदों के ज्ञान से या बुद्धि से या पुस्तकों के रखने से या मात्र पाठन से इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। फिर वह कैसे लभ्य हैं? वह यह घोषित करता है।"

उपनिषदों और इनकी दार्शनिकता के प्रति कितनी अरुचि थी, इसका आभास तभी हो सकता है जब कोई हिंदुओं की विवाह-पद्धति अनुलोम और प्रतिलोम शब्दों की उत्पत्ति समझेगा। उनकी उत्पत्ति के विषय में काणे[1] का कथन है–

"अनुलोम और प्रतिलोम (विवाह की परंपरा) ये दोनों वैदिक साहित्य में दुर्लभ हैं। *बृहदारण्यक उपनिषद* (2,1.5) और कौषीतकि (4,8) में प्रतिलोम शब्द का प्रयोग उस स्थिति के लिए किया गया है, जब कोई ब्राह्मण, ब्रह्म के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय के पास जाए।"

अनुलोम का अर्थ है, शास्त्रानुसार सहज परंपरा से कार्य संपन्न होगा, प्रतिलोम का अर्थ है सहज परंपरा के विपरीत। माननीय काणे के कथनानुसार प्रतिलोम की परिभाषा के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि उपनिषदों को वैदिक साहित्य की मान्यता प्राप्त नहीं है। उन्हें यदि तिरस्कृत भी नहीं किया गया है तो भी वैदिक ब्राह्मणों ने उनका स्थान तुच्छ रखा है। यह इस बात का एक और प्रमाण है कि एक समय था जब वेदों और उपनिषदों का संबंध प्रतिस्पर्धापूर्ण था।

उपनिषदों का अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के प्रति वैदिक ब्राह्मणों के व्यवहार का एक अन्य उदाहरण भी है। बौधायन ने अपने धर्म-सूत्र (8.3) में कहा है। श्राद्ध क्रिया के लिए यदि कोई अन्य ब्राह्मण उपलब्ध न हो तभी किसी रहस्यविद् को बुलाया जाए। रहस्यविद् का अर्थ है उपनिषद-विज्ञ ब्राह्मण।

यह जो धारणा बनी कि वेदों और उपनिषदों में अनुकूलता है, वास्तव में एक पहेली है।

---

1. *हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खंड 2, भाग 1, पृ. 52*

नौवीं पहेली

उपनिषद् वेदों के अधीनस्थ कैसे बने?

पिछले अध्याय में हमने देखा कि उपनिषद मूलतः वेदों का अंग नहीं थे और सिद्धांत की दृष्टि से दोनों एक-दूसरे के विरोधी थे। वेदों और उपनिषदों के परवर्ती संबंधों की तुलना करना ज्ञानवर्धक होगा। उनके परवर्ती संबंधों के ज्ञान के लिए सर्वोत्तम उदाहरण जैमिनि और बादरायण नामक दो दार्शनिकों का विवाद है।

जैमिनि मीमांसा सूत्रों के लेखक हैं जबकि बादरायण ब्रह्मसूत्रों के; जैमिनि वेदों के पक्षधर हैं जबकि बादरायण उपनिषदों के।

विवाद का बिंदु था—क्या बलि देना आवश्यक है? वेद कहते हैं "हां" और उपनिषद कहते हैं "नहीं"।

बादरायण ने जैमिनि की स्थिति अपने सूत्रों (2 से 7) में स्पष्ट की है और शंकराचार्य ने उनका भाष्य किया है।

जैमिनि कहते हैं[1]

> "कोई उस समय तक बलि नहीं देता जब तक कि उसे इस बात का ज्ञान न हो कि वह शरीर से भिन्न है और मृत्यु के उपरांत वह स्वर्ग जाएगा, जहां उसे बलि का फल प्राप्त होगा। आत्मज्ञान संबंधी ग्रंथ व्यक्ति का मार्गदर्शन मात्र करते हैं। इस प्रकार वे यज्ञ, कर्म व बलि कर्म के अधीन हैं।"

संक्षेप में जैमिनि कहते हैं कि वेदांत की शिक्षा यह है कि आत्मा देह से भिन्न है और वह देह से अधिक काल तक अस्तित्व में रहती है। ऐसा ज्ञान पर्याप्त नहीं है। आत्मा का मनोरथ स्वर्ग प्राप्ति हो सकता है किंतु वह तब तक स्वर्ग नहीं जा सकती जब तक कि वैदिक यज्ञ न किया जाए। यही उसके कर्म-कांड का आग्रह है। इस प्रकार उनका कर्म-कांड ही मुक्ति मार्ग है और इस प्रकार ज्ञान-कांड निरर्थक है। इसलिए जैमिनि उन लोगों के विरुद्ध हैं जो वेदांत[2] में आस्था रखते हैं—

> "विदेह के राजा जनक ने यज्ञ किया जिसमें उदारतापूर्वक दक्षिणा दी गई (बृह. 3.1.1.)। महोदय, मैं यज्ञ करने जा रहा हूं (छांदो. 5.11.5) जनक और

1. देखें, बादरायण सूत्र 2 और इस पर शंकर की टिप्पणी।
2. देखें, बादरायण सूत्र 3 और शंकर की इस पर टिप्पणी।

दोनों ही आत्मज्ञानी थे। यदि वे दोनों ही आत्मज्ञानी थे तो वे मुक्ति पा चुके थे। ऐसे में यज्ञ करने की आवश्यकता ही नहीं थी। परंतु दोनों प्रसंगों में कहा गया है कि उन्होंने यज्ञ किया। इससे प्रमाणित होता है कि मुक्ति तभी मिल सकती है जब यज्ञ किया जाए, न कि आत्मज्ञान से मिलती है, जैसा कि वेदांती कहते हैं।"

जैमिनि ने एक सकारात्मक बात कही[1] है कि शास्त्रों में यह निर्भ्रांत कथन है कि "आत्मज्ञान यज्ञ की अपेक्षा गौण है।" जैमिनि इसे उचित[2] बताते हैं क्योंकि उनका मत है कि (मृत-आत्मा को फल देने हेतु) दोनों (ज्ञान और कर्म) समानांतर चलते हैं। जैमिनि बादरायण के ज्ञानकांड को स्वतंत्र साधन नहीं मानते। वे इसके दो आधार बताते हैं।

प्रथम[3]—"आत्मज्ञान स्वतः कोई फलदायक नहीं।"

द्वितीय[4]—"वेदों की सत्ता के अनुसार ज्ञान, कर्म की अपेक्षा गौण है।"

बादरायण के ज्ञान-कांड के बारे में जैमिनि का यह मत है।

जैमिनि और उनके कर्म-कांड पर बादरायण की क्या स्थिति है, इसका उल्लेख बादरायण ने अपने सूत्रों (8 से 17) में किया है।

पहला मत[5] यह है कि जैमिनि ने जिस "आत्मा" का जिक्र किया है, वह सीमित आत्मा है अर्थात् आत्मा और परमात्मा भिन्न हैं और शास्त्रों में "परमात्मा को मान्यता है।"

बादरायण का दूसरा मत है[6] कि वेद आत्मज्ञान और यज्ञ दोनों के पक्षधर हैं।

बादरायण का तीसरा मत है[7] कि यज्ञ वही कर सकते हैं, जिन्हें वेदों में आस्था है। परंतु जो उपनिषदों के अनुगामी हैं, उन पर यह निर्देश लागू नहीं, जैसी कि शंकराचार्य ने व्याख्या की है—

"जिन्होंने वेद पढ़े हैं और जिन्हें कर्म-कांड का ज्ञान है, वही यज्ञ करा सकते हैं। जिन्होंने उपनिषदों से आत्मज्ञान प्राप्त किया है वे नहीं करा सकते। ऐसे ज्ञान की कर्म-कांड से कोई तुलना नहीं हो सकती।"

बादरायण का चौथा[8] मत यह है कि जो ब्रह्मानंद को प्राप्त कर चुके हैं उनके लिए कर्म-कांड वैकल्पिक है। जैसा कि शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है—

"कुछ लोगों ने अपने आप कर्म-कांड को त्याग दिया है। बात यह है कि ज्ञान अर्जित करने के बाद कुछ लोग दूसरों के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु कर्म-कांड करना पसंद करते हैं जबकि कुछ उसको त्याग देते हैं। जो आत्मज्ञानी होते हैं, उनके लिए कर्म-कांड की बाध्यता नहीं होती।"

---

1. देखें, बादरायण सूत्र 4
2. देखें, बादरायण सूत्र 5
3. देखें, बादरायण सूत्र 6
4. देखें, बादरायण सूत्र 7
5. देखें, बादरायण सूत्र 8
6. देखें, बादरायण सूत्र 9
7. देखें, बादरायण सूत्र 12
8. देखें, बादरायण सूत्र 15

उनकी अंतिम[1] और निर्णायक स्थिति इस प्रकार है–

> "आत्मज्ञान तो कर्म-कांड का विरोधी है इसलिए वह कर्म-कांड का सहायक नहीं हो सकता," और इसके समर्थन में वे उन शास्त्रों का सहारा[2] लेते हैं जो संन्यास को चौथा आश्रम मानते हैं और संन्यासियों को कर्म-कांड विहित यज्ञ से मुक्त रखते हैं।

बादरायण के सूत्रों में अनेक ऐसे हैं जिनमें दोनों परंपराओं के विद्वानों के एक-दूसरे के प्रति विचारों का संकेत मिलता है, लेकिन इनमें से एक ही पर्याप्त है, जिसकी अपनी विशेषता है। इस विषय को अगर अनदेखा कर दिया जाए तो स्थिति भिन्न हो जाती है। जैमिनि ने वेदांत को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है। इस लांछन के विरुद्ध बादरायण ने क्या किया? क्या उन्होंने जैमिनि के कर्म-कांड को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर उनकी निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है? नहीं! उन्होंने मात्र अपने वेदांत शास्त्र को उचित ठहराया है। लेकिन उनसे और अधिक अपेक्षा थी। हम अपेक्षा कर सकते थे कि बादरायण भी जैमिनि के कर्म-कांड को मिथ्याधर्म कहेंगे। बादरायण में साहस नहीं है। इसके विपरीत उनका व्यवहार लज्जित होने जैसा है। उन्होंने यह मान लिया है कि जैमिनि का कर्म-कांड शास्त्रों पर आधारित है और शास्त्र प्रामाणिक तथा पवित्र हैं, जिनका खंडन नहीं किया जा सकता।

बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। बादरायण ने तो यह भी कहा कि उपनिषद के दो भाव हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि उपनिषद वैदिक साहित्य का अंग है। उनके अनुसार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, वेदांत अथवा ज्ञानमार्ग वेदों के कर्म-कांड के विरुद्ध नहीं है। दरअसल बादरायण के वेदांत सूत्र का यही आधार है।

बादरायण का यह सिद्धांत उपनिषदों के अभिप्राय और वेद तथा उपनिषदों के आपसी संबंधों के विपरीत है। जब वह अपने सूत्र में कहते हैं कि उपनिषद वेदों के अंग हैं और दोनों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, तो बादरायण का व्यवहार समझ में नहीं आता। लेकिन यह बिलकुल स्पष्ट है कि वे दिग्भ्रमित हैं और अपने विरोधी के समक्ष उनकी स्थिति दयनीय है। वह तो अपने विरोधी के साथ अपनी लड़ाई के शुरू में ही यह मान लेते हैं कि उनके विपक्षी के सिद्धांत उचित हैं। बादरायण ने उन वेदों की अकाट्यता के सवाल पर जैमिनी के आगे समर्पण क्यों कर दिया, उपनिषदों के विरुद्ध थे? उन्होंने उपनिषदों में प्रतिपादित सत्य, संपूर्ण सत्य और विशुद्ध सत्य का समर्थन क्यों नहीं किया? बादरायण ने अपने वेदांत सूत्रों में उपनिषदों के साथ विश्वासघात किया। उन्होंने ऐसा क्यों किया?

---

1. देखें, बादरायण सूत्र 16 *2. देखें, बादरायण सूत्र 17*

दसवीं पहेली

ब्राह्मणों ने हिंदू देवताओं को एक-दूसरे से क्यों लड़ाया?

हिंदुओं का संसार संबंधी धर्म दर्शन त्रिमूर्ति के सिद्धांत पर आधारित है। इस सिद्धांत के अनुसार यह संसार तीन चरणों से होकर गुजरता है। इसका सृजन होता है, पालन होता है और संहार होता है। यह एक अविराम चक्र है। ये तीन कार्य तीन देव—ब्रह्मा, विष्णु और महेश संपन्न करते हैं। ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। विष्णु इसके पालनहार हैं और महेश संहारक। ये देवता त्रिमूर्ति कहे जाते हैं। त्रिमूर्ति के सिद्धांत से परिलक्षित है कि तीनों का पद समान है। वे जो कार्य संपन्न करते हैं, वह अन्योन्याश्रित हैं, उनमें कोई विरोध नहीं। वे परस्पर मित्र हैं, विरोधी नहीं। वे परस्पर सहायक हैं, शत्रु नहीं।

लेकिन इन तीन देवों के कार्यों का उल्लेख करने वाले साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि एक-दूसरे की कथनी और करनी बिलकुल उलट है। ये देव परस्पर मित्र होने के स्थान पर एक-दूसरे के शत्रु हैं, जो श्रेष्ठता और सत्ता के लिए एक-दूसरे से भिड़ जाते हैं। पुराणों के कुछ उदाहरण स्थिति स्पष्ट कर देंगे।

एक समय था जब विष्णु और शिव की अपेक्षा ब्रह्मा परमदेव थे। ब्रह्मा को जगत नियंता बताया गया है अर्थात् प्रथम प्रजापति। वे शिव के भी जनक हैं और विष्णु के भी स्वामी हैं। यदि विष्णु सृष्टि के पालक हैं तो इसका आदेश उन्हें ब्रह्मा से मिला है। ब्रह्मा का परम पद ऐसा पद है कि रुद्र और नारायण तथा कृष्ण और शिव के बीच विवाद पर निर्णय ब्रह्मा करते हैं।

इतना ही सच यह है कि कालांतर में ब्रह्मा का शिव और विष्णु से संघर्ष हुआ और यह बात चकित करने वाली है कि अपने विरोधियों के समक्ष उन्हें अपने पद और अपनी श्रेष्ठता से हाथ धोना पड़ा। विष्णु के साथ उनके संघर्ष के दो उदाहरण हैं—

पहली अवतारों की कथा है। अवतारों के विषय में ब्रह्मा और विष्णु के बीच प्रतिस्पर्धा है। मानवता को आपदाओं से मुक्ति दिलाने संबंधी अवतार का सिद्धांत ब्रह्मा के अवतार से आरंभ होता है। कहा जाता है कि उन्होंने दो अवतार लिए (1) वाराह और (2) मत्स्य। परंतु विष्णु-भक्त यह मानने को तैयार नहीं। उनका कहना है कि ये अवतार

ब्रह्मा ने नहीं बल्कि विष्णु ने लिए थे। उन्हें इन्हीं अवतारों से संतोष नहीं हुआ। उनके अनुसार विष्णु के और भी अवतार थे।

पुराणों में विष्णु के अवतार बताने की होड़ सी लग गई। विभिन्न पुराणों में अवतारों की अलग-अलग सूचियां हैं, जो इस प्रकार हैं–

विष्णु के अवतार

क्र.	हरिवंश के अनुसार	नारायणीय आख्यान के अनुसार	वाराह पुराण के अनुसार	वायु पुराण के अनुसार	भागवत पुराण के अनुसार
1.	वाराह	हंस	कूर्म	नरसिंह	सनत्कुमार
2.	नरसिंह	कूर्म	मत्स्य	वामन	वाराह
3.	वामन	मत्स्य	वाराह	वाराह	
4.	परशुराम	वाराह	नरसिंह	कूर्म	नरनारायण
5.	राम	नरसिंह	वामन	संग्राम	कपिल
6.	कृष्ण	वामन	परशुराम	आदिवक	दत्तात्रेय
7.		परशुराम	राम	त्रिपुरारी	यज्ञ
8.		राम	कृष्ण	अंधकार	ऋषभ
9.		कृष्ण	बुद्ध	ध्वूज	पृथि
10.		कल्कि	कल्कि	वर्त	मत्स्य
11.				हलाहल	कूर्म
12.				कोलाहल	धन्वंतरी
13.					मोहिनी
14.					नरसिंह
15.					वामन
16.					परशुराम
17.					वेद व्यास
18.					नरदेव
19.					राम
20.					कृष्ण
21.					बुद्ध
22.					कल्कि

दूसरी कथा सबसे पहले जन्म लेने से संबंधित है। इसका उल्लेख स्कंद पुराण में है। कथा इस प्रकार है कि एक बार विष्णु देवी के वक्ष स्थल पर सो रहे थे। उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ और यह पुष्प जल की सतह पर आ गया। उसमें ब्रह्मा प्रकट हुए।

उन्होंने जब यह देखा कि इस अनंत में कोई जीव नहीं है तो उन्होंने सोचा सबसे पहले मैं ही उत्पन्न हुआ हूं और इस प्रकार उन्होंने अपने को भावी सृष्टि से पूर्व जन्मा बताया। फिर भी यह निश्चय करने के लिए कि उनकी प्रमुखता को चुनौती कौन दे सकता है, उन्होंने कमल नाल को खींचा तो विष्णु को सोता हुआ पाया। उन्होंने जोर से पूछा "यह कौन है"? विष्णु ने कहा मैं सबसे पहले जन्मा हूं और जब ब्रह्मा ने अपने को पूर्व जन्मा बताया तो दोनों में युद्ध छिड़ गया। तभी महेश प्रकट हुए और बोले, पहले मेरा जन्म हुआ है। परंतु मैं तुम दोनों में से किसी के लिए भी यह स्थिति त्यागने के लिए तैयार हूं यदि तुममें से कोई मेरी शिखा तक अथवा मेरे पांवों के तलवे तक पंहुच जाए। ब्रह्मा तुरन्त तैयार हो गए लेकिन वह थक गए थे। फिर भी वह अपना दावा छोड़ने को तैयार नहीं हुए और महादेव की ओर मुड़कर बोले कि मैंने अपनी बात पूरी कर दी है और आपके माथे का मुकुट देख लिया है और साक्षी के लिए प्रथम जन्मी गाय को बुला लिया। इस दर्प और झूठ पर शिव को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि ब्रह्मा की कहीं पूजा नहीं होगी और गाय का मुख विकृत व अशुद्ध हो जाएगा। फिर विष्णु आए और उन्होंने माना कि वह शिव के चरण नहीं देख पाए। तब शिव ने विष्णु से कहा कि देवों में तुम प्रथम जन्मे हो और तुम्हारा पद सर्वोच्च है। इसके पश्चात शिव ने ब्रह्मा का पांचवां मुख काट डाला और उनका मौन भंग हुआ। उनकी शक्ति और प्रभाव क्षीण हो गए।

इस कथा के अनुसार ब्रह्मा का यह दावा झूठा था कि उनका जन्म सबसे पहले हुआ है। इसके लिए शिव ने उन्हें दंडित किया। विष्णु को प्रथम जन्मा कहलाने का अधिकार मिला। ब्रह्मा के अनुयायियों ने शिव की सहायता से विष्णु द्वारा ब्रह्मा का स्थान छीन लेने पर बदला लेने की ठानी। इसलिए उन्होंने एक और कथा रच डाली, जिसके अनुसार विष्णु ब्रह्मा के नथुनों से सूकर रूप में उत्पन्न हुए और स्वाभाविक रूप से वाराह बन गए—विष्णु के वाराह अवतार का यह बहुत तुच्छ विश्लेषण है।

इसके बाद ब्रह्मा ने अपनी स्थिति बेहतर करने के उद्देश्य से शिव और विष्णु के बीच शत्रुता कराने की कोशिश की। यह कथा रामायण में कही गई है। इसके अनुसार—

जब राजा दशरथ अपने पुत्र राम के ससुर मिथिलापति जनक से विदा लेकर अपने राज्य को लौट रहे थे तो उनके चारों ओर भयंकर स्वर वाले पक्षी चीख उठे और वन्य प्राणी उनकी प्रदक्षिणा करने लगे। यह देखकर दशरथ ने वशिष्ठ से पूछा, यह शकुन शुभ भी है और अशुभ भी है। यह क्या बात है? इससे मेरा हृदय शंका से भर उठा है। तब वशिष्ठ बोले यह परशुराम के आने की चेतावनी है जो तूफान की तरह चले आ रहे हैं, जिससे पृथ्वी कांप उठी है, पेड़-पौधे गिरने लगे हैं और घोर अंधेरा छा गया है। सूरज धूल से ढक गया है। परशुराम सामने से आ रहे हैं, बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं, कंधे पर फरसा और धनुष-बाण है। दशरथ ने उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन किया, जिसे परशुराम ने स्वीकार कर लिया और दशरथ-पुत्र राम की ओर बढ़े। कहा कि राम तुम्हारा बहुत पराक्रम सुना है।

जनक द्वारा दिया गया शिव धनुष भी तुमने तोड़ दिया है। मैं दूसरा धनुष लेकर आया हूं। इसे खींचकर बाण चढ़ाओ। बाण चढ़ाने से तुम्हारे बल का अनुमान लगाकर मैं तुम्हारे साथ द्वंद्व करूंगा। परशुराम का वचन सुनकर दशरथ की हवाइयां उड़ गईं। परंतु उन्होंने परशुराम से दीनभाव से ही बातचीत की। परशुराम ने फिर राम से ही कहा कि जो धनुष तुमने तोड़ा है, वह शिव का धनुष था; किंतु अब जो धनुष मैं लाया हूं वह विष्णु का है। ये दोनों धनुष विश्वकर्मा ने बनाए थे, जिनमें से एक महादेव को दिया गया और दूसरा विष्णु को।"

इसके आगे का वर्णन इस प्रकार है–

> "तब देवताओं ने ब्रह्मा से आग्रह किया कि नीलकंठ (महादेव) और विष्णु के गुणावगुण का पता लगाएं। परम श्रेष्ठ ब्रह्मा ने दोनों के बीच वैमनस्य को जान लिया। इस स्थिति में नीलकंठ और विष्णु के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया। दोनों ही एक-दूसरे को पराजित करना चाहते थे। शिव के विकराल धनुष में शिथिलता आ गई और त्रिनेत्र शिव जाप करने लगे। दोनों महान देवों की देवता समूह, ऋषियों और चारणों ने अर्चना की और वे शांत हो गए। जब देवताओं ने यह देखा कि विष्णु के तेज के आगे शिव धनुष शिथिल पड़ गया, तो देवताओं ने विष्णु की श्रेष्ठता मान ली।"

इस प्रकार ब्रह्मा ने महादेव द्वारा अपने प्रति लिए गए अन्याय का बदला ले लिया। इस प्रपंच से भी ब्रह्मा को विष्णु पर श्रेष्ठता नहीं मिल पाई। ब्रह्मा का इतना पराभव हुआ कि जो ब्रह्मा कभी विष्णु को आदेश देते थे, वही विष्णु अब ब्रह्मा के स्रष्टा बन गए।

शिव के साथ हुए श्रेष्ठता-संघर्ष में भी ब्रह्मा की वैसी ही गत बनी, इस संदर्भ में भी स्थिति ठीक विपरीत हो गई। कहां तो शिव के स्रष्टा ब्रह्मा थे और कहां अब शिव ही ब्रह्मा के स्रष्टा बन गए। ब्रह्मा मुक्ति[1] देने के योग्य नहीं रहे। वह देवता, जो मोक्ष प्रदान कर सकते थे, शिव थे और ब्रह्मा की हैसियत शिव और उनके लिंग की एक साधारण भक्त की तरह पूजा करने वाले की हो गई, वह शिव के सेवक हो गए और उनके सारथी[2] बने।

अंत में हुआ यह कि अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार के आरोप के कारण ब्रह्मा पूजनीय नहीं रहे। *भागवत पुराण* में इस लांछन का उल्लेख इस प्रकार है–

> "हे क्षत्रिय! हमने सुना है कि स्वयंभू के मन में अपनी कमनीय और मोहक पुत्री वाच के प्रति कामुकता उत्पन्न हुई, जबकि उसके मन में उनके प्रति कामभाव नहीं था। अपने पिता के इस कुकर्म पर उनके पुत्रों ने ऋषियों और मरीचि के नेतृत्व में उन्हें फटकारा–'तुमने ऐसा कुकर्म किया है, जो तुमसे पहले किसी ने नहीं किया, न तुम्हारे बाद कोई ऐसा करेगा। क्या तुम्हें विधाता होते हुए अपनी पुत्री से ही

---

1. *महाभारत, मूइर द्वारा उद्धृत, खंड 4, पृ. 192*
2. *महाभारत, मूइर द्वारा उद्धृत, खंड 4, पृ. 199*

विषयभोग करना था? क्या तुम अपने उन्माद को रोक नहीं सकते थे? अरे विश्व के गुरु! तुम्हारे जैसे गौरवशाली व्यक्ति के लिए यह प्रशंसनीय नहीं है। जिनके कार्यों की मर्यादा के कारण व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है और जिस (विष्णु) की महिमा की दीप्ति से यह ब्रह्मांड प्रकाशित होता है, लौ उसी से फूटती है, उसे धर्म परायणता को बनाए रखना चाहिए।' अपने पुत्रों के इन वचनों को सुनकर प्रजापति शर्म से गड़ गए और अपना शरीर त्याग कर दिया। उसके भयानक अवशेष उस क्षेत्र में फैल गए और वही धुंध भरे अंधकार के नाम से विख्यात हुआ।"

ब्रह्मा के विरुद्ध ऐसा अपकर्ष एवं अपमानजनक प्रहार होने से वह चारों खाने चित हो गए। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारत से उनकी उपासना लुप्त हो गई और वह त्रिमूर्ति के एक नगण्य और नाममात्र के सदस्य बनकर रह गए।

ब्रह्मा के मैदान से बाहर होने पर रह गए शिव और विष्णु। ये दोनों भी कभी चैन से नहीं बैठ पाए। दोनों के बीच होड़ और खींचतान जारी रही।

शिव और विष्णु के उपासकों में पुराणों के माध्यम से एक-दूसरे के विरुद्ध जो प्रचार होता रहा, उसे इन उदाहरणों में देखा जा सकता है।

विष्णु से वैदिक देवता सूर्य का और शिव से अग्नि का संबंध जोड़ते हैं। इसका आशय यह प्रकट करना था कि यदि विष्णु की उत्पत्ति वैदिक है तो शिव का उद्गम भी वैदिक है। जन्म के आधार पर कोई भी एक-दूसरे से कमतर नहीं है।

शिव तो विष्णु से बड़े हों और विष्णु भी शिव से कम न हों। विष्णु के सहस्र[1] नाम हैं तो शिव के भी सहस्र नाम होने चाहिएं और ऐसा ही हुआ[2]।

विष्णु के चार चिह्न हैं। इसलिए शिव के भी होने चाहिएं। वे हैं—1. जटा से बहती गंगा, 2. चन्द्रचूड़, 3. नाग और 4. जटाजूट। एक मात्र क्षेत्र है जहां शिव ने विष्णु की बराबरी नहीं की, वह था अवतारों का क्षेत्र। इसका कारण यह नहीं है कि उनकी इच्छा बराबरी करने की नहीं थी। लेकिन दार्शनिक दृष्टि से शिव के मार्ग में अवतार एक अवरोध था। शिव और विष्णु के उपासकों में परमानंद की अवधारणा के संबंध में मौलिक मतभेद हैं। जैसा कि मान्यवर अय्यर ने स्पष्ट किया है—

"शैवों की दृष्टि में प्राप्य लक्ष्य कायिक और मानसिक बंधनों से मुक्ति और उनका पूर्ण उच्छेद है। इसलिए वे शिव को अक्षय मानते हैं अर्थात् जो कभी नष्ट नहीं होता अपितु संपूर्ण जगत का संहार करता है। इसी कारण रुद्र को संहारक कहा जाता है। किसी व्यक्ति के आध्यात्मिक ज्ञान की चरमसीमा पर परम शिव से उसका भेद मिट जाता है, वह अपने भौतिक शरीर, मन, सुख और दुख तथा कर्तव्य से ज्ञानातीत हो जाता है। वह शिव में सायुज्य (लीन) हो जाता है। इस स्थिति

1. देखें विष्णुसहस्रनाम।

2. पद्मपुराण में उल्लिखित है।

में वह स्वयं में और शिव में भेद करना भूल जाता है। जब तक वह इस स्थिति को नहीं प्राप्त करता तब तक वह अपूर्ण रहता है, चाहे वह कितना ही शुद्ध या कितना ही योग्य क्यों न हो। सायुज्य तक पहुंचने हेतु जो भी पात्र हैं, वे मात्र सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य का गौण पद ही पाते हैं। यही कारण है कि अवतार का सिद्धांत शैवों को आकर्षित नहीं कर पाया। अवतार के रूप में भगवान सीमित हो जाता है अर्थात् ऐसा व्यक्ति जो कदाचित अपने को तो बंधन मुक्त कर लेता है परंतु मुक्त को मुक्त नहीं कर सकता। वैष्णवों का मत इससे अलग है। परमपद के संबंध में उनकी अपनी चेतना है। वैष्णव उच्चतम स्थिति को जानता है और यह भी जानता है कि वहां पहुंचना चाहिए; परंतु वह आराध्य में पूरी तरह लीन होकर अपने आपको पूरी तरह खो देने (=सायुज्य) को अच्छा नहीं समझता। वह कहता है कि उच्चतम स्थिति में पहुंचकर परमात्मा से मिलाप तो होना चाहिए; परंतु उसे अपना आप खो नहीं देना चाहिए, बल्कि उसे उस मिलाप का एहसास होना चाहिए। उसे ब्रह्मांड के साथ संयुक्त होना चाहिए, परंतु इसे उसी अविनाशी परमात्मा का एक पहलू समझना होगा। इसे ब्रह्मांड की अक्षयता के रूप में सत्य का एक अन्य पक्ष मानना चाहिए। दूसरे शब्दों में वह ब्रह्मांड के क्षय में आस्था नहीं रखते क्योंकि उसका परम पुरुष से भेद-विभेद नहीं है। बल्कि वे ब्रह्मांड के पालन के पक्ष में हैं जो प्रकट पुरुष की पहचान से न कम है और न ही ज्यादा। यही कारण है कि विष्णु को पालनहार कहा गया है। अंततोगत्वा यही भेद है जिससे सत्य का दर्शन होता है। शैव विश्व को दुख और पीड़ा का पाश मानते हैं (इससे सभी को पशु बनना पड़ता है) जिसको तोड़ा जाना चाहिए और उसका संहार होना चाहिए। वैष्णव इसे पुरुष की महानता का प्रमाण मानते हैं और इसके पालन के पक्ष में हैं। शैव निराशावाद अथवा दुखवाद के कारण धर्म-सूत्रों के प्रति आस्थावान नहीं हैं। वे अर्थशास्त्र और अन्य ग्रंथों को भी नहीं मानते हैं जो संसार के संचालन और कल्याण के लिए बना दिए गए हैं। वे पुष्टिमार्गी नहीं हैं। वे नियमों और परंपराओं की अवज्ञा करते हैं। किसी परम शैव के लिए जाति-बंधन दंडनीय है। लेकिन वह इन धारणाओं को उन व्यक्तियों में सहन कर सकता है जिन्होंने अभी विकास की उच्च अवस्था को प्राप्त नहीं किया है। वह समाज के उन्हीं लोगों का सम्मान करते हैं और उनके विस्तार के पक्ष में हैं जो चाहे किसी भी जाति के हों, परंतु उनका शिव के साथ सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सायुज्य हों। दूसरी ओर वैष्णवों की रुचि सभी नियमों के पालन में है जिससे संसार का कल्याण होता हो। यदि धर्म का नाश होता है तो संसार का भी नाश होगा और संसार का नाश नहीं होना चाहिए क्योंकि यह अंतर्यामी पुरुष की महिमा का लक्षण है। यह उनका कर्म है कि धर्म की रक्षा हो। यदि स्थिति नियंत्रण से बाहर हो जाती है तो विष्णु स्वयं ठीक करते हैं। इसलिए वह संसार में अवतार लेते हैं। परंतु जब विष्णु धरती पर आते हैं तो दुष्टों का विनाश करते हैं। इसलिए हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि जो धर्म का नाश करता है उसे विष्णु का कोप-भाजन बनना पड़ता है। इसी प्रकार शिवभक्तों के लिए जो विधान लिया गया है, उसमें जाति-बंधन अप्रासंगिक है और भक्त के सामान्य कर्तव्यों का वर्णन है। उनके समुचित पालन से भगवान के दर्शन होंगे और अंततोगत्वा, वह शिव के साथ एकाकार होगा। दूसरे इन्हें अपवित्र मानते थे क्योंकि यह जाति का उन्मूलक है और जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनका उल्लेख पुरातनपंथी शास्त्रों में नहीं है।"

शिव की महिमा में किए गए प्रचार के समान ही विष्णुभक्तों ने उसके खंडन के लिए प्रचार-तंत्र अपनाया। पवित्र नदी गंगा[1] के अवतरण का प्रसंग एक उदाहरण है। शिवभक्त उसकी उत्पत्ति शिव की जटाओं से मानते हैं। परंतु वैष्णव इसे मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने एक और कथा रच डाली। वैष्णवों के अनुसार पतितपावनी गंगा बैकुंठ (विष्णु के निवास) से निकलती है। उसका उद्‌गम विष्णु के चरणों से है और कैलाश पर आकर वह शिव के मस्तक पर उतरती है। इस कथा के दो निष्कर्ष हैं। पहला यह कि गंगा का उद्‌गम विष्णु के चरणों से है, शिव की जटाओं से नहीं। फिर शिव का पद विष्णु से नीचा है क्योंकि उनके मस्तक पर विष्णु के चरणों से गंगा की धार गिरती है।

दूसरा उदाहरण देवों और असुरों द्वारा सागर-मंथन का है। उन्होंने मंदराचल पर्वत को मथानी और शेषनाग को रस्सी बनाया। विष्णु ने कूर्म अवतार लिया, फिर पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया और मंथन के समय उसके स्पंदन को नियंत्रित किया।

यह कथा विष्णु की महिमा बढ़ाने के लिए रची गई है। शिव का स्थान इसमें गौण है। इसके अनुसार समुद्र-तल से चौदह रत्न निकले। इनमें से एक था विष। अगर इस विष का पान न किया जाता, वह सारे संसार को नष्ट कर सकता था। शिव ही उसे पीने के लिए तैयार हुए। इससे यह पता चलता है कि विष्णु ने दोनों विरोधी समूहों, देवों और असुरों, को सागर-मंथन की अनुमति देकर संसार के विनाश का द्वार खोल दिया था और यह एक अविवेकपूर्ण कार्य था। शिव की महिमा बताई गई है कि उन्होंने विषपान करके विष्णु की मूर्खता से होने वाले अनिष्ट से संसार को बचा लिया।

तीसरा उदाहरण भी यह दर्शाता है कि विष्णु मूर्ख थे और शिव ने ही अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता और पराक्रम से विष्णु को उनकी मूर्खताओं से बचाया। यह कथा अक्रूरासुर[2] की है। अक्रूर भालू के मुख वाला एक राक्षस था। इसके बावजूद वह नियमित रूप से वेद-पाठ और भक्तिकर्म करता था। विष्णु उससे अत्यंत प्रसन्न थे और उन्होंने उसे मन चाहे वरदान का वचन दे डाला। अक्रूरासुर ने वर मांगा कि त्रिलोक में उपस्थित कोई प्राणी उसके प्राण नहीं ले सके। विष्णु मान गए। परंतु वह इतना ढीठ हो गया कि जब उसने देवताओं को सताया तो उन्होंने उसके आगे समर्पण कर दिया और वह संसार का शासक बन गया। असुर के अत्याचारों से लाचार विष्णु काली के तट पर चिंतित बैठे थे। उनका रोष स्पष्ट दिख रहा था। उनकी आंखों के सामने इस आकार का जीव प्रकट हुआ, जो पहले त्रिलोक में विद्यमान नहीं था। वह संहारक रूप में महादेव थे, जिन्होंने क्षण भर में विष्णु को चिंतामुक्त कर दिया।

इसके जवाब में भस्मासुर की कथा प्रचलित हुई कि शिव औघड़ (मूर्ख) हैं और विष्णु ने उनकी करतूत से उन्हें बचाया। भस्मासुर ने शिव को एक वरदान पाने के लिए प्रसन्न कर लिया। वरदान

---

1. *मूर, हिंदू पेनथियन, पृ. 40-41*
2. *वह कहानी विष्णु आगम में कही जाती है और मूर की "हिंदू पेनथियन" में उद्धृत है, पृ. 19-20*

यह था कि भस्मासुर जिसके भी सिर पर हाथ रखेगा, वह भस्म हो जाएगा। शिव ने वरदान दे दिया। भस्मासुर ने शिव के वरदान से उन्हें ही भस्म करने की ठानी। शिव डरकर भागे और सहायता के लिए विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया और भस्मासुर के पास गए। वह उन्हें देखकर आसक्त हो गया। मोहिनी रूपी विष्णु ने कहा कि वह एक शर्त पर उसकी हो जाएगी कि जैसे-जैसे वह करे वैसे ही भस्मासुर भी करे। विष्णु ने इस प्रकार चतुराई से भस्मासुर का हाथ उसके सिर पर रखवा दिया। परिणाम यह निकला कि भस्मासुर मर गया और विष्णु को यह श्रेय मिला कि उन्होंने शिव को उनकी मूर्खता के परिणाम से बचा लिया।

"क्या ईश (महादेव) किसी अन्य दृष्टि से भी कार्यों का कारण है? हमने यह नहीं सुना है कि किसी व्यक्ति के लिंग की दूसरे व्यक्ति और देवता पूजा करें। आप बताएं कि क्या आपने कहीं सुना है कि शिव के सिवाय किसी अन्य के लिंग की पूजा की जाती है अथवा पहले भी कभी देवताओं ने की है? जिसके लिंग की ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र देवताओं सहित निरंतर पूजा करते हैं वह तो सर्वोच्च हुआ। बच्चों में न तो कमल-चिह्न (ब्रह्मा का), न ही चक्र (विष्णु का) और न ही वज्र (इंद्र का) होता है बल्कि उनमें स्त्री-पुरुष के अंग होते हैं। इस प्रकार सारी संतानों का दाता महेश्वर है। सभी नारियां देवी से उत्पन्न हैं, उनमें नारी के अंग हैं और पुरुषों में शिवलिंग विद्यमान रहता है। चराचर में एक भी आदमी यदि यह कहता है कि पुरुषों का ईश्वर (=महादेव) के सिवा कोई और कारण है या कहता है कि तीनों लोकों में देवी (उमा) के निशान (योनि) के बिना कोई स्त्री है, तो उस मूर्ख को दुनिया से निकाल फेंको। सब जान लीजिए जो पुरुष हैं वे ईश हैं जो नारियां हैं, वे उमा हैं। इस प्रकार सारा चराचर विश्व इन दोनों में से निकला है।"

यूनानी दार्शनिक जैनोफेनीज इस बात पर बल देते हैं कि बहुदेववाद अमान्य है और इसमें विरोधाभास है; इसलिए एकेश्वरवाद ही सत्य है। दार्शनिक दृष्टि से देखें तो जैनोफेनीज का विचार सही हो सकता है। परंतु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से दोनों स्वाभाविक हैं। जहां एक ही संप्रदाय व समुदय का हो वहां एकेश्वरवाद स्वाभाविक है। परंतु जहां अनेक समुदायों व संप्रदायों के मिलन से बना हो, वहां बहुदेववाद स्वाभाविक और अनिवार्य है; क्योंकि प्रत्येक प्राचीन संप्रदाय में न केवल भिन्न व्यक्ति होते हैं बल्कि उनके देवता भी विविध होते थे। विभिन्न समुदायों का विलय और समुच्चय केवल उसी सूरत में संभव था कि उनके ईश्वर को दूसरे भी स्वीकार करते। इस प्रकार बहुदेववाद पनपा।

निष्कर्ष निकलता है कि हिंदुओं में अनेक देवताओं का अस्तित्व ठीक ही है क्योंकि हिंदू समाज अनेक कबीलों-संप्रदायों का जमघट है, जिनके अलग-अलग देवता थे। उल्लेखनीय है कि ये देवता आपस में लड़ते-झगड़ते और एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप लगाते रहे, जो आम मनुष्यों के लिए भी लज्जा और अपमान की बात है। इसका स्पष्टीकरण होना चाहिए।

ग्यारहवीं पहेली

ब्राह्मणों ने देवताओं का उत्थान-पतन क्यों किया?

हिंदुओं को मूर्तिपूजा का दोषी ठहराया जाता है। लेकिन मूर्तियों की पूजा करना गलत नहीं है। मूर्ति बनाना और देवताओं के चित्र बनाना समान है और अगर चित्र बनाने पर कोई आपत्ति नहीं है तो मूर्ति बनाने पर क्या आपत्ति हो सकती है? हिंदुओं की मूर्तिपूजा पर वास्तविक आपत्ति यह है कि यह मात्र चित्रकारी नहीं है, मूर्ति की मात्र रचना नहीं है। यह सब उससे अधिक है। हिंदू मूर्ति प्राणवान बताई जाती है और वह वही सब कार्य करती है, जो मनुष्य करता है। प्राणप्रतिष्ठा से उनमें जान डाल दी जाती है। बौद्ध भी मूर्तिपूजक हैं। परंतु जिस मूर्ति अथवा चित्र की वे पूजा करते हैं, वे मात्र प्रतीक हैं। वे मूर्ति में प्राण अथवा आत्मा न मानते हैं और न प्राणप्रतिष्ठा करते हैं। ब्राह्मणों ने हिंदू देवी-देवताओं को जीवंत घोषित क्यों किया? इस सवाल का जवाब मिलना चाहिए। लेकिन इस अध्याय में इसकी गुंजाइश नहीं है, क्योंकि यहां इस पर विचार नहीं करेंगे।

हिंदुओं पर जो दूसरा आरोप लगाया जाता है, वह है बहुदेववादी होने का, अर्थात् वे अनेक देवों को पूजते हैं। केवल हिंदुओं पर ही यह आरोप नहीं लगता। दूसरे समाजों में भी बहुदेववाद का प्रचलन है। हम केवल दो को गिनाते हैं। रोमन और यूनानी भी मूलतः बहुदेववादी हैं। वे भी अनेक देवों को मानते हैं। इसलिए इस आरोप में कोई दम नहीं है।

हिंदुओं पर जो बड़ा आरोप लगाया जा सकता है, अधिकांश लोग उससे परिचित नहीं हैं। वह आरोप यह है कि हिंदू अपने देवों की उपासना में अटल विश्वासी नहीं हैं। उनमें एक देवता के प्रति आस्था अथवा श्रद्धा का अभाव है। हिंदू देवताओं के इतिहास में यह आम है कि कुछ देवताओं की कभी उपासना होती रही और आगे जाकर बंद हो गई और उन देवताओं को कचरे में डाल दिया गया। फिर बिलकुल ही नए देवताओं की मान्यता हो गई और पूर्ण भक्ति-भाव से उनकी उपासना होने लगी। फिर ये देव भी अप्रासंगिक हो गए। यह चक्र चलता आ रहा है। इस तरह हिंदू देवों का हमेशा उत्थान और पतन चलता रहता है। यह बात विश्व के किसी अन्य संप्रदाय में दिखाई नहीं देती।

इस कथन को बिना आपत्ति के स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि हिंदू अपने देवताओं के विषय में इतने हल्के विचार रखते थे। कुछ उदाहरण देना आवश्यक है। सुयोग से उनकी भरमार है। आजकल हिंदुओं के चार देवता हैं। (1) शिव,

(2) विष्णु, (3) राम, और (4) कृष्ण। सवाल यह है कि क्या हिंदुओं के बस यही देवता हैं, जिनकी आदिकाल से पूजा होती आई है?

हिंदू देवकुल में देवों की संख्या सर्वाधिक है। संख्या की दृष्टि से संसार का कोई धर्म इस देवकुल की बराबरी नहीं कर सकता। ऋग्वेद-काल में देवताओं की विशाल संख्या थी। दो स्थानों पर ऋग्वेद[1] में कहा गया है कि 3,309 (तीन हजार तीन सौ नौ) देवता हैं (पता नहीं किस कारण से यह संख्या घटकर तैंतीस[2] रह गई)। यह एक उल्लेखनीय कमी है। इसके बावजूद तैंतीस देवताओं का हिंदू देवकुल सबसे विशाल है।

शतपथ ब्राह्मण[3] में तैंतीस देवों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य और पृथ्वी तथा स्वर्ग।

उनकी संख्या से बढ़कर सवाल उनके आपसी संबंधों का है। क्या पद की दृष्टि से उनमें कोई भेद था? ऋग्वेद में एक मंत्र है कि आदर और स्थान की दृष्टि से इनके दो वर्ग हैं, एक बड़ा और छोटा तथा दूसरा नवीन और प्राचीन।

यह विचार ऋग्वेद की प्राचीन मान्यता से भिन्न लगता है। पुराना नियम इस प्रकार है—

"हे देवताओ! तुम में से न कोई छोटा है, न नवीन, तुम सब महान हो"।

प्रोफेसर मैक्स मूलर का भी यही निष्कर्ष है—

> "जब इन देवों का आह्वान किया गया, उनकी शक्ति दूसरे से सीमित नहीं समझी गई थी और न वे एक-दूसरे से पद में ही श्रेष्ठ अथवा हीन थे। उपासक की दृष्टि में हर देव अन्य देवों के समान था। उसमें एक समय यथार्थ देवत्व समझा गया। चाहे कितनी भी सीमाएं हों, हमारी दृष्टि में बहुदेववाद प्रत्येक देवता में अपरिहार्य होना चाहिए। प्रत्येक देव में अन्य देवों की विशेषता होनी चाहिए। परंतु उपासक की दृष्टि से अन्य देव लुप्त हो जाते हैं और उस समय केवल वही रह जाता है जो उपासक का मनोरथ पूरा करे।"
>
> "देवों में कोई ऐसा देव नहीं है जो अन्य के अधीन हो, जो दूसरों का दास हो।"

बस एक समय था जब यही सत्य था। देवताओं के प्रति प्राचीन दृष्टिकोण बदला। अनेक वेद-मंत्रों में ऐसा उल्लेख है जिनमें कुछ देवों को सर्वोच्च और सर्वशक्तिमान समझा जाने लगा था।

द्वितीय मंडल के प्रथम मंत्र में अग्नि को विश्व-नियंता, परमात्मा, मेधावी राजा, पिता, भ्राता, पुत्र और मानव-मित्र बताया गया है; यही नहीं उसे अन्य देवों की शक्तियां और नाम भी विशेष रूप से प्रदान किए गए हैं।

---

1. *ऋग्वेद 3, 99:10 52:6, वाज सं 33.7. मूइर खंड 5, पृष्ठ 12*
2. *ऋग्वेद 1, 139:2,3:6,9:8,28.1:8,30. 2:8,35.3 मूइर 5. पृष्ठ 10*
3. *एस.बी.ई. खंड 4:5, 7,2; मूइर 5, पृष्ठ 2*

फिर अग्नि के ऊपर भी दूसरे देवता का स्थान हो गया। वह है इंद्र। इंद्र को वेद-मंत्रों और साथ-साथ ब्राह्मणों में सर्वोच्च शक्तिशाली देवता कहा गया और दसवें मंडल में कहा गया : **विश्वस्माद् इंद्र उत्तरः** (इंद्र सर्वोच्च है)।

फिर तीसरा देवता शिखर पर पहुंचा। वह सोम है। सोम के विषय में कहा गया है कि वह जन्मजात महान था और उसने सभी को पराजित किया। वह विश्व का एकछत्र राजा कहलाता था। वह मनुष्यों के जीवन का विस्तार कर सकता था। एक मंत्र में कहा गया है कि वह स्वर्ग और धरती, अग्नि, सूर्य, इंद्र और विष्णु का स्रष्टा था। फिर सोम को भी भुला दिया गया और चौथे देवता की उपासना होने लगी। वह वरुण था। सभी देवताओं में सर्वोच्च था। दैवी और परमशक्ति का गुणगान करने के लिए इससे अधिक श्रेष्ठ मानव अभिव्यक्ति और क्या हो सकती थी जो वैदिक कवि ने वरुण के लिए की—"तू स्वर्ग और मृत्युलोक का स्वामी है।" या एक अन्य मंत्र में कहा गया है (27.10) "तू सबका स्वामी है, उनका जो देवता हैं और उनका भी जो मनुष्य हैं।"

इससे स्पष्ट है कि 33 वैदिक देवों में चार देवता—अग्नि, इंद्र, सोम और वरुण प्रधान थे। दूसरों का देवत्व भी विद्यमान रहा। परंतु इन चार का स्थान सर्वोच्च था। आगे चलकर विभिन्न देवों की तुलना में शतपथ ब्राह्मण के काल में एक और बदलाव हुआ। एक नया देवता उभरा। सोम और वरुण के नाम प्रधान देवताओं में से गायब हो गए जबकि अग्नि और इंद्र मौजूद रहे। एक और देवता का नाम सामने आया। वह था सूर्य। परिणाम यह हुआ कि अग्नि, इंद्र, सोम और वरुण के स्थान पर प्रमुख देवता हो गए अग्नि, इंद्र, और सूर्य। यह शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट है, जिसमें कहा गया है—

> "मूलतः सभी देव समान थे। उन सबके समान होने से, सबके विमल होने से तीनों की चाह थी—"हम श्रेष्ठ बनें," वे हैं अग्नि, इंद्र और सूर्य।
>
> 3. "मूलतः अग्नि की शिखाएं ऐसी नहीं थीं जैसी वर्तमान में हैं। उन्होंने इच्छा की कि ये शिखाएं मुझमें हों" उन्होंने इसको देखा, उसे ग्रहण किया और तब से उनकी शिखाएं उनमें समाहित हो गईं।
>
> 4. "मूलतः इंद्र में इतना बल नहीं था आदि (जैसा कि अनुच्छेद 3 में है)
>
> 5. "मूलतः सूर्य में उतनी कांति नहीं थी आदि"

कब तक ये तीन देव सर्वोच्च बने रहे, यह बताना कठिन है। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि आगे चलकर यह स्थिति बदल गई। यह चुल्ल निद्देश के प्रसंग से स्पष्ट है। चुल्ल निद्देश बौद्ध-धम्म की रचना है। इसका अनुमानित रचनाकाल है.....

चुल्ल निद्देश में उन संप्रदायों की सूची दी गई है जो उस समय भारत में प्रचलित थे। इनका पंथ और उपासना के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। वे इस प्रकार हैं—

1. मत (Creed)

क्र.	संप्रदाय का नाम	
1.	आजीवकश्रावक[1]	आजीवक[2]
2.	निंगठ श्रावक	निगंठ[3]
3.	जटिल श्रावक	जटिल[4]
4.	परिव्राजक श्रावक	परिव्राजक[5]
5.	अवरुद्ध श्रावक	अवरुद्धक।

2. पंथ (Cult)

क्र.	संप्रदाय का नाम	पूज्यदेव
1.	हस्ति वृत्तिका[6] (व्रती)	हस्ति[7]
2.	अश्व वृत्तिका	अश्व[8]
3.	गो वृत्तिका	गो[9]
4.	कुकुर वृत्तिका	कुक्कुर[10]
5.	काक वृत्तिका	काक[11]
6.	वासुदेव वृत्तिका	वासुदेव
7.	बलदेव वृत्तिका	बलदेव
8.	पूर्णभद्र वृत्तिका	पूर्णभद्र
9.	मणिभद्र वृत्तिका	मणिभद्र
10.	अग्नि वृत्तिका	अग्नि
11.	नाग वृत्तिका	नाग
12.	सुपर्ण वृत्तिका	सुपर्ण
13.	यक्ष वृत्तिका	यक्ष

1. *श्रावक का अर्थ है शिष्य।*
2. *जीविकोपार्जन विषयक विशेष नियमों का पालन करने वाला भिक्खु।*
3. *हर प्रकार के बंधन-बाधाओं से मुक्त भिक्खु।*
4. *सिर की जटाओं को बांधने वाले भिक्खु।*
5. *समाज से विरक्त भिक्खु।*
6. *वृत्तिका का अर्थ श्रद्धालु भक्त है।*
7. *हाथी।*
8. *घोड़ा।*
9. *गाय।*
10. *श्वान।*
11. *कौआ।*

14.	असुर वृत्तिका	असुर
15.	गंधर्व वृत्तिका	गंधर्व
16.	महाराज वृत्तिका	महाराज
17.	चन्द्र वृत्तिका	चन्द्र
18.	सूर्य वृत्तिका	सूर्य
19.	इंद्र वृत्तिका	इंद्र
20.	ब्रह्मा वृत्तिका	ब्रह्मा
21.	देव वृत्तिका	देव
22.	दिशा वृत्तिका	दिशा

शतपथ ब्राह्मण के समय से चुल्ल निद्देश तक सुस्थापित तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार थी—

1. पहले, यह कि चुल्ल निद्देश के समय अग्नि, सूर्य और इंद्र की उपासना जारी थी। 2. दूसरे यह कि अग्नि, सूर्य और इंद्र की उपासना हालांकि जारी थी फिर भी उनकी श्रेष्ठता समाप्त हो चुकी थी, बहरहाल, काफी अन्य उपासनाएं होने लगीं और लोग उनकी ओर आकर्षित हुए। 3. तीसरे, नई पूजा परंपराओं में दो काफी बाद में बहुत प्रमुख हुईं, वह हैं वासुदेव कृष्ण और ब्रह्मा की परंपराएं। 4. चौथे, विष्णु, शिव और राम की उपासनाएं प्रचलन में नहीं आई थीं।

चुल्ल निद्देश के बाद अब स्थिति क्या है? इस समय भी तीन ही परंपराएं हैं। पहले, अग्नि, इंद्र, ब्रह्मा की पूजा समाप्त हुई। दूसरे कृष्ण की स्थिति पहले जैसी रही; तीसरे विष्णु, शिव और राम की नई पूजा-परंपराएं चुल्ल निद्देश के समय के बाद से शुरू हुईं। इससे तीन सवाल उठते हैं—पहला तो यह कि अग्नि, इंद्र, ब्रह्मा और सूर्य की पुरानी पूजा-परंपराएं क्यों समाप्त हुईं? इन देवों की पूजा क्यों बंद कर दी गई? दूसरा यह कि कृष्ण, राम, शिव और विष्णु की नई उपासना पद्धतियां किन परिस्थितियों में शुरू हुईं? तीसरा यह कि इन नए देवताओं कृष्ण, राम, शिव और विष्णु की सापेक्ष स्थिति क्या है?

पहले सवाल का कोई जवाब नहीं मिलता। ब्राह्मण साहित्य में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता कि ब्राह्मणों ने अग्नि, इंद्र, सूर्य और ब्रह्मा की उपासना क्यों बंद कर दी। इसका तो कुछ स्पष्टीकरण है भी कि ब्रह्मा की उपासना क्यों बंद हुई। इसका कारण ब्राह्मणों के साहित्य में ब्रह्मा के माथे पर लगाया गया कलंक है। लांछन है कि उन्होंने अपनी पुत्री के साथ बलात्कार किया, इसलिए उन्हें पूजा और भक्ति का पात्र नहीं रहने दिया गया। इस कलंक में चाहे कितनी भी सच्चाई क्यों न रही हो परंतु दो कारणों से इसे ब्रह्मा की उपासना छोड़ देने का पर्याप्त आधार नहीं माना जा सकता। पहले तो यह कि उस समय ऐसा आचरण कोई अनहोनी बात नहीं थी। दूसरा कारण यह है कि कृष्ण ने तो ब्रह्मा से भी बड़ी अनैतिकताएं कीं, लेकिन उन्होंने उनकी उपासना नहीं छोड़ी।

चलिए, ब्रह्मा की पूजा के निषेध का तो अनुमान लगाया जा सकता है, किंतु अन्य देवों की उपासना बंद हो जाने का कोई कारण ही नहीं मिलता। अग्नि, इंद्र, सूर्य और ब्रह्मा की पूजा अप्रचलित होना इस प्रकार एक रहस्य है। यहां इस रहस्य की गुत्थी को सुलझाने का अवसर नहीं है। इतना कहना ही काफी है कि हिंदुओं के देवताओं का देवत्व छिन जाना एक अनहोनी बात है।

दूसरा सवाल भी रहस्य के आवरण में है। नए देवों—कृष्ण, शिव और राम की उपासना का महत्त्व ब्राह्मणों के साहित्य में लबालब भरा पड़ा है। लेकिन उनके साहित्य में नए देवों के उदय का कोई लेखा-जोखा नहीं मिलता। यह रहस्य ही है कि ये नए देवता कहां से आ गए? उस समय तो रहस्य और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि इनमें से कुछ तो सचमुच वेदविरोधी हैं।

हम शिव की बात लेते हैं।

शिव मूल रूप से वेदविरोधी देवता थे, यह बिलकुल स्पष्ट है। *भागवत पुराण* में दो प्रसंग हैं और *महाभारत* में भी, जो इस विषय पर प्रकाश डालते हैं। पहले प्रसंग से पता चलता है कि उनमें और उनके श्वसुर दक्ष में कैसे दुश्मनी हुई? ऐसा लगता है कि प्रजापति के यज्ञ में देवता और ऋषि एकत्र हुए। दक्ष के आने पर ब्रह्मा और शिव को छोड़कर सभी लोग उनके अभिवादन में खड़े हो गए। दक्ष ब्रह्मा को प्रणाम करके उनके कहने पर बैठ गए, परंतु वह शिव के व्यवहार पर क्षुब्ध थे। उन्होंने शिव[1] को इस प्रकार संबोधित किया—

> "शिव को पहले बैठा देखकर दक्ष सम्मान का लोभ संवरण न कर सके और उन पर इस प्रकार तिरछी नजर डाली जैसे उन्हें खा ही जाएंगे। फिर बोले "हे ब्राह्मणो, ऋषियो, देवताओ सहित अग्नि सुनो! मैं अनजाने में नहीं, न भावावेश ही में आकर यह बता रहा हूं कि एक गुणी व्यक्ति के क्या लक्षण हैं। परंतु यह निर्लज्ज शिव विश्वनियंता की अवमानना करता है। यह कितना हठधर्मी है। इसने शिष्टाचार का उल्लंघन किया है। इसने गुणवान व्यक्तियों की भांति मेरे शिष्य की स्थिति प्राप्त कर ली। ब्राह्मणों और अग्नि की साक्षी में इसने मेरी सावित्री जैसी पुत्री का पाणिग्रहण किया। इस वानर नयन ने मेरी मृगनयनी पुत्री को प्राप्त किया। उसने मेरे अभिवादन में एक शब्द भी नहीं बोला जबकि इसे अभिवादन के लिए उठना चाहिए था। मैंने अनिच्छापूर्वक ही सही, अपनी पुत्री इस क्षुद्र और दंभी को सौंप दी, जिसने कुसंस्कारों की सारी सीमाएं तोड़ रखी हैं। वैसे यह शूद्रों को वेद-मंत्र सुनाता है। यह श्मशानों में घूमता है। भूत-पिशाचों के बीच रहता है। पागलों जैसा नंगा, बाल बिखेरे, हंसता-रोता फिरता है, श्मशान की राख शरीर पर मलता है, नरमुण्ड पहनता है। मानव की हड्डियों के आभूषण पहनता है। बनता यह शिव (शुभ) है परंतु सच में अशिव (अशुभ) है, पागल ही इसके संगी-साथी हैं, भूत इसके मित्र हैं, जो

1. *भागवत पुराण, अध्याय 4, पृ. 379-80*

अंधकार-प्रिय हैं। काश! मैंने अपनी गुणवंती पुत्री ब्रह्मा के कहने में आकर ऐसे क्रोधोन्मत्तों के दुष्टात्मा स्वामी को, जिनकी शुद्धता नष्ट हो चुकी है, न दी होती। शिव को ऐसे दुर्वचन बोलकर, जिसका उन्होंने कोई प्रतिवाद नहीं किया, दक्ष ने उन्हें चिढ़ाया और जल हाथ में लेकर उन्हें शाप देना आरंभ किया—'यह शिव सभी देवी-देवताओं में निकृष्ट हो। इसे देवताओं की पूजा के समय इंद्र, उपेंद्र (विष्णु) और अन्य देवों के समान स्थान प्राप्त न हो।' अपना श्राप देकर दक्ष चले गए।"

श्वसुर-दामाद के बीच शत्रुता जारी है। ब्रह्मा ने दक्ष को प्रजापतियों के प्रमुख का दर्जा दिया तो उन्होंने बृहस्पतिसव यज्ञ करने की ठानी। जब पार्वती ने देखा कि सभी देव सपत्नीक यज्ञ में जा रहे हैं तो पार्वती ने शिव से उनके साथ चलने की जिद की। उनके पिता ने शिव का जो अपमान किया था, उन्होंने पार्वती को उसकी याद दिलायी और यज्ञ में जाने से मना किया। लेकिन वह अपने संबंधियों से मिलने को आतुर थी। सभी बातों को अनदेखा कर चली गईं। जब उन्होंने अपने पिता दक्ष को देखा तो अपने पति को अपमानित करने पर पिता की भर्त्सना की और यह धमकी दी कि उन्हें अपने माता-पिता से जो देह प्राप्त हुई है, उसे वह अग्नि को समर्पित कर देंगी। फिर वह अग्नि में कूद पड़ीं। शिव के जो गण पार्वती के साथ गए थे, जब उन्होंने यह देखा तो वे दक्ष का वध करने को लपके। लेकिन भृगु ने यजुस् का मंत्रोपचार कर दक्षिणाग्नि की आहुति दी, जो यज्ञ में बाधा डालने वालों को नष्ट करने के लिए दी जाती है। परिणामस्वरूप ऋभु नाम के हजारों तेजस्वी देवता प्रकट हो गए। उन्होंने अपनी तपस्या के प्रताप से चन्द्रलोक प्राप्त किया था। उन ब्रह्मतेज-संपन्न देवताओं ने जलती हुई लकड़ियों से आक्रमण किया तो यज्ञ में बाधा डालने वाले भाग गए। ऋभुओं ने उनके पार्षदों को भगा दिया। जब शिव ने देवी सती के प्राण त्यागने की बात सुनी तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। उन्होंने अपने सिर की जटाओं में से केशों का एक गुच्छा उखाड़ा जिसमें से एक विकराल राक्षस प्रकट हुआ, जिसे दक्ष और उसके यज्ञ को खत्म करने को आदेश दिया। यह राक्षस शिव के अनुयायी विकराल भूत-प्रेत और पिशाचों को लेकर उनकी (शिव की) आज्ञा को सिर-माथे पर रख यज्ञ-मंडप की ओर दौड़ा। उन्होंने यज्ञ-मंडप में क्या कुहराम मचाया और शिव-आदेश का किस प्रकार अनुपालन किया, इसका *भागवत पुराण* में[1] इस प्रकार उल्लेख मिलता है:

"कुछ ने यज्ञशाला के पवित्र यज्ञ-पात्रों को तोड़ डाला, कुछ ने हवनकुंड की अग्नि बुझा दी, कुछ ने यज्ञकुंडों को मूत्र से दूषित कर दिया, किसी ने यजमान गृह की सीमाओं को रौंद डाला, कुछ ने मुनियों को तंग किया, किसी ने ऋषि पत्नियों को डराया-धमकाया। किसी ने भयभीत देवताओं को धर दबोचा जो निकट ही विराजमान थे, कुछ भाग खड़े हुए...। भवदेव (शिव) ने भृगु की दाढ़ी नोंच ली, जो हाथ में यज्ञ

---

1. मूइर द्वारा उद्धृत, खंड 4, पृ. 383-84

की करछुल लिए हवन कर रहे थे और जिन्होंने प्रजापतियों की सभा में उनका (महादेव) उपहास किया था। क्रोध के वशीभूत होकर उन्होंने भृगु देवता को पृथ्वी पर पटक दिया जिसके कारण उसकी आंखें बाहर निकल आईं क्योंकि जब दक्ष देव-सभा में शिव को शाप दे रहे थे, तब उन्होंने अर्थात् भृगु ने दक्ष को आंखों के इशारे से उकसाया था। इसके पश्चात उन्होंने पूषा देवता के दांत ठीक उसी प्रकार तोड़ डाले जैसे बलि ने कलिंग राज के तोड़े थे क्योंकि जब दक्ष महादेव को अपमानित करते हुए गालियां बक रहे थे तो पूषा दांत निपोरकर हंस रहा था। फिर वह दक्ष की छाती पर बैठकर एक तेज तलवार से उसका सिर काटने लगे। परंतु बहुत प्रयास करने पर भी वह उस समय उसे धड़ से अलग न कर सके। जब किसी भी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से दक्ष की त्वचा नहीं कटी तो त्र्यम्बक (वीरभद्र अथवा शिव) को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह बहुत देर तक विचार करते रहे। फिर उन्होंने यज्ञ-मंडप में यज्ञ पशुओं को जिस प्रकार मारा जाता था, उसी प्रकार दक्ष रूप उस यजमान पशु का सिर धड़ से अलग कर दिया। देवताओं ने सारी घटना स्वयंभू को बताई जो विष्णु के साथ वहां उपस्थित नहीं थे, जब यह सब घटित हुआ। (स्कंध 6)। ब्रह्मा ने देवताओं से परामर्श किया कि शिव को कैसे शांत किया जाए, जिन्हें गलत ढंग से यज्ञ के हव्य से वंचित कर दिया गया था। तदुपरांत ब्रह्मा के नेतृत्व में देवता कैलाश की ओर चले। ब्रह्मा ने शिव से कहा कि मैं जानता हूं आप संपूर्ण जगत के स्वामी हैं क्योंकि विश्व योनि शक्ति और उसके बीज से परे जो एक रस ब्रह्म है, वह आप ही हैं। ब्रह्मा ने कहा कि आप ही संपूर्ण यज्ञ को पूर्ण करने वाले हैं। यज्ञ में हिस्सा पाने का आपको पूरा अधिकार है। फिर भी इस दक्ष-यज्ञ में बुद्धिहीन याजकों ने आपको यज्ञ में भाग नहीं लेने दिया, इसी से यह आपके द्वारा ध्वस्त हुआ। अब आप इस यज्ञ का पुनरुद्धार करने की कृपा करें। हे यज्ञ विध्वंसक! आज यह यज्ञ आपके द्वारा पूर्ण हो। इसके बाद (अध्याय 7) महादेव थोड़े संतुष्ट हो गए।"

दक्ष का यज्ञ भंग करने की घटना से बढ़कर इस बात का और कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि शिव वेद विरोधी थे।

अब हम कृष्ण पर आते हैं।

कृष्ण नाम के चार व्यक्ति हुए हैं। एक कृष्ण सत्यवती के पुत्र और धृतराष्ट्र, पांडु तथा विदुर के पिता हैं; दूसरे कृष्ण सुभद्रा के भाई और अर्जुन के मित्र हैं; तीसरे कृष्ण मथुरा के वासुदेव और देवकी के पुत्र हैं तथा चौथे कृष्ण गोकुल के नंद और यशोदा के पुत्र हैं जिन्होंने शिशुपाल वध किया। अगर कृष्ण भक्तों के कृष्ण वही हैं जो देवकी के पुत्र हैं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वह वेद विरोधी थे। छांदोग्य उपनिषद के अनुसार ऐसा लगता है कि वह घोर आंगिरस कुल से थे। घोर आंगिरसों ने उन्हें क्या शिक्षा दी? छांदोग्य उपनिषद के अनुसार–

"आंगिरस के कुल के घोर ने देवकी पुत्र कृष्ण से कहा (रहस्यमय दंतकथा) कि वह इच्छा रहित हैं जैसे मृत्यु के समय मनुष्य को तीन बातें कही जाती हैं। तुम अविनाशी हो, तुम अक्षय हो, और तुम जीव के सूक्ष्म तत्त्व हो।

घोर नाम के, आंगिरस कुल के, एक व्यक्ति ने देवकी पुत्र कृष्ण को यज्ञ की यह पद्धति बताई और उसके शिष्यों ने तब कहा, आदि। इस क्रम में अंतिम शब्द 'कहा' 'इन तीनों' के पश्चात है। और इस सिद्धांत को सुनकर वह किसी भी प्रकार के ज्ञान की इच्छा से मुक्त हो गए। पुरुष यज्ञ के इस ज्ञान की उन्होंने इस प्रकार प्रशंसा की। यह इतना विलक्षण है कि उसने देवकी पुत्र कृष्ण की अन्य ज्ञान के प्रति सभी तृष्णाओं को शांत कर दिया। अब वह बताते हैं जो घोर आंगिरस ने कृष्ण को गुरुमंत्र देते हुए कहा था। वह इस प्रकार है–"जो अपने मृत्यु काल में उपरोक्त यज्ञ से भिज्ञ होता है वह इन तीन शब्दों को कहे "प्राणशंसितम्" जिसका अर्थ है, तू ही अति सूक्ष्म है, तू ही अति गूढ़ प्राण तेज है।"

यह स्पष्ट है कि घोर आंगिरस ने कृष्ण को आध्यात्मिक मुक्ति का जो उपदेश दिया, वह वेदों और वैदिक उपासना के प्रतिकूल था। इसके विपरीत विष्णु वैदिक देव हैं। फिर भी उनकी उपासना शिव उपासना के काफी बाद आरंभ हुई। यह समझना अत्यंत कठिन है कि विष्णु की इतनी उपेक्षा क्यों हुई?

इसी तरह हालांकि राम वेद विरोधी नहीं हैं फिर भी वेदों में उनका उल्लेख नहीं है। उनकी उपासना की क्या आवश्यकता थी? वह भी इतने दिनों बाद?

अब हम तीसरे सवाल पर आते हैं–अर्थात् प्राचीन पौराणिक देवों के साथ इन नए देवों की सापेक्ष स्थिति क्या है?

एक पूर्व अध्याय में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के उत्थान-पतन का प्रसंग पहले ही आ चुका है। पद और सत्ता का संघर्ष इन तीनों देवताओं तक सीमित था। उन्हें किसी तीसरे देवता से नीचे की कोटि में नहीं रखा गया। परंतु एक समय आया जब इन्हें श्री नामक एक देवी के नीचे माना जाने लगा। यह कैसे हुआ? इस देवी का उल्लेख *भागवत* में है। देवी *भागवत*[1] के अनुसार श्री नामक देवी से संपूर्ण जगत उत्पन्न हुआ और इसी देवी से ब्रह्मा, विष्णु और शिव की उत्पत्ति हुई। देवी *भागवत* का मत है कि देवी की इच्छा अपनी हथेलियां रगड़ने की हुई। हथेलियां रगड़ने से एक छाला हुआ। उस छाले से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। जब ब्रह्मा उत्पन्न हो गए तो देवी ने उसे विवाह करने को कहा। ब्रह्मा ने यह कहकर मना कर दिया कि तू तो मेरी मां है। देवी कुपित हो उठी और उसने अपने कोप से ब्रह्मा को भस्म कर दिया। देवी ने दूसरी बार अपनी हथेलियां रगड़ी, फिर छाला हुआ और दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह था विष्णु। देवी ने विष्णु से भी अपने साथ विवाह करने को कहा। विष्णु ने यह कहकर

1. *सत्यार्थ प्रकाश में संक्षिप्तीकरण।*

अनिच्छा प्रकट की कि वह उनकी मां है। देवी को क्रोध आया और उसने विष्णु को भी जलाकर राख कर दिया। देवी ने तीसरी बार हथेलियां रगड़ीं और तीसरे छाले से तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह थे शिव। देवी ने शिव से विवाह करने के लिए कहा। शिव ने कहा, "मैं तुम्हें दूसरा शरीर धारण कराता हूं।" देवी तैयार हो गई। तभी शिव की दृष्टि राख के दो ढेरों पर पड़ी। देवी ने कहा, ये तुम्हारे दो भाई हैं जिन्हें मैंने जलाकर राख कर दिया क्योंकि उन्होंने मुझसे विवाह करने से मनाकर दिया था। इस पर शिव ने कहा, "मैं अकेला कैसे विवाह कर सकता हूं? आप दो स्त्रियां और उत्पन्न करें जिनसे हम तीनों का विवाह हो सके।" देवी ने वैसा ही किया जैसा शिव ने कहा था और तीनों देवों ने देवी, और उसके द्वारा उत्पन्न दो देवियों से विवाह कर लिया। इस कथा के दो बिन्दु हैं। एक यह कि शिव ने यद्यपि पापकर्म किया तब भी इस भय से वह अधिक पाप नहीं कर पाए कि कहीं अपने दोनों प्रतिद्वंद्वियों की अपेक्षा उनकी प्रतिष्ठा गिर न जाए और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का स्थान नीचे आ गया क्योंकि वे देवी द्वारा उत्पन्न हुए कहे गए हैं।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव के उत्थान-पतन की विवेचना के बाद अब दो नए देवों—विष्णु और राम—की पूजा-परंपरा के उलट-फेर पर विचार करना शेष रह जाता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की अपेक्षा कृष्ण की उपासना में कुछ बनावटीपन है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश जन्मजात भगवान थे। कृष्ण एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें भगवान मान लिया गया। उन्हें शायद देवत्व देने के लिए ही यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि वह विष्णु के अवतार हैं।[1] परंतु इसके बावजूद उन्हें उनके दुराचार के कारण, जो उन्होंने गोपियों के साथ किया, अपूर्ण अवतार माना जाता है। यदि वह विष्णु के पूर्ण और विशुद्ध अवतार होते तो उनके वे कर्म अक्षम्य होते।

इसके बावजूद एक साधारण पुरुष कृष्ण सर्वोपरि देव बन गए। श्री कृष्ण कितने महान बन गए, यह भगवदगीता के अध्याय दस और चौदह में देखा जा सकता है। इन अध्यायों में कृष्ण कहते हैं—

> "हे कुरुश्रेष्ठ, अब (मैं) तेरे लिए अपनी दिव्य विभूतियों को प्रधानता से कहूंगा क्योंकि मेरे विस्तार का अंत नहीं है। हे गुडाकेश (अर्जुन), मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सबकी आत्मा हूं तथा (संपूर्ण) भूतों का आदि, मध्य और अंत भी मैं ही हूं। मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु अर्थात् वामन अवतार (और) ज्योतियों में किरणों वाला सूर्य हूं तथा मैं (उनचास) वायु देवताओं में मरीचि नामक वायु देवता, (और) नक्षत्रों में नक्षत्र का अधिपति चंद्रमा हूं। वेदों में सामवेद हूं, देवों में इंद्र हूं और इंद्रियों में मन हूं। भूतप्राणियों में चेतना अर्थात् ज्ञान-शक्ति हूं। एकादश रुद्रों में शंकर हूं और यक्ष तथा राक्षसों में धन का

1. देखें मूइर, खंड 4, पृ. 49

स्वामी कुबेर हूं और मैं आठ वसुओं में अग्नि हूं (तथा) शिखर वाले पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूं। पुरोहितों में मुख्य अर्थात् बृहस्पति हूं। तू मुझको जान। हे पार्थ! सेनापतियों में मैं स्वामी कार्त्तिकेय और जलाशयों में समुद्र हूं। मैं महर्षियों में भृगु (और) वचनों में एक अक्षर अर्थात् ओंकार हूं। सब प्रकार के यज्ञों में जपयज्ञ और स्थिर रहने वालों में हिमालय पर्वत हूं। सब वृक्षों में पीपल का वृक्ष और देवर्षियों में नारद मुनि (तथा) गंधर्वों में चित्ररथ (और) सिद्धों में कपिल मुनि हूं। घोड़ों में अमृत से उत्पन्न उच्चैश्रवा नामक घोड़ा, हाथियों में ऐरावत नामक हाथी तथा मनुष्यों में राजा मुझे ही जान। मैं शस्त्रों में वज्र और गउओं में कामधेनु हूं और (शास्त्रोक्त रीति से) संतान की उत्पत्ति हेतु कामदेव हूं। सर्पों में सर्पराज वासुकि हूं। मैं नागों में शेषनाग और जलचरों में उनका अधिपति जल देवता हूं और पितरों में अर्यमा नामक पित्रेश्वर (तथा) शासन करने वालों में यमराज मैं हूं। मैं दैत्यों में प्रह्लाद और गणनाकारों में मृत्यु का स्वामी (काल, समय) हूं।

"पशुओं में मैं मृगराज सिंह और पक्षियों में विनता का पुत्र अर्थात् गरुड़ हूं। मैं बहने वालों में वायु (और) शस्त्रधारियों में राम हूं तथा मछलियों में मगरमच्छ हूं, नदियों में भागीरथी गंगा हूं। हे अर्जुन! सृष्टियों में आदि, अंत और मध्य भी मैं ही हूं तथा मैं विद्याओं में आध्यात्मिक विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या (एवं) परस्पर विनोद करने वालों में तत्त्व निर्णय के लिए किया जाने वाला वाद हूं। मैं अक्षरों में ओंकार, समासों में द्वंद्व हूं, (तथा) अक्षय काल अर्थात् काल का भी महाकाल और विराट स्वरूप, सबका धारण करने वाला (भी) मैं ही हूं। तथा मैं गेय श्रुतियों में बृहत्साम, छंदों में गायत्री छंद, महीनों में मार्गशीर्ष का महीना और ऋतुओं में वसंत ऋतु मैं ही हूं। मैं छल करने वालों में जुआ और प्रभावशाली पुरुषों का प्रभाव हूं, (तथा) मैं जीतने वालों की विजय हूं और निश्चय करने वालों का निश्चय, सात्विक पुरुषों का सात्विक भाव हूं। वृष्णि वंशियों में वासुदेव अर्थात् मैं स्वयं तुम्हारा सखा और पांडवों में धनंजय एवं मुनियों में वेद व्यास, कवियों में शुक्राचार्य कवि भी मैं ही हूं। मैं दमन करने वालों का दंड अर्थात् दमन करने की शक्ति हूं। जीतने की इच्छा करने वालों की नीति हूं। (और) गोपनीय भावों में मौन हूं और ज्ञान वालों का तत्त्वज्ञान मैं ही हूं और हे अर्जुन! जो सब भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूं क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी भूत नहीं है जो मुझसे रहित हो।

"जो तेज सूर्य में स्थित हो संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो (तेज) चंद्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है, उसको तू मेरा ही तेज जान। मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूं और रसस्वरूप अमृतमय चंद्रमा होकर संपूर्ण औषधियों को पुष्ट करता हूं। मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ, वैश्वानर अग्नि रूप होकर प्राण और

अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता हूं और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अंतर्यामी रूप से स्थित हूं। मेरे से ही स्मृति-ज्ञान होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने योग्य हूं। वेदांत का कर्ता और वेदों का ज्ञाता भी मैं ही हूं, संसार में नाशवान और अविनाशी दो प्रकार के जो पुरुष हैं उनमें संपूर्ण भूत-प्राणियों के शरीर तो नाशवान हैं और जीवात्मा अविनाशी कही जाती है, उत्तम पुरुष तो अन्य ही है जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सबका भरण-पोषण करता है एवं अविनाशी परमात्मा कहलाता है क्योंकि मैं नाशवान का प्रणेता हूं। सर्वथा अतीत हूं और (माया में स्थित) अविनाशी जीवात्मा से भी उत्तम हूं, इसलिए लोक में और वेद में भी पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूं।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जहां तक गीता का संबंध है, कृष्ण से महान कोई देव नहीं है। वह अल्ला हू अकबर हैं। वह अन्य सभी देवों से उत्तम हैं।

अब हम *महाभारत* पर आते हैं। हम क्या देखते हैं? हमें कृष्ण की स्थिति बदली हुई दिखाई देती है। वहां उनकी स्थिति में उत्थान-पतन की कथा है। पहले तो हम कृष्ण को शिव के ऊपर देखते हैं। यही नहीं। शिव को कृष्ण की महानता को मानना और स्वीकार करना पड़ता है। इसके साथ ही हम यह भी देखते हैं कि कृष्ण का पद शिव से नीचे कर दिया गया और उन्हें शिव की महानता को स्वीकार करना पड़ा।

कृष्ण की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के संबंध में अनुशासन पर्व[1] का यह अंश उल्लेखनीय है—

"श्रीकृष्ण ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ हैं। वे सनातन पुरुष श्रीहरि कहलाते हैं। उनके शरीर की कांति जाम्बुनद नामक स्वर्ण के समान देदीप्यमान है। बिना बादल के आकाश में उदित सूर्य के समान तेजस्वी हैं। उनकी भुजाएं दस हैं, उनका तेज महान है। वे देवताओं के शत्रु दैत्यों का नाश करने वाले हैं। उनके वक्ष में श्रीवत्स का चिह्न शोभा पाता है। वे हृषीकेश अर्थात् इंद्रियों के स्वामी होने के कारण हृषीकेश कहलाते हैं। संपूर्ण देवता उनकी पूजा करते हैं। ब्रह्माजी उनके उदर से और मैं उनके मस्तक से प्रकट हुआ हूं। उनके सिर के बालों से नक्षत्रों और ताराओं का प्रादुर्भाव हुआ है। देवता और असुर उनके शरीर की रोमावलियों से प्रकट हुए हैं। समस्त ऋषि और सनातन लोक उनके श्रीविग्रह से उत्पन्न हुए हैं। वह श्रीहरि स्वयं ही संपूर्ण देवताओं और ब्रह्माजी के भी धाम हैं। संपूर्ण पृथ्वी के स्रष्टा और तीनों लोकों के स्वामी भी वही हैं। वही समस्त चराचर प्राणियों का संहार करते हैं। वे देवताओं में श्रेष्ठ, देवताओं के रक्षक, शत्रुओं को संताप देने वाले, सर्वज्ञ, सब में ओतप्रोत, सर्वव्यापी और सब ओर मुखों वाले हैं। वही परमात्मा, इंद्रियों के प्रेरक और सर्वव्यापी महेश्वर हैं। तीनों

1. *मूइर, खंड 4, पृ. 273-74*

लोकों में उनसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है। वही सनातन, मधुसूदन और गोविन्द आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। आदर देने वाले, भगवान श्रीकृष्ण महाभारत युद्ध में संपूर्ण राजाओं का संहार कराएंगे। वह देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए पृथ्वी पर मानव-शरीर धारण करके प्रकट हुए हैं। उन त्रिविक्रम की शक्ति और सहायता के बिना संपूर्ण देवता भी कोई कार्य नहीं कर सकते। संसार में नेता के बिना देवता कोई भी कार्य करने में असमर्थ हैं और यह भगवान श्रीकृष्ण सब प्राणियों के नेता हैं, इसलिए समस्त देवता उनके चरणों में मस्तक झुकाते हैं।

"देवताओं की रक्षा और उनके कार्य-साधन में संलग्न रहने वाले भगवान वासुदेव ब्रह्मस्वरूप हैं। वही ब्रह्मऋर्षियों को सदा शरण देते हैं। ब्रह्माजी और मैं दोनों ही उनके शरीर के भीतर उनके गर्भ में बड़े सुख के साथ रहते हैं। उनके श्रीविग्रह में संपूर्ण देवता भी सुखपूर्वक निवास करते हैं। उनकी आंखें कमल के समान सुंदर हैं। उनके गर्भ (वक्ष) में लक्ष्मी का वास है। वे सदा लक्ष्मी के साथ निवास करते हैं। देवताओं के कल्याण हेतु गोविंद मनु के वंश के होने चाहिएं। उनमें श्रेष्ठ बुद्धिमत्ता है और प्रजापति के उत्कृष्ट मार्ग पर अग्रसर हैं। उनमें धर्मपरायणता के सभी लक्षण विद्यमान हैं। यह दक्ष ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धालु हैं, इस वंश में विख्यात वीर हुए हैं जिनमें सदाचार के श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं जो धर्मप्राण विशुद्ध क्षत्रियों के वीरोचित गुण हैं। ये आनकदुंदभि के वंशज हैं, जिन्होंने अपनी जाति को वासुदेव के रूप में पोषित किया। वासुदेव के यहां चतुर्भुज का जन्म होना चाहिए, वासुदेव उदारचेता ब्राह्मण-सेवी हैं। ब्रह्मा के समक्ष उनकी छवि ब्राह्मण-प्रिय की है।"

"हे देवताओ! इस देव की यथेष्ट पूजा करो जैसी कि अविनाशी ब्रह्मा की होती है। उन्हें श्रद्धा के पुष्पहार चढ़ाओ। जो मुझे और ब्रह्मा को पाना चाहते हैं, वे इस दैवी गौरवांवित वासुदेव को नमन करें। इस विषय में मैं बिना संकोच कहता हूं कि इनके दर्शन मेरे दर्शन हैं अथवा ब्रह्मा के दर्शन हैं। तप ही इनका धन है। हे ऐसे लोगों इस बात को ठीक से समझ लो।"

अब हमें यह देखना है कि कृष्ण को देवताओं में पहले सर्वश्रेष्ठ और बाद में पतित कैसे घोषित कर दिया गया?

महाभारत में अनेक ऐसी घटनाओं का वर्णन है, जिनमें कृष्ण को शिव से नीचे रखा गया है। उन सबका वर्णन तो कठिन है लेकिन कुछ को बताया जा सकता है।

पहली घटना तो यह है जब अर्जुन ने अगले दिन जयद्रथ का वध करने का विचार किया और उन्होंने शपथ ली थी तो वह बड़े निराश हो गए थे क्योंकि उन्हें आशंका थी कि जयद्रथ के मित्र उसकी रक्षा करने में कोई कसर बाकी नहीं रखेंगे और जब तक उनको अचूक अस्त्र उपलब्ध न हो जाए, जयद्रथ का वध नहीं किया जा सकता। इसलिए अर्जुन परामर्श के लिए कृष्ण के पास जाते हैं। कृष्ण अर्जुन को सलाह देते हैं कि वह महादेव

से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करें, जिससे शिव ने स्वयं दैत्यों का संहार किया था। यदि वे इसे प्राप्त कर लेते हैं तो निश्चय ही जयद्रथ का वध किया जा सकता है।

द्रोण पर्व में इसका उल्लेख इस प्रकार है–

"उनके पास पहुंचकर धर्मपरायण श्रीकृष्ण और पृथापुत्र अर्जुन ने पृथ्वी पर मस्तक टेककर वेद-मंत्र पढ़ते हुए उन्हें प्रणाम किया। विश्वनियंता, अनन्त, अविनाशी देव के रूप में उनकी अभ्यर्थना की जो परम ज्ञान के स्रोत हैं; आकाश, वायु, नक्षत्रों, सागर के स्रष्टा हैं; पृथ्वी के परम श्रेष्ठ तत्त्व हैं; देवों, दानवों, यक्षों, मानवों के सर्जक हैं; साधना के परम ब्रह्म और ज्ञानियों के लिए तत्त्व ज्ञान का भंडार हैं। विश्व के निर्माता और संहारक हैं; सूर्य और इंद्र के जनक हैं। तब कृष्ण ने उन्हें श्रद्धापूर्वक संबोधित किया। ये दोनों योद्धा शिव की शरण में आए हैं। अर्जुन ने बार-बार उनकी स्तुति की क्योंकि वे सभी जीवों के स्रष्टा थे और त्रिकालदर्शी थे। उन दोनों नर और नारायण को आया देख शिव (महादेव) बड़े प्रसन्न हुए और हंसते हुए बोले–'श्रेष्ठतम पुरुषो, तुम दोनों का स्वागत है! उठो, विश्राम करो और शीघ्र बताओ वीरो कि तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हारे कल्याण के लिए जो भी अधिकतम सहायक चीज है, आप कहो, मैं तुम्हें सब दूंगा।"

"महादेव (शिव) की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों हाथ जोडकर खड़े हो गए और उनकी स्तुति करने लगे "महादेव आप ही संसार के स्वामी, सबके स्रष्टा एवं सर्वव्यापी हैं, आपको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। आप भक्तों पर दया करने वाले हैं, प्रभो! हमारा मनोरथ सिद्ध कीजिए।" तब अर्जुन ने मन ही मन भगवान शिव और श्रीकृष्ण का स्मरण किया तथा शंकर जी से कहा "भगवन्! मैं दिव्य अस्त्र चाहता हूं।" यह सुनकर भगवन् शंकर मुस्कराए और कहने लगे 'श्रेष्ठ पुरुषो। मैं तुम दोनों का स्वागत करता हूं। तुम्हारी अभिलाषा मुझे मालूम हुई, तुम जिसके लिए आए हो वह वस्तु अभी देता हूं। यहां से निकट ही एक अमृतमय दिव्य सरोवर है, उसी में मैंने अपने दिव्य धनुष और बाण रख दिए हैं, वहां जाकर बाण-सहित धनुष ले आओ'।"

"बहुत अच्छा"! कहकर वे शिवजी के पार्षदों के साथ उस सरोवर पर गए। वहां जाकर उन्होंने दो नाग देखे, एक सूर्यमंडल के समान प्रकाशमान था और दूसरा हजार सिरों वाला था, उसके मुख से आग की लपटें निकल रही थीं। श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों उस सरोवर के जल का आचमन करके उन नागों के पास उपस्थित हुए और हाथ जोड़कर शिव को प्रणाम करते हुए, रुद्रीय पाठ करने लगे। तब भगवान शंकर के प्रभाव से वे दोनों महानाग अपना स्वरूप छोड़कर धनुष-बाण हो गए। इससे वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए और उस देदीप्यमान धनुष बाण को लेकर शंकर के पास आए। वहां आकर उन्होंने वे अस्त्र शंकर जी को

अर्पण कर दिए। तत्पश्चात् शंकर ने प्रसन्न होकर अपना पाशुपत नामक घोर अस्त्र अर्जुन को दे दिया। उसे पाकर अर्जुन के हर्ष की सीमा न रही, वह रोमांचित हो गए। वे अपने को कृतकृत्य मानने लगे। फिर कृष्ण और अर्जुन दोनों ने शिव को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले, वे अपने शिविर में चले आए।"

महाभारत के ही अनुशासन पर्व में युधिष्ठिर और भीष्म का संवाद है। युधिष्ठिर भीष्म से महादेव के गुणों के विषय में पूछते हैं। भीष्म जवाब देते हैं—

"मैं महादेव की लीलाओं और गुणों की व्याख्या करने में असमर्थ हूं, जो सर्वव्यापक हैं। वह अगोचर हैं, वही ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र के जनक हैं; देवताओं में ब्रह्मा से लेकर पिशाच तक उनकी उपासना करते हैं; वह अमृत तत्त्व हैं और वही पुरुष हैं। ऋषि उनकी उपासना करते हैं और योगमंत्रों में उन्हीं का स्तवन किया गया है। वह सत्य के सूक्ष्म तत्त्व हैं। वह अजर-अमर ब्रह्म हैं। वह विद्यमान भी हैं और अविद्यमान भी। उन्होंने शक्ति से आत्म-तत्त्व प्राप्त किया है और वह देवाधिदेव और प्रजापतियों के स्वामी हैं। मेरे जैसा मानव जो माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ है और जो मृत्यु को प्राप्त होने योग्य है, वह 'भव' के गुणों का बखान क्या कर सकता है? उनका वर्णन तो मात्र नारायण कर सकते हैं। जो विष्णु मेधावी हैं, सर्वगुण संपन्न हैं, दुर्जेय हैं, दिव्य दृष्टि हैं, दिव्य शक्ति हैं, वह भी उनका ध्यान करते हैं। रुद्र के लिए भक्ति के कारण भगवान कृष्ण संसार श्रीकृष्ण द्वारा व्याप्त है। उन्होंने बदरी में महादेव से संसार में धन से भी ज्यादा प्रिय होने की योग्यता प्राप्त की है। माधव ने एक हजार वर्ष तक शिव की उपासना में तप किया परंतु इहलोक में हर युग में महेश की कृष्ण द्वारा आराधना की जाती है। ऐसे कृष्ण, जब प्रजावृद्धि चाहते हैं, तो वह देवाधिदेव की महिमा का स्मरण करते हैं और कहते हैं कि उनसे बढ़कर और कोई नहीं है। यह आजानुबाहु कृष्ण ही उन शिव के सब नामों को जानते हैं, उनकी सब दिव्य शक्तियों का वर्णन कहने में समर्थ हैं और महेश्वर (शिव) की वास्तविक शक्ति को पूर्णतया व्यक्त कर सकते हैं।"

कृष्ण की उपस्थिति में युधिष्ठिर और भीष्म का यह संवाद चलता है। भीष्म उत्तर देने के उपरांत कृष्ण को महादेव की श्रेष्ठता बताने को कहते हैं और यह आश्चर्य है कि यह महानतम देवता कृष्ण बिना किसी हिचक और विरोध के यह सब मान लेता है और कहता है—

"वास्तव में, ईश (महादेव) के गुण-कर्मों को कौन जान सकता है। हिरण्यगर्भ के साथ देव, महान ऋषियों के साथ इन्द्र, आदित्यगण, सूक्ष्मतम के ज्ञाता जब उसे नहीं जान पाए, तब भला शेष ऋषिगण और मनुष्य यह कैसे समझ पाएंगे। मैं असुरों के हंता उस देवाधिदेव के गुणों का वर्णन करूंगा, जो सब धार्मिक अनुष्ठानों के स्वामी हैं।"

यहां यह स्पष्ट है कि कृष्ण अपने को शिव से हीन समझते हैं। साथ ही शिव जानते हैं कि कृष्ण का महान पद से पतन हो चुका है, बराबरी की बात तो दूर रही, सौप्तिक पर्व में महादेव अश्वत्थामा[1] को बताते हैं–

> "कार्यकुशल कृष्ण ने मेरी विधिवत् पूजा की है, सत्यता, पवित्रता, ईमानदारी, उदारता, अत्यंत सरलता, अनुष्ठान, धैर्य, बुद्धि, आत्मसंयम, निष्ठा और विचारपूर्वक। इस कारण कृष्ण से अधिक मुझे और कोई प्रिय नहीं है।"

कृष्ण शिव ही क्या, हर देवता से श्रेष्ठतम थे, जो वास्तव में परमेश्वर थे, यहां शिव के मात्र अनुयायी बना दिए जाते हैं जो मामूली सा वरदान मांगते फिरते हैं।

कृष्ण के पतन की कथा यहीं समाप्त नहीं होती। उन्हें और भी अपमान सहन करने पड़ते हैं। शिव के मुकाबले कृष्ण अपना दर्जा नीचे स्वीकार कर लेते हैं। यहां तक कि वह उपमन्यु के अनुयायी बन जाते हैं जोकि महान शिव-भक्त हैं। कृष्ण उससे शैवमत की दीक्षा ग्रहण करते हैं। कृष्ण स्वयं कहते हैं–

> "शास्त्रानुसार आठवें दिन उस ब्राह्मण (उपमन्यु) ने मुझे दीक्षित किया। मैंने सिर का मुंडन कराया, घी से विलेपन किया, बाहों में दंड कुश नाम दर्भ ग्रहण की, कटि पर मेखला से बांधकर वल्कल धारण किए।" कृष्ण तब तप करते हैं और महादेव के दर्शन करते हैं।

क्या ईश्वर जैसी पदवी प्राप्त देवता की इससे अधिक पदावनति और कहीं दृष्टिगोचर होती है? जो कृष्ण परमेश्वर कहे जाते थे, और जिनकी तुलना में शिव ईश्वर मात्र कहे जाते थे। बाद में तो वह (कृष्ण) ईश्वर भी नहीं रहे। वह शिव के भक्त बन गए और उपमन्यु जैसे साधारण ब्राह्मण से उन्होंने शैवधर्म की दीक्षा भी ली।

जहां तक राम का प्रश्न है, वह कृष्ण से भी ज्यादा कृत्रिम ईश्वर हैं। राम को तो आभास भी नहीं था कि वह परमेश्वर हैं। जब लंका में रावण-वध के बाद सीता उनके पास आई और जब उनसे सीता के विषय में बात की गई तो राम को सीता की पवित्रता पर संदेह हुआ। वह बड़े दुखी हुए। रामायण में यह प्रसंग इस प्रकार है–

> "इसी समय यक्षराज कुबेर, पितरों सहित यमराज, देवताओं के स्वामी सहस्र नेत्रधारी इंद्र, जल के अधिपति वरुण, त्रिनेत्रधारी तेजस्वी वृषभवाहन महादेव, संपूर्ण जगत के स्रष्टा ब्रह्मा, वेद के ज्ञाता, (स्वर्ग से राजा दशरथ) ये सभी सूर्यतुल्य देदीप्यमान विमानों में लंकापुरी पधारे और राघव (राम) के समक्ष प्रकट हुए। श्रीराम उनके सामने हाथ जोड़े खड़े थे। वे श्रेष्ठ देवता आभूषणों से अलंकृत अपनी विशाल भुजाओं को उठाकर उनसे बोले, "राम, आप संपूर्ण

---

1. मूइर द्वारा (पृ.सं. नहीं दी गई)।

विश्व के स्रष्टा, ज्ञानियों में श्रेष्ठ और सर्वव्यापक हैं। फिर इस समय अग्नि में प्रविष्ट सीता की उपेक्षा कैसे कर रहे हैं? आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु ही हैं, इस बात को कैसे नहीं समझ रहे हैं? पूर्वकाल में वसुओं के प्रजापति जो ऋतधाम नामक वसु थे, वह आप ही हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्ता, स्वयं प्रभु हैं। रुद्रों में आठवें रुद्र और साध्यों में पांचवें साध्य भी आप ही हैं। दोनों अश्विनी देवता आपके कान हैं, और सूर्य तथा चंद्रमा नेत्र हैं।"

"शत्रुओं को संताप देने वाले देव! सृष्टि के आदि, अंत और मध्य में आप ही दिखाई देते हैं। फिर भी आप सीता की एक साधारण मनुष्य की भांति उपेक्षा कर रहे हैं।"

उनके ऐसा कहने पर राम ने चकित हो उन देवताओं से कहा–

"देवगण! मैं तो अपने को मनुष्य, दशरथपुत्र राम ही समझता हूं। हे देवगण आप कृपया बताएं, मैं कौन हूं और कहां से आया हूं।"

इस पर ब्रह्मा ने राम से कहा–

"सत्यपराक्रमी, आप मेरे सत्य वचन सुनें। आप दिव्य शक्तियों से अभिभूत हैं। आप चक्र धारण करने वाले सर्वसमर्थ नारायण देव हैं, एक दाढ़ वाले पृथ्वी-धारी वाराह हैं तथा देवताओं के भूत एवं भावी शत्रुओं को जीतने वाले हैं। आप अविनाशी परब्रह्म हैं। सृष्टि के मध्य और अंत में सत्य अविनाशी ब्रह्म हैं। आप ही लोकों के परम धर्म हैं। आप ही विष्वकसेन (विष्णु), चतुर्भुज, आप ही धनुर्धारी हैं। आप ही सारंग, हृषीकेश, अंतर्यामी, आदि पुरुष और पुरुषोतम हैं। आप किसी से पराजित नहीं होते। आप अपराजेय खड्गधारी विष्णु एवं महाबली कृष्ण हैं। आप ही देव सेनापति तथा परम सत्य हैं। आप ही बुद्धि, सत्व, क्षमा, इंद्रियनिग्रह तथा सृष्टि एवं प्रलय के कारण हैं। आप ही उपेंद्र (वामन) और मधुसूदन हैं। इंद्र को भी उत्पन्न करने वाले महेंद्र और युद्ध का अंत करने वाले शांतस्वरूप पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षिगण आपको शरणदाता तथा शरणागत-वत्सल बताते हैं। आप ही सहस्रों शाखारूप सींगों तथा सैकड़ों विधिवाक्य रूप सिरों से युक्त वेदरूप महावृषभ हैं। आप ही तीनों लोकों के आदिकर्ता और स्वयं प्रभु (परम स्वतंत्र) हैं। आप सिद्ध और साध्यों के आश्रय तथा पूर्वज हैं। यज्ञ व षट्कार और ओंकार भी आप ही हैं। आप श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं। आपके आविर्भाव और तिरोभाव को कोई नहीं जानता। आप कौन हैं, इसका भी किसी को पता नहीं है। समस्त प्राणियों, गौओं तथा ब्राह्मणों में भी आप ही दिखाई देते हैं। समस्त दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों में और नदियों में भी आपकी ही सत्ता है।

आपके सहस्रों चरण, सैकड़ों मस्तक और सहस्रों नेत्र हैं। आप ही संपूर्ण प्राणियों को, पृथ्वी का अंत हो जाने पर, जल के ऊपर महान सर्प शेषनाग के रूप में दिखाई देते हैं। श्रीराम, आप ही तीनों लोकों को तथा देवता, गन्धर्व और दानवों को धारण करने वाले विराट पुरुष नारायण हैं और सबके हृदय में रमण करने वाले परमात्मा हैं। मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूं और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा हैं। प्रभो! मुझ ब्रह्मा ने जिनकी सृष्टि की है, वे सब देवता आपके विराट शरीर में रोम हैं। आपके नेत्रों का बंद होना रात्रि और उनका खुलना ही दिन है। वेद आपके विचार हैं। आपके बिना इस जगत का अस्तित्व नहीं है। संपूर्ण विश्व आपका शरीर है। पृथ्वी आपकी स्थिरता है। अग्नि आपका कोप है और चंद्रमा प्रसन्नता है। वक्ष में श्रीवत्स चिह्न धारण करने वाले भगवान विष्णु आप ही हैं। पूर्वकाल में (वामनावतार के समय) आपने ही अपने तीन पगों से तीनों लोक नाप लिए थे (त्रिविक्रम)। आपने अत्यंत दारुण दैत्यराज बलि को बांधकर इंद्र को तीनों लोकों का राजा बनाया था। जिसे मुख्यतम प्रकाश कहते हैं, जिसे घनघोर अंधकार कहते हैं, जिसे उच्चतम से उच्चतर कहते हैं, आप वही सर्वोच्च आत्मा-परमात्मा हैं। आपको ही उच्चतम कहकर गुणगान किया जाता है और आप ही उच्चतम हैं। आपकी ही स्थिति, उत्पत्ति और संहार का सर्वोच्च स्रोत कहा जाता है।"

स्पष्ट है कि राम को जान-बूझकर कृत्रिमतापूर्वक उसी प्रकार परमात्मा बना दिया गया, जैसे कृष्ण एक मानव से ईश्वर बना दिए गए। ब्रह्मा, विष्णु और महेश की तरह वह जन्मजात ईश्वर नहीं थे। उन्हें ब्राह्मणों के नायक परशुराम से भी हीन सिद्ध किया गया। रामायण में यह कथा इस प्रकार आती है–

"जब दशरथ राजा जनक की पुत्री को राम से विवाह कर लौट रहा था तब कई भयंकर अपशकुन होने लगे। इस पर उसने वशिष्ठ से पूछा, यह सब क्या है? यह क्या बात है? इससे मेरा हृदय शंका से भर उठा है। तब वशिष्ठ बोले यह परशुराम के आने की चेतावनी है जो तूफान की तरह चले आ रहे हैं, जिससे पृथ्वी कांप उठी है, पेड़-पौधे गिरने लगे हैं और घोर अंधेरा छा गया है। धूल से सूरज ढक गया है। परशुराम सामने से आ रहे हैं, बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं, कंधे पर फरसा और धनुष-बाण हैं। दशरथ ने उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन किया, जिसे परशुराम ने स्वीकार कर लिया और वह दशरथ-पुत्र राम की ओर बढ़े। कहा कि राम तुम्हारा बहुत पराक्रम सुना है। जनक द्वारा दिया गया शिव धनुष भी तुमने तोड़ दिया है। मैं दूसरा धनुष लेकर आया हूं। इसे खींचकर बाण चढ़ाओ। बाण चढ़ाने से तुम्हारे बल का अनुमान लगाकर मैं तुम्हारे साथ द्वंद्व करूंगा।"

"राम ने उत्तर दिया कि यद्यपि मेरे विरोधी ने मेरी युद्ध क्षमता की निंदा की है फिर भी मैं अपनी शक्ति का परिचय दूंगा। तब उन्होंने क्रोध में परशुराम का धनुष छीन लिया और उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी और चुनौती देने वाले परशुराम से कहा कि मैं तुम पर प्रहार नहीं करूंगा क्योंकि तुम एक ब्राह्मण हो। फिर तुम्हारे परिजन विश्वामित्र का भी उन्हें ख्याल है। लेकिन मैं तुम्हारी मानवेतर विचरण शक्ति को क्षीण कर दूंगा अथवा तपस्या के बल से प्राप्त लोकों को नष्ट कर दूंगा। इस अवसर पर देवतागण प्रकट हुए। परशुराम बुझ से गए और शक्तिहीन हो गए और दीन भाव से बोले कि मुझे विचरण की शक्ति से वंचित न किया जाए नहीं तो मैं कश्यप को दिया गया वह वचन पूरा नहीं कर पाऊंगा कि मैं प्रत्येक रात्रि को उनके पास पहुंचा करूंगा। हां, आप तप से प्राप्त मेरे लोकों को नष्ट कर दें।"

इस अपवाद को छोड़ दें तो राम की किसी भी अन्य देवता से कोई शत्रुता नहीं थी। वह जहां थे, उन्होंने वहीं रहने की व्यवस्था कर ली। अन्य देवों की कथाएं भिन्न हैं। वे बेचारे तो ब्राह्मणों के हाथों मात्र खिलौने बनकर रह गए। ब्राह्मणों ने देवताओं के साथ ऐसा असम्मानजनक व्यवहार क्यों किया?

बारहवीं पहेली

ब्राह्मणों ने देवताओं के मुकुट उतारकर देवियों की ताजपोशी क्यों की?

देवताओं की पूजा सभी के लिए आम है। लेकिन देवियों की पूजा बिलकुल असामान्य-सी बात है। इसका कारण यह है कि देवता सामान्यतः अविवाहित होते हैं और उनकी पत्नियां नहीं होतीं, जिन्हें देवियों का स्थान दिया जा सके। देवता के विवाहित होने पर कैसा विवाद हो सकता है, यह इससे ही प्रकट है कि यहूदियों को ईसाई इस बात से सहमत नहीं कर सके कि ईसा परमात्मा के पुत्र हैं। यहूदियों ने कहा कि ईश्वर का विवाह ही नहीं हुआ तो ईसा ईश्वर-पुत्र कैसे हो सकते हैं।

हिंदुओं में स्थिति ठीक विपरीत है। वे देवताओं की ही उपासना नहीं करते बल्कि वे देवियों की भी पूजा करते हैं। यह परंपरा आरंभ से ही है।

ऋग्वेद में अनेक देवियों का उल्लेख है, जैसे—पृथ्वी, अदिति, दिति, निश्तिग्री, इंद्राणी, पृश्नि, उषा, सूर्या, अग्नयी, वरुणानी, रोदसी, राका, सिनीवाली, श्रद्धा, अरामती, अप्सरा और सरस्वती।

पृथ्वी अत्यंत प्राचीन आर्य देवी है। उसे द्यौस्, स्वर्ग अथवा पर्जन्य की पत्नी कहा जाता है। पृथ्वी बहुत महत्त्वपूर्ण देवी है और कई देवताओं की माता कहलाती है।

अदिति भी कालक्रम की दृष्टि से प्राचीन वैदिक देवी है। उसे देवताओं की शक्तिशाली माता कहा गया है। मित्र, अर्यमन् और वरुण उसके पुत्र हैं। ऋग्वेद से यह पता नहीं चलता कि उसका विवाह किससे हुआ था। हम दिति के विषय में इससे अधिक कुछ नहीं जानते कि वह अदिति के समान किंतु उसकी विरोधिनी देवी है और अतीत काल के हिंदू पुराणों के देवों के शत्रु दैत्य उसके पुत्र थे।

देवी निश्तिग्री इंद्र की माता है और इंद्राणी इंद्र की पत्नी है। पृश्नी मारुत की माता है। उषा आकाश की पुत्री बताई गई है, भग की बहन और वरुण की रिश्तेदार तथा सूर्य की पत्नी है। सूर्या सूर्य की पुत्री और अश्विनियों अथवा सोम की पत्नी है।

अग्नयी, वरुणानी, रोदसी क्रमशः अग्नि, वरुण और रुद्र की पत्नियां हैं। अन्य देवियां या तो नदियों का मानवीकरण हैं अथवा उनका उल्लेख सविस्तार नहीं हुआ है।

इस विश्लेषण से दो बातें स्पष्ट हैं। पहली यह कि हिंदू देवता विवाह-बंधन में बंध सकते हैं और उन्हें या उनके भक्तों को इस बात से कोई परेशानी नहीं होती कि उनका आराध्य इस संबंध में एक आम आदमी से बेहतर नहीं है। दूसरी यह कि देवताओं की पत्नियां अपने आप ही पूजनीय देवियां बन जाती हैं और देव-उपासक उनकी पूजा करने लगते हैं।

वैदिक काल को छोड़कर पौराणिक काल पर आते हैं तो हमारा परिचय अनेक देवियों से होता है जैसे, देवी-उमा, सती, अंबिका, पार्वती, हैमवती, गौरी, काली, निर्ऋति, चंडी और कात्यायनी, दुर्गा, दसभुजा, सिंहवाहिनी, महिषासुरमर्दिनी, जगद्धात्री, मुक्तकेशी, तारा, छिन्नमस्तिका, जगद्गौरी, प्रत्यंगिरा, अन्नपूर्णा, गणेशजननी, कृष्णक्रोड़ा और लक्ष्मी। यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि इन देवियों में कौन क्या है। पहली मुश्किल तो यह है कि ये सभी अलग-अलग देवियां हैं या एक ही देवी के कई पर्याय हैं। उनके माता-पिता के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। न ही कोई निश्चित रूप से यह कह सकता है कि उनके पति कौन हैं।

एक विवरण के अनुसार उमा देवी, सती, पार्वती, गौरी और अंबिका एक ही देवी के पर्याय हैं। दूसरी ओर कुछ ने कहा है कि देवी दक्ष की पुत्री है, अंबिका रुद्र की भगिनी है, पार्वती के संबंध में वाराह पुराण ने उसका आविर्भाव इस प्रकार बताया[1] है—

> "ब्रह्मा जब एक बार शिव से मिलने कैलाश पर्वत पर गए तो उनसे कहा गया, "ब्रह्मा! शीघ्र कहो तुम मेरे पास क्यों आए हो?" ब्रह्मा ने उत्तर दिया, "एक शक्तिशाली असुर अंधक (अंधकार) है, जिससे सभी देव त्रस्त हैं। रक्षा का अनुरोध करने आए देवों की शिकायत लेकर मैं तुम्हारे पास चला आया।" फिर ब्रह्मा ने उत्सुकता से शिव की ओर देखा जिन्होंने विचार कर विष्णु को अपने पास बुलाया। जैसे ही इन तीन देवों ने एक-दूसरे को देखा, उनकी दृष्टि की आभा से एक नीलाभ दिव्य सुंदरी अवतरित हुई, जो नील कमल की पंखुड़ियों के समान थी और रत्नाभूषणों से अलंकृत थी। वह तुरंत ब्रह्मा, विष्णु और महेश के आगे नतमस्तक हो गई। जब उन्होंने पूछा कि वह कौन है और उसमें तीन—श्यामल, श्वेत, लाल-वर्ण क्यों हैं, तो उसने कहा, मैं आपकी दृष्टि से उत्पन्न हुई हूं। क्या आप अपनी सर्वशक्तिमान ऊर्जा से परिचित नहीं? ब्रह्मा ने उसकी प्रशंसा में कहा, "तेरा नाम त्रिकाल (भूत, वर्तमान और भविष्य) की देवी होगा, तू संसार की पालक होगी और विभिन्न पूजाओं में तेरी पूजा होगी क्योंकि तू अपने भक्तों के मनोरथ पूरे करेगी। परंतु हे देवी! तू अपने वर्णों के अनुसार तीन भाग कर ले। तब ब्रह्मा के कहे के अनुसार उसने अपने रंगों के

---

1. *विलकिंस में उद्धृत "हिंदू माइथालोजी" पृ. 290-91*

अनुसार तीन भाग कर लिए, एक श्वेत, दूसरा लाल और तीसरा श्याम। पहली अनिंद्य सुंदरी सरस्वती थी और सृष्टि रचना में उसने ब्रह्मा का हाथ बंटाया, लाल वर्ण की विष्णुप्रिया लक्ष्मी थी, जिसने विश्व का पालन किया, तीसरी पार्वती थी, जिससे शिव को अनेक गुण और शक्ति प्राप्त हुई।"

यहां यह बताने की कोशिश की गई है कि सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती एक ही देवी के तीन रूप हैं। हमें यह याद आता है कि सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी है, लक्ष्मी विष्णु की और पार्वती शिव की तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव के बीच संघर्ष भी हुआ, ऐसे में वाराह पुराण की यह व्याख्या अटपटी-सी लगती है।

गौरी कौन है? पुराण के अनुसार गौरी पार्वती का दूसरा नाम है। पार्वती गौरी[1] क्यों कहलाई? इसका कारण है कि जब शिव और पार्वती कैलाश पर्वत पर रहते थे तो उनके बीच कई बार झगड़ा हो जाता था। एक बार शिव ने उन्हें श्याम रंग की बताकर निंदा की। इस कटाक्ष से वह इतनी दुखी हुई कि घने जंगलों में चली गई और घोर तपस्या करने लगे। अंत में ब्रह्मा प्रकट हुए और उन्हें वरदान दिया, जिससे उसका वर्ण कुन्दन जैसा हो गया। इस कारण वह गौरी के नाम से विख्यात हुई।

दूसरी देवियों के विषय में यह निश्चित नहीं कि वे एक ही देवी के पर्यायवाची नाम हैं अथवा इन नामों की भिन्न-भिन्न देवियां हैं। महाभारत में अर्जुन ने दुर्गा के विषय में एक श्लोक पढ़ा जिसमें वह कहता है—[2]

> "तुझे नमन है, सिद्ध सेनानी, भद्रे मंदरावासिनी, कुमारी, काली, कपाली, कपिला, कृष्ण पिंगला, तुझे नमन है, भद्रकाली, तुझे नमन है, महाकाली, चंडी, चंड, तारिणी, वारावारुणी, (सुंदर-रंगरंजित), हे महाभाग्ये कल्याणी, ओ कराली, ओ विजया, ओ जया, ओ कृष्ण की अनुजे, महिषारक्त पायिनी, ओ उमा, शाकंभरी, तू गौरांग, तू श्यामलांग, ओ कैटभ हंत्री, ओ विद्या, तू वेदों की कला-विद्या है, सभी भूतों की महानिद्रा, ओ स्कंद (कार्तिकेय) जननि, देवी दुर्गा कमलासिनी, तू महादेवी है। मैं शुद्ध हृदय से महादेवी की स्तुति करता हूं, तेरी कृपा से मैं युद्ध में विजयी होऊं।"

इस श्लोक से यह स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त देवियों में से कुछ मात्र दुर्गा के ही पर्याय हैं। ऐसे ही दसभुजा, महिषासुरमर्दिनी, जगद्धात्री, छिन्नमस्तिका, जगद्गौरी, प्रत्यंगिरी, अन्नपूर्णा, दुर्गा के ही नाम हैं या उसके विभिन्न रूपों के नाम हैं।

इस प्रकार दो प्रधान देवियां हैं। एक पार्वती और दूसरी दुर्गा। बाकी उन्हीं के नाम हैं। पार्वती दक्ष प्रजापति की पुत्री और शिव की पत्नी है। दुर्गा कृष्ण की बहिन और शिव की पत्नी है। दुर्गा और काली के संबंध के विषय में पता नहीं चलता। अर्जुन द्वारा पढ़े

---

1. *विलकिंस, पृ. 289-90*
2. *वही, पृ. 306-7*

गए श्लोक में दुर्गा और काली एक ही हैं। परंतु लिंग पुराण में भिन्न मत प्रकट किया गया है। उसके अनुसार[1] काली और दुर्गा अलग-अलग हैं।

इतिहास का विद्यार्थी वैदिक और पौराणिक देवियों के बीच तुलना की उपेक्षा नहीं कर सकता जिसका उद्देश्य मात्र इतिहास लिखना ही नहीं, बल्कि उस इतिहास का विश्लेषण करना भी है। दोनों के बीच में एक विरोधाभास है। वैदिक देवियों की उपासना मात्र औपचारिकतावश की जाती है। उनकी पूजा मात्र इसलिए की जाती है कि वे देवताओं की पत्नियां हैं। पौराणिक देवियों की पूजा भिन्न प्रकार की है। उनकी पूजा का अपना आधार है। यह नहीं कि वे देव-पत्नियां हैं। भिन्नता इसलिए है कि वैदिक देवियां कभी रणक्षेत्र में नहीं गईं और उन्होंने किसी प्रकार का शौर्य भी नहीं दिखाया। पौराणिक देवियां रणचंडी हैं और उन्होंने वीरता दिखाई है। उनकी पूजा औपचारिकता नहीं है। उसका आधार उनकी वीरता और पराक्रम है।

कहा जाता है कि दुर्गा और दो असुरों के बीच घमासान युद्ध हुआ और उसी से दुर्गा विख्यात हुई। यह कहानी मार्कण्डेय पुराण में विस्तार से दी गई है। इसके अनुसार–[2]

> "त्रेता युग के अंत में शुंभ, निशुंभ नामक दो बलशाली असुरों ने दस हजार वर्षों तक घोर तपस्या की। इसके कारण स्वर्ग से शिव प्रकट हुए जिन्हें पता चला कि अपनी विलक्षण तपस्या के आधार पर वे अमरता का वरदान चाहते हैं। उन्होंने दोनों को बहुत समझाया और नाकाम कोशिश की कि वे किसी और वरदान के लिए मान जाएं। जब उनका मनोरथ पूरा न हुआ तो उन्होंने एक हजार साल तक और कठिन तपस्या की। शिव फिर प्रकट हुए और उनको वही वर देने से इंकार कर दिया। फिर वे सिर के बल उल्टे लटक गए और नीचे धीमी अग्नि जला ली। उनकी गर्दन से रक्त बहने लगा। उन्होंने 800 साल तक इसी तरह तपस्या की। यह सोचकर कि कहीं ऐसे प्रचंड तप से ये हमारा सिंहासन ही न छीन लें, देवतागण कांप उठे। देवराज ने एक सभा बुलाई और अपनी आशंका जताई। उन्होंने स्वीकार किया कि यह गंभीर बात है परंतु पूछा कि इसका उपाय क्या है।
>
> इंद्र के परामर्श पर कंदर्प (कामदेव) परम सुंदरी अप्सराओं–रंभा और तिलोत्तमा–को साथ लेकर महाबलि असुरों की कामुकता जगाने हेतु उनके पास भेजे गए। कंदर्प ने अपने (काम) बाण छोड़े और असुरों को घायल कर दिया। वे युगल सुन्दरियों के जाल में फंसकर मोहित हो गए और तपस्या भंग कर दी। इन सुंदरियों के साथ उन्होंने पांच हजार वर्ष बिताए। फिर उन्हें ध्यान आया कि कामुकता के कारण उनकी अमरता की आशा पर पानी फिर गया है। उनको संदेह हुआ कि यह जाल इंद्र की मिलीभगत से ही बिछाया गया है, इसलिए स्वर्ग के मोह में उन्होंने फिर पूजा आरंभ कर दी।

---

1. *विलकिंस, हिंदू माइथालोजी, पृ. 313*
2. *वहीं, पृ. 302-6*

उन्होंने अपने शरीर से मांस काट-काटकर शिव को आहुति चढ़ानी शुरू कर दी। एक हजार वर्ष तक यह क्रम जारी रहा, वे कंकाल बन गए। तब शिव प्रकट हुए और उन्हें वरदान दिया कि वे देवताओं से भी बढ़कर बलशाली होंगे।

देवताओं से अधिक बलशाली होकर उन्होंने उनसे युद्ध छेड़ दिया। दोनों पक्षों में घमासान संघर्ष के पश्चात असुर हर जगह विजयी रहे। जब इंद्र और अन्य देवताओं की स्थिति दयनीय हो गई तो उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु से हस्तक्षेप के लिए कहा। दोनों ने उन्हें शिव के पास भेज दिया। शिव ने कहा कि वह कुछ करने में समर्थ नहीं है। उन्हें याद दिलाया गया कि इसके कारण तो वही हैं, उन्हीं के वरदान के कारण वे नष्ट हो रहे हैं। तब शिव ने उन्हें देवी दुर्गा की तपस्या करने की सलाह दी। उन्होंने ऐसा ही किया। कुछ समय पश्चात देवी प्रकट हुई और उन्हें वर दिया। फिर अपने-आप एक साधारण स्त्री का रूप धारण किया और पानी का एक घड़ा लेकर वह देवताओं के बीच से गुजरी। फिर उन्होंने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया और कहा कि वे मेरी स्तुति कर रहे हैं।

यह नई देवी हिमालय पर्वत पर गई, जहां शुंभ-निशुंभ के दो दूत चंड और मुंड रहते थे। जब ये दैत्य पर्वत पर विचर रहे थे, तो उन्होंने देवी को देखा और वे उसका रूप देखकर चकित रह गए। उन्होंने अपने-अपने स्वामी से इसका वर्णन किया और उन्हें सलाह दी कि वे देवी को प्राप्त करने की कोशिश करें चाहे उन्हें अपनी वे सारी निधियां भी न्योछावर क्यों न करनी पड़ें, जो उन्होंने स्वर्ग के देवताओं से लूटी हैं।

शुंभ ने देवी के पास सुग्रीव को संदेशवाहक के रूप में भेजा कि वह कहे कि तीनों लोकों का सुख उसके महल में है। जो भेंट कभी देवताओं को चढ़ाई जाती थी, अब उसे चढ़ाई जा रही है। देवी ने कहा कि प्रस्ताव बहुत अच्छा है। लेकिन मैंने यह संकल्प किया है कि मैं उसी से विवाह रचाऊंगी जो मुझे युद्ध में जीतेगा और मेरा मान-मर्दन करेगा। सुग्रीव निष्फल लौटना नहीं चाहता था। उसने देवी से हामी भरवाने के लिए गरजकर कहा कि क्या वह उसके स्वामी को जानती है, जिसके समक्ष विश्व का कोई व्यक्ति नहीं टिक सकता चाहे वह देवता हो, दैत्य हो, अथवा मनुष्य हो? तब क्या एक स्त्री होकर वह इस प्रस्ताव को ठुकराने का दुस्साहस कर सकती है? क्योंकि मेरे स्वामी का आदेश है, अतः तुम्हें उनके समक्ष तुरंत प्रस्तुत करने को विवश कर सकता है। देवी ने कहा—यह ठीक है परंतु उन्होंने अपना संकल्प दोहराया और कहा कि वह अपने स्वामी को मनाए और वह उसके साथ अपनी शक्ति-परीक्षा करें।

दूत वापस चला गया और अपने स्वामी से वह सब कह सुनाया, जो उसने सुना था। यह सुनकर शुंभ क्रोध से भर गया और कोई जवाब न देकर उसने अपने सेनापति धूम्रलोचन को बुलाया और उसे हिमालय पर जाकर देवी को पकड़ लाने का आदेश दिया और कहा यदि कोई रक्षा के लिए आए तो उसे वहीं नष्ट कर देना।

सेनापति हिमालय पर गया और उसने देवी को अपने स्वामी का आदेश सुनाया। देवी ने मुस्कराते हुए उसे आमंत्रित किया कि वह अपने स्वामी के आदेश का पालन करे। उस वीर के आने पर देवी ने एक भयानक गर्जना की जिससे वह भस्मीभूत हो गया। इसके पश्चात उन्होंने दैत्य की सेना नष्ट कर दी। केवल कुछ भगोड़ों को छोड़ दिया, जिससे कि वे यह समाचार अपने स्वामी को दे सकें। शुंभ-निशुंभ आग बबूला हो गए और उन्होंने चंड-मुंड को भेजा। पर्वत पर जाकर उन्होंने देखा कि एक स्त्री गधे पर बैठी अट्टहास कर रही है। उन्हें देखकर वह कुपित हो गई और उनकी सेना के दस, बीस और तीस सैनिकों को एक साथ उठा-उठाकर ऐसे खाने लगी जैसे कोई फल खाता है। देवी ने फिर मुंड के बाल पकड़े और उसका सिर काटकर अपने मुख के ऊपर लटका कर उसका खून पी लिया। चंड ने जब एक वीर की यह गति देखी तो वह देवी की ओर बढ़ा, पर वह सिंह पर चढ़ गई और उस पर झपट पड़ी और उसका भी वही हाल किया जो मुंड का किया था। उसने बहुत से सैनिकों को खा लिया और घायलों का खून पी लिया।

महाबलियों ने जैसे ही यह चिंताजनक समाचार सुना, उन्होंने स्वयं जाने का संकल्प किया और अपने सैनिकों को एकत्र करके असंख्य वीरों को लेकर हिमालय की ओर बढ़े। देवताओं ने इस विशाल सेना को आश्चर्यपूर्वक देखा और देवियां महामाया (दुर्गा) की सहायता के लिए आ गईं, देवी शीघ्र ही शुंभ-निशुंभ के सेनानायक और अपने शत्रु रक्तबीज को नष्ट कर दिया। उन्होंने देखा कि देवी ने उनकी पूरी सेना का सफाया कर दिया। यद्यपि उन्होंने रक्तबीज के पूरे शरीर को छलनी कर दिया किंतु उसके रक्त की एक-एक बूंद से एक-एक सहस्र रक्तबीज पैदा हो गए। इस प्रकार असंख्य शत्रुओं ने दुर्गा को घेर लिया। देवों ने देखा कि देवी के लिए संकट उत्पन्न हो गया है। इस अवसर पर दुर्गा के साथ लड़ रही काली से कहा कि यदि वह रक्तबीज के रक्त की बूंद धरती पर गिरने से पहले ही पी जाएगी तो चंडी उससे लड़कर उसकी चाल विफल कर देगी। काली ने स्वीकार कर लिया। इस प्रकार सेना-नायक सहित पूरी सेना को मौत के घाट उतार दिया गया।

अब शुंभ-निशुंभ ने हताश होकर देवी को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारा। पहले शुंभ मैदान में आया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। बाद में दोनों महाबली काल-कवलित हुए। काली ने जमकर रक्त पिया। देवताओं और देव पत्नियों ने वीरांगना देवी की जय-जयकार की। देवी ने उन्हें आशीर्वाद दिया।"

मार्कण्डेय पुराण में विभिन्न रूपों में दुर्गा के वीरोचित कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। उसके अनुसार—

"दुर्गा के रूप में उसने दैत्यों का संदेश ग्रहण किया, दशभुजी के रूप में उसने उनकी सेना का संहार किया, सिंहवाहिनी के रूप में रक्तबीज से लड़ी, महिषासुरमर्दिनी के रूप में महिषासुर रूपी शुंभ का हनन किया। जगद्धात्री के रूप में उसने दैत्यों की सेना का संहार किया। काली के रूप में रक्तबीज का नाश किया। मुक्तकेशी के रूप में उसने दैत्यों की दूसरी सेना को समाप्त किया। तारा बनकर शुंभ को उसके वास्तविक रूप में मौत के घाट उतारा, छिन्नमस्तिका के रूप में उसने निशुंभ का वध किया, जगद्-गौरी (स्वर्णवर्णा) बनकर उसने देवताओं का अभिवादन और आभार स्वीकार किया।"

वैदिक और पौराणिक देवियों की तुलना पर कुछ दिलचस्प सवाल उठते हैं। इनमें से एक बिलकुल स्वाभाविक है। वैदिक साहित्य में असुरों के साथ युद्ध के अनेक उल्लेख हैं। ब्राह्मण साहित्य में भी उनकी भरमार है। परंतु असुरों के साथ सभी युद्ध वैदिक देवों ने लड़े। वैदिक देवियां उनमें सम्मिलित नहीं हुई थीं। पौराणिक देवियों के संबंध में स्थिति बिलकुल बदल गई थी। पौराणिक काल में भी वैदिक काल की भांति असुरों से युद्धों के विवरण हैं। फर्क यह है कि वैदिक काल में असुरों से देवता लड़े, जबकि पौराणिक काल में लड़ने का काम देवियों पर छोड़ दिया गया। पौराणिक देवियों को वह क्यों करना पड़ा जो वैदिक काल में देवताओं ने किया था? ऐसा नहीं है कि पौराणिक काल में देवता विद्यमान नहीं थे। ब्रह्मा, विष्णु और शिव मौजूद थे, जिनका पौराणिक काल में आधिपत्य रहा था। जब वे असुरों से युद्ध के लिए मौजूद थे तो देवियां इस उद्देश्य से क्यों आगे आईं? यह एक पहेली है जिसका समाधान होना चाहिए।

दूसरा सवाल यह है कि शक्ति का वह स्रोत क्या है जो पौराणिक देवियों में विद्यमान था और वैदिक देवियों में नहीं था? पौराणिकों का उत्तर है कि देवताओं की शक्ति ही देवियों में निहित थी। सामान्य सिद्धांत यह था कि प्रत्येक देव में शक्ति थी और वही शक्ति उनकी पत्नियों में विराजमान थी। यह सिद्धांत इतना प्रचलित हुआ कि देवियां शक्ति कहलाने लगीं और देवियों के उपासक शाक्त कहलाए।

इस सिद्धांत को लेकर एक-दो सवाल हैं जिनका जवाब वांछित है—

पहला यह कि पुराणों में वैसे तो कई देवियों के नाम हैं। किंतु उनकी संख्या वास्तव में पांच ही है—सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती, दुर्गा और काली। सरस्वती और लक्ष्मी, ब्रह्मा और विष्णु की पत्नियां हैं, जो शिव की भांति ही पौराणिक देवता हैं। पार्वती, दुर्गा और काली शिव की पत्नियां हैं। सरस्वती और लक्ष्मी ने किसी असुर का संहार नहीं किया और कोई वीरता नहीं दिखाई। सवाल है क्यों? ब्रह्मा और विष्णु में भी शक्ति थी फिर उस सिद्धांत के अनुसार वह उनकी पत्नियों में भी संनिहित होनी चाहिए थी। फिर सरस्वती और लक्ष्मी ने असुरों के विरुद्ध युद्ध क्यों नहीं किया? यह भूमिका केवल शिव पत्नियों के लिए ही

थी। यहां भी पार्वती की भूमिका दुर्गा से भिन्न थी। पार्वती एक सामान्य नारी दिखाई गई है, दुर्गा की भांति वह भी शिव की शक्ति है। पार्वती में शिव की शक्ति इतनी शिथिल, साधारण और निष्क्रिय क्यों है?

दूसरा सवाल यह है कि देवियों की स्वतंत्र रूप से पूजा आरंभ करने का यह औचित्य सही लगता है परंतु तार्किक और ऐतिहासिक दृष्टि से इसे स्वीकार करने में कठिनाई है। शुद्ध तार्किक दृष्टि से देखें तो यदि प्रत्येक देव में शक्ति है तो फिर वैदिक देवों में भी वह शक्ति होनी चाहिए थी। फिर वैदिक देवों की पत्नियों पर यह सिद्धांत लागू क्यों नहीं होता? यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो यह कहने का कोई औचित्य नहीं है कि पौराणिक देवों में शक्ति विद्यमान थी।

फिर ऐसा लगता है कि ब्राह्मणों ने यह नहीं सोचा कि उन्होंने मात्र दुर्गा को ही वीरांगना बताया है, जिसने असुरों का संहार किया। इससे उनके अपने ही देवता कायर सिद्ध होते हैं। ऐसा लगता है कि देवता असुरों से अपनी रक्षा नहीं कर पाए और उन्हें अपनी पत्नियों का सहारा लेना पड़ा। इस संबंध में मार्कण्डेय पुराण का एक उदाहरण ही पर्याप्त है कि पौराणिक देव कितने दुर्बल थे और ब्राह्मणों के अनुसार उन्होंने असुरों के समक्ष कैसी दुर्बलता दिखाई। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार—

> "दैत्यों के राजा महिष ने एक बार युद्ध में देवताओं को हरा दिया और इतना अभावग्रस्त कर दिया कि वे धरती पर भिखारियों की तरह घूमते थे। पहले इंद्र उन्हें ब्रह्मा के पास ले गए, फिर शिव के पास। लेकिन ये दोनों देव कोई भी सहायता करने की स्थिति में नहीं थे, इसलिए वे विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु उनका संताप देखकर इतने दुखी हुए कि उनके नेत्रों से एक प्रभा उत्पन्न हुई, उसमें से एक नारी-रूप प्रकट हुआ, जिसका नाम महामाया (दुर्गा का दूसरा नाम) था। अन्य देवताओं के मुखों से भी वैसी आभा फूटी। वह भी महामाया में समा गई, जिसका परिणाम यह निकला कि वह ऐसा आभा-पुंज बन गई जैसे कि अग्नि का पर्वत हो। वह वायुमंडल में उड़ गई और उसने दैत्यों का वध किया और देवताओं को राहत दी।"

ऐसे कायर देवों में शक्ति कैसे हो सकती है? जब उनमें शक्ति ही नहीं थी तो वे अपनी पत्नियों को शक्ति कैसे दे सकते थे? यह कहना कि देवियों में शक्ति थी, मात्र एक पहेली ही नहीं है, बल्कि एक विसंगति है। शक्ति के इस सिद्धांत का अनुसंधान क्यों किया गया, इसका स्पष्टीकरण होना चाहिए। क्या ब्राह्मणों ने बाजार में एक और बिकाऊ माल के तौर पर देवी-पूजा प्रारंभ नहीं की और देवताओं का अपमान नहीं किया?

तेरहवीं पहेली

अहिंसा की पहेली

प्राचीन आर्यों की आदतों और सामाजिक व्यवहारों की तुलना परवर्ती हिंदू समाज से करने पर हमें एक जबरदस्त बदलाव दिखाई देता है, जो सामाजिक क्रांति जैसा ही है।

आर्य एक जुआरी प्रजाति (race) के थे। आर्य सभ्यता के प्रारंभिक काल में जुआ एक विद्या के रूप में विकसित हो चुका था, यहां तक कि कई तकनीकी शब्द भी गढ़े गए। हिंदू चार युगों को कृत, त्रेता, द्वापर और कलि के नाम से जानते थे, जिसके अनुसार इतिहास का काल-विभाजन किया गया था। दरअसल, ये आर्यों द्वारा जुए में खेले जाने वाले दांव थे। सबसे सौभाग्यशाली दांव कृत कहलाता था और दुर्भाग्यपूर्ण दांव को कलि कहते थे। त्रेता और द्वापर इनके बीच में थे। प्राचीन आर्यों में केवल जुआ ही खूब विकसित नहीं था, बल्कि बाजियां भी ऊंची-ऊंची हुआ करती थीं। बड़ी-बड़ी धनराशि की बांजियां तो अन्यत्र भी थीं, लेकिन आर्यजन जो बाजियां लगाते थे उनकी तुलना में वे कुछ भी नहीं हैं। राजा नल ने अपना राज्य ही दांव पर लगा दिया और उसे वह हार बैठे थे। पांडव इससे भी बढ़कर थे। उन्होंने न केवल अपना राज्य बल्कि अपनी पत्नी द्रौपदी तक दांव पर लगा दी और दोनों को हार गए। केवल धनवान आर्य ही जुआ नहीं खेलते थे। बहुत से लोगों को इसकी लत थी। प्राचीन आर्यों में जुआ इतना फैला हुआ था कि धर्म-सूत्रों (शास्त्रों) के लेखकों को राजाओं को सलाह देनी पड़ी थी कि कठोर नियम बनाकर उस पर नियंत्रण किया जाए।

आर्यों में मैथुन के संबंध में स्वच्छन्दता विद्यमान थी। एक समय था, जब वे विवाह को स्त्री-पुरुष के बीच स्थायी बंधन नहीं मानते थे। यह महाभारत से स्पष्ट है, जहां पांडुपत्नी कुंती पांडु के यह कहने पर कि वह किसी अन्य से पुत्र प्राप्त करे, वह बताती है कि उसको पहले ही एक पुत्र की प्राप्ति हो चुकी है। ऐसे भी उदाहरण हैं कि बहन-भाई, मां-बेटे, पिता-पुत्री और नाना, दादा-पौत्रियों तथा नातिनों के बीच शारीरिक संबंध थे। स्त्रियों में स्वच्छंदता थी। यह खुली स्वच्छंदता थी, जहां कई पुरुष एक स्त्री को भोगते थे और उस पर किसी का निजी अधिकार नहीं था। ऐसी स्त्रियां गणिकाएं कहलाती थीं। आर्यों की स्त्रियों में स्वच्छंद मान्यता और भी थी। इसके अनुसार एक स्त्री कई पुरुषों से बंधी होती थी और प्रत्येक का दिन निर्धारित होता था। वह स्त्री वारांगना कहलाती थी। वेश्यावृत्ति खूब प्रचलित थी और निकृष्टतम रूप धारण कर

चुकी थी। दुनिया में और कहीं भी वेश्याएं सार्वजनिक मैथुन के लिए सहमत नहीं होतीं। लेकिन यह प्रथा प्राचीन आर्यों में थी। प्राचीन आर्यों में पशुओं के साथ मैथुन भी प्रचलित था और ऐसे महारथियों में कुछ सम्मानित ऋषि भी थे।

प्राचीन आर्य पियक्कड़ भी थे। मदिरा उनके धार्मिक कृत्यों का अनिवार्य अंग थी। वैदिक देवता मदिरा पीते थे, दैवी मदिरा सोम कहलाती थी। क्योंकि आर्यों के देवता ही मद्यपान करते थे, इसलिए आर्यों को मदिरापान में कोई नैतिक संकोच की बात नजर नहीं आती थी। दरअसल शराब पीना आर्यों का धार्मिक कर्तव्य था। आर्यों में इतने सोम-यज्ञ होते थे कि शायद ही कोई दिन मद्यपान से बचता होगा। सोम-यज्ञ केवल तीन उच्च वर्णों यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों तक सीमित था। इसका अर्थ यह नहीं कि शूद्र मदिरापान से मुक्त थे। उनके लिए सोमपान निषिद्ध था, अतः वे सुरा पीते थे जो घटिया पेय था। घटिया शराब बाजार में मिलती थी। केवल आर्य पुरुषों को ही शराब की लत नहीं थी बल्कि उनकी स्त्रियों को भी यह लत थी। कौषीतकि गृह्य-सूत्र 1.11-12 में परामर्श दिया गया है कि चार अथवा आठ ऐसी स्त्रियां जो विधवा न हों, भोजन के साथ मदिरापान कर, विवाह-संस्कार की पूर्व रात्रि में नृत्य के लिए बुलाई जाएं। नशीली शराब पीने की प्रवृत्ति केवल गैर-ब्राह्मण स्त्रियों तक सीमित नहीं थी। ब्राह्मण स्त्रियां भी उसकी आदी थीं। मदिरापान कोई पाप नहीं, व्यसन था। यह एक सम्मानजनक प्रथा थी। ऋग्वेद कहता है–

> "मदिरापान से पूर्व सूर्योपासना" की जाए।

यजुर्वेद कहता है–

> "हे देव सोम! सुरा से सुदृढ़ और शक्तिमान होकर अपनी शुद्ध आत्मा से देवों को प्रसन्न कर, यज्ञकर्ताओं को पीने को अमृत दे और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को शक्ति।"

मंत्र ब्राह्मण में कहा गया है कि–

> "जिससे स्त्रियां पुरुषों को आनन्दित करें और जिससे जल मदिरा में परिणित हो जाए" (पुरुषों के आनन्द हेतु) आदि।

रामायण के उत्तरकांड में स्वीकार किया गया है कि राम और सीता दोनों ने मदिरापान किया। उसमें कहा गया है–

> "जैसे इंद्र ने अपनी पत्नी शचि को मदिरापान करते देखा, वैसे ही रामचन्द्र ने देखा कि सीता ने परिष्कृत मधु, जो मदिरा कहलाता था, पिया। सेवकगण रामचन्द्र के लिए मांस और मीठे फल लाए।"

ऐसा ही प्रसंग *महाभारत* के 'उद्योग पर्व' में कृष्ण और अर्जुन के संबंध में आया है–

"अर्जुन और कृष्ण मधु से निर्मित मादक मदिरा पी रहे थे और उन्होंने गले में हार डाल रखे थे। वे बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण धारण किए हुए थे और सोने के रत्न-जड़ित आसन पर बैठे थे। मैंने देखा कि श्रीकृष्ण के पांव अर्जुन की गोद में हैं और अर्जुन के पांव द्रौपदी और सत्यभामा की गोद में हैं।"

सबसे बड़ा बदलाव खाने को लेकर हुआ। आजकल हिंदू आहार के बारे में बहुत सोच-विचार करते हैं। आमतौर पर सहभोज में दो तरह की सीमाएं हैं। हिंदू किसी गैर हिंदू का पकाया भोजन नहीं करता। हिंदू किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ का बनाया खाना नहीं खाता, जो ब्राह्मण अथवा उसी की जाति का न हो। हिंदू केवल यही नहीं देखता कि वह किसका बना खाना खाए बल्कि यह भी ख्याल रखता है कि क्या खाए। आहार की दृष्टि से हिंदुओं की दो श्रेणियां हैं–1. शाकाहारी, और 2. मांसाहारी

मांसाहारियों की भी कई उपश्रेणियां हैं–

वे जो सभी मांस और मछली खाते हैं।

वे जो मात्र मछली खाते हैं।

जो मांस खाते हैं, उनकी भी कई उपश्रेणियां हैं–

1. वे जो गाय को छोड़कर किसी भी पशु-पक्षी का मांस खाते हैं।
2. वे जो गाय सहित सभी प्रकार का मांस खाते हैं।
3. वे जो मांस खाते हैं, परंतु गाय का नहीं (मुर्दा या जिंदा), मुर्गे का भी नहीं।

आहार की दृष्टि से हिंदुओं में ब्राह्मणों के दो वर्ग हैं–1. पंच-गौड़, और 2. पंच-द्रविड़।

इनमें से पंच द्रविड़ पूर्ण शाकाहारी हैं। हिंदुओं में अछूत लोग मांसाहारी हैं। वे केवल बकरी और पक्षियों का मांस ही नहीं खाते बल्कि गाय का मांस भी खाते हैं, चाहे वह जिंदा हो या मुर्दा। मध्यमार्गी गैर-ब्राह्मणों की अलग आदतें हैं। उनमें कुछ तो ब्राह्मणों की तरह शाकाहारी हैं और शेष मांसाहारी हैं। उनमें से कोई भी गाय का मांस नहीं खाता।

एक और तथ्य ध्यान देने योग्य है। वह है खाने के लिए जानवरों को मारना। कोई हिंदू यह काम नहीं करेगा। खाने के लिए भी, केवल एक छोटी सी जाति–खटीक–ही पशुओं को मारती है। हिंदुओं में कोई कसाई नहीं होता। यहां तक कि अछूत भी पशुओं को नहीं मारते। वह मुर्दा गाय का मांस खाते हैं, लेकिन गाय को मारते नहीं हैं। आजकल भारत में कसाई मुसलमान हैं। अगर किसी हिंदू को खाने के लिए मांस चाहिए होता है, तो वह मुसलमान को बुलाता है। सभी हिंदू अहिंसा में विश्वास करते हैं।

भारत में शाकाहार का चलन कब से है? अहिंसा के प्रति आस्था कब पैदा हुई?

बहुत से हिंदू इस सवाल को टाल जाते हैं। वे कहते हैं कि शाकाहार और अंहिसा भारत के लिए कोई नई बात नहीं है।

इस विवाद पर जो साक्ष्य उपलब्ध हैं, उनसे पता चलता है कि वर्तमान हिंदुओं के पूर्वज प्राचीन आर्य न केवल मांसाहारी थे बल्कि वे गोमांस भी खाते थे। निम्नांकित साक्ष्य इस संबंध मे पर्याप्त हैं–

ये निर्विवाद हैं।

मधुपर्क का उदाहरण लें।

प्राचीन आर्यों में अतिथि सत्कार के लिए एक स्थापित रीति थी, जिसे **मधुपर्क** कहते थे। उसका विस्तृत विवरण विभिन्न गृह्य-सूत्रों में मिलता है। अधिकांश गृह्य-सूत्रों में 6 व्यक्ति मधुपर्क के पात्र बताए गए हैं। उनके नाम हैं– 1. ऋत्विज् अथवा यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण, 2. आचार्य, 3. वर, 4. राजा, 5. स्नातक और, 6. यजमान का प्रिय कोई अन्य व्यक्ति। इस सूची में कुछ लोग अतिथि को जोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त ऋत्विज, राजा और आचार्य को छोड़कर अन्यों को वर्ष में एक बार ही मधुपर्क दिया जाता था। ऋत्विज, राजा और आचार्य जब भी आते, उन्हें तभी मधुपर्क दिया जाता था। इस रीति में पहले अतिथि के पांव धुलाए जाते थे, फिर कुछ मंत्रों के उच्चारण के साथ मधुपर्क पिया जाता था।

मधुपर्क में क्या-क्या होता है? मधुपर्क का शाब्दिक अर्थ है ऐसा संस्कार जिससे किसी व्यक्ति के आचमन में मधु उंडेला जाता है। शुरू में यही मधुपर्क था लेकिन आगे चलकर इसकी सामग्री बढ़ती गई। मधु में काफी कुछ मिलाया जाने लगा। जब इसका प्रचलन शुरू हुआ तो इसमें दही, शहद और मक्खन होता था। फिर इसमें पांच पदार्थ और मिलाए गए–दही, मधु, घी, यव और जौ। फिर इसमें नौ पदार्थ और मिलाए जाने लगे। कौशिक सूत्र में मिश्रण के लिए नौ पदार्थ हैं। ब्रह्म (दही और मधु), ऐन्द्र (पायस), सौम्य (दही और घी), मौसल (सायने और घी, इसका उपयोग केवल सौत्रामणी और राजसूय यज्ञ में होता था), वरुण (पानी और घी), श्रवण (तिलों का तेल और घी), परिव्राजक (तिलों का तेल और खली)। अब हम मानव गृह्य-सूत्र पर आते हैं। इसके अनुसार वेद कहते हैं कि मधुपर्क बिना मांस के नहीं बनता। इसलिए विधान है कि गाय नहीं तो बकरे का मांस अथवा पायस (=खीर) दिया जाए। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र 1,13,14 के अनुसार अन्य मांस प्रस्तुत किया जाना चाहिए। बौधायन गृह्यसूत्र कहता है–(1.2.51-54) गाय नहीं तो बकरी या भेड़ का मांस दिया जाना चाहिए या वन्य जंतु का मांस (हिरन आदि का) भी दिया जा सकता है क्योंकि बिना मांस के मधुपर्क नहीं बन सकता। कोई मांस देने में सक्षम न हो तो कंदमूल पकाए। परंतु अंत में मांस मधुपर्क का अनिवार्य हिस्सा बन गया। दरअसल कुछ गृह्य-सूत्रों में जोर देकर कहा गया है कि बिना मांस के

मधुपर्क नहीं बन सकता। उनका आधार ऋग्वेद (8,101.5) है, जिसमें कहा गया है–"मधुपर्क बिना मांस के न हो"।

इस तरह, मांस खाना आम बात थी। ब्राह्मण से शूद्र तक सभी मांसाहारी थे। धर्म-सूत्रों में जंगली जानवरों, पक्षियों, और मछली के मांस के बारे में अनेक नियम हैं। गौतम 17.27-31, आप.ध.सू. 1.5.17.35, वस. धर्म-सूत्र 14.39-40, यज्ञ. 1.177, विष्णु ध.सू. 51.6, शंख (अपरार्क पृ. 1167 पर उद्धृत), रामायण (किष्किंधा 17.39) मार्कण्डेय पुराण (35.2-4) में कहा गया है कि साही खरगोश, श्वविध (सूअर की एक किस्म), छिपकली, गैंडा और कछुआ (उक्त कई ग्रंथों में गैंडे का नामोल्लेख नहीं है) को छोड़ शेष सब पांच पंजे वाले जीवों का मांस भक्ष्य है। गौतम का कहना है कि ऊपर-नीचे के जबड़े वाले जीवों, झबरे और चिकनी त्वचा वाले जीवों (जैसे सांप) मुर्गों, जंगली सुअर, गाय और बैल का मांस नहीं खाना चाहिए। आप. ध.सू. 1.5.17.29-31 पहले तो कहता कि एक खुरवाले ऊंट और गवय (नील गाय), सुअर, सरभ और गाय का मांस न खाएं, परंतु बाद में कहता है कि (दुधारू) गौओं और बैल का मांस खाया जा सकता है क्योंकि वाजसनेयक (यजुर्वेदियों) के अनुसार इनका मांस शुद्ध होता है। आ.ध.सू. (11.2.5.15) के अनुसार वेद शिक्षकों के लिए मांस खाना वर्जित है।

(अपूर्ण। शेष अंश अप्राप्य)

चौदहवीं पहेली

हिंसा की ओर वापसी

"हिंसा से अहिंसा तक" अहिंसा की कहानी का केवल एक हिस्सा है। कहानी का एक दूसरा हिस्सा भी है, जिसकी व्याख्या "हिंसा की ओर वापसी" शीर्षक के अंतर्गत की जा सकती है। कहानी के दूसरे हिस्से से यह स्पष्ट हो जाएगा कि तंत्र और तंत्रवाद की धार्मिक परंपराएं थीं, जिनका संदर्भ पहले दिया जा चुका है।

तांत्रिक पूजा के लिए "पंच मकार" अनिवार्य हैं। इन पंच मकारों में निम्न वस्तुएं होती हैं—

1. विभिन्न प्रकार के तरल पदार्थ एवं मद्य पान (मद्य)
2. मांस-भक्षण (मांस)
3. मछली-भक्षण (मत्स्य)
4. भुने अनाज खाना (मुद्रा)
5. सहवास (मैथुन)

इस समय इस बारे में कुछ भी कहना अनावश्यक है कि मैथुन धार्मिक कर्म-कांड का एक अंग है। यहां मद्य और मांस का प्रसंग ही काफी होगा।

तंत्र के प्रथम चार कार्यों के लिए बारह प्रकार की मदिरा का विधान है। इसके लिए तीन प्रकार की शराब और तीन प्रकार का मांस बताया गया है। कई संहिताएं लिख चुके एक प्राचीन ऋषि पौलस्त्य ने भी बारह प्रकार की मदिरा का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं—

1. पनस (कटहल) से निकाली गई शराब (पानसी), जिसे (कटहल-शराब) कहा जाता है,
2. अंगूर से बनी (द्राक्षा),
3. खजूर से बनी (खर्जूरी),
4. सामान्य ताड़ी से बनी (ताड़ी)
5. नारियल से बनी (नारिकेल),
6. ईख से बनी (इक्षु),
7. माधविका के पौधे से बनी मदिरा (माधवी),

8. मिर्च व चटपटी चीजों से बनी (सैरा),
9. रीठी से बनी (आरिष्ट),
10. शहद से बनी (मधुका),
11. शीरे से तैयार रम के समान (जिसे गौडी या कभी-कभी मैरेय भी कहा जाता है),
12. चावल और अन्य अनाजों से बनी मदिरा अरक (सुरा, वारुणी या पैष्टी)।

उपर्युक्त मादक द्रव्यों के साथ जिनका बार-बार उल्लेख हुआ है, वे हैं तन्का (सेब के वृक्ष से निर्मित) कोली उन्नाव से बनी और कादम्बरी कदंब (कदम) के फूलों से बनी शराब); इनमें अंतिम मदिरा अर्थात कादंबरी कृष्ण के भाई बलरामजी को बहुत पसंद थी।

मांस पक्षियों, जानवरों या मछली का हो सकता है। मादक द्रव्यों का आनन्द लेने के लिए भुना अन्न खाया जाता है। प्रत्येक मद्य के अपने गुण और लाभ बताए गए हैं। उन्हीं के अनुसार उसका पान किया जाता है। इस तरह एक मदिरा से मोक्ष मिलता है, तो एक से ज्ञान, और दूसरी से शक्ति, जहां एक से संपदा मिलती है तो एक शत्रुनाशी है, दूसरी रोगहारी, एक पापनाशी है और एक आत्मा को शुद्ध करती है।"

तांत्रिक पूजा बंगाल के आंतरिक हिस्सों में पहुंच गई थी। अपने अनुभवों के आधार पर राजेन्द्र लाल मित्र कहते हैं–[1]

> "मैं कलकत्ता के एक उच्च संभ्रांत परिवार से संबद्ध एक अति सम्मानित महिला को जानता था, जो कौल संप्रदाय से संबंधित थी और पिछहत्तर साल तक जीवित रही। ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने अपनी प्रार्थना (जिसे वह प्रतिदिन सुबह-शाम करती थी) कभी अपनी जीभ को सींक से अरक (शराब) छुआए बिना और भगवान की पूजा के फूलों पर शराब छिड़के बिना की हो। मुझे इस बात में संदेह है कि उसने अपने जीवन-काल में कुल मिलाकर एक गिलास अरक पिया हो और यह निश्चित है कि उसको मदिरापान के सुख का ध्यान भी नहीं था। परंतु एक आस्थावान कौल के अनुकूल वह अपने धर्म-पालन के लिए धर्मभीरुता के कारण प्रतिबद्ध थी। और भी हजारों का यही हाल है। मुझे इसका पूरा विश्वास है कि बंगाल के जिन हिस्सों में अरक सहज उपलब्ध नहीं है, भक्त महिलाओं ने उसका विकल्प ढूंढ लिया है; वे धातु से बनी घंटी (पात्र) में नारियल का दूध डालती हैं या तांबे के बर्तन में कुछ बूंद दूध डाल लेती हैं। बहरहाल, पुरुष इतने संयगी नहीं। तंत्र का विधान पांच प्यालों का है। प्याला ऐसा होता है कि उसमें पांच तोला या दो औंस आती है यानी वे एक दिन में दस औंस अरक ले सकते हैं।"

---

1. राजेन्द्रलाल मित्र, इण्डो-आर्यन्स, पृ. 405-6

तांत्रिक पूजा बंगाल के एक छोटे से अंचल तक सीमित नहीं है जैसा कि महामहोपाध्याय जादवेश्वर तर्करत्न[1] ने कहा है–

> 'जैसे कि बंगालियों की उच्चजातियां शाक्त, वैष्णव और शैवों में विभाजित हैं, वैसा ही एक प्रकार से कामरूप, मिथिला, उत्कल अथवा कलिंग और कश्मीरी पंडितों के साथ है। शक्ति मंत्र, शिवमंत्र, तथा विष्णु मंत्र प्रत्येक तांत्रिक है। दक्षिणात्यों में महामहोपाध्याय सुब्राह्मण्यम् शास्त्री और कई अन्य शाक्त हैं। परिनिर्वृत्त (लेट) महामहोपाध्याय राम मिश्र शास्त्री भागवताचार्य और कई अन्य वैष्णव थे, और हैं। महामहोपाध्याय शिवकुमार शास्त्री तथा कई अन्य शैव हैं। वृंदावन में अनेक शाक्त और साथ ही वैष्णव ब्राह्मण हैं। हालांकि महाराष्ट्र की कुलीन जातियों और अन्य दक्षिण भारतीय प्रदेशों में शैव और वैष्णव; शाक्तों की अपेक्षा अधिक हैं। पाशुपत और जंगम पथ के अनुयायी शैव हैं जबकि माधवाचार्य और रामानुजाचार्य के वैष्णव उत्तर-पश्चिम में राम मंत्र में दीक्षित हैं, जो केवल तंत्र में मिलता है। इस लेखक के अनुसार पंडा और श्री पुरुषोत्तम सभी शाक्त हैं और कामाख्या देवी के सभी पुंजारी वैष्णव हैं'।"

तंत्र और तंत्र-पूजा की शुरुआत कब हुई? इसका निश्चित समय बताना तो संभव नहीं है लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि यह काल मनु के बाद का है। तंत्र विकास का यह पक्ष अत्यधिक चकित करता है। तंत्रों ने न केवल मांस और मदिरा पर मनु द्वारा लगाए गए प्रतिबंध तोड़े बल्कि मांस खाने और मदिरा पीने को आस्था का साधन भी बना दिया।

यह तथ्य चकित करने वाला है कि ब्राह्मणों ने तंत्रों और तंत्र-पूजा को प्रोत्साहित किया। तंत्रों की वेदों में आस्था नहीं है। तांत्रिकों का कहना है कि वेद एक बाजारू औरत के समान है, जिसे चाहे जो भी भोग सकता है, लेकिन तंत्र एक कुलीन नारी है जो एक ही से बंधी है, एकांत में रहती है। ब्राह्मणों ने तंत्र का कभी खंडन नहीं किया बल्कि उन्होंने इसे पंचम वेद माना। मनुस्मृति के विख्यात भाष्यकार सनातनी ब्राह्मण कुल्लूक भट्ट ने कहा कि श्रुतियां दो हैं, वैदिक और तांत्रिक।

ब्राह्मणों ने न केवल तंत्रों का खंडन नहीं किया बल्कि वास्तव में तंत्र-पूजा को प्रोत्साहित भी किया। मातृका भेद तंत्र में शिव अपनी पत्नी पार्वती से ऐसे कहते हैं–[2]

> "हे मृदुभाषी देवी! ब्राह्मणों को मदिरा पीने से मोक्ष प्राप्त होता है। मैं तुम्हें एक महान सत्य बताता हूं। हे पर्वत-पुत्री! जब मैं कहता हूं कि जो

---

1. *अपने ग्रंथ तंत्र के सिद्धांत भाग-1 परिचय पृष्ठ 38 में एवलान द्वारा उद्धृत।*
2. *इण्डो-आर्यन्स में राजेन्द्रलाल मित्र द्वारा उद्धृत।*

ब्राह्मण मदिरा पान और उसके साथ के अन्य काम करता है वह स्वयं शिव हो जाता है। जैसे जल में जल मिल जाता है, धातु में धातु घुल जाती है, जैसे एक घड़े का सीमित आकार एक बड़े आकार के पात्र में विलीन हो जाता है और वायु में वायु समा जाती है, इसी प्रकार ब्राह्मण विश्वात्मा ब्रह्म से एकाकार हो जाता है।"

"इस संबंध में बिलकुल भी संदेह नहीं कि दिव्यता का समरूपता और परम-सुख के अन्य रूप क्षत्रियों व दूसरों के लिए हैं, लेकिन सच्चा ज्ञान मादक द्रव्य के बिना बिलकुल भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतः ब्राह्मण को हमेशा इसका सेवन करना चाहिए। वेदों की जननी गायत्री को रटकर कोई पंडित नहीं बन सकता। पंडित तभी बनता है जब उसे ब्रह्म-ज्ञान हो। देवताओं के लिए ब्रह्म ही अमृत है और धरा पर यह अरक है (चावल से बनी शराब) ही अमृत है, क्योंकि इसी के माध्यम से देवत्व (सुरत्व) की स्थिति प्राप्त होती है। इसलिए यह सुरा कहलाती है।

ब्राह्मणों ने पितामह मनु को क्यों नकार दिया और दुबारा मांस-मदिरा का सेवन क्यों शुरू कर दिया जबकि मनु ने इसे बंद कर दिया था? यह एक पहेली है।

पन्द्रहवीं पहेली

अहिंसक देवता के साथ रक्त-पिपासु देवी का संबंध क्यों?

जब ब्राह्मणों ने मांस खाना और मदिरा पीना शुरू कर दिया तो उन्हें पुराणों में पशुबलि की वकालत करने में कोई हिचक नहीं हुई। एक पुराण का विशेष उल्लेख करना जरूरी है। वह है काली पुराण। यह पुराण स्पष्ट रूप से देवी काली की पूजा को प्रचारित करने के लिए लिखा गया था। इस पुराण में एक अध्याय का नाम ही 'रुधिर अध्याय' है।

मैं रुधिर अध्याय का सारांश देता हूं। इस अध्याय[1] में शिव ने तीन पुत्रों बेताल, भैरवर और भैरव को निम्न प्रकार से संबोधित किया है–

> "मेरे पुत्रो! देवताओं का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए संपादित होने वाले संस्कारों और नियमों के विषय में, मैं तुम्हें बताता हूं।"
>
> "वैष्णवी तंत्र में जो प्रावधान किया गया है, उनका सभी अवसरों पर सभी देवताओं को बलि चढ़ाकर पालन किया जाए।"
>
> "पक्षी, कच्छप, घड़ियाल, मीन, वन्य जंतुओं की नौ प्रजातियां, भैंसा, वृषभ, बकरा, नेवला, जंगली सुअर, दरियाई घोड़ा, मृग, बारहसिंगा, सिंह, बाघ, मनुष्य और बलिदाता का स्वयं का रक्त चंडिका देवी और भैरवों की पूजा के उपयुक्त पदार्थ हैं।"
>
> "बलि चढ़ाने से ही राजाओं को सुख, स्वर्ग और शत्रु पर विजय प्राप्त होती है।"
>
> "मछली और कच्छप के चढ़ाने से देवी एक महीने की अवधि के लिए खुश रहती है और मगरमच्छ से तीन महीने तक, वन्य जंतुओं की नौ प्रजातियों के रक्त से देवी नौ महीने प्रसन्न रहती है और इस अवधि में वह भक्त का कल्याण करती है। जंगली बैल, बड़ी छिपकली के रक्त से एक वर्ष और मृग तथा जंगली सूअर से बारह वर्ष तक संतुष्ट रहती है। सरभ

---

1. इस अध्याय का डब्लू.सी. ब्लैकियर ने अंग्रेजी में अनुवाद किया था, जो एशियाटिक अनुसंधानों की पत्रिका में प्राप्य है।

का रक्त देवी को पच्चीस वर्ष तक संतुष्ट रखता है, भैंस और दरियाई घोड़े का रक्त एक सौ वर्ष और बाघ का भी इतने ही वर्ष संतुष्ट रखता है। सिंह और बारहसिंगा और मानव-जाति का रक्त एक हजार वर्ष तक प्रसन्न रखता है। इनके मांस से भी उतनी ही अवधि तक देवी की संतुष्टि होती है, जितने समय तक इनके रक्त से। अब दरियाई घोड़े और मृग के मांस तथा रोहू मछली के चढ़ाने का फल सुनो।"

"मृग और दरियाई घोड़े के मांस से देवी पांच सौ वर्ष तक और रोहू मछली तथा बारहसिंगे से मेरी प्रिया (काली) तीन सौ वर्ष तक संतुष्ट रहती है।"

"आठों पहर में दो बार पानी पीने वाली, रेवड़ की प्रमुख, कृशकाय बच्चों वाली इकरंगी बकरी **बर्ध्रिनासा** कहलाती है। वह सर्वोत्तम हव्य (देवताओं को चढ़ाने योग्य पदार्थ) और कव्य (मृतात्माओं को चढ़ाने योग्य पदार्थ) है।"

"नीली ग्रीवा, लालशीर्ष, श्याम टांगों और श्वेत पंखों वाला पक्षी भी **बर्ध्रिनासा** कहलाता है। वह पक्षीराज है और मेरा तथा विष्णु का प्रिय है।"

"निम्नांकित विधि से दी गइ मानव-बलि से देवी एक हजार वर्ष तक प्रसन्न रहती है और तीन मनुष्यों की बलि से एक लाख वर्ष तक। मेरे रूपधारी कामाख्या, चण्डिका और भैरव मनुष्य के मांस से एक हजार वर्ष के लिए संतुष्ट हो जाते हैं। रक्त का अर्घ्य पवित्र मंत्रों से अमृत बन जाता है, कामाख्या को शीश अर्पित किया जाए तो वह अति प्रसन्न होती है। जब ज्ञानी देवी को चढ़ावा चढ़ाएं तो रक्त और शीश अर्पित करें और जब अग्नि को आहुति दें तो मांस डालें।"

"भक्त इस बात से सचेत रहें कि अशुद्ध मांस अर्पित न किया जाए क्योंकि वे स्वयं शीश और रक्त को अमृत मानते हैं।"

"बेल पर लगने वाला फल, गन्ना, नशीली मदिरा, सड़ाई हुई मदिरा भी अन्य आहुतियों के समान माने जाते हैं और देवी को उतने काल तक प्रसन्न रखते हैं जितने तक बकरी की बलि रखती है।"

"बलि के लिए चन्द्रहास सर्वोत्तम हथियार है, छुरे का दूसरा स्थान है जबकि कुदाली एक निकृष्ट साधन है।"

"इन शस्त्रों के सिवाय बलि के लिए बरछी अथवा बाण का प्रयोग न किया जाए क्योंकि उस बलि को देवी स्वीकार नहीं करती और बलिदाता मर जाता है, और जो अपने हाथों बलि के पशु अथवा पक्षी का शीश मरोड़ देता है, वह भी उतना ही पापी है, जितना ब्रह्म-हत्यारा, उसे भारी दुख झेलने पड़ते हैं।"

"ज्ञानी को इस उद्देश्य से बनी कुल्हाड़ी को मंत्रों से पवित्र करके प्रयोग में लाना चाहिए जैसा कि दुर्गा और कामाख्या के विषय में विशेष रूप से उल्लेख है।"

"काली का नाम दो बार लिया जाए, फिर कहा जाए **'देवी बज्रेश्वरी लौह दंडायै नमः'** ये शब्द इस प्रकार उच्चारे जा सकते हैं—"जय! काली! काली जय! देवी! दामिनीदेवीलौहखड्गधारी।" फिर वह कुल्हाड़ी अपने हाथ में ले और निम्नांकित काल-रात्र्य मंत्र से फिर अग्नि चेतन करे।"

"बलिदाता कहे—हरंग-हिरंग, काली, काली' भयंकर दांतों वाली देवी, खा, काट, अनिष्ट हर, कुल्हाड़ी से काट, झुक, झपट, रक्त पी, स्फेंग, रक्षा कर, रक्षा कर, काली को नमस्कार।" यह काली वंदना काल-रात्र्य मंत्र है।"

"इस काल-रात्र्य मंत्र से जब कुल्हाड़ी का वार किया जाता है तब काल-रात्रि (अंधकार की देवी) स्वयं उस कुलहाड़ी से बलिदाता के शत्रु का संहार करती है।"

"बलिदाता को पूर्व निर्देशानुसार बलि देनी चाहिए और बलि-पशु से निम्न प्रकार कहें।"

"खुद उस स्वयंभू परमात्मा ने प्राणी इसलिए बनाए थे ताकि इनकी यज्ञों में बलि दी जा सके। इसलिए मैं तेरा जीवन लेकर, बिना पाप लिए, तेरी बलि दे रहा हूं।"

"बलिदाता उस देवता का नाम ले, जिसके लिए बलि दी जा रही हो। वह प्रयोजन बताए, जिसके लिए बलि दी जा रही है और ऊपर बताए मंत्र के साथ बलि चढ़ा दे। उसका मुख उत्तर को हो अथवा बलिदाता अपना मुख उत्तर में रखे और बलि-पात्र को पूर्व दिशा में रखें। बलि चढ़ाने के बाद ऊपर बताए अनुसार रक्त में नमक जरूर मिलाया जाए।"

"जिस पात्र में रक्त अर्पित किया जाए, वह भक्त की परिस्थिति के अनुकूल हो सकता है। सोने का, चांदी का, तांबे का, पीतल का, दोना अथवा मृदापात्र (मिट्टी का बर्तन), जर्मन सिलवर सी सफेद धातु का अथवा बलि में प्रयुक्त होने वाले किसी काष्ठ का पात्र भी मान्य हैं।"

"वह लौह-पात्र अथवा पशुओं की खाल या वृक्ष-छाल, कांसे या रांगे या सीसे के बर्तन में रक्त भेंट न किया जाए, स्रुव या स्रुचू नामक पवित्र बर्तनों अथवा भूमि पर भेंट न चढ़ाई जाए। घट (घड़े) का प्रयोग भी न किया जाए। रक्त धरती पर न उंड़ेला जाए। वह पात्र उपयोग में न लाया जाए, जिसका प्रयोग अन्य अवसरों पर देवताओं को भोग लगाने के लिए किया जाता है। जो व्यक्ति संपदा चाहता है, वह इन पात्रों का उपयोग न करे। मानव-रक्त केवल धातु अथवा मिट्टी के बर्तन में चढ़ाया जाए। पत्तों के बने द्रोण (दोने) अथवा वैसे ही पात्रों में न चढ़ाया जाए।"

"अश्वमेध यज्ञ को छोड़कर अश्व बलि देना अनुचित है। गजमेध के अतिरिक्त हाथी की बलि भी अनुचित है। राजा यह देखें कि इन अवसरों

को छोड़कर यह बलि न दी जाए। किसी भी दशा में ये देवियों को न चढ़ाए जाएं। अवसर पड़ने पर अश्व के स्थान पर जंगली सांड को बलि नहीं चढ़ाया जा सकता है।"

"ब्राह्मण देवी को कभी सिंह अथवा बाघ या अपने रक्त की बलि न दें, न ही नशीली शराब चढ़ाएं। यदि कोई ब्राह्मण सिंह, बाघ अथवा मानव की बलि चढ़ाता है तो वह नरक में जाएगा और जितने समय धरती पर रहेगा, दुख-दारिद्र्य भोगेगा।"

"यदि कोई ब्राह्मण अपना रक्त अर्पित करता है तो वह ब्रह्महत्या के समान है और यदि वह मादक मदिरा चढ़ाता है तो वह ब्राह्मण नहीं रहता।"

"कोई क्षत्रिय मृग न चढ़ाए; यदि वह चढ़ाता है तो ब्रह्महत्या का भागी होता है। जहां कहीं सिंह, बाघ और मानव-बलि की आवश्यकता हो तो तीन कार्य किए जाएं। सिंह, बाघ और मानव की मक्की या जौ के गीले आटे की आकृतियां बना ली जाएं, उनकी बलि इसी प्रकार चढ़ाई जाए जैसे जीवित प्राणियों की चढ़ाई जाती है। कुल्हाड़ी मंत्रोचारण के साथ चलाई जाए।"

"यदि कई पशुओं की बलि देनी हो तो केवल दो अथवा तीन को ही देवी के समक्ष लाना पर्याप्त है। उनमें सभी की उपस्थिति मानी जाएगी। हे भैरव! मैंने तुम्हें उत्सव की सामान्य बातें बता दी हैं और यह भी बता दिया है कि बलि कैसे हो और किन अवसरों पर कौन से मंत्र पढ़े जाएं।"

"जब देवी भैरवी या भैरव को भैंस की भेंट चढ़ाई जाए तो बलि-पशु के समक्ष निम्नांकित मंत्र पढ़ा जाए–

"हे भैंस, जिस रीति से तू घोड़ों का नाश करती है, जिस रीति से तू चंडिका तक जाती है, उसी प्रकार तू मेरे शत्रु का विनाश कर और मुझे समृद्ध बना।"

"हे मृत्यु के युद्धाश्व! श्रेष्ठ और अविनाशी स्वरूप, मुझे चिरायु कर और विख्यात कर। हे भैंस, तुझे नमन!"

"अब मानव-रक्त की भेंट चढ़ाने संबंधी विवरण सुनो।"

"मानव की बलि पवित्र पूजा-स्थल पर अथवा श्मशान में दी जाए। पूजा ऊपर बताई विधि से श्मशान क्षेत्र में या कामाख्या मंदिर अथवा पहाड़ी पर की जाए। अब उसकी विधि सुनो।"

"श्मशान मेरा रूप है और यह भैरव कहलाता है। इसमें एक दिशा होती है, जो **तंत्र-स्थल** (रंग) कहलाती है। श्मशान इन दो भागों में विभक्त होता है। तीसरे को **हेरुक** कहते हैं।"

"मनुष्य की बलि पूर्वी दिशा में दी जाए जो भैरव के लिए पवित्र है। शीश दक्षिणी दिशा में चढ़ाया जाए, जो **कपाल भूमि** कहलाती है और भैरवी के लिए पवित्र है। रक्त पश्चिमी दिशा में अर्पित किया जाए जिसे हेरुक कहा जाता है।"

"संपूर्ण पूजा-विधि और पवित्र स्थान पर किसी व्यक्ति की बलि चढ़ाते समय, बलि चढ़ाने वाला इस बात का ध्यान रखे कि वह बलि-पशु पर नजर गड़ाकर न देखे।"

"अन्य अवसर पर भी बलि चढ़ाने वाला बलि-पशु पर दृष्टि न गड़ाए बल्कि निगाह एक ओर हटाकर सिर चढ़ाया जाए।"

"बलि-प्राणी देखने में अच्छा हो, स्नान आदि कराके उसे तैयार किया जाए। वांछित विधियां संपन्न करते हुए उसे तैयार किया जाए, जैसे एक दिन पूर्व मांस रहित पवित्र भोजन करे और शिकार को न जाए। बलि प्राणी की पूजा करके उसे पुष्पहार पहनाया जाए और चंदन से सुगंधित किया जाए।"

"फिर उसका मुख उत्तर की ओर रखें। बलि-पशु के स्वामी विभिन्न देवों की पूजा की जाए। फिर नाम पुकारकर बलि-पशु की पूजा की जाए।"

"इस प्रकार बलिदाता बलि-पात्र की पूजा करें, वे मंत्र उच्चारें जो इस अवसर के लिए उपयुक्त हैं और जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है।"

"किसी मादा चौपाए पशु अथवा पक्षी की या किसी स्त्री की बलि न चढ़ाएं, इस प्रकार बलिदाता नरक में जाता है। यदि पशु-पक्षी पर्याप्त संख्या में न हों तो मादा की बलि दी जा सकती है, किंतु मनुष्यों के संबंध में यह क्षम्य नहीं है।"

"किसी ब्राह्मण अथवा चांडाल की बलि न दी जाए, न राजकुमार की, न उसकी जिसे पहले ही किसी ब्राह्मण या देवता को अर्पित कर दिया गया हो, न राजकुमारों की संतान की ही और न युद्ध में विजेताओं की, न ब्राह्मण और क्षत्रिय की संतान की, न संतानहीन भ्राता की, न पिता की, न विद्वान की और न ही किसी अनिच्छुक व्यक्ति की और न यजमान के मामा की बलि दी जाए। जिन पशु-पक्षियों के नाम यहां नहीं गिनाए गए हैं, वे अज्ञात नाम के पशु-पक्षी बलि के योग्य नहीं है। यदि उपर्युक्त में कोई उपलब्ध न हों तो उनके स्थान पर गधे अथवा ऊंट की बलि दी जा सकती है। यदि अन्य पशु उपलब्ध हैं तो बाघ, ऊंट और गधे की बलि न दी जाए।"

"जब बलि-प्राणि की पूजा कर ली जाए, चाहे वह मनुष्य हो, पशु हो अथवा पक्षी, तो ऊपर बताए के अनुसार बलिदाता निर्धारित मंत्रों का पाठ करे और देवता का आह्वान करते हुए बलि चढ़ा दे।"

"मनुष्य का सिर और रक्त देवी के दक्षिण में रखा जाए और बलिदाता देवी के सम्मुख खड़ा होकर उनका आह्वान करे। पक्षी का सिर व रक्त बायीं ओर चढ़ाया जाए और पूजा करने वाले व्यक्ति के अंगों का रक्त सामने चढ़ाया जाए। मांसाहारी पशुओं अथवा पक्षियों के सिर से निकलने वाले रक्त रूपी अमृत को और जल-जीवों के रक्त को बाईं ओर अर्पित करे।"

"मृग, कच्छप, दरियाई घोड़े, शशक और मगरमच्छ का रक्त व सिर और मछली सामने चढ़ाई जाएं।"

"सिंह-मस्तक और दरियाई घोड़े का शीश और रक्त दाएं चढ़ाएं। सिर व रक्त कभी देवी के पीछे न चढ़ाया जाए, बल्कि दाएं, बाएं और सम्मुख चढ़ाएं।"

"समर्पण दीप या तो दाएं रखें अथवा सम्मुख; किसी भी दशा में, बाएं नहीं रखें। धूप बाईं ओर जलाएं या सामने, लेकिन दाहिनी ओर कभी नहीं। सुगंध, पुष्प और आभूषण सामने रखें जाएं। जो विधि बताई है, उसका पालन किया जाए। अन्य पेयों के पश्चात बाईं ओर मदिरा चढ़ाई जाए।"

"यदि पूजा में शराब नितांत अनिवार्य हो तो पहले तीन वर्णों के व्यक्तियों द्वारा पीतल-पात्र में नारियल का पानी, अथवा ताम्रपात्र में शहद दिया जाए। दैवी विपदा के समय भी, पहले तीन वर्गों के व्यक्ति मादक मदिरा भेंट न चढ़ाएं। वे ऐसी मदिरा चढ़ाएं जो पुष्पों से बनी हो अथवा मंद आंच में बनी हो। राजकुमार, मंत्रीगण, अमात्य और कलाल धन-संपदा के लिए मानव-बलि चढ़ाएं।"

"यदि राजकुमार की सहमति के बिना मानव-बलि चढ़ाई जाती है तो बलिदाता पाप करता है। युद्ध के अवश्यंभावी भय की दशा में बलि केवल राजकुमार या मंत्रियों द्वारा अर्पित की जाए। किसी और के द्वारा नहीं।"

"मनुष्य को बलि से एक दिन पूर्व मनस्तक पाठ, दैवी गंध सूक्तों का पाठ और वदरंग पाठ सुनाया जाए और उसके शीश को कुल्हाड़ी से छुआएं। कुल्हाड़ी पर चंदन का लेप करें। फिर थोड़ा चंदन कुल्हाड़ी से लेकर उसे बलि-पात्र की गर्दन पर मलें।"

"फिर अम्बे अम्बिका आदि का मंत्र पढ़ें। रौद्र और भैरव मंत्र पढ़ा जाए। इस प्रकार शुद्ध किए गए मनुष्य की देवी स्वयं रक्षा करेंगी, उसे कोई व्याधि नहीं होगी। शोकादि से उसका मानस भी विचलित नहीं होगा। उसके किसी परिजन की मृत्यु से भी उसकी शुचिता भंग नहीं होगी।"

"बलि-पात्र को रस्सी से बांधकर और मंत्रों से रक्षित कर उसके सिर पर वार करके सिर काट दिया जाए और उसे सावधानीपूर्वक देवी को चढ़ाया जाए। ये बलियां शत्रुओं की संख्या के अनुपात में हों, फिर शत्रु-विनाश के लिए मंत्र के साथ शत्रु की आत्मा उस (बलिप्राणी) में डालकर कुल्हाड़ी से बलि-पात्र का सिर काटा जाए। बलि चढ़ जाने के बाद वह शत्रु का विनाश करेगी।"

"पूजा के घोषित उद्देश्य के लिए ऐसे व्यक्ति का रक्त लिया जाए जिसका शरीर और मन स्वच्छ तथा शुद्ध हो, भय-मुक्त हो। उसे कमल-दल में भरकर मंत्रोचारण के साथ चढ़ाया जाए।"

"रक्त यदि चाकू छुरे या कुल्हाड़ी से चीरा देकर निकाला जाता है तो यह शस्त्र के आकार की विशालता अनुपात के अनुसार सुखद होता है।"

"बलि चढ़ाने वाला कमल-दल में उपस्थित रक्त की एक चौथाई मात्रा चढ़ाए, परंतु किसी भी स्थिति में इससे अधिक नहीं होना चाहिए। शरीर का हिस्सा आवश्यकता से अधिक नहीं काटा जाना चाहिए। जो अपना रक्त अथवा मांस स्वेच्छा से अर्पित करता है और अलसी, माशा, तिल आदि के बराबर चढ़ाता है, उसकी मनोकामना छह महिनों के अंदर पूरी हो जाती है।"

जो इन नियमों के अनुसार बलि देता है, उसकी अधिकतम मनोकामनाएं पूरी हो जाती हैं।

यह है वह धर्म जिसका काली पुराण उपदेश देता है।

मनु द्वारा सदियों तक निर्दिष्ट अंहिसा जिस तरह तंत्रों द्वारा ध्वस्त कर दी गई, उसका यह विकृततम रूप है। इसमें पशु और मानव हिंसा का प्रभुत्व है। हिंसा का यह उपदेश, जो काली पुराण के रुधिर अध्याय में दिया गया है, काफी प्रचलित हो गया था। पशु-बलि के फिर से शुरू होने के प्रमाण कलकत्ता के काली मंदिर में मिलते हैं। यह मंदिर पूरी तरह वधशाला बन गया है, जहां हजारों बकरे देवी काली को प्रसन्न करने के लिए चढ़ाए जाते हैं। यह काली पुराण के उपदेशों का परिणाम है। आजकल देवी काली को मनुष्य-बलि नहीं चढ़ाई जाती। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि ऐसा कभी हुआ ही नहीं। इसके उलट ऐसे अनेक साक्ष्य हैं कि काली पुराण के उपदेशों के अनुसार पशु-बलि की तरह ही मानव-बलि भी दी जाती थी। डॉ. राजेन्द्रलाल मित्र ने लिखा है–[1]

"यह सर्वविदित है कि बहुत समय तक यह पूजा (मनुष्य-बलि) पूरे हिन्दुस्तान में आम बात थी। ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, जिन्हें संदेह है कि भारत में कुछ ऐसे स्थल हैं, जहां देवी को प्रसन्न करने के लिए कभी-कभार आज भी मनुष्य की बलि दे दी जाती है। वामाचारियों से संबंध रखने वाले पुराने परिवारों में, जिनके पूर्वजों ने दुर्गा और काली-पूजा में विधिपूर्वक मानव-बलियां दी थीं, आजकल भी जीवित मनुष्यों के स्थान पर उनके पुतलों की बलि चढ़ाई जाती है। एक फुट ऊंचा पुतला खोए से बनाया जाता है और काली पुराण की विधि के अनुसार उसका बलिदान किया जाता है। अंतर केवल इतना है कि उस पुतले में प्राण-प्रतिष्ठा के लिए कुछ मंत्र और जोड़ दिए गए हैं। चौबीस परगना के डिप्टी कलेक्टर मेरे मित्र बाबू हेमचन्द्र केर ने बंगाल की पटसन संस्कृति पर एक अच्छी किताब लिखी है। उन्होंने मुझे बताया कि बंगाल के पूर्वी क्षेत्रों में ऐसी बलि अक्सर दी जाती है। लेकिन वहां पुतला एक व्यक्ति नहीं काटता बल्कि परिवार के सभी वयस्क एक साथ मिलकर काटते हैं। वे या तो अलग-अलग चाकुओं से एक साथ वार करते हैं या एक ही चाकू को सारे

1. *इंडो-आर्यन्स, भाग 2, पृ. 109-111*

मिलकर पकड़ते हैं। इसे शत्रुबलि कहते हैं। नरबलि और शत्रुबलि गुप्तरूप से मध्यरात्रि में दी जाती है। बहरहाल, शत्रुबलि कालिका पुराण की नरबलि से एक भिन्न पूजा है जिसका निर्देश वृहन्नील तंत्र में है, जिसमें कहा गया है कि उल्लिखित अन्य पूजाएं संपूर्ण हो जाने के बाद राजा को खोए से बने अपने शत्रु (पुतला स्वरूप) की बलि देनी चाहिए। उसे अग्नि के समान दहकती आंखों से देखें। उस पर भरपूर वार करें और एक ही बारी में उसके दो टुकड़े कर दें। इससे पूर्व उसकी प्राण-प्रतिष्ठा कर ली जाए और जिस व्यक्ति का विनाश किया जाना है, उसका नाम लिया जाए। हे पार्वती, ऐसा करने से उसके शत्रु का अवश्य नाश हो जाता है।"

इस संबंध में यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि काली शिव की पत्नी हैं। प्रश्न यह है कि क्या शिव पशुबलि स्वीकार करते हैं? उत्तर यह है कि एक समय शिव पशु-बलि पर निर्भर थे। आज के शिवभक्तों को यह बात अनोखी लग सकती है। परंतु यह सत्य है और जो कोई इसका प्रमाण चाहे, वह आश्वलायन गृह्य-सूत्र देखे, जिसमें शिव की संतुष्टि के लिए वृषभ की बलि का विस्तृत विवरण है। मैं इस आश्वलायन गृह्य-सूत्र[1] का पाठ यथावत् प्रस्तुत करता हूं। उसका कथन है–

1. अब छिद्रित वृषभ (रुद्र के लिए बलि चढ़ाया जाता है)।
2. आर्द्र-नक्षत्र में पतझर अथवा वसंत में।
3. अपने झुण्ड में समाविष्ट।
4. (वृषभ) न कोढ़ी और न ही चितला।
5. कुछ के मत में काली चित्ती वाला।
6. यदि वह चाहे, काला, यदि इच्छा हो तो ताम्रवर्णी।
7. वह उस पर पानी छिड़कता है, जिसमें उसने चावल और जौ डाले होते हैं।
8. सिर से पूंछ तक (सर्वांग)।
9. मंत्र (सहित) महान देव रुद्र के लिए तैयार हो जा।
10. वह उसे बड़ा होने दे, जब उसके दांत आ जाएं अथवा वृषभ बन जाए।
11. उस क्षेत्र में जो विशिष्ट रूप में शुद्ध हो।
12. ऐसे स्थान पर जो गांव से दिखाई न दे।
13. मध्यरात्रि के पश्चात।
14. कुछ के मत में सूर्योदय के पश्चात।
15. फिर पूजा के ज्ञाता ब्राह्मण को बिठाएं। इससे पहले पेड़ के पत्तीदार तने से बलिखंभ बनाएं, उसमें दो लताओं अथवा कुशा की दो रस्सियां

1. सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट (एस.बी.ई), भाग, पृ. 255-259 (मैक्स मूलर)

मेखला की तरह बांधें। एक सिरा बलि-पशु के सिर के मध्य में बांधें। फिर वही मंत्र बोलें कि जिसकी बलि के लिए लाया गया है, उसकी सहमति से मैं तुझे बांधता हूं।

16. पानी का छींटा उसी प्रकार दिया जाएगा जैसे पशु-बलि में दिया जाता है।
17. हमें भिन्नता बतानी होगी।
18. फिर श्रुति के अनुसार पत्नी के साथ बलि दी जाए।
19. (मंत्र) के साथ "हर, मृद, सर्व, शिवा, भव, महादेव, उग्र, भीम, पशुपति, रुद्र, शंकर, ईशान के लिए स्वाहा"।
20. अथवा अंतिम छह भाग (सूत्र के)।
21. अथवा मंत्र "रुद्र के लिए स्वाहा"।
22. फिर चारों दिशाओं में बलि अर्पित करें। मंत्र का भाव है "रुद्र, यह भेंट तुझे प्रस्तुत है। तू मुझे हानि न पहुंचा।" इस प्रकार चारों दिशाओं में भेंट चढ़ाई जाए।
23. निम्नांकित मंत्रों से चारों दिशाओं की पूजा की जाए "रुद्र हम क्या करें"। "यह प्रार्थना रुद्र के लिए है" "हे पिता तेरे लिए" "अति नमन के साथ ये गीत रुद्र के लिए हैं"। (ऋग्वेद 1.43, 114, 11,33 VII 46)
24. रुद्र के लिए सभी बलियों के समय दिशाओं की यह पूजा की जाए।
25. (चावल की) पुआल और भूसी, पूंछ और खाल, सिर, पैर, (बलि दिए गए पशु के) अग्नि में डाले जाएं।
26. सांवत्य के अनुसार खाल का कुछ उपयोग किया जाए।
27. अग्नि के उत्तर में दूर्वा घास पर या कुशा के घेरे में (बलि दिए गए पशु का) रक्त चढ़ाया जाए। उसके मंत्र का भाव है, फुफकारने वाले, गर्जनवाले, ढूंढने वाले, जकड़ने वाले सरिसृप जो यहां है, यह तेरे लिए है, इसे ग्रहण कर।
28. फिर उत्तर की ओर घूमकर, जो सरिसृप के लिए नियत है, कहें—फुफकारने वाले सरिसृप, यहां जो कुछ है, तेरे लिए है, इसे ग्रहण कर।
29. बलिदाता जानता है कि सभी नाम, सभी आयोजक, सारी उत्तेजना से वह प्रसन्न होता है।
30. उन व्यक्तियों की भी वह हानि नहीं करेगा जो पूजा में बैठते हैं। ऐसा समझा जाता है (श्रुति में)।
31. वह बलि के भाग में साझीदार नहीं होगा।
32. वह बलि से संबद्ध कोई पदार्थ गांव में नहीं ले जाएंगे।
33. वह बलि-स्थान से अपने लोगों को दूर रखेंगे।

34. पर वह एक निर्दिष्ट आदेश पर वह (बलि के भोजन से) भाग ले लें, वह उसके लिए सौभाग्यशाली होगा।
35. कटे हुए वृषभ की बलि से धन, खुला स्थान, शुद्धता, पुत्र, पशु, दीर्घायु, दीप्ति की प्राप्ति होती है।
36. बलिदान के पश्चात वह अन्य पशु न खाए।
37. उसे ऐसे पशुओं का अभाव नहीं रहेगा।
38. फिर वह पशु-विहीन नहीं रहेगा—ऐसा जाना जाता है। (श्रुति में)
39. वह संततीय मंत्र जपता हुआ अपने घर जाए।
40. यदि उसके पशुओं को व्याधि हो तो वह गोशाला में ही उसी देव के लिए बलि दे।
41. पके भोजन का भोग जो उसने बलि में चढ़ाया।
42. बलि-स्थल की घास और आज्य (पिघलाया हुआ घी) आग में डाल दिया जाए और वह अपनी गायों को धुएं के बीच से निकाले।
43. संततीय मंत्र पढ़ते हुए वह पशुओं के बीच जाए।
44. शौनक को नमन-शौनक को नमन।

आजकल शिव तो पशु-बलि स्वीकार नहीं करते। शिव-पूजा का यह रूपांतरण अहिंसा स्वीकार करने के बाद हुआ है। हिंसा से अहिंसा अपनाने के बाद ब्राह्मणों ने शिव को हिंसक से अहिंसक बना डाला। शिव के अहिंसक देवता बन जाने के बहुत बाद काली-पूजा आरंभ हुई। कुछ भी हो, उनकी पत्नी काली हिंसक देवी बन गईं। परिणाम यह हुआ कि हमें एक अहिंसक देव की पत्नी के रूप में क्रूर व रक्तपिपासु देवी मिली। क्या यह पहेली नहीं है? आखिर ब्राह्मणों ने ऐसा क्यों किया?

परिशिष्ट : 1

वेदों की पहेली

वेद हिंदुओं के पवित्र ग्रंथ हैं। उनके संबंध में अनेक प्रश्न उठते हैं। उनकी उत्पत्ति कहां से हुई? उनका रचयिता कौन है? उनकी प्रामाणिकता क्या है? ये कुछ सवाल हैं।

हम पहले सवाल से शुरू करते हैं। हिंदुओं के अनुसार, वे सनातन हैं अर्थात् वे अनादि-अनंत हैं। यह कथन अथर्ववेद से मेल नहीं खाता है। फिर इसका कोई औचित्य नहीं। अथर्ववेद के अनुसार–[1]

> "काल से ऋचाएं प्रस्फुटित हुईं और यजुः काल से उपजा।" किंतु और भी विचार उपलब्ध हैं जो इससे बिलकुल भिन्न हैं।

अथर्ववेद से शुरू करते हुए इस तथ्य पर ध्यान देना जरूरी है कि वेद में इस विषय पर दो अन्य प्रसंग हैं। इनमें प्रथम बहुत विवेकपूर्ण नहीं है। वह यह है–[2]

> "बता वह स्कंभ (पोषक सिद्धांत) कौन है जो आदि ऋषियों, ऋक्, साम, यजु, पृथ्वी और ऋषियों का पालक है.....20। बता वह स्कंभ कौन है जिससे ऋक् (ऋचाएं) प्रस्फुटित हुईं, जहां से वे यजुस् में समाहित हुए, जिससे साम मंत्र उत्पन्न हुए अथर्वन् और अंगिरस् की वाणी क्या है?"

अथर्ववेद में जो दूसरा कथन आया है, उसके अनुसार वे इंद्र[3] से प्रस्फुटित हुए।

ऋग्वेद की व्याख्या पुरुष सूक्त में मिलती है। इसके अनुसार एक विराट यज्ञ हुआ जिसमें एक रहस्यमय जीव "पुरुष" की बलि चढ़ाई गई। उस "पुरुष" की बलि से तीन वेद ऋक्, साम और यजु का अविर्भाव हुआ।

सामवेद और *यजुर्वेद* में वेदों की उत्पत्ति का प्रसंग नहीं है।

इसके बाद के ब्राह्मण ग्रंथों में शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण और *कौषीतकि ब्राह्मण* में ऐसे प्रयास दिखाई देते हैं जिनमें वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

---

1. *अथर्ववेद, 19.54.3*
2. *मूइर द्वारा ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत भाग 3, पृ. 3*
3. *वही।*

शतपथ ब्राह्मण में कई व्याख्याएं हैं। इसमें वेदों की उत्पत्ति का श्रेय प्रजापति को दिया गया है। उसके अनुसार प्रजापति ने अपने तप से तीन जगत, धरती, वायु और आकाश–बनाए। उन्होंने इन तीनों में ऊष्मा संचारित की। इस ऊष्मा से तीन तेज उत्पन्न हुए–अग्नि, वायु और सूर्य। उनके ताप से तीन वेद उत्पन्न हुए–अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और सूर्य से *सामवेद*।

ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण की भी यही व्याख्या है। *शतपथ ब्राह्मण*[1] ने प्रजापति से वेदों की उत्पत्ति बताई है। भाष्य के अनुसार प्रजापति ने जल से तीन वेद बनाए। *शतपथ ब्राह्मण* कहता है–

> "पुरुष प्रजापति की इच्छा हुई, मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो। वह उपासना में बैठ गए। उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने सर्वप्रथम पवित्र ज्ञान, त्रयी विद्या की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा, "विद्या ब्रह्मांड" का मूल है। वेदों के ज्ञान के पश्चात पुरुष को आधार मिला क्योंकि विद्या उनका मूल है। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। उन्होंने वाक् (वाणी) से जल का निर्माण किया। उसके विस्तारण से जल, आपः कहलाया, उसकी सर्वत्र व्यापकता से वह "वर्" बना। उन्होंने चाहा, मेरा जल से विस्तार हो। इस त्रयी विद्या से वह जल में प्रविष्ट हुए। तब एक अण्डा उभरा। उन्होंने उसे प्राणवान किया और कहा, "भव भव पुनर्भव। जब विद्या का जन्म हुआ। त्रयी विद्या। फिर पुरुष ने कहा विद्या ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरुष के समक्ष सर्वप्रथम विद्या की रचना हुई। इसलिए यह उसका मुख बनी। उसे वेद ज्ञाता की संज्ञा दी गई। इस प्रकार आगे वे कहते हैं–वह अग्नि के समान है। क्योंकि विद्या अग्नि का मुख है।"
>
> "जैसे आर्द्र काष्ठ से धूम आदि उत्पन्न है। उसी तरह उस परमात्मा का श्वास है, *ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद*, आंगिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, विभिन्न राजाओं के भाष्य–ये सब उनका श्वास हैं।"

शतपथ ब्राह्मण में तीसरी व्याख्या है–[2]

> "मैंने तुझे सागर में स्थापित किया, वहीं तेरा आसन है। सिर सागर है। मनस् सागर से वाच द्वारा भगवान ने बेलचे से त्रयी विद्या को खोदकर निकाला। तत्पश्चात इस मंत्र का उच्चारण किया। देदीप्यमान् देवता जाने, इस आहुति सामग्री को उन्होंने कहां रखा, जिसे ईश्वर ने तेजधार बेलचे से खोदकर

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 8*
2. *वही, भाग 1, पृ. 9-10*

निकाला था। मन समुद्र है। वाच तीव्र बेलचा है। त्रयी विद्या समिधा है। इस संदर्भ में मंत्र को उच्चारा। वह मन में समा गया।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण की तीन व्याख्याएं हैं। वह कहता है, वेदों के कर्त्ता प्रजापति हैं। वह कहता है प्रजापति ने राजा सोम को बनाया और तत्पश्चात तीन वेदों की रचना की गई[1]। इस ब्राह्मण की दूसरी व्याख्या[2] का प्रजापति से कोई संबंध नहीं। इसके अनुसार–

"वाच् (वाणी) अविनाशी है। वह पूजा में प्रथम प्रसूत है। वेदों की जननी और अमरता का केन्द्र बिन्दु है। हम में आनन्द सृजित कर वह यज्ञ बन जाती है। रक्षा की देवी मेरे आह्वान को सुनने को उद्यत हो। मेधावान ऋषि, मंत्रों के स्रष्टा, देवगण जिनका अनुग्रह तप और कठोर उपासना से प्राप्त करते हैं।"

इस सबके ऊपर तैत्तिरीय ब्राह्मण तीसरी व्याख्या देता है। वह कहता है कि वेद प्रजापति की दाढ़ी से उत्पन्न हुए।

उपनिषदों में भी वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या की गई है।

छांदोग्य उपनिषद की व्याख्या *शतपथ ब्राह्मण* के समान है। अर्थात् ऋग्वेद अग्नि से उत्पन्न हुआ, *यजुर्वेद* वायु से और *सामवेद* सूर्य से उत्पन्न हुआ।

बृहदारण्यक उपनिषद ने, जो शतपथ ब्राह्मण का अंग है, अलग कथा कही है–

"प्रजापति द्वारा जिनका मृत्यु या यम के साथ तादात्म्य है, वाच की रचना कही गई है और उसके माध्यम से आत्मा के साथ वेदों सहित सभी तत्त्वों का सृजन हुआ। उसी वाच और आत्मा से उसने सबका सृजन किया, चाहे वह ऋग्वेद हो, यजुस्, साम, छंद, यज्ञ या विभिन्न जीव-जंतु हों।"

"तीन वेद तीन तत्त्व हैं–वाच, मनस् और श्वास। वाच ऋग्वेद है, मन यजुर्वेद है और श्वास सामवेद।"

अब हम स्मृतियों पर आते हैं। *मनुस्मृति* में वेदों की उत्पत्ति के विषय में दो सिद्धांत हैं। एक स्थल पर कहा गया है कि वेदों का कर्ता ब्रह्मा है–

"उसी ब्रह्मा ने सभी के नाम, कर्म तथा लौकिक व्यवस्था को पहले के वेद शब्दों से जानकर पृथक-पृथक बनाया। उस ब्रह्मा ने इंद्रादिदेव, कर्म, स्वभाव, प्राणी-अप्राणी पत्थर आदि साध्यगण और सनातन यज्ञ की सृष्टि की। उस ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धि के लिए अग्नि, वायु और सूर्य से ऋग्वेद, *यजुर्वेद, सामवेद* को क्रमशः प्रकट किया।"

एक अन्य स्थान पर यह माना गया लगता है कि प्रजापति वेदों के रचयिता हैं, जो निम्नलिखित से प्रकट हैं–

---

1. मूइर, खंड 1, पृ. 8 *2. वही पृ. 10*

"प्रजापति ने तीन वेदों से तीन अक्षर लिए अ, उ, म; साथ ही भू, भुवः, और स्व लिया। उसी परम पुरुष प्रजापति ने तीन वेदों से कुछ अंश लिए और सावित्री (अथवा गायत्री) बनाई जिसके आरंभ में शब्द तत् है... तीन अविनाशी अंशों (भूःभुवःस्वः) से बना ओउम् और गायत्री के तीन चरण ब्रह्मा का मुख माने जाते हैं।"

यह जानना भी रोचक है कि पुराणों ने वेदों के विषय में क्या कहा है? *विष्णु पुराण* कहता है–

"ब्रह्मा ने अपने पूर्वी मुख से गायत्री को बनाया, ऋग् मंत्रों, त्रिवृत, समरथांतर तथा यज्ञ और अग्निष्टोम को रचा। अपने दक्षिणी मुख से उन्होंने यजुस् मंत्रों को उत्पन्न किया। त्रिष्टुप् छंद, पंचदश स्तोम, वृहत् साम और उक्थ्य की रचना की। पश्चिमी मुख से साम छंदों और जगति मंत्रों को रचा, सप्तदश स्तोम, वैरूप और अतिरात्र की रचना की। अपने उत्तरी मुख से उन्होंने एकविंश और अथर्वन्, अपतोर्यमन् की अनुष्टुप् और विराज छंदों में रचना की।"

***भागवत पुराण* का मत है–**

"एक बार चतुर्मुख स्रष्टा के मुख से वेदों का प्रस्फुटन हुआ जबकि वे समाधि में लीन थे। मैं संपूर्ण विश्व की पूर्ववत रचना कैसे करूं?...उन्होंने अपने पूर्वी तथा अन्य मुखों से स्तुति, यज्ञ, मंत्रों और प्रायश्चित सहित ऋक्, यजुस, साम, अथर्वन् की सृष्टि की।"

***मार्कण्डेय पुराण* का मत है–**

"1. एक विभाजित अंडे से ब्रह्मा के पूर्व मुख का अगोचर प्रस्फुटन हुआ, जिससे समृद्ध ऋचाएं उपजीं, 2. जो पाटल के पुष्प समान, मेधावी परस्पर विभाजनीय होते हुए भी गुथी हुई और रजस गुणों के सदृश्य। 3. उनके दक्षिण मुख से उन्मुक्त यजुस् ऋचाएं फूटीं। कुंदन वर्ण और विभक्त, 4. परम ब्रह्मा के पश्चिमी मुख से साम मंत्र और छंद निसृत हुए, 5. और 6. वेदों (ब्रह्मा) के उत्तरी मुख से श्यामल मधुमक्खियां और काजल जैसे वर्ण का अथर्वन् प्रकट हुआ, जिसकी प्रवृत्ति एक बार भयावह और अभयावह, सम्मोहन को निष्प्रभावी करने में सक्षम निर्विकार और अंधकार दोनों गुणों से युक्त और सुरम्य तथा विपरीत, 7. ऋक् के मंत्र राजसिक गुण संपन्न, यजुस् के सात्विक, साम के तामसिक और अर्थवन् के तामसिक तथा सात्विक दोनों गुण हैं।"

हरिवंश में ब्रह्मा और प्रजापति दोनों के सिद्धांतों का समर्थन किया गया है–

"विश्व के विस्तार हेतु ब्रह्मा समाधिस्थ हो गए, चंद्रमा से ज्योति पुंज

निसृत हुआ, गायत्री के हृदय में प्रवेश किया, उसके नेत्रों के मध्य में प्रविष्ट होते हुए। उसने तब एक नर रूप चतुष्पाद की सृष्टि की, जो ब्रह्मा की तरह द्युतिमान्, अकथनीय, अजर-अमर, अविकारी और निर्गुण, विलक्षण प्रतिभा संपन्न, चंद्र किरनों की तरह निर्मल, प्रदीप और अक्षर युक्त था। परमेश्वर ने ऋग्वेद की रचना की, साथ ही अपने नेत्रों से यजुस्, अपनी जिह्वा से सामवेद, और अपने सिर से अथर्वन् को रचा। इन वेदों ने अपनी सृष्टि के साथ ही अपना आकार (क्षेत्र) ग्रहण कर लिया। उनमें वेदों की प्रवृत्तियां उत्पन्न हो गईं, क्योंकि ये उन्हें प्राप्त हुईं (विन्दन्ति), अतः वे वेद बन गए। तब इन वेदों ने पूर्व-स्थित अनादि-अनंत ब्रह्म (वेद-विद्या) का सृजन किया, स्वमेधा जनित गुणों से दिव्य ब्रह्मांड रूप धारण किया।"

यहां प्रजापति को स्रष्टा माना गया है। इसमें कहा गया है कि जब परमपुरुष ने अपने मुख से ब्रह्मांड और हिरण्यगर्भ की रचना की और अपने को विखण्डित करने की इच्छा की तो उन्हें बहुत संदेह था कि यह कैसे होगा।

हरिवंश में आगे कहा गया है–

"जब वह इस प्रकार सोच रहे थे, तो उनके मुख से ओऽम् शब्द निकला; जो पृथ्वी, वायु और आकाश में प्रतिध्वनित हुआ। जब देवाधिदेव ने इसका बार-बार उच्चारण किया तो उनके हृदय से मन का सत्व सक्रिय हुआ। उनके हृदय से वषट्कार उद्वेलित हुआ। तब पवित्र और परमोत्कर्ष व्याहृतियां भूः, भुवः, स्वः बनीं, तब महान स्मृतियां बनीं, जो पृथ्वी, वायु, और आकाश से ध्वनि रूप में परिवर्तित हुईं। तब देवी उत्पन्न हुई, श्रेष्ठतम छंद बने। चौबीस पदीय (गायत्री) की रचना हुई। दैवी शब्द तत् से परमेश्वर ने सावित्री रची। तब उसने ऋक्, साम, यजुर्वेद और अथर्वन् वेदों, उनकी प्रार्थनाओं और संस्कारों की रचना की।"

वेदों की सृष्टि के संबंध में ग्यारह विभिन्न व्याख्याएं हैं–1. पुरुष के रहस्यात्मक यज्ञ से, 2. स्कंभ से, 3. उनके प्रत्यंगों जैसे उनके केश और मुख से, 4. इंद्र से, 5. काल से, 6. अग्नि, वायु और सूर्य से, 7. प्रजापति के विस्तारण और जल से, 8. ब्रह्मा की श्वास से, 9. परमेश्वर द्वारा मनस् सागर की खुदाई से, 10. प्रजापति की दाढ़ी से, 11. वाच के प्रस्फुरण से।

एक सीधे-सीधे सवाल के इस तरह भ्रामक जवाब क्यों दिए गए, यह एक पहेली है। इन सबका उत्तर देने वाले ब्राह्मण हैं। वे सभी वैदिक परंपरा के दास हैं। वे ही प्राचीन धार्मिक कथाओं के संरक्षक हैं। वे इस सीधे-से सवाल के ऐसे असंगत और बेतुके जवाब क्यों देते हैं?

II

वेदों का रचयिता कौन है? हिंदुओं का विश्वास है कि वेद दैवी रचना हैं। तकनीकी शब्दावली में वेद अपौरुषेय हैं, अर्थात् किसी मानवेतर शक्ति द्वारा रचे हुए हैं।

इस सिद्धांत के समर्थन में साक्ष्य क्या है? प्राचीन संस्कृत साहित्य में एक रचना है, अनुक्रमणी। वैदिक साहित्य के विभिन्न अंगों का इसमें व्यवस्थित संकेत है। प्रत्येक वेद की एक अनुक्रमणी है। कहीं-कहीं एक से अधिक भी हैं। ऋग्वेद की सात अनुक्रमणियां उपलब्ध हैं। इनमें से पांच शौनक की, एक कात्यायन की और एक किसी अज्ञात लेखक की है। यजुर्वेद की तीन हैं। इसकी तीन शाखाओं में से प्रत्येक की एक है। ये हैं, आत्रेयी, चारायणीय और माध्यंदिन। सामवेद की दो अनुक्रमणियां हैं। एक का नाम आर्शेय ब्राह्मण है और एक का नाम परिशिष्ट है। अथर्ववेद की एक अनुक्रमणी है। इसका नाम बृहत सर्वानुक्रमणी है।

प्रो. मैक्स मूलर के अनुसार सबसे पूर्ण अनुक्रमणी कात्यायन की ऋग्वेद के लिए सर्वानुक्रमणी है।

इसकी महत्ता इस कारण है कि 1. इसमें प्रत्येक मंत्र का प्रथम शब्द दिया गया है, 2. मंत्रों की संख्या है, 3. संकलनकर्ता ऋषि, उसकी परंपरा का नाम, 4. देवता का नाम और 5. प्रत्येक छंद का नाम दिया है। सर्वानुक्रमणी के संदर्भ से यह आभास मिलता है कि विभिन्न ऋषियों ने मंत्रों की रचना की और उनका संपूर्ण संकलन ऋग्वेद बना। ऋग्वेद की अनुक्रमणी के अनुसार यह साक्ष्य मिलता है कि यह वेद पौरुषेय हैं। अन्य वेदों के विषय में भी यही निष्कर्ष हो सकता है।

अनुक्रमणियां यथार्थ हैं। यह बात ऋग्वेद के मंत्रों से सिद्ध होती है जिनमें ऋषि अपने को वेदों के मंत्रों के रचयिता मानते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

> "कण्वों ने तुम्हारे लिए प्रार्थनाएं कीं, उनकी स्तुति सुनो"
>
> "हे इंद्र! अश्वों के सारथी अपनी प्रभावोत्पादकता हेतु गौतम का मंत्र सुनो"
>
> "तेरे तेजवर्धनार्थ हे ऐश्वर्यमान अश्विन्! मनस् (मन) द्वारा प्रभावोत्पादक मंत्रों की रचना की गई है।"
>
> "हे अश्विन्! यह सार्थक उपासना मंत्र तेरे लिए गृत्समद ने रचा है।"
>
> "हे इंद्र! तू प्राचीन है, जो अश्वों को जोतता है, तेरे लिए गौतम के वंशज नोधस् ने नया मंत्र रचा है।"
>
> "सो हे पुरोधा! प्रश्रय हेतु गृत्समद ने मंत्र (स्तुति) रचा है, जैसे मनुष्य निर्माण करता है।"
>
> "ऋषियों ने इंद्र के लिए एक प्रभावोत्पादक रचना की है और प्रार्थना की है।"
>
> "हे अग्नि! ये मंत्र तेरे लिए रचे गए है, अपनी गायों और अश्वों का सुख भोग।"
>
> "हमारे पिता ने सप्त शीर्ष सूक्त बनाया है जो पवित्र सत्य से जन्मा है। इस चौथे महान मंत्र का सबके मित्र अयास्य ने आह्वान किया है।"

"हम रहुगणों ने मधुभाषी अग्नि के लिए मंत्रोच्चारण किया है। उसका गुणगान करते हैं।"

"सो आदित्यो, अदितियों और सत्ता-संपन्न गण प्लाति पुत्र ने तुम्हारी स्तुति की है। गया ने स्वर्गीय देवों की प्रशस्ति गाई है।"

"इसी को वे ऋषि पुरोहित यज्ञकर्ता कहते हैं, स्तुति गायक, मंत्रोच्चारक कहते हैं। वही (अग्नि के) तीन शरीरों को जानता है। वही वरदानों की पूर्ति करने वाला प्रमुख है।"

अनुक्रमणिकाओं के अतिरिक्त और भी साक्ष्य हैं, जिनसे पता चलता है कि वेद अपौरुषेय नहीं हैं। ऋषि वेदों को मानवकृत और ऐतिहासिक रचना मानते हैं। ऋग्वेद के मंत्र पूर्ववर्ती और तत्कालीन मंत्रों के बीच भेद करते हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं–

"अग्नि जिसकी पूर्ववर्ती और साथ ही वर्तमान ऋषि भी स्तुति करते हैं, देवों को इधर आमंत्रित करेगी।"

"पूर्ववर्ती ऋषि ने संकटमोचन हेतु तेरा आह्वान किया।"

"मुझ वर्तमान ऋषि की ऋचाएं सुनो, इस वर्तमान (ऋषि) की।"

"इंद्र! तू पूर्ववर्ती ऋषियों के लिए एक आह्लाद था, जिन्होंने तेरी अर्चना की।"

"जैसे पिपासु के लिए जल। इस मंत्र द्वारा, मैं तेरा पुनः पुनः आह्वान करता हूं।"

"पूर्ववर्ती ऋषियों, देदीप्यमान मुनियों ने बृहस्पति के सम्मुख आह्लादपूर्ण स्वर में प्रस्तुत किया।"

"हे मघवन् किसी पूर्ववर्ती या परवर्ती पुरुष अथवा वर्तमान पुरुष में इतना पराक्रम नहीं।"

"क्योंकि (इंद्र के) पूर्ववर्ती आराधक हम हो सकते हैं, वे निष्कलंक, अप्राप्य और अनाहूत थे।"

"हे शक्तिमान देव! इस हेतु लोग तेरे आराधक हैं, जैसे कि पूर्ववर्ती मध्य-युगीन और परवर्ती तेरे मित्र थे और हे परम आहूत, सभी वर्तमान वय वालों की सोच"

"इंद्र के लिए हमारे पूर्व सात नवगत ऋषि अपने मंत्रों में भोजन की याचना करते हैं।"

"हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवांवित होकर, क्या आप हमें संपदा और संतति सहित भोजन देंगे?"

ऋग्वेद के गहन अध्ययन से पता चलेगा कि उसके पुराने और नए मंत्रों के बीच अंतर है। उनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं–

"हमारे नवीनतम मंत्र से गौरवांवित होकर, तुम हमें संपदा और संतति सहित भोजन प्रदान करो।"

"हे अग्नि! तूने देवताओं के मध्य हमारी नवीनतम मंत्र-आहुति की घोषणा की थी।"

"हमारे नवीन मंत्रों से तेरा वेग बढ़ेगा। पुरंदर अर्थात नगर विध्वंसक, हमें प्राणवान् आशीर्वाद दें।"

"शक्ति-पुत्र अग्नि को मैं एक नवीन ऊर्जावान मंत्र अर्पित करता हूं, जो भाव-वाणी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।"

"जो नवीन अभिव्यक्ति अभी प्रस्फुटित हुई है, उसके द्वारा मैं शक्तिमान संरक्षक को मानस रचना प्रदान करता हूं।"

"हमारी सहायता हेतु गर्जन करने वाले पुंगव नया मंत्र तुझे उद्‌बोधित करे।"

"मैं पूर्वजों की भांति नवीन मंत्र द्वारा तुझे उत्प्रेरित करना चाहता हूं।"

"तेरी स्तुति में जो नए मंत्र हैं, उनसे तू संतुष्ट हो।"

"हे सोभरी, इन युवा शक्तिमान, देदीप्यमान और बुद्धिमान देवों के लिए नए मंत्रों का उच्चारण कर।"

"गर्जन करने वाले वृत्रहंता इंद्र! हम अनेक ने तेरे लिए कई मंत्र रचे हैं, जो सर्वथा नवीन हैं।"

"मैं इस प्राचीन देव को संबोधित करूंगा, मेरी नई स्तुति, जिसकी उसे इच्छा है उसे वह सुने।"

"हम अश्वों, पशुधन और संपदा की कामना से तेरा आह्वान करते हैं।"

इतने साक्ष्य प्रस्तुत करने पर यह सिद्ध होता है कि वेदों की रचना मनुष्य ने की है जबकि ब्राह्मणों ने सायास यह प्रचारित किया कि वेद मानव-रचित नहीं हैं, जो एक पहेली है। ब्राह्मणों ने यह प्रचार किस उद्देश्य से किया?

III

वेदों की सत्ता क्या है? हिंदुओं में इसके संबंध में दो भिन्न मान्यताएं हैं। पहली यह कि वेद सनातन हैं। इस मान्यता की विवेचना को छोड़ यह सवाल लें कि ऐसे मत का औचित्य क्या है? यदि हिंदुओं को विश्वास है कि वेद विश्व के प्राचीन ग्रंथ हैं तो इस पर कोई विवाद नहीं कर सकता। परंतु इस अद्‌भुत विचार को युक्तिसंगत ठहराने का कोई आधार नहीं है कि ये अनादि हैं। एक बार अगर यह प्रमाणित हो जाए कि ऋषि वेदों के रचयिता हैं तो फिर यह प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाएगी कि वेदों का आरंभ उस काल से मेल खाता है, जब ऋषि हुआ करते थे। अगर यह मान लिया जाए कि ऋषि ही वेदों के रचयिता हैं फिर यह मान्यता अनर्गल है कि वेद सनातन हैं।

इस मान्यता को जीवित रखने के लिए जो तर्क दिए गए हैं, वे भी कम हास्यास्पद नहीं हैं।

सबसे पहले तो ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह मान्यता निराधार है कि वेदों की

रचना परमात्मा ने की है। यह विश्वास नैयायिकों ने जमाया। परंतु ऐसा लगता है कि पूर्व मीमांसा के प्रणेता जैमिनि के विचारों की हिंदुओं में मान्यता है और वे इस बात के पक्ष में नहीं हैं। मीमांसकों का यह उद्धरण उल्लेखनीय है।

"किंतु (मीमांसक पूछता है) अमूर्त परमेश्वर ने किस प्रकार वेदों को अभिव्यक्त किया जिसका तालू और उच्चारण का अन्य कोई अंग नहीं है। इस कारण यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उसने शब्दों का उच्चारण किया होगा। यह प्रयास (नैयायिक का उत्तर) मान्य नहीं है कि क्योंकि परमेश्वर अमूर्त है फिर भी अपने भक्तों को कृतार्थ करने हेतु वह रूप धारण कर सकता है। इस प्रकार यह तर्क कि वेद पौरुषेय नहीं है, खंडनीय है।

"मैं अब (मीमांसक कहता है कि) इन संदेहों का निराकरण करता हूं कि इस पौरुषेयत्व का क्या अर्थ है, जिसे प्रमाणित करना है। इसका तात्पर्य है (1) किसी पुरुष द्वारा उत्पत्ति, जैसे हमारे द्वारा वेदों की उत्पत्ति जब हम इनका दैनिक पाठ करते हैं अथवा (2) इसकी अभिव्यक्ति की दृष्टि से कोई व्यवस्था है, अन्य स्रोतों से गृहीत हमने स्वयं ग्रंथों की रचना की है। यदि पहले अर्थ को ग्रहण किया जाए तो कोई विवाद नहीं होगा। यदि दूसरे भाव को ग्रहण किया जाए तो मेरा सवाल है कि क्या इस कारण वेदों को प्रामाणिक माना जाए कि वे अनुमान के आधार पर प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। (क) अथवा उन्हें इस कारण प्रामाणिक मानें कि वे दैवी वाक्य हैं। अर्थात उनमें अगम ज्ञान है। प्रथम विकल्प (क) कि वेदों की प्रामाणिकता इसलिए है कि यह आभास मात्र है, के संबंध में यदि मालतीमाधव अथवा अन्य लौकिक रचनाओं को देखा जाए तो यह सही नहीं हो सकता क्योंकि यह सिद्धांत निराधार नहीं। यदि दूसरी ओर आप कहते हैं। (ख) वेदों की सामग्री अन्य प्रामाणिक ग्रंथों से भिन्न है, तो इससे भी दार्शनिक सहमत नहीं होंगे क्योंकि वेद वाक्य वह वाक्य है, जिसे अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित नहीं किया जा सकता। अब यदि यह सिद्ध किया जा सके कि वेद वाक्य मात्र उसी को प्रमाणित करता है, जो अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित है तो हम उसी दलदल में फंस जाएंगे, जैसे कोई व्यक्ति कहे कि उसकी माता एक बंध्या (बांझ) नारी थी और अगर हम यह मान लें कि परमेश्वर ने कोई स्वरूप धारण किया होगा तो यह मान्य नहीं होगा। क्योंकि बिना किसी तत्त्व के उन्होंने ऐसा कुछ व्यक्त किया हो, जो अतीन्द्रिय हो, यह संभव नहीं, वह भी जब तक कोई देशकाल परिस्थिति न हो। न ही यह सोचा जा सकता है कि उनके नेत्र तथा दूसरी इंद्रियों में ऐसे ज्ञान प्रसार की कोई शक्ति थी। पुरुष केवल वही जान सकता है, जो उसने साक्षात् देखा है।

किसी सर्वज्ञ रचयिता की कल्पना से असहमत होते हुए गुरु (प्रभाकर) ने कहा है—"जब

किसी सर्वज्ञ को चुनौती दें, जिसने किसी तत्त्व को संपूर्ण रूप में देखा हो तो वह कल्पना बहुत ही धुंधली अथवा अति सूक्ष्म होगी क्योंकि कोई भी इन्द्रिय अपने निश्चित धर्म से विरत नहीं हो सकती, जैसे श्रवणेन्द्रिय किसी स्वरूप को देख नहीं सकती। इसी प्रकार वेदों की सत्ता किसी भी अलौकिक ज्ञान से संपन्न नहीं है, जो किसी देव (परमात्मा) से प्राप्त हुआ हो।"

नैयायिकों के मत को निरस्त करने हेतु जैमिनि ने उपर्युक्त तर्क प्रस्तुत किए हैं। तदुपरांत जैमिनि पूर्व मीमांसा में सकारात्मक तर्क देते हैं कि वे किसी भी प्रकार ब्रह्मवाक्य नहीं हैं बल्कि उससे भी श्रेष्ठ हैं। उनका कहना है–

> "परवर्ती सूत्रों में उद्‌घोषित किया गया है कि ध्वनि (शब्द) और उसके अर्थ का संबंध सनातन है। वे चाहते हैं कि यह प्रमाणित करें कि यह सनातनता शब्द की सनातनता अथवा स्वर पर निर्भर है। हम प्रश्न के प्रथमांग से आरंभ करते हैं अर्थात् उस सिद्धांत से कि ध्वनि सनातन नहीं हैं।"
>
> "कतिपय अर्थात् नैयायिक कहते हैं कि ध्वनि एक रचना है क्योंकि हम जानते हैं कि यह प्रयासोत्पन्न है, यदि यह सनातन होती तो ऐसा न होता।"
>
> "अपने संक्रमण स्वभाव के कारण यह सनातन नहीं है अर्थात् यह एक क्षण में ही विलीन हो जाती है।" क्योंकि इसके संबंध में हम क्रिया को "निकलना" कहते हैं अथवा हम ध्वनि निकालते हैं।
>
> "क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों को इसकी अनुभूति तत्काल होती है और परिणामतः उनकी इंद्रियों के तत्काल संपर्क में आती है दूरस्थ और निकटस्थ होते हैं। यदि यह सनातन और एकमेव होती तो ऐसा न होता।"
>
> "क्योंकि ध्वनि के मूल और संशोधित दो रूप होते हैं "दधि अत्र" और "दध्य् अत्र" के रूप में प्रस्तार के नियम से मूल ध्वनि "इ" 'य' में बदल जाती है। इस प्रकार जिस तत्त्व में परिवर्तन हो जाता है वह सनातन नहीं है। क्योंकि यदि अधिक संख्या में व्यक्ति समवेत ध्वनि करते हैं तो उसका विस्तार हो जाता है। फलतः उन मीमांसकों का सिद्धांत तथ्यहीन हो जाता है, जो यह कहते हैं कि ध्वनि मानव प्रयत्न से प्रकट ही की जाती है उत्पन्न नहीं की जाती क्योंकि सहस्त्रों वक्ता भी उसके अर्थ में विस्तार नहीं कर सकते, उसके स्वर का ही विस्तार करते हैं। जैसे एक हजार दीपक भी एक घड़े के आकार का विस्तार नहीं कर सकते।"

मीमांसकों के इस सिद्धांत कि ध्वनि प्रकट की जाती है और उसके उच्चारण उसे उत्पन्न नहीं कर सकते, इसके विरुद्ध इन आपत्तियों का जवाब निम्न-सूत्रों से दिया गया है–

> "परंतु दोनों सिद्धांतों के अनुसार अर्थात् जो यह स्वीकार करता है कि ध्वनि उत्पन्न होती है और दूसरा जो यह कहता है कि वह मात्र प्रकट की जाती है, दोनों के अनुसार वह क्षणिक है। परंतु इन दोनों मतों के अनुसार अभिव्यक्ति का सिद्धांत अगले सूत्र से प्रकट है, जो यथार्थ है। काल विशेष में सनातन ध्वनि

सुनाई नहीं पड़ती है। उसका कारण है कि कर्ता और कर्म का संपर्क नहीं बन पाता। ध्वनि शाश्वत है जैसे हम एक स्वर "क" को पहचानते हैं कि यह वही ध्वनि है जिसे हम सदा सुनते आए हैं, और क्योंकि यह सबसे आसान तरीका है यह मानने का कि यह वही ध्वनि है। नीरवता में जब किसी वक्ता के मुख से वायु का संयोजन और वियोजन होता है तो उससे वातावरण तरंगित होता है और इस प्रकार ध्वनि का आभास होता है, जो सदैव विद्यमान रहती है। चाहे उसका आभास न भी होता हो फिर भी उसके संचरण पर आपत्ति का यह उत्तर है।"

"ध्वनि (शब्द) करना" का अर्थ है एक क्रिया अथवा "उच्चारण"। जैसे सूर्य का दर्शन एक साथ अनेक व्यक्ति करते हैं, वैसे ही ध्वनि भी एक साथ अनेक व्यक्तियों द्वारा सुनी जाती है। ध्वनि सूर्य की भांति सर्वव्यापी है। यह कोई सूक्ष्म तत्त्व नहीं है। इसलिए यह सभी को समान रूप से ग्राह्य है, चाहे कोई निकटस्थ हो अथवा दूरस्थ।"

"सूत्र 10 में वर्णित है कि "इ" स्वर "य्" में परिवर्तित हो जाता है। वह "इ" का रूपांतरण नहीं है बल्कि "य्" एक भिन्न वर्ण है। स्पष्ट है कि ध्वनि का रूपांतरण नहीं होता।"

"जब कई व्यक्ति समवेत स्वर में बोलते हैं तो कोलाहल ही बढ़ता है, स्वर वही रहता है। कोलाहल का अर्थ है भिन्न-भिन्न दिशाओं से वायु के संयोजन-वियोजन का एक साथ कानों में प्रवेश। इसी कारण उसका विस्तार होता है।"

"ध्वनि सनातन होनी चाहिए क्योंकि वह अन्य लोगों तक अर्थ प्रेषित करती है। यदि वह सनातन न होती तो जब तक श्रोता उसका भाव जानता, तब तक वह उपस्थित ही न रहती और इस प्रकार श्रोता भाव-ग्रहण करने से वंचित रह जाता क्योंकि वह उपस्थित ही नहीं रहती।"

"ध्वनि सनातन है, क्योंकि वह सदैव सही और समान होती है और अनेक व्यक्ति उसे एक साथ समान रूप से सुनते हैं और यह नहीं माना जा सकता कि वे सभी गलती करें।"

"यदि 'गौ" (गाय) शब्द को दस बार दोहराएं तो श्रोता कहेंगे कि दस बार "गौ" कहा गया है। वे यह नहीं कहेंगे कि "गौ" की ध्वनि के दस शब्द कहे गए हैं। इस प्रकार ध्वनि की शाश्वतता का यह एक और प्रमाण है।"

"ध्वनि सनातन है, क्योंकि हमारे पास यह मानने के लिए कोई आधार नहीं है कि इसका क्षय हो जाता है जैसा कि सूत्र 20 में।"

"परंतु यह कहा जा सकता है कि ध्वनि वायु का रूपांतरण है क्योंकि इसका उद्‌गम वायु का संयोजन है, क्योंकि शिक्षा (वेदांग) का कथन है कि ध्वनि के अनुरूप हवा निकलती है और इस प्रकार यह वायु से उत्पन्न होती है। इसलिए सनातन नहीं हो सकती।"

इस आपत्ति का निराकरण सूत्र 22 में किया गया है–

"ध्वनि वायु का रूपांतरण नहीं है, यदि ऐसा होता तो श्रवणेंद्रिय के समक्ष कोई संगत तत्त्व न होता।"

इस न्यायबद्ध सार को देखते हुए कि "ध्वनि सनातन है और वेद के शब्द भी ध्वनि हैं, इस कारण वेद भी सनातन हुए" हम तर्कों की कीचड़ में फंसना नहीं चाहते। आश्चर्य यह है कि ब्राह्मणों ने वेदों के सनातन होने के इस सिद्धांत का प्रचार क्यों किया? अपने सिद्धांत के समर्थन में उन्होंने ऐसे अनर्गल तर्क क्यों गढ़ डाले? ब्राह्मणों ने यह स्वीकार क्यों नहीं कर लिया कि वेद ब्रह्मवाक्य नहीं हैं?

वेदों की सत्ता के विषय में दूसरी मान्यता यह है कि वे मात्र पावन और पवित्र ही नहीं हैं बल्कि वे अकाट्य भी हैं।

यह समझना कठिन है कि ब्राह्मणों ने वेदों को अकाट्य बताने की कोशिश क्यों की?

नियमों के संदर्भ में वेदों में सही अर्थों में कोई नियम नहीं है। वेदों ने धर्म को नैतिक भावना प्रदान नहीं की। वेदों के निम्नलिखित तीन अंशों को मुश्किल से ही नैतिक परिधि में ढाला जा सकता है।

पहला यम-यमी संवाद है, जो आपस में भाई-बहन थे–

यमी कहती है–"मैं अपने मित्र (यम) को मित्रता के लिए निमंत्रित करती हूं। विशाल रेगिस्तान और महासागरों को पार करती हुई आई हूं, इस निर्जन भूमि पर (तुम्हारी) संतान जन्म ले, जो तुम्हारे जैसे पिता के महान गुणों से संपन्न हो।"

यम कहता है–"तुम्हारा मित्र अर्थात मैं ऐसी मित्रता की इच्छा नहीं रखता। एक ही मूल की होते हुए भी तुम्हारी प्रकृति दूसरे प्रकार की है। महान प्रजापति के बहादुर पुत्रों का स्वर्ग पर अधिकार है और वे हमें देख रहे हैं।"

यमी कहती है–"अमरत्व प्राप्त देवादि सहवास (संभोग) का सुख प्राप्त करते हैं जो मृत्यु लोक के लोगों के लिए वर्जित है। आप मुझसे वैसे ही सहवास करें जैसे सबका स्रष्टा (ब्रह्मा) अपनी पुत्री का पति बना।"

यम कहता है–"हमने वह कर्म नहीं किया, जो पहले किया गया है। हम सत्यवादी हैं और इसलिए असत्य भाषण कैसे कर सकते हैं? गंधर्व (सूर्य) अंतरिक्ष जल धारण करने वाला और उसकी वधू हम दोनों के पिता-माता हैं, अतः हम सगे (भाई-बहन) हैं।"

यमी कहती है–"परमपिता प्रजापति ने हमें गर्भ में ही पति-पत्नी बना दिया। उसके कार्य में कोई बाधक नहीं। पृथ्वी और आकाश भी हमारे संबंध से परिचित हैं।"

यम कहता है–"हमारे प्रथम प्रणय को कौन जानता है? किसने यहां रहस्य से परिचित कराया है? मित्र और वरुण के स्थान दिन-रात के विषय में तू क्या कहती है? नरक की सजा कौन देता है?"

यमी कहती है–"यम की वासना मुझ यमी को एक शैया पर सोने के लिए विवश करे। मैं पत्नी के रूप में तुम पति को अपना सब कुछ समर्पित करती हूं। एक रथ के दो पहियों की भांति हम सहयोग कर वासना की पूर्ति करें।"

यम कहता है–"ईश्वर के दूत पृथ्वी पर सदा विचरण करते हैं और अपने नेत्र खुले रखते हैं। ओ विनाशिनी! शीघ्र किसी अन्य के साथ रमण कर जैसे कि एक गाड़ी के दो पहिए मिलते हैं और मेरा पीछा छोड़।"

यमी कहती है–"तुम्हारे ऊपर प्रत्येक पुजारी रात्रि और दिन न्यौछावर करे, सदैव सूर्य के नेत्र खुलें, तुम्हारे लिए युगल (रात और दिन) संयुक्त होकर आकाश और पृथ्वी की भांति मिलें। मैं यम के वियोग को सहन न कर सकूं।"

यम कहता है–"आगे चलकर ऐसा समय आएगा जब बहनें (पति के रूप में) उसे चुनेंगी, जो उसका भाई नहीं होगा। इसलिए भाग्यशालिनी मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को अपना पति चुन और अपनी भुजाओं को उसका तकिया बना।"

यमी कहती है–"उस भाई के होने से क्या लाभ है जिसके रहते हुए भी बहिन पति-विहीन रहे। उस बहिन के होने से क्या लाभ है जिसके रहते हुए भी भाई दुख उठाए। मैं कामाहत होकर ऐसे वचन बोल रही हूं। तुम मेरे शरीर से अपना शरीर मिलाओ।"

यम कहता है–"हे यमी, मैं तुम्हारे शरीर से अपना शरीर नहीं मिलाना चाहता। जो अपनी बहिन से संभोग करता है, उसे लोग पापी कहते हैं। हे सुंदरी! मेरे अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से आमोद-प्रमोद करो। तुम्हारा भाई यह काम करना नहीं चाहता।"

यमी बोली–"मुझे खेद है कि तुम बहुत कमजोर हो। मैं तुम्हारे मन को नहीं समझ पा रही हूं। रस्सी जिस प्रकार घोड़े को बांधती है और लता जिस प्रकार वृक्ष से लिपट जाती है, उसी प्रकार अन्य स्त्री तुम्हारा आलिंगन करती है।"

यम कहता है–"हे यमी। लता जिस प्रकार वृक्ष को लपेटती है, उसी प्रकार तुम मेरे अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष का आलिंगन करो। तुम उस पुरुष का मन जीतने की कामना करो और वह पुरुष तुम्हारा मन जीतने की इच्छा करे। तुम उसी के साथ कल्याणकारी सहवास करो।"

'राक्षसों का विनाश करने वाली अग्नि हमारी प्रार्थना स्वीकार करे। हमें उस दुरात्मा से त्राण दे जो व्याधि के रूप में तेरे भ्रूण आक्रांत करता है, जो काष्ठ की भांति तेरे गर्भाशय को निरस्त करता है।"

"अग्नि देव हमारी अर्चना को स्वीकार करें, उस नरभक्षी को नष्ट करें जो व्याधि के रूप में तेरे गर्भाशय पर दुष्प्रभाव डालता है, जो अंतःकाष्ठ की भांति तेरी कोख को रिक्त करता है।"

"दुरात्मा से हमें त्राण दे जो पुंसत्व का हरण करता है। गर्भ का नाश करता है, और नवजात शिशु का भी।"

"हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तेरी जंघाओं को विलग करता है, जो पति-पत्नी के बीच बाधा बनता है, जो तेरी कोख में प्रविष्ट होकर बीज का हरण करता है। हमें उस दुरात्मा से त्राण मिले जो भ्राता, पति अथवा प्रियतम के रूप में तुझ तक पहुंचता है और गर्भपात करना चाहता है।"

"हमें दुरात्मा से त्राण मिले जो तुझे नींद या अंधेरे में छल लेता है। तुझ तक आकर गर्भपात कर देता है।"

वेदों में दो चीजें हैं। पहली यह कि उनमें ऋषियों की आशाएं और आकांक्षाएं समाविष्ट हैं। जैसा कि मूइर महोदय ने कहा है–

"इन रचनाओं के स्वरूप और उन परिस्थितियों जिनमें ये रची गईं, से पता चलता है कि ये आदि कवियों के सहज रूप में व्यक्तिगत अभिलाषा और मनोभावों का प्रकटीकरण था, जिन्होंने सर्वप्रथम इन्हें गाया था। इनमें आर्य ऋषियों ने अपने प्राचीन देवताओं की तरह-तरह से स्तुति गाई और उन्हें संतुष्ट होने का आह्वान किया। ऐसे अनेक वरदान मांगे, जिनकी मानव मात्र को लालसा होती है, जैसे स्वास्थ्य, संपदा, चिरायु, पशुधन, संतति, शत्रु-विजय, पाप-मुक्ति और शायद स्वर्ण सुख भी।"

यही दृष्टिकोण निरुक्त के लेखक यास्क का भी है, जो कहते हैं–

("पूर्वोक्त खंड में चार प्रकार की ऋचाएं हैं) (क) जो देवता की अनुपस्थिति में संबोधित हैं, (ख) जिनमें उसको समक्ष जानकर संबोधित किया गया है, (ग) जिनमें आराधक को उपस्थित और आराध्य को अनुपस्थित माना गया है। वे अत्यधिक हैं। (घ) जबकि, जो स्वगत हैं, वे विरले ही हैं। ऐसा भी हुआ है कि देवता की प्रशंसा बिना वरदान कामना के लिए की गई है। जैसे कि इस मंत्र में (ऋग्वेद) 1.32 "मैं इंद्र के शौर्य का वर्णन करता हूं।" आदि। फिर बिना स्तुति किए वरदान की कामना की गई है, जैसे "मैं अपने चक्षुओं से अच्छा देखूं, मेरा मुख कांतिमान हो और कानों से भली-भांति सुनूं।" ऐसा आध्वर्यव (यजुर्) और यज्ञ सूत्रों में बार-बार कहा गया है। फिर इसमें हम शपथ और शाप भी पाते हैं। (ऋग्वेद 7.104, 15) "यदि मैं यातुधान हूं तो आज ही मैं मर जाऊं" आदि। फिर हम देखते हैं कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों को दर्शाने वाले मंत्र हैं (ऋग्वेद दस, 129, 2) 'तब मृत्यु

नहीं थी न अमरत्व आदि था। कुछ स्थितियों में विलाप भी मौजूद है, जैसे कि इस मंत्र में (ऋग्वेद दस, 95, 14) "रूपवान देवता प्रस्थान करेगा और अब कभी नहीं लौटेगा आदि। कहीं लांछन और प्रशंसा है, जैसा कि यह मंत्र कहता है (ऋग्वेद दस, 117, 6) "वह व्यक्ति जो अकेला खाता, सिर्फ पाप-कर्म करता है आदि।" द्यूत क्रीड़ा के विषय में मंत्र है (ऋग्वेद 10, 34, 13) जिसमें द्यूत क्रीड़ा की निंदा की गई है और कृषि की प्रशंसा। इस प्रकार जिन उद्देश्यों से ऋचाओं की सृष्टि हुई, वे विविध प्रकार के हैं।"

सूक्त 12 (163 वां)

क्षय रोग निवारण—ऋषि कश्यप पुत्र विव्रीहन है। छंद है अनुष्टुप्।

1. मैं तेरा चक्षु रोग हरण करता हूं। तेरी शिरोपीड़ा, तेरी नासिका, कर्ण, ठोड़ी, मानस, जिह्वा का रोग हरण करता हूं।
2. तेरी ग्रीवा, तेरी नासिका, तेरी अस्थियों, तेरे संधि-क्षेत्रों, तेरे बाहु, तेरे स्कंध, तेरी कलाइओं का रोग हरता हूं।
3. मैं तेरी अंतड़ियों, तेरी गुदा, उदर, हृदय, गुर्दे, यकृत और अंगों का रोग मिटाता हूं।
4. मैं तेरी जंघाओं, घुटनों, एड़ियों, पंजों, कमर, नितंबों और गुप्तांगों का रोग हरता हूं।
5. मैं तेरे मूत्र-मार्ग, मूत्र-ग्रंथि, बालों, नाखूनों, समस्त शरीर का रोग नष्ट करता हूं।
6. मैं तेरे प्रत्येक अंग, प्रत्येक बाल, प्रत्येक जोड़, जहां भी रोग हो, उस को मिटाता हूं।

जैसा कि प्रोफेसर विल्सन का कथन है ऋग्वेद (सबसे विशाल ग्रंथ) में मुश्किल से कोई ऐसा उदाहरण मिलेगा, जिससे इंगित होता हो कि उसमें कोई सैद्धांतिक अथवा दार्शनिक विवेचन है। उसमें विभिन्न परवर्ती सिद्धांतों का संकेत ही नहीं है बल्कि, उसमें पुनर्जन्म की ओर भी इंगित नहीं किया गया है, न इससे संबद्ध किसी अन्य सिद्धांत का, न ही विश्व की बार-बार सृष्टि का ही उल्लेख। आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालने के लिए वेदों में पर्याप्त सामग्री मिलती है। इसके लिए वे उपयोगी हो सकते हैं। यह आदिम जीवन का चित्रण है। उनमें प्रगति का कोई प्रसंग नहीं, उनमें दोष अधिकतम और गुण न्यूनतम हैं।

वेदों के सार और विषयवस्तु को देखते हुए यह बात चकित करती है कि ब्राह्मण इस अंधविश्वास को अकाट्य अर्थात निर्भ्रांत व अभ्रांत क्यों मानते हैं?

अगर मंत्र रचने वाले ऋषि स्वयं दावा करते तो अकाट्य होने के सिद्धांत का शायद कोई औचित्य ठहराया जा सकता था। लेकिन यह स्पष्ट है कि ऋषियों ने ऐसा आडंबर नहीं रचा, ऐसा दावा नहीं किया। इसके विपरीत उन्होंने कई बार जिज्ञासा-स्वरूप अपनी अज्ञता को स्वीकार किया है। ऋग्वेद के निम्नांकित मंत्र उनकी भावना के प्रतीक हैं—

"अज्ञ हूं, मेरे मानस (ज्ञान) से परे हैं, मैं देवताओं का अज्ञात आवास

जानना चाहता हूं, ऋषि ने सात धागे बछड़े के खुर तक खींचे हैं।" 6. अज्ञ (हूं) मैं उन ऋषियों से पूछता हूं जिन्हें इस विषय में ज्ञान है, अनजान (मैं पूछता हूं) कि मैं कैसे जानूं कि एक अजन्मा के रूप में क्या और वह जो इन छह लोकों को कैसे संभालता हैं? 37. मुझे पता नहीं कि मैं ऐसा हूं, मुझे आश्चर्य होता है कि मेरा ज्ञान सीमित है, जब यज्ञ से प्राप्त प्रथम पुत्र (सत्य) मुझे प्राप्त हुआ, तब मैं उस शब्द का आनन्द लेता हूं।"

"वन क्या थे, वृक्ष क्या थे, उन्होंने जिससे स्वर्ग और पृथ्वी बनाई, जो अब तक अक्षय विद्यमान हैं, कितने दिन, कितने प्रातः बीत चुके हैं?"

"इन दोनों स्वर्ग और धरा में से कौन पहला है? कौन अंतिम है? ये कैसे उत्पन्न हुए? हे ऋषि, कौन जानता है?"

"कितनी अग्नियां हैं? कितने सूर्य हैं? कितने सवेरे हैं? कितने जल हैं? पिता, मैं तुमसे उपहास नहीं कर रहा हूं। मैं ऋषि सचमुच पूछ रहा हूं जिससे मैं जान सकूं।" 5. "वहां किरणें तिर्यक फैलती हैं, यह नीची हैं अथवा ऊंची? वहां जनन शक्ति थी और महान शक्तियां थीं प्रयत्न स्वाध्याय नीचे है या ऊपर? 6. कौन जानता है यह किसने बनाया है? यह सृष्टि कब हुई? कहां से आई? परमात्मा इस ब्रह्मांड की सृष्टि के पश्चात जन्मा और कौन जानता है यह कब रची गई? क्या किसी ने इसकी रचना की? अथवा नहीं? जो सर्वोच्च स्वर्ग में रहता है, उसने यह ब्रह्मांड रचा। वह सचमुच जानता है अथवा नहीं?"

अकाट्य होने के इस सिद्धांत के बारे में कुछ अन्य बातें भी हैं, जो ध्यान देने के योग्य हैं।

IV

पहली बात तो यह है कि यह मान्यता मौलिक है या भारत के इतिहास में बाद में जड़ दी गई। सामान्य मत यह है कि यह एक मूलभूत सिद्धांत है। सर्वप्रथम धर्म-सूत्रों में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है, जो सर्वप्रथम विधिग्रंथ हैं। उनका संकेत है कि यह विकास सही नहीं है। वेदों के अकाट्य होने के संबंध में गौतमधर्म-सूत्र में निम्नांकित नियम प्रतिपादित हैं–

"वेद पवित्र विधान के उद्गम हैं"–1.1.

"और उनकी परंपराएं तथा रीतियां जो (वेदों को) जानते हैं"–1.2.

"यदि समान (अधिकारों वाली) शक्तियों के बीच संघर्ष हो किसी एक का अनुसरण करें, सुखी रहें"–1.4.

वसिष्ठ धर्म-सूत्र का विचार इस प्रकार है–

"पवित्र विधान पाठों और ऋषि परंपराओं से निर्धारित किए गए हैं"–1.4.

"(नियमों के अनुसार) निश्चय न हो पाने पर इन (दो सूत्रों) शिष्टों की

सत्ता सर्वोपरि है।"–1.5.

"जो कामनारहित हैं शिष्ट (कहलाते हैं)"–1.6.

बौधायन का मत निम्न प्रकार है–(प्र 1, अध्या. 1 कंडिका 1)

1. प्रत्येक वेद में पवित्र नियमों की शिक्षा है।
2. हम उसके अनुसार व्याख्या करेंगे।
3. (पवित्र विधान) की शिक्षा परंपराओं में है। (स्मृति का दूसरा स्थान है।)
4. शिष्टों के व्यवहार का तीसरा स्थान है।
5. शिष्ट निःसंदेह (वे हैं) जो निस्पृह 'ईर्ष्या से मुक्त', दर्प से मुक्त, मात्र दस दिन के लिए अन्न-संग्रह से संतुष्ट होते हैं, लोभ से मुक्त; पाखंड, अज्ञान, स्वार्थ, अनिश्चय बुद्धि तथा क्रोध से रहित हैं।
6. जो शिष्ट (कहलाते हैं) जिन्होंने पवित्र विधान के अनुसार वेद-वेदांग का अध्ययन किया है, जो जानते हैं कि इनसे किस प्रकार संदर्भ लिए जाएं, मान्य पाठ से भावानुकूल साक्ष्य प्रस्तुत कर सकें।"
7. उनके विफल हो जाने पर न्यूनतम दस सदस्यों की सभा (विधान के विवादित प्रश्नों पर निर्णय दें।)
8. अब वे उद्धृत करते हैं (निम्नांकित मंत्र): "चार पुरुष, उनमें से प्रत्येक किसी वेद मीमांसा का ज्ञाता हो, वेदांग को जानता हो, जो पवित्र विधान का वाचन करे, एवं विभिन्न तीन सिद्धांतों के अनुयायी, तीन विभिन्न संप्रदायों के ब्राह्मणों की मिलकर एक सभा बनती है, जिसमें न्यूनतम दस सदस्य हों।"
9. इसमें पांच अथवा तीन अथवा एक निर्विवाद व्यक्ति हो सकता है, जो (संबद्ध प्रश्नों पर) पवित्र विधान के अनुकूल निर्णय करे। किंतु एक हजार मूर्ख मिलकर भी निर्णय नहीं कर सकते।
10. काष्ठ निर्मित हाथी, चमड़े से बना मृग, अशिक्षित ब्राह्मण इन तीनों में कुछ नहीं होता, ये दर्शनीय पदार्थ हैं।

आपस्तंब धर्म-सूत्र द्वारा लिया गया दृष्टिकोण स्पष्ट है जो निम्न सूत्र से लिया गया है–

"हम अब बताएंगे कि गुणकर्म क्या है? जो दैनिक जीवन के व्यवहार का अंग बनते हैं।" 1.1.

"इन अधिकारों (उपरोक्त कर्तव्य पालन के) को सहमति (समझौता) कहते हैं जो विधि को समझते हैं।" 1.2.

"और (शीर्ष अधिकारी) मात्र वेद हैं।" 1.3.

धर्म-सूत्रों की समीक्षा से यह पता चलता है कि वेदों के अकाट्य होने की मान्यता एक ऐतिहासिक उपज है। इससे पता चलता है कि–1. वेद, 2. परंपरा (स्मृति), 3. शिष्टों

के व्यवहार, 4. सभा में समझौता; ये चार अधिकार केंद्र थे। इनमें से किसे अकाट्य माना जाए? इससे यह पता चलता है कि एक समय था, जब मात्र वेद ही असंदिग्ध सत्ता नहीं थे। वह वशिष्ठ और बौधायन के धर्म-सूत्रों का काल था। गौतम के काल में ही वेदों की एकछत्र सत्ता स्थापित हुई। एक ऐसा समय भी था जब सभा का निर्णय सत्ता का केन्द्र था। यह बौधायन का युग था। अंत में विवेचन से यह भी प्रकट होता है कि एक ऐसा समय था जब वेदों को अधिकार संपन्न ग्रंथ नहीं माना जाता था, बल्कि सत्ता का केंद्र विद्वानों की सभा का निर्णय हुआ करता था। यह काल था, जब आपस्तंब[1] ने अपने धर्म-सूत्रों की रचना की अर्थात् ईसा से 600 से लेकर 200 वर्ष पूर्व[2] तक।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि वेदों को जान-बूझकर सनातन बनाने की कोशिश की गई। पहले इन्हें ऐसा नहीं माना जाता था[3]। अब सवाल यह है कि वे कौन सी परिस्थितियां और क्या उद्देश्य थे, जिनके चलते ब्राह्मणों ने यह प्रचारित किया कि वेद एकछत्र और परमसत्ता के केंद्र हैं।

वेदों की सनातनता से जुड़ा दूसरा सवाल यह है कि ब्राह्मणों ने भेदभाव क्यों बरता और वेदों के कुछ अंशों तक ही अकाट्यता का सिद्धांत क्यों सीमित रखा? पूरे वैदिक साहित्य को इस श्रेणी में क्यों नहीं रखा? इसको समझने के लिए यह जानना जरूरी है कि वैदिक साहित्य का क्या मतलब है? 'वैदिक साहित्य' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है। उसके अंग हैं—(1) संहिता, (2) ब्राह्मण, (3) आरण्यक, (4) उपनिषद और (5) सूत्र। जब इसका विस्तृत अर्थ किया जाता है तो इसमें दो अंग और जुड़ जाते हैं। (6) इतिहास, और (7) पुराण।

पहली बात ध्यान में यह रखनी चाहिए कि एक समय यह सारा साहित्य एक ही श्रेणी में आता था और इनके बीच उद्‌घाटित (=ईश्वर-दत्त) अथवा लौकिक, अलौकिक अथवा मानवीय, तथा प्राधिकृत अथवा अप्राधिकृत के आधार पर कोई भेद नहीं था। यह बात शतपथ ब्राह्मण से स्पष्ट है, जिसमें कहा गया है—

> "पुरुष प्रजापति की इच्छा हुई कि मेरी अभिवृद्धि हो, मेरा विस्तार हो। वह समाधिस्थ हो गए, उन्होंने घोर तप किया। इस तप से उन्होंने त्रयीविद्या की रचना की। यह उनका आधार बना। उन्होंने कहा—'विद्या ब्रह्मांड का मूल है।'

---

1. *आपस्तंब धर्म-सूत्र में वेदों के प्रसंग से भ्रम नहीं होना चाहिए। आपस्तंब वेदों की सत्ता स्वीकार नहीं करता। उसमें वेदों का ज्ञान परिषद की सदस्यता की अर्हता भर है, जिसकी मान्यता ही वैध है।*
2. *मैक्स मूलर के अनुसार यह सूत्रों का युग था। आपस्तंब प्राचीनतम है।*
3. *आपस्तंब धर्म-सूत्र में वेदों के प्रसंग से भ्रम नहीं होना चाहिए। आपस्तंब वेदों की सत्ता स्वीकार नहीं करता। उसमें वेदों का ज्ञान परिषद् की सदस्यता की अर्हता भर है जिसकी मान्यता ही वैध है।*

वेदों के ज्ञान के पश्चात् पुरुष को आधार मिला कि विद्या उसका मूल है। इस आधार पर प्रजापति ने घोर तप किया। (9) उन्होंने वाच से जल की रचना की। उसके विस्तरण से (आप्नोत्) जल "आपः" कहलाया। उसकी सर्वत्र व्यापकता से (अवृणोत्) वह "वारि" बना। (10) उन्होंने चाहा, "मेरा जल से विस्तार हो"। इस त्रिवेद विद्या से वे जल में प्रविष्ट हुए, तब एक अण्डा उभरा। उन्होंने उसे प्राणवान किया और कहा, "भव भव पुनर्भव"। तब विद्या का जन्म हुआ। त्रिवेद विद्या। फिर पुरुष ने कहा, 'विद्या ब्रह्मांड की प्रथम सृष्टि है। पुरुष के समक्ष सर्वप्रथम विद्या की रचना हुई। इसलिए यह उसका मुख बनी। इस प्रकार आगे वे कहते हैं "वह अग्नि के समान है क्योंकि विद्या अग्नि का मुख है।

"जैसे आर्द्र काठ से उपजी अग्नि से भिन्न-भिन्न धुएं उठते हैं वैसे ही उन प्रजापति की श्वास प्रक्रिया से महान ऋग्वेद बना, *यजुर्वेद* बना, *सामवेद* बना, *अथर्ववेद*, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद, श्लोक, सूत्र विभिन्न प्रकार के भाष्य बने। यह सब उसके श्वास बने।"

लेकिन जब ब्राह्मणों ने अकाट्य होने के सिद्धांत को स्थापित करने का प्रयास किया तो उन्होंने वैदिक साहित्य को दो भागों में विभक्त कर दिया। 1. श्रुति और 2. अश्रुति। प्रथम विभाजन में उन्होंने आठ अंगों में से केवल दो को श्रेष्ठ रखा—संहिता और ब्राह्मण को। शेष को उन्होंने अश्रुति घोषित कर दिया। यह बताना संभव नहीं कि यह अंतर कब उत्पन्न हुआ लेकिन यह सवाल अधिक महत्त्वपूर्ण है कि किस आधार पर यह भेद किया गया। आरण्यक और उपनिषद् क्यों छांटकर बाहर कर दिए गए? यह तो समझा जा सकता है कि इतिहास और पुराणों को श्रुति के लेबल से क्यों वंचित किया गया। जिस समय यह भेद किया गया, तब वे इतने आरंभिक और अविकसित थे कि उन्हें शायद ब्राह्मणों में सम्मिलित कर लिया गया।

यह बात भी समझी जा सकती है कि आरण्यकों का श्रुति के अंग के रूप में उल्लेख क्यों नहीं किया गया। ये ब्राह्मणों अर्थात ब्राह्मण ग्रंथों के अंग थे और शायद इसी कारण यह उल्लेख करना अनावश्यक था कि ये श्रुति का अंग हैं। उपनिषद् और सूत्रों का सवाल एक पहेली ही बना हुआ है कि इन्हें श्रुति से अलग क्यों रखा गया। परंतु सूत्रों की बात अलग है। वे श्रुति की श्रेणी से निश्चित रूप से विलग कर दिए गए जिसका कारण अबूझ है। यदि यह बात तर्कसम्मत है कि ब्राह्मण को श्रुति में सम्मिलित किया जाना चाहिए, तो उसी आधार पर यह बात उचित नहीं ठहरती कि सूत्रों को शामिल क्यों न किया जाए। जैसा कि प्रोफेसर मैक्स मूलर कहते हैं—

"हम इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार कोई देश अपनी राष्ट्रीय काव्य रचना का श्रेय किसी अलौकिक पुरुष को दे सकता है। विशेष रूप से तब जब कि उस काव्य में देवों को संबोधित प्रार्थनाएं और मंत्र समाविष्ट हों। परंतु ब्राह्मण ग्रंथों के गद्य-साहित्य के विषय में यह कहना कठिन है। ब्राह्मण ग्रंथ स्पष्ट रूप से मंत्रों की अपेक्षा बाद की रचनाएं हैं। इसी कारण इन्हें श्रुति में समाहित

किया गया होगा क्योंकि सूक्तों की साधारण प्राचीन कविता से नहीं, बल्कि इन्हीं धर्मशास्त्रीय रचनाओं से ब्राह्मणों के अधिकाधिक महत्वाकांक्षी दावों के लिए एक अनुमानित प्रामाणिकता हासिल की जा सकती थी। लेकिन हालांकि हमें उन तर्कों को कोई महत्व देने की जरूरत नहीं है जिनके माध्यम से ब्राह्मणों ने मंत्रों और ब्राह्मण ग्रंथों की समकालिक उत्पत्ति सिद्ध करने की कोशिश की, फिर भी इसका कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हमें इस सामान्य मत को उतना ही व्यर्थ मानकर अस्वीकार क्यों नहीं कर देना चाहिए जिसके अनुसार भारत के लौकिक (अधार्मिक) साहित्य और सूत्रों की तुलना में ब्राह्मण ग्रंथ और मंत्र दोनों ही अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन हैं। ऐसा होना आम बात है कि पवित्र ग्रंथों में बाद की रचनाओं को प्राचीन रचनाओं के साथ ही जोड़ दिया जाता है जैसा कि ब्राह्मण ग्रंथों के साथ हुआ। किंतु हम कठिनाई से ही यह विश्वास कर सकते हैं कि जब तक कोई पक्ष इन उपेक्षित रचनाओं के सिद्धांत विशेष की प्रामाणिकता अमान्य घोषित करने के लिए प्रयत्नशील न हो, पुराने और युक्ति-युक्त अंशों को पवित्र रचनाओं से हटा दिया जाए और उन्हें बाद की रचनाएं बता दिया जाए। इसे मानने का कोई आधार सूत्रों के परवर्ती साहित्य में नहीं दिखाई देता। हमें ब्राह्मण और मंत्रों की अपेक्षा उनके परवर्ती होने के सिवाय ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि सूत्रों को श्रुति न बनाया जाए। क्या ब्राह्मण ग्रंथकारों को स्वयं ज्ञात था कि ऋषियों की अधिकांश रचनाओं और ब्राह्मण ग्रंथों के उद्‌भव के बीच युगों का अंतराल है? इस सवाल का जवाब बिना संकोच 'हां' में दिया जा सकता है। किंतु जिस दुस्साहस के साथ भारतीय ब्रह्मज्ञानियों ने ब्राह्मण ग्रंथों को वही पद और उनका काल मंत्रों के समान निर्धारित किया, उससे यह प्रकट होता है कि इसका कोई विशिष्ट कारण रहा होगा कि सूत्रों को उतनी ही पावनता और प्राथमिकता न दी जाए।"

तीसरा सवाल उन बदलावों से संबंधित है, जो श्रुति और उनकी अकाट्यता के दायरे में हुए। मनु ने 'ब्राह्मणों' को श्रुति की श्रेणी से अलग[1] कर दिया जैसा कि उसकी स्मृति के इस अंश से स्पष्ट है–

"श्रुति का अर्थ है वेद और स्मृति का अर्थ है विधान, इनकी विषय–सामग्री पर तर्क नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें कर्तव्य-बोध है। वे ब्राह्मण, जो बुद्धिवादी ग्रंथों के आधार पर ज्ञान के इन दो स्रोतों की निंदा करें, उन्हें संशयवादी और निदंक जानकर बहिष्कृत किया जाए। जो कर्तव्य-बोध चाहते हैं, उनके लिए श्रुति सर्वोच्च सत्ता है।"

---

1. *इसमें विवाद हो सकता है कि वेद में ब्राह्मण को सम्मिलित किया गया है, जो तथ्य भी है। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि मनु ने स्मृति का प्रयोग सीमित रूप में किया, जिससे कि ब्राह्मण बाहर रहा। इसे इस तथ्य से भी बल मिलता है जैसा कि मनुस्मृति में ब्राह्मण का कोई संदर्भ नहीं है सिवाय एक स्थान पर (4.100) जहां कहा गया है कि केवल मंत्र के भाग के अध्ययन की जरूरत है।*

चौथा प्रश्न पुराणों के उस दावे से संबंधित है, जो पुराणों को रचना की दृष्टि से वेदों से उच्च स्थान देता है। वायु पुराण का कथन[1] है–

"सर्वप्रथम सभी शास्त्र, पुराण ब्राह्मण के मुख से प्रस्फुटित हुए। तदुपरांत उनके मुख से वेद।" मत्स्य पुराण वेदों से पुराणों का केवल पूर्ववर्ती होना ही घोषित नहीं करता बल्कि वह उनके गुणों, सनातनता और शब्द के साथ तादात्म्य को भी उनमें मानता है। पहले केवल वेदों को इन गुणों से संपन्न कहा जाता था। वह कहता[2] है–

> "सर्वप्रथम, अविनाशी पितामह (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए, फिर वेद, उसके अंगोपांग तथा उनके पाठ के विभिन्न साधन जन्मे और प्रकट हुए। ब्रह्मा ने जिन शास्त्रों का प्रस्फुटन किया उनमें सहस्रों कोटि मंत्रों के विस्तृत आयाम वाले शाश्वत ध्वनि जनित शुद्ध शास्त्र, पुराण प्रथम थे जो शुरू के जाप से जन्मे, फिर वेदों का उद्‌गम हुआ। तभी मीमांसा और न्याय और अन्य प्रमाण जन्मे 5. उनसे (ब्रह्मा) जो वेदों के अध्ययन में आस्थावान थे, संतति के इच्छुक थे, उनके मानस-पुत्र जन्मे। वे इस कारण मानस-पुत्र कहलाए कि सर्वप्रथम उनके मानस से प्रस्फुटित हुए थे।"

भागवत पुराण वेदों के समान प्रामाणिकता का दावा करता है–

> "ब्रह्मरात का निर्णय है कि जो पुराण भागवत कहलाता है, वह वेदों के पूरी तरह समान है।"

ब्रह्मवैवर्त पुराण ने स्पष्टतः दावा क़िया है वह वेदों से श्रेष्ठ है। वह कहता है–

> "जिस श्रद्धेय ऋषि के विषय में आपने प्रश्न किया है और जो आपकी इच्छा है, पुराणों का सार अति विख्यात ब्रह्मवैवर्त पुराण है जो समस्त पुराणों और वेदों की त्रुटियों का परिष्कार करता है, इसको मैं जानता हूं।"

इस निरूपण से वेदों के संबंध में अनेक पहेलियां उपजती हैं। यह तीन पहेलियां तो हैं ही कि ब्राह्मण इस बात पर क्यों बल देते हैं कि वेदों की सत्ता सनातन है, कि वे अपौरुषेय और बिना किसी देवता के उत्पन्न हुए और वे अकाट्य हैं। इसके अतिरिक्त, वेदों के विषय में एक और पहेली है कि एक समय वेदों की कोई सत्ता नहीं थी और वे अकाट्य भी नहीं थे। ब्राह्मणों को यह क्यों जरूरी लगा कि उन्हें अकाट्य बताएं? ब्राह्मणों ने सूत्रों को श्रुति की श्रेणी से क्यों अलग कर दिया? बाद में ब्राह्मणों ने वेदों के अकाट्य होने के सिद्धांत को क्यों त्याग दिया और पुराणों को क्यों अकाट्य बताना शुरू कर दिया?

---

1. मूइर द्वारा ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 3, पृ. 27 पर उद्धृत।

2. वही, पृ. 28

परिशिष्ट : 2

वेदांत की पहेली

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने जिन छह दर्शनों का प्रतिपादन किया, उनमें वास्तव में सबसे विख्यात है वेदांत-दर्शन। इसका नाम ही ज्यादा नहीं, बल्कि हिंदुओं में इसकी जितनी मान्यता है, उतनी अन्य किसी दर्शन की नहीं है। वेदों के प्रत्येक अनुयायी को वेदांत पर गर्व है। वह इसको मानता ही नहीं बल्कि वह यह भी समझता है, विश्व के दार्शनिक विचारों में जो योगदान भारत ने किया है उसमें यह सबसे अधिक मूल्यवान है। वह समझता है कि वेदांत-दर्शन वेदों की शिक्षा का लक्ष्य है। उसे कभी भी यह संदेह नहीं हुआ कि भारत के इतिहास में वेदांत कभी वेद-द्रोही रहा है अथवा उसमें वेदों का खंडन किया गया है। उसे इस बात का कभी विश्वास नहीं होता कि एक समय ऐसा भी था जब उसका अर्थ वर्तमान अर्थ से पूर्णतः भिन्न था। उसके अनुसार वेदांत का अर्थ यह नहीं किया जाता था कि यह वैदिक विचारों की उपज है बल्कि यह ऐसे विचारों का साकार रूप है, जो वैदिक साहित्य के अधिमत की परिधि से बाहर है। वास्तविकता यही थी।

यह सत्य है कि वेदों और वेदांत के बीच यह विचार भिन्नता 'उपनिषद्' शब्द से परिलक्षित नहीं होती थी, जो उस साहित्य की व्यापक पहचान है जिसे वेदांत-दर्शन ने प्रचलित किया और जिसकी व्युत्पत्ति के विषय में बहुत मतभेद हैं।

अधिकांश यूरोपीय विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि उपनिषद् की व्युत्पत्ति "षद्" धातु से हुई है, जिसका अर्थ है, बैठना। इसके पूर्व के "नि" का अर्थ है 'नीचे' और "उप" का अर्थ है, पास, जिसके कारण इसका संपूर्ण अर्थ निकलता है, किसी एक व्यक्ति के पास सामूहिक रूप में जाकर बैठना। जैसा कि प्रोफेसर मैक्स मूलर ने कहा है, इस व्युत्पत्ति के संबंध में दो आपत्तियां हैं। पहली बात तो यह है कि ऐसा लगता है कि इसका आशय वेद के किसी अन्य अंश और उपनिषद कहे जाने वाले अध्यायों से है और इसकी कभी व्याख्या नहीं की गई कि उसका अर्थ इतना सीमित क्यों किया गया। दूसरी बात है कि उपनिषद का भाव सभा या सत्र से मेल नहीं खाता। जब भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है, इसके अर्थ हैं—ज्ञान, गुह्य ज्ञान अथवा इसका सरलार्थ है, दार्शनिक पुस्तक का शीर्षक, जिसमें गुह्य ज्ञान निहित हो। मैक्स मूलर के अनुसार तीसरी व्याख्या है, जैसा शंकर ने तैत्तिरीय उपनिषद के भाष्य 2-9 में कहा है कि उपनिषद् में परम आनन्द समाहित है। इस संबंध में मैक्स मूलर कहते हैं—

"आरण्यकों में ऐसी व्युत्पत्तियां भरी पड़ी हैं जिनमें वास्तविक अर्थ बताने के स्थान पर शब्द-जाल अधिक है। फिर भी, उनसे अर्थ निकालने में कुछ सहायता मिलती है।"

बहरहाल, प्रोफेसर मैक्स मूलर उपनिषद शब्द का मूल "षद्" धातु मानते हैं जिसका अर्थ है विनाश अर्थात् ऐसा ज्ञान जो अज्ञान का विनाश करता है, मोक्ष मार्ग से ब्रह्मलीन होने के लिए संसार का विनाश बताता है। प्रोफेसर मैक्स मूलर कहते हैं कि भारतीय विद्वानों में उपनिषद के इस अर्थ पर सहमति है।

यदि यह स्वीकार कर लिया जाए कि उपनिषद का वास्तविक अर्थ यही है तो इस सिद्धांत के पक्ष में एक साक्ष्य होगा कि भारतीय इतिहास में एक समय था जब वेदांत को विचारों की ऐसी धारा समझा जाता था, जिसका वेदों के साथ टकराव था। परंतु यह बात इस पर निर्भर नहीं है कि इस सिद्धांत के समर्थन के लिए निरुक्ति की सहायता ली जाए। कुछ बेहतर और प्रत्यक्ष प्रमाण और भी हैं। पहली बात तो यह है कि 'वेदांत' शब्द का प्रयोग "वेदों के अंतिम ग्रंथ" के रूप में नहीं लिया गया हैं। मैक्स मूलर[1] का मत है–

"वेदांत एक तकनीकी शब्द है और मूल रूप से इसका अर्थ वेदों का अंतिम अंश नहीं है। और न ही वैदिक साहित्य का अध्याय है, अर्थात् वेदों का अंतिम भाग। तैत्तिरीय आरण्यक (संपादक राजेन्द्र मित्र, पृष्ठ 820) जैसे कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जिनसे भारतीय और यूरोपीय विद्वानों को भ्रांति हुई है कि वेदांत का सरल-सीधा अर्थ है वेदों का उपसंहार। **"यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदांते च प्रतिष्ठितः"**, 'ओऽम् से वेद का आरंभ होता है और उसी से वेद का समापन होता है।' यहां वेदांत का जो सीधा अर्थ है, वेदादौ (=वेद के आदि में) के विपरीत है, जैसा कि इसका अनुवाद किया गया है। उसका अनुवाद वेदांत अथवा उपनिषद करना असंभव है। वेदांत दर्शन के रूप में तैत्तिरीय आरण्यक (पृष्ठ 817) में दिग्दर्शित हुआ है। नारायणीय उपनिषद के एक मंत्र में, जिसकी आवृत्ति मुण्डकोपनिषद् 3.2.6 में तथा अन्यत्र भी हुई है **"वेदांतविज्ञान सुनिश्चितार्थाः"**, "जो विद्वान वेदांत मर्मज्ञ हैं, उनके अनुसार वह वेदों का उपसंहार (अंतिम भाग) नहीं" और श्वेताश्वतर उप 6.22 **वेदांते परमं गुह्यम्** वेदांत में परम गोपनीय ज्ञान है। भाष्यकार के मत में यह वेद का उपसंहार नहीं, जो कालांतर में यह शब्द बहुवचन के रूप में प्रयुक्त हुआ है अर्थात् क्षुरिकोपनिषद 10 (बिबलि इंड पृ. 210) **पंडरीकेति वेदांतेषु निगद्यते**, 'इसे वेदांतों में पुंडरीक कहा गया है।' छांदोग्य तथा अन्य उपनिषदों में भी ऐसा ही कहा गया है, जैसा कि भाष्यकार ने कहा है, परंतु कहीं वेद का अंतिम ग्रंथ नहीं कहा गया है।

---

1. दी उपनिषदज, (एस.बी.ई.), खंड 1, भूमिका।

इस संबंध में गौतम धर्म-सूत्र में स्पष्ट साक्ष्य उपलब्ध है। अध्याय 19 के 12वें सूत्र में शुद्धीकरण पर गौतम का कथन[1] है–

शुद्धीकरण (के ग्रंथ हैं) उपनिषद्, वेदांत, संहिता सभी वेदों के पाठ हैं आदि-आदि।

इससे यह स्पष्ट है कि गौतम के समय उपनिषद् और वेद अलग-अलग माने जाते थे और वे वेदों का अंग नहीं माने जाते थे। हरदत्त ने अपने भाष्य में कहा है, आरण्यकों के वे अंश जो (उपनिषद) नहीं हैं, वेदांत कहलाते हैं। यह निर्विवाद है कि उपनिषद वैदिक सिद्धांतों से भिन्न थे।

भगवद्गीता में वेद के उल्लेख से भी इसकी पुष्टि होती है। भगवद्गीता में 'वेद' शब्द का अनेक स्थानों पर उल्लेख है। भट्ट के अनुसार इस शब्द का प्रयोग इस भाव से किया गया है कि लेखक का आशय उपनिषद नहीं है।

उपनिषदों को वेदों के धार्मिक साहित्य से इसलिए अलग किया गया क्योंकि उपनिषदों में वेदों की इस शिक्षा का विरोध है कि धार्मिक कार्य और यज्ञ मोक्ष का एक मात्र साधन हैं। उपनिषदों के कुछ उदाहरण इसे प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होंगे कि वे वेद-विरुद्ध हैं। मुण्डकोपनिषद् का कथन है–

> 1. सभी देवताओं में सबसे पहले विश्वनियंता, जगतपालक ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्होंने अपने ज्येष्ठतम पुत्र अथर्वा को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी, जो समस्त ज्ञान का आधार है। 2. अथर्वा ने यह ज्ञान, जो उन्हें ब्रह्मा से मिला था, अंगिरा को दिया; उन्होंने भारद्वाज की संतति सत्यवह को समझाया जिन्होंने किंवदंतियों के अनुसार यह ज्ञान अंगिरस को दिया। 3. शौनक पूर्ण शिष्टाचारपूर्वक अंगिरस के पास गए और पूछा–"हे आदरणीय ऋषि, वह कौन-सा साधन है जिससे इस संपूर्ण जगत का ज्ञान हो सकता है?" 4. अंगिरस ने उत्तर दिया, ये दो विधाएं पवित्र विद्याओं के ज्ञाता ऋषियों के अनुसार इस प्रकार जानी जाती हैं, एक श्रेष्ठ और दूसरी अश्रेष्ठ। 5. अश्रेष्ठ विधाएं हैं–ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, स्वराधात, कर्मकांड, व्याकरण, भाष्य, पिंगल और खगोल शास्त्र। श्रेष्ठ विद्या वह है जिससे अक्षय, का ज्ञान होता है, जिसका आशय उपनिषदों से है।
>
> छांदोग्य उपनिषद का कथन है–
>
> (1) "नारद सनत्कुमार के पास गए और कहा–"मुझे उपदेश करें"। नियमानुसार आए हुए नारद से सनत्कुमार ने कहा–तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे पास आओ, फिर मैं तुम्हें तुम्हारे ज्ञान से आगे उपदेश

1. सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट, खंड 2, पृ. 275

करूंगा।" (2) नारद ने उत्तर दिया, "मैं ऋग्वेद पढ़ा हूं। यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद भी जानता हूं। इनके अतिरिक्त इतिहास, पुराण रूप पंचम वेद, वेदों का वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, कल्प शास्त्र, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, शिक्षाकल्प, छंद और ब्रह्मविद्या, भूतशास्त्र, धनुर्वेद, ज्योतिषविद्या, गारुड़विद्या, देवशास्त्र यह सब मैं जानता हूं। (3) यह सब जानते हुए भी वह मैं केवल शब्दार्थ मात्र ही जानता हूं, आत्मा को मैं नहीं जानता। मैंने आप जैसे पूज्यजनों व महापुरुषों से सुना है कि आत्मज्ञानी शोक को पारकर जाता है। मैं तो शोक करता हूं। आप ऐसे शोकग्रस्त मुझको शोक से पारकर देवें, अर्थात् मुझे अभय प्राप्त कर देवें। ऐसा सुनकर सनत्कुमार ने नारद से कहा—"अभी तक यह जो कुछ तुम जानते हो, वह नाममात्र ही है।" (4) क्योंकि ऋग्वेद नाम है, यजुर्वेद, सामवेद, चौथा अथर्ववेद, पांचवां वेद इतिहास और पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेद विद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गारुड़, संगीतादि कला और शिल्पशास्त्र—ये सब भी नाम ही हैं। इसलिए तुम नाम की ब्रह्म बुद्धि से उपासना करो। (5) वह जो नाम ब्रह्म है, ऐसी उपासना करता है, जहां तक नाम की गति है, वहां तक नाम के विषय में उस उपासक की यथेष्ट गति हो जाती है। जो "यह ब्रह्म है" इस प्रकार नाम की उपासना करता है। (नारद ने कहा) भगवान् क्या नाम से बढ़कर भी कोई वस्तु है? सनत्कुमार ने कहा नाम से भी बढ़कर वस्तु है। तब नारद ने कहा भगवान, मुझे उसका ही उपदेश करें।"

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार—

इस सुषुप्तावस्था में पिता अपिता हो जाता है, माता अमाता हो जाती है अर्थात् जन्य जनक भाव संबंध नहीं रह जाता। लोक अलोक हो जाते हैं। देव अदेव और वेद अवेद हो जाते हैं, अर्थात् सभी साध्य-साधन का अभाव हो जाता है। यहां पर चोर अचोर हो जाता है। भ्रूण-हत्यारा अभ्रूण-हत्यारा हो जाता है। चांडाल-चांडाल नहीं रह जाता है। पुल्कस अपुल्कस हो जाता है। (शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न संतान को चांडाल कहते हैं। शूद्रा में ब्राह्मण से उत्पन्न संतान को निषाद कहते हैं एवं निषाद से क्षत्रिय में उत्पन्न संतान को पुल्कस कहते हैं।) श्रमण अश्रमण और वानप्रस्थी अतापस हो जाता है, अर्थात् किसी वर्णाश्रम-धर्म की या पुण्य-पाप की प्रतीति नहीं होती। उस समय यह पुरुष पुण्य से असंबद्ध तथा पाप से भी संबंध रहित हो जाता है। क्योंकि तब वह हृदय के समस्त शोकों को पारकर जाता है।

कठोपनिषद् का कहना है—

"आत्मा उपदेश से प्राप्य नहीं। न ही ज्ञान से, न पठन से। वह उसी को प्राप्त होती है जिसे वह चाहती है, जिसे यह चुनती है। आत्मा उसी को अपना शरीर प्रत्यक्ष करती है, जिसे वह चुन लेती है।"

"यद्यपि आत्मा का ज्ञान कठिन है तथापि समुचित साधनों से उसे जाना जा सकता है। वह (लेखक) कहता है, उपदेश से या वेदों के ज्ञान से या बुद्धि से या पुस्तकों के रखने से या मात्र पाठन से इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। फिर वह कैसे लभ्य है? वह यह घोषित करता है।"

उपनिषदों और इनकी दार्शनिकता के प्रति कितनी अरुचि थी, इसका आभास तभी हो सकता है जब कोई हिंदुओं की विवाह-पद्धति अनुलोम और प्रतिलोम शब्दों की उत्पत्ति समझेगा। उसकी उत्पत्ति के विषय में पी.वी. काणे[1] का कथन है—

अनुलोम और प्रतिलोम (विवाह की परंपरा) ये दोनों वैदिक साहित्य में दुर्लभ हैं। *बृहदारण्यक उपनिषद* (2,1.5) और कौषीतकि (4,8) में प्रतिलोम शब्द का प्रयोग उस स्थिति के लिए किया गया है, जब कोई ब्राह्मण, ब्रह्म के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए क्षत्रिय के पास जाए।

अनुलोम का अर्थ है, शास्त्रानुसार सहज परंपरा से कार्य संपन्न होगा, प्रतिलोम का अर्थ है सहज परंपरा के विपरीत। माननीय काणे के कथनानुसार प्रतिलोम की परिभाषा के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि उपनिषदों को वैदिक साहित्य की मान्यता प्राप्त नहीं है। उन्हें यदि तिरस्कृत भी नहीं किया गया है तो भी वैदिक ब्राह्मणों ने उनका स्थान तुच्छ रखा है। वह एक और प्रमाण है कि एक समय था जब वेदों और उपनिषदों का संबंध प्रतिस्पर्धापूर्ण था। यह समझना एक पहेली है कि ब्राह्मण, जो वेदांत के विरोधी थे, कालांतर में वही उसके समर्थक और पक्षधर क्यों बन गए।

II

यह वेदांत की एक पहेली है। एक और भी है। केवल वेदांती वेद-विरोधी नहीं थे, केवल यही नहीं मानते थे कि मोक्ष कर्म-कांड के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता। सर्व दर्शन संग्रह के लेखक माधवाचार्य ने वेदों के दो और विरोधियों का उल्लेख किया है। वे हैं, चार्वाक और बृहस्पति। वैदिकों पर उनकी आलोचना अधिक तार्किक है। निम्नांकित उद्धरण से चार्वाक का विरोध व्यक्त होता है और वैदिकों के विरुद्ध उनकी तर्क-धारा का भी संकेत मिलता है।[2]

---

1. *हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खंड 2, भाग 1, पृ. 52*
2. *सर्वदर्शनसंग्रह (कावैल द्वारा अनूदित), पृ. 64*

"यदि आपको इस पर आपत्ति है, यदि परलोक में सुख जैसा कुछ नहीं तो बुद्धिमान अग्निहोत्र क्यों करें, बलि क्यों दें, जिन पर भारी अपव्यय होता है और थकान होती है? आपकी आपत्ति को कोई भिन्न साक्ष्य नहीं माना जा सकता क्योंकि अग्निहोत्रादि जीविकोपार्जन के साधन मात्र हैं। क्योंकि वेद में तीन दोष हैं–मिथ्या-कथन, अंतर्विरोध और पुनरुक्ति। तब फिर अपने आपको वैदिक पंडित मानने वाले और आपस में लड़ने वाले ठग, उनमें ज्ञान मार्गी कर्मकांडियों की मान्यताओं को असत्य ठहराते हैं और कर्म-कांडी ज्ञान मार्गियों की मान्यताओं को ठुकरा देते हैं, और अंत में तीनों वेद पोंगापंथियों के बेतुके चारण काव्य हैं। इस संबंध में प्रसिद्ध लोक-कथन इस प्रकार हैं–

"अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापसवृत्ति, त्रिदंड धारण और भस्म मलना, ये उनकी कमाई के धंधे हैं", और बृहस्पति के कथनानुसार इनका "मनुष्यता और बुद्धि से कोई सरोकार नहीं है।"

बृहस्पति भी इसी मत के अनुयायी थे। चार्वाक की अपेक्षा बृहस्पति वेदों के विरुद्ध अधिक कठोर एवं उग्र थे। जैसा कि माधवाचार्य ने उद्धृत किया है। बृहस्पति[1] का तर्क है–

"स्वर्ग की कोई सत्ता नहीं है, मोक्ष कुछ नहीं है। न पुनर्जन्म होता है। न चार जातियों के कोई कर्म आदि प्रभाव डालते हैं। अग्निहोत्र, तीनों वेद, तापसवृत्ति, त्रिदंड धारण, भस्म मलना... उनकी कमाई के धंधे हैं जिनमें बुद्धि और मनुष्यता का भाव नहीं है, ज्योतिष्टोम यज्ञ में यदि कोई जीव काट दिया जाता है और यदि वह सीधे स्वर्गगामी होता है, तो बलिदाता अपने पिता की बलि क्यों नहीं दे देता?

यदि श्राद्ध से मृतक संतुष्ट होते हैं तो इहलोक में भी जब कोई यात्रा आरंभ करता है तो क्या यात्रा के प्रबंध करना अर्थात खाना आदि साथ ले जाना व्यर्थ नहीं है?

यदि श्राद्ध से स्वर्ग में स्थित लोगों की संतुष्टि होती है तो इहलोक में नीचे बैठे लोगों को खिलाने से दूसरी मंजिल पर बैठा आदमी संतुष्ट क्यों नहीं हो जाता?

जब तक जीवन है तो सुख से क्यों न रहें? क्यों न ऋण लेकर भी घी पिएं?

यदि मरणोपरांत देह भस्म बन जाती है तो वापस कैसे आ सकती है?

देह त्याग के पश्चात कोई यदि परलोक चला जाता है तो वह अपने परिजनों के मोह वश लौट क्यों नहीं आता?

इस प्रकार ये सब कमाई के साधन हैं, जो ब्राह्मणों ने बना रखे हैं।

---

1. सर्वदर्शनसंग्रह (कावैल द्वारा अनूदित), पृ. 10

ये सभी संस्कार मृतकों के लिए हैं, इनका कोई फल नहीं मिलता, तीन वेदों के स्रष्टा विदूषक, लालबुझक्कड़ और दुरात्मा हैं।

पंडितों के जर्भरी, तुर्फरी आदि वचन और रानी के लिए अश्लीलतापूर्ण पूजा का अश्वमेध यज्ञ में विधान है।

इनका अंवेषण लालबुझक्कड़ों ने किया और इसी कारण पुरोहितों को विभिन्न प्रकार से चढ़ावा दिया जाता है।

जबकि इसी प्रकार निशाचरों ने मांस भक्षण का विधान किया है।"

वैदिक ब्राह्मणों और वेदांतियों में किस प्रकार सांठ-गांठ हो गई, जबकि उन्होंने चार्वाक और बृहस्पति को स्वीकार नहीं किया। इस पहेली का उत्तर नहीं मिलता।

III

तीसरी पहेली इस प्रकार है। इसका विवरण देना युक्तिसंगत है, क्योंकि इसका संबंध वेदों और वेदांत से केवल ऊपरी तौर पर ही नहीं बल्कि उनके दार्शनिक रूप में भी है जो इन्हें व्यवस्थावाद के दो विद्वानों ने दिया, जिनका संस्कृत साहित्य में ऊंचा स्थान है। वे हैं, जैमिनि और बादरायण। इनमें पहला मीमांसा का प्रणेता है और दूसरा ब्रह्म-सूत्रों का रचयिता है। इनका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है और वैदिक आस्थाओं तथा वेदांतिक अनुमानों के प्रसंग में कुछ संकेत दे दिए गए हैं। अब हमें एक-दूसरे के दर्शन के विषय में इनके विचारों की तुलना करनी है।

इस संबंध में जैमिनि और बादरायण द्वारा विषय प्रतिपादन में दोनों के सादृश्यवाद की ओर सहसा ध्यान आकृष्ट होता है। जैसा कि प्रोफेसर बेलवल्कर ने स्पष्ट किया है, वेदांत-सूत्र (जैमिनी के) कर्म-सूत्रों से घनिष्ठता से जुड़े हुए हैं। प्रणाली विज्ञान और पारिभाषिकता के संबंध में बादरायण ने बड़ी सावधानी से जैमिनि का अनुसरण किया है। श्रुति के पाठ के संबंध में वह जैमिनि के भाष्य को स्वीकार करते हैं। उन्होंने जैमिनि की शब्दावली को उसी भाव से प्रयुक्त किया है, जैसे जैमिनि ने किया है। उन्होंने वैसे ही उदाहरण भी दिए हैं, जैसे जैमिनि ने दिए हैं।

सादृश्यवाद प्रकट करता है कि बादरायण ने यह अनुभव किया होगा कि वह एक विपरीत दर्शन के प्रणेता हैं, जिस पर जैमिनि ने प्रहार किया है और प्रहारों का उत्तर उन्होंने जैमिनि की शैली में ही दिया।

प्रश्न यह है कि क्या बादरायण ने जैमिनि के विरोधी की भूमिका अपनाई? वेदांत के प्रति जैमिनि के व्यवहार पर बादरायण स्वयं स्वीकार करते हैं कि जैमिनि उनके विरोधी हैं। बादरायण के सूत्र 2-7 में यही कहा गया है और शंकराचार्य ने अपने भाष्य में उसकी व्याख्या की है। जैमिनि का मत है—

"कोई उस समय तक यज्ञ नहीं करता जब तक कि उसे इस बात का ज्ञान न हो कि वह शरीर से भिन्न है और मृत्यु उपरांत वह स्वर्ग जाएगा, जहां उसे यज्ञ का फल प्राप्त होगा। आत्मज्ञान संबंधी शास्त्र आदमी का मार्गदर्शन मात्र करते हैं। उस पर यज्ञ कर्मों का प्रभुत्व है।"

संक्षेप में जैमिनि कहते हैं कि वेदांत की शिक्षा यह है कि आत्मा देह से भिन्न है और वह देह से अधिक काल तक अस्तित्व में रहती है। ऐसा ज्ञान पर्याप्त नहीं है। आत्मा का मनोरथ स्वर्ग प्राप्ति हो सकता है किंतु वह तब तक स्वर्ग नहीं जा सकती जब तक कि वैदिक यज्ञ न किया जाए। यही उसके कर्म-कांड का आग्रह है। इस प्रकार उनका कर्म-कांड ही मुक्ति मार्ग है और इस प्रकार ज्ञान-कांड निरर्थक है। इसलिए जैमिनि उन लोगों के विरुद्ध हैं जो वेदांत[1] में आस्था रखते हैं–

"विदेह के राजा जनक ने यज्ञ किया जिसमें उदारतापूर्वक दक्षिणा दी गई (बृह. 3.1.1.)। महोदय, मैं यज्ञ कर रहा हूं (छांदो. 5.11.5) जनक और अश्वपति दोनों ही आत्मज्ञानी थे। यदि वे दोनों ही आत्मज्ञानी थे तो वे मुक्ति पा चुके थे, ऐसे में यज्ञ करने की आवश्यकता ही नहीं थी। परंतु दोनों प्रसंगों में कहा गया है कि उन्होंने यज्ञ किया। इससे प्रमाणित होता है कि मुक्ति तभी मिल सकती है जब यज्ञ किया जाए, न कि आत्मज्ञान से, जैसा कि वेदांती कहते हैं।"

जैमिनि ने एक सकारात्मक बात कही[2] है कि शास्त्रों में यह निर्भ्रांत कथन है कि "आत्मज्ञान यज्ञ की अपेक्षा गौण है।" जैमिनि इसे उचित[3] बताते हैं क्योंकि उनका मत है कि (मृत-आत्मा को फल देने हेतु) दोनों (ज्ञान और कर्म) समानांतर चलते हैं। जैमिनि बादरायण के ज्ञान-कांड को स्वतंत्र साधन नहीं मानते। वे इसके दो आधार बताते हैं।

प्रथम[4]–"आत्मज्ञान स्वतः कोई फलदायक नहीं।"

द्वितीय[5]–"वेदों की सत्ता के अनुसार ज्ञान, कर्म की अपेक्षा गौण है।"

बादरायण के ज्ञान-कांड के बारे में जैमिनि का यह मत है।

जैमिनि और उनके कर्म-कांड पर बादरायण की क्या स्थिति है?' इसका उल्लेख बादरायण ने अपने सूत्रों 8 से 17 में किया है।

---

1. देखें, बादरायण सूत्र 3 और शंकर की इस पर टिप्पणी।

2. देखें, बादरायण सूत्र 4

3. देखें, बादरायण सूत्र 5

4. देखें, बादरायण सूत्र 6

5. देखें, बादरायण सूत्र 7

पहला मत[1] यह है कि जैमिनि ने जिस "आत्मा" का जिक्र किया है, वह सीमित आत्मा है अर्थात् आत्मा और परमात्मा भिन्न है और शास्त्रों में "परमात्मा को मान्यता है।"

बादरायण का दूसरा मत है[2] कि वेद आत्मज्ञान और यज्ञ दोनों के पक्षधर हैं।

बादरायण का तीसरा मत है[3] कि यज्ञ वही कर सकते हैं, जिन्हें वेदों में आस्था है। परंतु जो उपनिषदों के अनुगामी हैं, उन पर यह निर्देश लागू नहीं, जैसी कि शंकराचार्य ने व्याख्या की है–

"जिन्होंने वेद पढ़े हैं और जिन्हें कर्म-कांड का ज्ञान है, वही यज्ञ करा सकते हैं। जिन्होंने उपनिषदों से आत्मज्ञान प्राप्त किया है वे नहीं करा सकते। ऐसे ज्ञान की कर्म-कांड से कोई तुलना नहीं हो सकती।"

बादरायण का चौथा[4] मत यह है कि जो ब्रह्मानंद को प्राप्त कर चुके हैं, उनके लिए कर्म-कांड वैकल्पिक है। जैसा कि शंकराचार्य ने स्पष्ट किया है–

कुछ लोगों ने अपने आप कर्म-कांड को त्याग दिया है। बात यह है कि ज्ञान अर्जित करने के बाद कुछ लोग दूसरों के सम्मुख उदाहरण प्रस्तुत करने हेतु कर्म-कांड करना पसंद करते हैं जबकि कुछ उसको त्याग देते हैं। जो आत्मज्ञानी होते हैं, उनके लिए कर्म-कांड की बाध्यता नहीं होती।

उनकी अंतिम[5] और निर्णायक स्थिति इस प्रकार है–

> "आत्मज्ञान तो कर्म-कांड का विरोधी है इसलिए वह कर्म-कांड का सहायक नहीं हो सकता," और इसके समर्थन में वे उन शास्त्रों का सहारा[6] लेते हैं, जो संन्यास को चौथा आश्रम मानते हैं और संन्यासियों को कर्म-कांड विहित यज्ञ से मुक्त रखते हैं।

बादरायण के सूत्रों में अनेक ऐसे हैं जिनमें दोनों परंपराओं के विद्वानों के एक-दूसरे के प्रति विचारों का संकेत मिलता है, लेकिन इसमें से एक ही पर्याप्त है, जिसकी अपनी विशेषता है। इस विषय को अगर अनदेखा कर दिया जाए तो स्थिति भिन्न हो जाती है। जैमिनि ने वेदांत को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है। इस लांछन के विरुद्ध बादरायण ने क्या

---

1. देखें, बादरायण सूत्र 8
2. देखें, बादरायण सूत्र 9
3. देखें, बादरायण सूत्र 12
4. देखें, बादरायण सूत्र 15
5. देखें, बादरायण सूत्र 16
6. देखें, बादरायण सूत्र 17

किया? क्या उन्होंने जैमिनि के कर्म-कांड को मिथ्याशास्त्र, भ्रमजाल और मोहमाया कहकर उनकी निंदा की है और उसे सतही, अनावश्यक तथा निराधार बताया है? नहीं! उन्होंने मात्र अपने वेदांत शास्त्र को उचित ठहराया है। लेकिन उनसे और अधिक अपेक्षा थी। हम अपेक्षा कर सकते थे कि बादरायण भी जैमिनि के कर्म-कांड को मिथ्याधर्म कहेंगे। बादरायण में साहस नहीं है। इसके विपरीत उनका व्यवहार लज्जित होने जैसा है। उन्होंने यह मान लिया है कि जैमिनि का कर्म-कांड शास्त्रों पर आधारित है और शास्त्र प्रामाणिक व पवित्र हैं, जिनका खंडन नहीं किया जा सकता।

बात यहीं खत्म नहीं हो जाती। बादरायण ने तो यह भी कहा कि उपनिषद के दो भाव हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि उपनिषद वैदिक साहित्य का अंग है। उनके अनुसार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, वेदांत अथवा ज्ञानमार्ग वेदों के कर्म-कांड के विरुद्ध नहीं है। दरअसल बादरायण के वेदांत-सूत्र का यही आधार है।

बादरायण का यह सिद्धांत उपनिषदों के अभिप्राय और वेद तथा उपनिषदों के आपसी संबंधों के विपरीत है। जब वे अपने सूत्र में कहते हैं कि उपनिषद वेदों के अंग हैं और दोनों के बीच कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है, तो बादरायण का व्यवहार समझ में नहीं आता। लेकिन यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वे दिग्भ्रमित हैं और अपने विरोधी के समक्ष उनकी स्थिति दयनीय है वह तो अपने विरोधी के साथ अपनी लड़ाई के शुरू में ही यह मान लेते हैं कि उनके विपक्षी के सिद्धांत उचित हैं। बादरायण ने उन वेदों की अकाट्यता के सवाल पर जैमिनि के आगे समर्पण क्यों कर दिया, जो उपनिषदों के विरुद्ध थे? उन्होंने उपनिषदों में प्रतिपादित, संपूर्ण सत्य और विशुद्ध सत्य का समर्थन क्यों नहीं किया? उन्होंने ऐसा क्यों किया यह एक पहेली है जिसकी व्याख्या होनी चाहिए।

परिशिष्ट : 3

त्रिमूर्ति की पहेली

जितना सच यह है कि हिंदू धर्म संप्रदायों से मिलकर बना है, उतना ही सच यह भी है कि हिंदू समाज विभिन्न जातियों (Castes) से मिलकर बना है। परंतु जितना ध्यान संप्रदायों के अध्ययन पर दिया गया है, उससे आधा भी जातियों के अध्ययन पर नहीं दिया गया। यह जितनी दुर्भाग्य की बात है उनती ही विचित्र भी। संप्रदायों ने भी भारत के इतिहास में उतनी ही भूमिका निभाई है जितनी जातियों ने। दरअसल जिस प्रकार कुछ जातियों ने भारत का इतिहास रचा है, उसी प्रकार संप्रदायों का भी उसमें योगदान है।

जितने संप्रदायों से मिलकर हिंदू धर्म बना है वे असंख्य हैं और उन सबकी उत्पत्ति के बारे में पता लगाना असंभव है और इन पंथों की तुलना करना इस अध्याय की परिधि में नहीं आ सकता। हम इतना ही कर सकते हैं कि उनमें से कुछ अति महत्त्वपूर्ण पंथों को ही देखें और उनसे जुड़ी समस्याओं पर विचार करें। भारतीय इतिहास में इनमें से तीन का बहुत महत्व है। एक वह है जो ब्रह्मा से संबद्ध है, दूसरा विष्णु से और तीसरा पंथ शिव अथवा महेश का अनुयायी है। जिस व्यक्ति ने इन पंथों के इतिहास का अध्ययन किया है, निम्नांकित प्रश्न उसे चकरा देंगे।

बौद्ध कृति चुल्ल निद्देश में तत्कालीन भारत के विभिन्न पंथों का संकेत दिया है। हम इन्हें संप्रदाय और पंथों में निम्नांकित रूप में विभाजित करते हैं–

1. मत (Creeds)

क्र.	संप्रदाय का नाम	मत का तत्त्व
1.	आजीविक श्रावक[1]	अजीविक[2]
2.	निगंठ श्रावक	निगंठ[3]
3.	जटिल श्रावक	जटिल[4]
4.	परिव्राजक श्रावक	परिव्राजक[5]
5.	अवरुद्ध (श्रावक)	अवरुद्ध

1. *श्रावक=शिष्य*
2. *आजीविका के लिए विशेष नियमों का पालन करने वाले तापस।*
3. *ऐसे तापस जो सब बंधनों और बाधाओं से मुक्त हैं।*
4. *जटाधारी तामस*
5. *जो तापस समाज से अलग हो गए हैं।*

2. पंथ (Cults)

क्र.	संप्रदाय का नाम	पूज्य देव का नाम
1.	हस्ति वृत्तिका (व्रती)[1]	हस्ति[2]
2.	अश्व वृत्तिका	अश्व[3]
3.	गो वृत्तिका	गो[4]
4.	कुक्कुर वृत्तिका	कुक्कुर[5]
5.	काक वृत्तिका	काक[6]
6.	वासुदेव वृत्तिका	वासुदेव
7.	बलदेव वृत्तिका	बलदेव
8.	पूर्णभद्र वृत्तिका	पूर्णभद्र
9.	मणिभद्र वृत्तिका	मणिभद्र
10.	अग्नि वृत्तिका	अग्नि
11.	नाग वृत्तिका	नाग
12.	सुपर्ण वृत्तिका	सुपर्ण
13.	यक्ष वृत्तिका	यक्ष
14.	असुर वृत्तिका	असुर
15.	गंधर्व वृत्तिका	गंधर्व
16.	महाराज वृत्तिका	महाराज
17.	चन्द्र वृत्तिका	चन्द्र
18.	सूर्य वृत्तिका	सूर्य
19.	इंद्र वृत्तिका	इंद्र
20.	ब्रह्म वृत्तिका	ब्रह्मा
21.	देव वृत्तिका	देव
22.	दिशा वृत्तिका	दिशा

त्रिदेवों के पंथों की उपर्युक्त सूची में विभिन्न देवों के पंथों के साथ तुलना से दो निष्कर्ष निकलते हैं। एक निष्कर्ष यह है कि ब्रह्मा और महेश की उपासना नई कपोल कल्पना है, जो चुल्ल निद्देश के बाद आरंभ हुई। दूसरा निष्कर्ष यह है कि सभी पुरानी आस्थाएं लुप्त हो गईं। इस विचित्र परिघटना का कारण स्पष्ट है कि नई पद्धति उस समय तक प्रचलित नहीं हो सकती थी जब तक कि ब्राह्मण उसका प्रचार नहीं करते। साथ ही यदि ब्राह्मण उसके प्रचार से हाथ नहीं खींच लेते तो पुरानी पद्धति लुप्त नहीं हो सकती थी। इतिहास के विद्यार्थी को

---

1. व्रती=भक्त
2. हाथी
3. घोड़ा
4. गाय
5. कुत्ता
6. कौआ

जो प्रश्न भ्रम में डालता है, वह यह है कि ब्राह्मणों ने नए पंथों की कल्पना क्यों की। प्राचीन आस्थाओं को क्यों त्याग दिया? यह सवाल केवल जटिल ही नहीं है बल्कि विद्वानों को भ्रम में भी डाल देता है कि इस उथल-पुथल में इंद्र जैसे देवताओं का भी लोप क्यों हो गया? इंद्र एक वैदिक देवता है। वैदिक देवताओं में वह महानतम है। यदि हजारों साल तक नहीं तो भी सैंकड़ों वर्षों तक ब्राह्मणों ने इंद्र की परमदेव के रूप में पूजा और स्तुति की। फिर क्या कारण था कि ब्राह्मणों ने इंद्र की अवहेलना करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश की पूजा आरंभ कर दी? ब्राह्मणों द्वारा आस्थाएं बदल देने का कारण आध्यात्मिक था अथवा व्यावसायिक?

शिव कौन थे जिन्हें इंद्र के स्थान पर कैसे अपना लिया गया? दक्ष प्रजापति का यज्ञ और उसमें शिव की भूमिका शिव के विषय में महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती है। कथा इस प्रकार है कि राजा दक्ष ने हिमालय पर कहीं एक यज्ञ किया। इस यज्ञ में देव, दानव, पिशाच, नाग, राक्षस और ऋषि सभी सम्मिलित हुए। परंतु दक्ष ने शिव को आमंत्रित नहीं किया, इसलिए वह नहीं आए। एक ऋषि दधीचि ने दक्ष की इसलिए भर्त्सना की, कि उन्होंने शिव को आमंत्रित नहीं किया था और यज्ञ करना चाहते थे। दक्ष ने शिव को आमंत्रित करने से इनकार कर दिया और कहा, "मैंने आपके रुद्र जैसे बहुत से देखें हैं। आप जाइए, मैं शिव को कुछ नहीं समझता"। दधीचि ने कहा, "तुमने शिव के विरुद्ध षडयंत्र किया है, ध्यान रखना तुम्हारा यज्ञ सफल नहीं होगा।" महादेव ने यह सुना तो अपने मुख से एक राक्षस उत्पन्न किया और उस राक्षस ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया। इससे पता चलता है कि एक समय ब्राह्मण शिव को पूज्य देवता नहीं मानते थे या शिव ब्राह्मणों की यज्ञ प्रथा के विरुद्ध थे।

आर्यों और अनार्यों के बीच भिन्नता संस्कृति के आधार पर थी, जातीय (racial) आधार पर नहीं। सांस्कृतिक भेद दो बिंदुओं पर था। आर्य चातुर्वर्ण्य में विश्वास रखते थे। अनार्य इसके विरुद्ध थे। दक्ष के यज्ञ के विषय में इन तथ्यों के संदर्भ में यह स्पष्ट है कि शिव एक अवैदिक और अनार्य देव थे। प्रश्न यह है कि वैदिक संस्कृति के स्तंभ ब्राह्मणों ने शिव को देवता कैसे मान लिया?

एक विद्वान के मस्तिष्क को उलझा देने वाला तीसरा प्रश्न उस बदलाव और संशोधन को लेकर है, जो ब्राह्मणों ने शिव और विष्णु के मौलिक स्वरूप में कर डाला।

हिंदू इससे परिचित नहीं हैं कि शिव एक अवैदिक और अनार्य देवता है। वे उन्हें वेदों में उल्लिखित रुद्र के साथ जोड़ते हैं। इसी कारण हिंदुओं का रुद्र शिव के समान है। यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में एक मंत्र है, जिसमें रुद्र की स्तुति है। इस मंत्र में रुद्र अर्थात् शिव को चोरों, दस्युओं, डकैतों के देवता के रूप में वर्णित किया गया है। उन्हें पतितों, कुम्हारों और लोहारों का राजा बताया गया है। प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों ने चोरों, डाकुओं के राजा को अपना परमदेव कैसे मान लिया?

रुद्र के चरित्र के संबंध में एक बदलाव यह भी हुआ कि ब्राह्मणों ने अपना देव शिव को

मान लिया। आश्वलायन गृह्य-सूत्र में रुद्र की उपासना की समुचित विधि बताई गई है। इसके अनुसार रुद्र की उपासना में वृषभ की बलि दी जाती है। इस सूत्र में बलि की ऋतु और नक्षत्र का भी उल्लेख है। इसमें गृहस्थों से कहा गया है कि वे अपने बाड़े के सर्वश्रेष्ठ वृषभ का चयन करें। उसका रंग भी बताया गया है और कहा गया है कि वह मोटा-ताजा होना चाहिए। उसे चावल के मांड और जौ के पानी से छका दिया जाना चाहिए। तब उसका वध किया जाए और रुद्र के नामों का उच्चारण कर उसकी बलि दे दी जाए। उसकी पूंछ, खाल और पैर अग्नि को अर्पित कर दिए जाएं। स्पष्ट है कि रुद्र एक हिंसक देव था, जिसके लिए जीव-बलि आवश्यक थी। प्रश्न यह है कि ब्राह्मणों ने शिव से मांसाहार छुड़वा कर उन्हें शाकाहारी क्यों बना दिया।

हिंदू भारत भर में बिना लज्जा और पश्चाताप के लिंग पूजा (शिश्न पूजा) का महत्त्व स्वीकारते हैं। लिंग पूजा शिव से जुड़ी है और आमतौर पर कहा जाता है कि शिव की सच्ची पूजा का तरीका शिव-लिंग पूजा ही है। क्या लिंग पूजा का संबंध शिव से हमेशा रहा? प्रोफेसर दांडेकर के लेख 'विष्णु इन द वेदाज' में एक रोचक तथ्य दिया गया है। प्रोफेसर दांडेकर कहते हैं—

> "इस संबंध में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शब्द "शिपिविष्ट" है। इसका वेदों में विष्णु के संबंध में विशिष्ट उल्लेख हैं। जिस छंद में यह शब्द आया है ऋ.वे. (7-99.7;7-100.5-6) जान-बूझकर इस शब्द का अर्थ गूढ़कर दिया गया है। वैदिक मंत्र-कारों ने जान-बूझकर विष्णु के स्वाभाविक संदर्भ में बड़ी चतुराई से छिपाकर 'शिपिविष्ट' शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द की व्याख्या के लिए अनेक प्रयास किए गए। लेकिन इसका दार्शनिक पक्ष बहुत कम लोग ही स्पष्ट कर पाए हैं। फिर भी विष्णु के सही चरित्र का वर्णन नहीं हुआ। भाषाशास्त्र की दृष्टि से "शेप" शब्द (लिंग) को "शिपि" से अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार 'शिफ' शब्द है जिसकी मूल धातु प्राकृत 'चेप', लैटिन ओइटपुस, सेपियो (oippus, seipio, staff etc.) आदि में मिलती है। यहां तक कि निरुक्त (5-7) में निहित संकेत से भी इस विचार की पुष्टि होती है। यद्यपि इसकी असली व्याख्या स्पष्ट नहीं है। इसी के साथ इस शब्द का मूल यह आभास देता है कि पूरे शब्द का अर्थ है "परिवर्तनशील लिंग, फूला हुआ और सिकुड़ता हुआ लिंग"। अब हम सहज ही समझ सकते हैं कि वैदिक कवि विष्णु के संदर्भ में छिपाते हुए और घुमा-फिराकर इस शब्द का प्रयोग क्यों करते है। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है जो निरुक्त (5-8,9) में विष्णु के नाम के बारे में प्रयुक्त किया गया है : यहां शिपिविष्ट शब्द ने विष्णु के प्राचीन लैंगिक स्वभाव को छिपा रखा है। विष्णु के संबंध में वैदिक साहित्य में ऐसे ही और भी प्रसंग हैं जिनमें उसकी सृजनशीलता, उत्पादन-क्षमता और स्वजीवन का अंतर्बोध होता है।
>
> "वैदिक श्राद्ध में एक और अस्पष्ट-सी चीज है, अंगुष्ठ। बिना नाखून का अंगूठा पितरों को चढ़ाई जाने वाली सामग्री में डुबोया जाता है। यह क्रिया विष्णु के

नाम पर की जाती है। इसमें संदेह नहीं कि अंगुष्ठ लिंग का ही द्योतक है। इस प्रकार विष्णु इस क्रिया में, वैदिक कर्म-कांड में, लिंग से संबद्ध हैं। बाद के साहित्य में अंगुष्ठ विष्णु की पहचान है। इस बारे में हमें एक और साक्ष्य मिलता है आई.एस. (6.2.4.2)। धरती माता के गर्भ में विष्णु का प्रवेश गर्भाधान संस्कार का सांकेतिक वर्णन है। "तनवर्धनः" विष्णु के संदर्भ में प्रयुक्त होता है (7-99.1:8-100.2)। इसे भी लिंग प्रवृत्ति में गिना जा सकता है। परवर्ती साहित्य में विष्णु को हिरण्यगर्भ और नारायण कहा गया है। विष्णु के व्यक्तित्व से संबद्ध सिनीवाली (अ.वे. 7-46,3) भी उल्लेखनीय है जो 'विस्तीर्ण नितंबा' है व नारी की रति-क्रिया को सुरक्षित बनाने वाली देवी है, वह विष्णु के चरित्र पर प्रकाश डालती है। शांख्यायन के गृह्य-सूत्र (1.22.13) के मंत्र (10.184.1) के अनुसार वह गर्भधारण संस्कार में सहभागी होता है। इससे पता चलता है कि विष्णु भ्रूण का अमोघ संरक्षक है। अ.वे. (7.17.4) के अनुसार विष्णु का रति-क्रिया से प्रत्यक्ष संबंध है। विष्णु के दो विशेषण विष्णु निषिक्तप (ऋ.वे. 7.36.9) 'वीर्य संरक्षक' और "सुमज्जनी (ऋ.वे. 1.156.2) 'सहज प्रसूति में सहायक' स्वयं में इसके प्रमाण हैं। शब्द पौंस्य (पुरुषत्व) विष्णु के लिए प्रयुक्त हुआ है। ऋ. वे (155.3-4)। वृषाकपि मंत्रों (10.86) में कहा गया है कि इंद्र क्लांत हो गए। तब एक सुगठित शरीर कामुक वानर ने उन्हें कोई औषधि दी। इसके माध्यम से उनकी शक्ति लौट आई। परवर्ती साहित्य में वृषाकपि विष्णु को ही कहा गया है। यह शब्द विष्णु सहस्रनाम में भी सम्मिलित है।"

प्रो. दांडेकर ने जो साक्ष्य दिए हैं उनके अनुसार लिंग-पूजा मूल रूप में विष्णु से ही संबद्ध थी, पुराणों में लिंग-पूजा विष्णु से नहीं जुड़ी हुई है। पुराणों में इसे शिव के साथ जोड़ दिया गया। यह बदलाव अत्यंत विस्मयकारी है। विष्णु, जो आरंभ से ही लिंग-पूजा से संबद्ध थे, उनका संबंध इससे तोड़ दिया गया और शिव का लिंग-पूजा से कोई लेना-देना न होते हुए भी इसे उनके साथ जोड़ दिया गया। सवाल यह है कि ब्राह्मणों ने किस अभिप्राय से विष्णु को लिंग-पूजा से मुक्त करके शिव को इसके साथ लपेट दिया?

अब बचता है अंतिम और महत्वपूर्ण सवाल। यह सवाल ब्रह्मा, विष्णु और महेश के परस्पर संबंधों के बारे में है।

इनके परस्पर संबंधों के संदर्भ में शायद सबसे अधिक उपर्युक्त यह कहानी है, जो दत्तात्रेय भगवान के जन्म के विषय में है। संक्षेप में कहानी इस प्रकार है कि एक बार तीनों देवों की पत्नियां सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती एक स्थान पर बैठी बात कर रहीं थीं, तभी नारद जी प्रकट हुए। वार्ता के बीच एक प्रश्न उठा कि संसार में सबसे बड़ी पतिव्रता नारी कौन है। नारद ने कहा कि अत्रि ऋषि की पत्नी अनसूया सबसे बड़ी सती है। तीनों देवियों ने इसका घोर प्रतिवाद किया और प्रत्येक ने अपने आपको सबसे बड़ी पतिव्रता सती नारी बताया। नारद जी नहीं माने और उनमें से प्रत्येक के व्यभिचार के अनेक प्रसंग प्रस्तुत किए।

वे शांत तो हो गईं लेकिन बहुत क्रोधित भी हुईं। वे अनसूया के मुकाबले अपनी स्थिति बताना चाहती थीं। उन्होंने सोच-विचार कर षडयंत्र रचा कि अनसूया के साथ अवैध संभोग कराकर उसका शील भंग कराया जाए। अपनी योजना के अनुसार तीनों देवियों ने अपने पतियों के शाम को घर लौटने पर दोपहर में नारद के साथ हुए संवाद का जिक्र किया और बताया कि नारद जी ने उन्हें किस प्रकार लज्जित किया है और अपनी पत्नियों के अपमान का कारण वे हैं। यदि उन्होंने अनसूया के साथ व्यभिचार किया होता तो वह भी उनकी श्रेणी में आ जाती और नारद को उनका अपमान करने का अवसर न मिलता। उन्होंने अपने पतियों से पूछा कि क्या वे अपनी पत्नियों का ख्याल रखते हैं। यदि हां तो क्या यह उनका कर्तव्य नहीं है कि वे अनसूया का शील भंग करने के लिए तुरन्त प्रस्थान करें और उसे सतीत्व के उस शिखर से नीचे धकेल दें, जहां वह नारद के कथनानुसार प्रतिष्ठित है। देवता सहमत हो गए कि यह उनका कर्तव्य है और वे इससे मुंह नहीं मोड़ सकते।

तीनों देव सती का शील-हरण करने के लिए अत्रि की कुटिया की ओर चल पड़े। इन तीनों ने ब्राह्मण साधुओं का वेष धारण किया। जब वे वहां पहुंचे, उस समय अत्रि बाहर गए हुए थे। अनसूया ने उनका स्वागत किया और उनके लिए भोजन तैयार किया। जब भोजन तैयार हो गया तो अनसूया ने उनसे आसन पर बैठकर भोजन करने के लिए कहा। तीनों देवों ने उत्तर दिया कि वे उसी स्थिति में उसके घर भोजन करेंगे, यदि वह निर्वस्त्र होकर भोजन परोसे। प्राचीन भारत में आतिथ्य का नियम था कि ब्राह्मण भिक्षुक असंतुष्ट होकर न लौटे। वह जो मांगे, उसे दिया जाए। इस नियम के अनुसार अनसूया निर्वस्त्र होकर भोजन परोसने को सहमत हो गई। जब वह इस स्थिति में भोजन परोस रही थी, तो अत्रि आ गए। जब उन्होंने अत्रि को आते हुए देखा तो वे नवजात शिशु बन गए। इन तीनों को अत्रि ने पालने में लिटा दिया। उसमें इन तीनों के सभी अंग जुड़कर एक हो गए लेकिन सिर अलग-अलग रहे। इस प्रकार दत्तात्रेय बने, जो तीनों देवों—ब्रह्मा, विष्णु और महेश—का संयुक्त रूप है।

इस कहानी में अनैतिकता की दुर्गंध भरी पड़ी है और इसके अंत को जान-बूझकर ऐसा मोड़ दिया गया है, जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश के उस वास्तविक कुकर्म पर पर्दा डाल दिया जाए। उन्होंने अपनी पत्नियों के समक्ष सती अनसूया को गिरा दिया जैसा कि कहानी में निहित है। किसी समय हिंदुओं में यह प्रचलित था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश की समान स्थिति है और उनके कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं, और उनमें प्रतिस्पर्धा नहीं है। उन्हें त्रिमूर्ति कहा जाता था—एक साथ तीनों और एक में तीन। सभी विश्व के नियंता हैं। ब्रह्मा स्रष्टा, विष्णु पालक और शिव संहारक हैं।

सामंजस्य की यह स्थिति अधिक दिनों तक नहीं चली। इन तीनों देवों के कारण ब्राह्मण तीन शिविरों में बंट गए। प्रत्येक ने दूसरे दो इष्टों को अपनी श्रद्धा से बाहर कर दिया। इसका परिणाम यह निकला कि एक देव के अनुयायी ब्राह्मणों ने दूसरो के विरुद्ध बदनामी और नीचा दिखाने का अभियान छेड़ दिया।

यह बड़ी रोचक और जानने योग्य बात है कि ब्राह्मणों ने ब्रह्मा के साथ क्या किया। एक समय था जब ब्रह्मा को सत्ता और गौरव के सर्वोच्च शिखर पर रखा जाता था। उन्होंने ब्रह्मा को जगत का प्रथम प्रजापति कहा। वह उनके एकमेव परमदेव थे। ब्राह्मणों ने अवतारवाद का आविष्कार किया जिसका अर्थ है, भगवान आवश्यकता पड़ने पर मानव अथवा पशु किसी भी रूप में अवतरित हो सकता है। इसके पीछे दो उद्देश्य थे। पहला, उस देवता की श्रेष्ठता बताना, उनका स्वार्थ हो और दूसरा, अन्य देवताओं के बीच मौजूद व्यक्तिगत संघर्ष को शांत करना।

ब्राह्मणों ने विभिन्न पुराणों में अवतारों की झड़ी लगा दी और प्रत्येक पुराण ने विभिन्न अवतारों की अलग-अलग रचना की, जो निम्नांकित सूची से स्पष्ट है–

क्र.	हरिवंश के अनुसार	नारायणीय आख्यान के अनुसार	वाराह पुराण के अनुसार	वायु पुराण के अनुसार	भागवत पुराण के अनुसार
1.	वाराह	हंस	कूर्म	नरसिंह	सनत्कुमार
2.	नरसिंह	कूर्म	मत्स्य	वामन	वाराह
3.	वामन	मत्स्य	वाराह	वाराह	
4.	परशुराम	वाराह	नरसिंह	कूर्म	नरनारायण
5.	राम	नरसिंह	वामन	संग्राम	कपिल
6.	कृष्ण	वामन	परशुराम	आदिवक	दत्तात्रेय
7.		परशुराम	राम	त्रिपुरारी	यज्ञ
8.		राम	कृष्ण	अंधकार	ऋषभ
9.		कृष्ण	बुद्ध	ध्वज	पृथ्वी
10.		कल्कि	कल्कि	वृर्त	मत्स्य
11.				हलाहल	कूर्म
12.				कोल्हाहल	धन्वंतरी
13.					मोहिनी
14.					नरसिंह
15.					वामन
16.					परशुराम
17.					वेद व्यास
18.					नरदेव
19.					राम
20.					कृष्ण
21.					बुद्ध
22.					कल्कि

इन पुराणों में ये सभी अवतार विष्णु के बताए गए हैं। परंतु आरंभ में जब अवतारों की धारणा शुरू हुई तो दो अवतार सूकर[1] और मत्स्य[2] ब्रह्मा के अवतार माने जाते थे परंतु बाद में इन्हें विष्णु का अवतार कहा गया है। जब ब्राह्मणों ने शिव और विष्णु को भी ब्रह्मा के समान पद देना स्वीकार कर लिया, तो वे फिर से ब्रह्मा की सत्ता विष्णु और शिव से ऊपर मानने लगे। ब्राह्मणों ने उन्हें शिव[3] का जनक बताया और प्रचारित किया कि यदि विष्णु[4] सृष्टि के पालनकर्ता हैं तो वे सभी ब्रह्मा की आज्ञा से ही यह कार्य संपादन कर रहे हैं। देवों की संख्या ज्यादा होने के कारण उनके बीच सदैव संघर्ष की स्थिति विद्यमान रहती थी और विवाद निपटाने के लिए किसी मध्यस्थ और निर्णायक देव की आवश्यकता रहती थी।

पुराणों में ऐसे संघर्षों, यहां तक देवताओं के बीच युद्धों, की कहानियां भी भरी पड़ी हैं : रुद्र और नारायण[5] के बीच तथा कृष्ण और शिव[6] के बीच संघर्ष हुआ। इन संघर्षों के समय ब्राह्मणों ने ब्रह्मा को मध्यस्थ बना डाला।

वही ब्राह्मण, जिन्होंने ब्रह्मा को इतना ऊंचा स्थान दिया था, उसी ब्रह्मा के पीछे पड़ गए, उन्हें नीचा दिखाने लगे, उन पर कीचड़ उछालने लगे। उन्होंने प्रचार आरंभ किया कि ब्रह्मा सचमुच शिव और विष्णु से हीन हैं। अपनी पुरानी कथनी के विपरीत ब्राह्मणों ने कहा कि ब्रह्मा शिव से पैदा हुए थे और कुछ ने कहा वह विष्णु[7] से पैदा हुए थे।

ब्राह्मणों ने शिव और ब्रह्मा के परस्पर संबंधों को पलट दिया। अब ब्रह्मा के पास मोक्ष देने का अधिकार नहीं रहा। शिव ही मुक्ति दे सकते थे। ब्रह्मा एक साधारण देवता बन गए जो अपने मोक्ष[8] के लिए शिव और शिवलिंग के उपासक हो गए। उन्होंने ब्रह्मा को शिव[9] का सारथी बना डाला।

ब्राह्मणों को ब्रह्मा का स्थान गिराए जाने से अभी संतोष नहीं हुआ था। उन्होंने हद दर्जे तक उनकी बदनामी की। उन्होंने एक कहानी उछाल दी कि ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती से बलात्कार किया। यह कथा भागवत पुराण[10] में दोहराई गई है—

---

1. *रामायण—मूइर ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत, खंड 4 पृ. 33*
2. *महाभारत—वनपर्व एवं लिंग पुराण—मूइर, वही, पृ. 38-39*
3. *विष्णु पुराण—मूइर, वही, पृ. 392*
4. *रामायण—मूइर, वही, पृ. 477*
5. *महाभारत शांति पर्व, मूइर द्वारा उद्धृत खंड 4, पृ. 240*
6. *महाभारत शांति पर्व—पृ. 279*
7. *महाभारत अनुशासन पर्व, मूइर,—वही पृ. 188*
8. *भागवत पुराण—वही, पृ. 43*
9. *महाभारत मूइर द्वारा ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट में उद्धृत, खंड 4, पृ. 192*
10. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 4, पृ. 47*

"हे क्षत्रिय! हमने सुना है कि स्वयंभू के मन में अपनी कमनीय और मोहक पुत्री वाच के प्रति कामुकता उत्पन्न हुई, जबकि उसके मन में उनके प्रति कामभाव नहीं था। ऋषियों और मरीचि के नेतृत्व में, अपने पिता के कुकर्म पर उनके पुत्रों ने उन्हें फटकारा। तुमने ऐसा कुकर्म किया है, जो तुमसे पहले किसी ने नहीं किया। न तुम्हारे बाद कोई ऐसा करेगा। क्या तुम्हें विधाता होते हुए अपनी पुत्री से ही विषयभोग करना था? क्या तुम अपने उन्माद को रोक नहीं सकते थे? अरे विश्व के गुरु! तुम्हारे जैसे गौरवशाली व्यक्ति के लिए यह प्रशंसनीय नहीं है जिनके कार्यों के अनुकरण के कारण व्यक्ति को आनन्द प्राप्त होता है। जिसकी महिमा की दीप्ति से यह ब्रह्मांड प्रकाशित होता है, लौ फूटती है उसकी जय हो। उसे धर्म-परायणता को बनाए रखना चाहिए। अपने पुत्रों के इन वचनों को सुनकर प्रजापति शर्म से गड़ गए और अपने शरीर का त्याग कर दिया। उसके भयानक अवशेष उस क्षेत्र में फैल गए और वही धुंध भरे अंधकार के नाम से विख्यात हुआ।"

ब्रह्मा के विरुद्ध ऐसा अपकर्ष एवं अपमानजनक प्रहार होने से वह चारों खाने चित हो गए। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भारत से उनकी उपासना लुप्त हो गई और वे त्रिमूर्ति के एक नगण्य और नाममात्र के सदस्य बनकर रह गए।

ब्रह्मा के मैदान से बाहर हो जाने पर रह गए शिव और विष्णु। ये दोनों भी कभी शांति से नहीं बैठे। दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा, संघर्ष जारी रहा। आइए, देखें इस प्रचार-युद्ध में उन्होंने अपने विपक्षियों की क्या गत बनाई। कोई भी पक्ष अपने विरोधी देव का पंथ समाप्त करने में सफल न हो सका। शिव और विष्णु की उपासना जारी रही और फलती-फूलती रही। इसके बावजूद आगे चलकर अनेक पंथ बने और उनको कभी राहु ने नहीं ग्रसा। इसका प्रमुख कारण यह है कि ब्राह्मणों ने धुआंधार प्रचार और प्रतिप्रचार जारी रखा। प्रचार-तंत्र किस प्रकार चलता रहा, वह कुछ निम्न उदाहरणों से जाना जा सकता है।

विष्णु वैदिक देवता सूर्य से संबद्ध हैं और शिवभक्त उनका संबंध अग्नि से जोड़ते हैं। इसका आशय यह प्रकट करना था कि यदि विष्णु का उद्गम वैदिक है तो शिव का उद्भव भी वैदिक है। जन्म के आधार पर कोई भी एक-दूसरे से घटकर नहीं है।

शिव विष्णु से बड़े हों और विष्णु इनसे कम न हों। विष्णु के सहस्र नाम[1] हैं तो शिव के भी सहस्र नाम होने चाहिएं और ऐसा ही हुआ।[2] विष्णु के अपने प्रतीक[3] हैं। इसी प्रकार शिव के भी होने चाहिएं और उनके अपने[4] प्रतीक हैं।

---

1. देखें *विष्णुसहस्रनाम*।
2. *पद्म पुराण में उद्धृत*।
3. *ऊपर देखें*।
4. *वे हैं—1. बहती गंगा 2. चन्द्र 3. शेषनाग 4. जटा-जूट*।

महिमा-मंडन के लिए एक देव के भक्तों ने जिस प्रकार उसके पक्ष में प्रचार किया, उसके उत्तर में दूसरों ने भी अपने पक्ष में वैसा ही प्रतिप्रचार किया। गंगावतरण[1] का प्रसंग एक उदाहरण है। शिवभक्त उसकी उत्पत्ति शिव की जटाओं से मानते हैं, परंतु वैष्णव इसे मानने को तैयार नहीं थे। उन्होंने एक और कथा गढ़ डाली। वैष्णवों के अनुसार पतित-पावनी गंगा बैकुंठ (विष्णु के निवास) से निकलती है। उसका उद्गम विष्णु के चरणों से है और कैलाश पर आकर वह शिव के मस्तक पर उतरती है। इस कथा के दो निष्कर्ष हैं। पहला यह कि गंगा का उद्गम विष्णु के चरणों से है, शिव की जटाओं से नहीं। फिर, शिव का पद विष्णु से नीचा है क्योंकि उनके मस्तक पर गंगा की धार विष्णु के चरणों से गिरती है।

दूसरा उदाहरण देवों और असुरों द्वारा सागर-मंथन का है। उन्होंने मंदराचल पर्वत को मथानी और शेषनाग को रस्सी बनाया। विष्णु ने कूर्म अवतार लिया, फिर पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण किया और मंथन के समय उसके स्पंदन को नियंत्रित किया।

यह कथा विष्णु की महिमा बढ़ाने के लिए रची गई है। शिव का स्थान इसमें गौण है। इसके अनुसार समुद्र-तल से चौदह रत्न निकले। इनमें से एक था विष। अगर इस विष का पान न किया जाता वह सारे संसार को नष्ट कर सकता था। शिव ही उसे पीने के लिए तैयार हुए। इससे यह पता चलता है कि विष्णु ने दोनों विरोधी समूहों, देवों और असुरों, को सागर-मंथन की अनुमति देकर संसार के विनाश का द्वार खोल दिया था और यह एक अविवेकपूर्ण कार्य था। शिव की महिमा बताई गई है कि उन्होंने विषपान करके विष्णु की मूर्खता से होने वाले अनिष्ट से संसार को बचा लिया।

तीसरा उदाहरण भी यह दर्शाता है कि विष्णु मूर्ख थे और शिव ने ही अपनी विलक्षण बुद्धिमत्ता और पराक्रम से विष्णु को उनकी मूर्खताओं से बचाया। यह कथा अक्रूरासुर[2] की है। अक्रूर भालू के मुख वाला एक राक्षस था। इसके बावजूद वह नियमित रूप से वेद-पाठ और भक्तिकर्म करता था। विष्णु उससे अत्यंत प्रसन्न थे और उन्होंने उसे मनचाहे वरदान का वचन दे डाला। अक्रूरासुर ने वर मांगा कि त्रिलोक में उपस्थित कोई प्राणी उसके प्राण नहीं ले सके। विष्णु मान गए। परंतु वह इतना ढीठ हो गया कि जब उसने देवताओं को सताया तो उन्होंने उसके आगे समर्पण कर दिया और वह संसार का शासक बन गया। असुर के अत्याचारों से लाचार विष्णु काली के तट पर चिंतित बैठे थे। उनका रोष स्पष्ट दिख रहा था। उनकी आंखों के सामने इस आकार का जीव प्रकट हुआ, जो पहले त्रिलोक में विद्यमान नहीं था। वह संहारक रूप में महादेव थे, जिन्होंने क्षण भर में विष्णु को चिंतामुक्त कर दिया।

---

1. *मूइर, हिंदू पेनथियन, पृ. 40-41*
2. *वह कहानी विष्णु आगम में कही जाती है और मूर की "हिंदू पेनथियन" में उद्धृत है, पृ. 19-20*

इसके जवाब में भस्मासुर की कथा प्रचलित हुई कि शिव औघड़ (मूर्ख) हैं और विष्णु ने उनकी करतूत से उन्हें बचाया। भस्मासुर ने शिव को एक वरदान पाने के लिए प्रसन्न कर लिया। वरदान यह था कि भस्मासुर जिसके भी सिर पर हाथ रखेगा, वह भस्म हो जाएगा। शिव ने वरदान दे दिया। भस्मासुर ने शिव के वरदान से उन्हें ही भस्म करने की ठानी। शिव डरकर भागे और सहायता के लिए विष्णु के पास पहुंचे। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण किया और भस्मासुर के पास गए। वह उन्हें देखकर आसक्त हो गया। मोहिनी रूपी विष्णु ने कहा कि वह एक शर्त पर उसकी हो जाएगी कि जैसे-जैसे वह करे वैसे ही भस्मासुर भी करे, विष्णु ने इस प्रकार भस्मासुर का हाथ उसके सिर पर रखवा दिया। परिणाम यह निकला कि भस्मासुर मर गया और विष्णु को यह श्रेय मिला कि उन्होंने शिव को उनकी मूर्खता के परिणाम से बचा लिया।

कथा इस प्रकार है कि एक बार विष्णु देवी के वक्ष स्थल पर सो रहे थे। उनकी नाभि से एक कमल प्रकट हुआ और यह पुष्प जल की सतह पर आ गया। उसमें ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने जब यह देखा कि इस अनंत में कोई जीव नहीं है, तो उन्होंने सोचा सबसे पहले मैं ही उत्पन्न हुआ हूं और इस प्रकार उन्होंने अपने को भावी सृष्टि से पूर्व जन्मा बताया। फिर भी यह निश्चय करने के लिए कि उनकी प्रमुखता को चुनौती कौन दे सकता है, उन्होंने कमल नाल को खींचा तो विष्णु को सोता हुआ पाया। उन्होंने जोर से पूछा "यह कौन है"? विष्णु ने कहा, मैं सबसे पहले जन्मा हूं और जब ब्रह्मा ने अपने को पूर्व जन्मा बताया तो दोनों में युद्ध छिड़ गया। तभी महेश प्रकट हुए और बोले, पहले मेरा जन्म हुआ है। परंतु मैं तुम दोनों में से किसी के लिए भी यह स्थिति त्यागने के लिए तैयार हूं, यदि तुम में से कोई मेरी शिखा तक अथवा मेरे पांवों के तलवे तक पहुंच जाए। ब्रह्मा तुरन्त तैयार हो गए लेकिन वह थक गए थे। फिर भी वह अपना दावा छोड़ने को तैयार नहीं हुए और महादेव की ओर मुड़कर बोले कि मैंने अपनी बात पूरी कर दी है और आपके माथे का मुकुट देख लिया है और साक्षी के लिए प्रथम जन्मी गाय को बुला लिया। इस दर्प और झूठ पर शिव को क्रोध आ गया और उन्होंने कहा कि ब्रह्मा की कहीं पूजा नहीं होगी और गाय का मुख विकृत व अशुद्ध हो जाएगा। फिर विष्णु आए और उन्होंने माना कि वह शिव के चरण नहीं देख पाए। तब शिव ने विष्णु से कहा कि देवों में तुम ही प्रथम जन्मे हो और आपका पद सर्वोच्च है। इसके पश्चात शिव ने ब्रह्मा का पांचवां मुख काट डाला और उनका मौन भंग हुआ। उनकी शक्ति और प्रभाव क्षीण हो गए।

इस कथा के अनुसार ब्रह्मा का यह दावा झूठा था कि उनका जन्म सबसे पहले हुआ है। इसके लिए शिव ने उन्हें दंडित किया। विष्णु को प्रथम जन्मा कहलाने का अधिकार मिला। ब्रह्मा के अनुयायियों ने शिव की सहायता से विष्णु द्वारा ब्रह्मा का स्थान छीन लेने पर बदला लेने की ठानी। इसलिए उन्होंने एक और कथा रच डाली, जिसके अनुसार विष्णु ब्रह्मा के नथुनों से सूकर रूप में उत्पन्न हुए और स्वाभाविक रूप से वाराह बन गए—विष्णु के वाराह अवतार का यह बहुत तुच्छ विश्लेषण है।

देवताओं के बीच खींचतान ने वही रूप ले लिया जैसे व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा पनप जाती है। इसका परिणाम यह निकला कि शैवों ने वैष्णवों और वैष्णवों ने शैवों को गाली देना शुरू कर दिया।

यह तथ्य त्रिदेवों के विषय में है, जिसका परवर्ती इतिहास में उल्लेख है। त्रिदेव की अवधारणा कोई नई नहीं थी। यह यास्क से प्राचीन है। अनगिनत देवताओं की संख्या घटाने के उद्देश्य से प्राचीन ब्राह्मणों ने कुछ देवताओं को चुनकर उन्हें बाकी से श्रेष्ठ बताने की चेष्टा की। इन प्रमुख देवताओं की संख्या तीन निश्चित की गई। इनमें से दो अग्नि और सूर्य थे। तीसरे स्थान के लिए इंद्र और वायु में प्रतिस्पर्धा थी। परिणामस्वरूप एक त्रिमूर्ति बनी जिसमें अग्नि, इंद्र और सूर्य अथवा अग्नि, वायु, और सूर्य रखे गए। नई त्रिमूर्ति की अवधारणा प्राचीन अवधारणा के ही समान थी लेकिन बस उसके देवता बदल गए। इस त्रिमूर्ति का प्रत्येक देवता नया था। ऐसा लगता है कि पहली त्रिमूर्ति के विलुप्त हो जाने के काफी बाद तक कोई नई परंपरा स्थापित नहीं हुई थी। चुल्ल निद्देश में केवल ब्रह्म-वृत्तिका का उल्लेख है। शिव वृत्तिका तथा विष्णु वृत्तिका का कोई चिह्न वहां नहीं मिलता। इसका मतलब यह हुआ कि चुल्ल निद्देश के समय तक शिव और विष्णु की पूजा शुरू नहीं हुई थी। ब्रह्मा के बाद इन्हें उनके साथ जोड़कर त्रिमूर्ति बना दी गई। हमारे मन में त्रिमूर्ति गढ़ने में ब्राह्मणों की भूमिका को लेकर कई सवाल उठते हैं।

पहला सवाल यह है कि ब्राह्मणों की अपने देवताओं में कितनी आस्था है? उन्होंने कितनी आसानी से अपने देवताओं के एक समूह को दूसरे के लिए तिरस्कृत कर दिया? इस संबंध में यहूदी पुजारियों और 'नबूकदनेस्सर' की याद आती है।

1. नबूकदनेस्सर[1] राजा ने सोने की एक विशाल मूर्ति बनवाई। वह प्रायः पचीस मीटर ऊंची और अढ़ाई मीटर चौड़ी थी। उसने मूर्ति को बेबीलोन प्रदेश के दूरा नामक मैदान में स्थापित किया।
2. उसके बाद उसने अपने साम्राज्य में सब प्रदेशों के क्षत्रपों, हाकिमों, राज्यपालों, मंत्रियों, खजांचियों, न्यायाधीशों, दंडाधिकारियों तथा प्रदेशों के सब उच्चाधिकारियों के पास संदेश भेजा कि वे महाराज नबूकदनेस्सर द्वारा स्थापित स्वर्ण मूर्ति के प्रतिष्ठान के अवसर पर उपस्थित हों।
3. अतः सम्राट के आदेशानुसार बेबीलोन साम्राज्य के सब प्रदेशों के क्षत्रप, राज्यपाल, मंत्री, खजांची, न्यायाधीश, दंडाधिकारी तथा अन्य उच्चाधिकारी अपने महाराज द्वारा स्थापित स्वर्ण मूर्ति के प्रतिष्ठान पर्व पर उपस्थित होने के उद्देश्य से एकत्र हुए। वे मूर्ति के सम्मुख खड़े हुए।
4. तब घोषणा करने वाले उद्घोषक ने उच्च स्वर में कहा, 'ओ विश्व की भिन्न-भिन्न कौमों, राष्ट्रों और भाषाओं के लोगो! तुम्हें यह आदेश दिया जाता है।

1. *ओल्ड टैस्टामैंट—डेनियल, अध्याय 3, पद्य 1-23*

5. कि जिस क्षण तुम नरसिंगे, बांसुरी, वीणा, सारंगी, सितार, शहनाई तथा अन्य सब प्रकार के वाद्य-यंत्रों का स्वर सुनो, तब तुम उसी क्षण राजा नबूकदनेस्सर द्वारा स्थापित स्वर्ण मूर्ति के सम्मुख गिरकर उसका सम्मान करना।
6. जो व्यक्ति मूर्ति के सम्मुख गिरकर उसका सम्मान नहीं करेगा, वह उसी क्षण धधकती हुई अग्नि की भट्टी में फेंक दिया जाएगा।
7. अतः विश्व की भिन्न-भिन्न कौमों, राष्ट्रों और भाषाओं के लोगों ने ऐसा ही किया। उन्होंने जिस क्षण नरसिंगे, बांसुरी, वीणा, सारंगी, सितार, शहनाई तथा अन्य सब प्रकार के वाद्ययंत्रों का स्वर सुना, वे तत्काल राजा नबूकदनेस्सर द्वारा स्थापित स्वर्ण मूर्ति के सम्मुख गिरे, और यों उन्होंने मूर्ति के प्रति सम्मान प्रकट किया।
8. पर उसी समय कुछ कसदी पंडित राजा नबूकदनेस्सर के पास गए, और उन्होंने यहूदियों के प्रति द्वेष के कारण राजा से उनकी चुगली कर दी।
9. उन्होंने उससे कहा, 'महाराज लाखों वर्ष जीएं!'
10. महाराज, आपने राजाज्ञा दी थी कि प्रत्येक व्यक्ति नरसिंगे, बांसुरी, वीणा, सारंगी, सितार, शहनाई तथा अन्य सब प्रकार के वाद्ययंत्रों का स्वर सुनते ही स्वर्ण मूर्ति के सम्मुख गिरकर उसके प्रति सम्मान प्रकट करेगा।
11. और जो व्यक्ति मूर्ति के सम्मुख गिरकर उसका सम्मान नहीं करेगा, वह धधकती हुई अग्नि की भट्टी में फेंक दिया जाएगा।
12. महाराज, आपने जिन यहूदियों को बेबीलोन प्रदेश के राजकीय कार्यों की व्यवस्था करने के लिए नियुक्त किया है, वे आपके आदेशों का पालन नहीं करते हैं। उनके नाम हैं—शद्रक, मेशक और अबेदनगो। वे आपकी उपेक्षा करते हैं। महाराज, वे न तो आपके देवताओं की सेवा-आराधना करते हैं, और न आपके द्वारा स्थापित स्वर्णमूर्ति के प्रति सम्मान प्रकट करते हैं।'
13. यह सुनते ही नबूकदनेस्सर का क्रोध भड़क उठा। उसने रोष में आकर आदेश दिया कि शद्रक, मेशक और अबेदनगो को पेश किया जाए। सैनिकों ने तीनों व्यक्तियों को राजा के सम्मुख प्रस्तुत किया।
14. नबूकदनेस्सर ने उनसे पूछा, 'शद्रक मेशक और अबेदनगो, क्या यह सच है कि तुम न तो मेरे देवताओं की सेवा-आराधना करते हो, और न मेरे द्वारा स्थापित स्वर्णमूर्ति के प्रति सम्मान प्रकट करते हो?
15. अब यदि तुम नरसिंगे; बांसुरी, वीणा, सारंगी, सितार, शहनाई और अन्य सब प्रकार के वाद्यों का स्वर सुनकर मेरे द्वारा स्थापित मूर्ति के सम्मुख गिरकर उसका सम्मान करने को तैयार हो तो ठीक है; तुम्हारा अनिष्ट न होगा। पर यदि तुम मूर्ति के प्रति सम्मान प्रकट नहीं करोगे, तो तुम अविलंब धधकती हुई अग्नि की भट्ठी में फेंक दिए जाओगे। तब मैं देखूंगा कि कौन-सा ईश्वर तुम्हें मेरे हाथ से बचाएगा?

16. शद्रक, मेशक और अबेदनगो ने राजा को उत्तर दिया. 'महाराज, इस संबंध में हम उत्तर देना आवश्यक नहीं समझते।'
17. यदि हमारे साथ ऐसा व्यवहार किया जाएगा तो हम जिस परमेश्वर की सेवा-आराधना करते हैं, वह हमें धधकती हुई अग्नि की भट्ठी में से भी छुड़ा लेगा। महाराज, वह हमें आपके हाथ से भी छुड़ा सकता है।
18. महाराज, यदि आप हमें धधकती हुई अग्नि की भट्ठी में डालेंगे तो भी हम आपके देवताओं की सेवा-आराधना नहीं करेंगे, और न आपके द्वारा स्थापित स्वर्ण मूर्ति के सम्मुख झुककर उसके प्रति सम्मान प्रकट करेंगे।'
19. नबूकदनेस्सर क्रोध से भर गया। उसके चेहरे का रंग बदल गया। उसका क्रोध शद्रक, मेशक ओर अबेदनगो के प्रति भड़क उठा। उसने आदेश दिया कि भट्ठी की अग्नि सात गुना अधिक तेज की जाए।
20. तत्पश्चात् उसने अपनी सेना के कुछ बलिष्ठ योद्धाओं को आदेश दिया कि वे शद्रक, मेशक और अबेदनगो को बांधकर धधकती हुई अग्नि की भट्ठी में फेंक दें। बलिष्ठ योद्धाओं ने ऐसा ही किया।
21. उन्होंने इन तीनों व्यक्तियों को उनके पायजामों, अंगरखों, पगड़ियों तथा अन्य वस्त्रों सहित बांध दिया और उनको धधकती हुई अग्नि की भट्ठी में फेंक दिया।
22. राजा नबूकदनेस्सर की कठोर आज्ञा के कारण भट्ठी की आंच और तेज कर दी गई। भट्ठी अत्यंत धधक रही थी। उसमें से लपटें निकल रही थीं। अतः जिन लोगों ने शद्रक, मेशक और अबेदनगो को भट्ठी में फेंकने के लिए उठाया, उनको भट्ठी की लपटों ने भस्म कर दिया।
23. और ये तीनों व्यक्ति—शद्रक, मेशक और अबेदनगो बंधे-बधाएं उस धधकती हुई अग्नि की भट्ठी में गिर पड़े।

ब्राह्मणों ने पहली त्रिमूर्ति को क्यों त्याग दिया? इसका कोई संकेत नहीं कि देवों के प्रति आस्था की पूर्व शपथ हेतु उन्हें बाध्य किया गया था। क्या यह लाभ प्राप्ति का सौदा था?

दूसरा सवाल यह है कि क्या तीन देवों के भक्तों ने जिओ और जीने दो का मार्ग अपना लिया था? एक संप्रदाय दूसरे की पोल खोलने पर क्यों उतारू था? इन संप्रदायों के बीच नाम मात्र के लिए भी सैद्धांतिक मतभेद नहीं था। उनका धर्मशास्त्र, ब्रह्मांड विज्ञान और दर्शनशास्त्र सभी समान था। इसलिए गुत्थी और उलझ जाती है। क्या पंथ का यह झगड़ा राजनीतिक था? क्या ब्राह्मणों ने धर्म को राजनीति बना दिया था? वरना झगड़े का कारण क्या था?

परिशिष्ट : 4

स्मार्त धर्म और तांत्रिक धर्म

I

स्मार्त-धर्म के पवित्र साहित्य में स्मृतियां अथवा संहिताएं आदि समाविष्ट हैं। ये स्मृतियां भारत का विधि-विधान हैं। इस विधि-विधान का दायरा इतना व्यापक हो गया कि उसमें विधि, सरकार, समाज, विभिन्न जातियों के नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य, पापों का प्रायश्चित और अपराधों के लिए दंड-व्यवस्था का प्रावधान हो गया। इसके शुरू के पूर्णतया धर्म निरपेक्ष अंशों पर हम इस समय अध्ययन नहीं कर रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन के लिए इसके वही अंश प्रासंगिक हैं, जो पूरी तरह से धार्मिक हैं।

स्मार्त-धर्म अर्थात् स्मृतियों पर आधारित धर्म पांच सिद्धांतों पर आधारित है। इसका प्रथम सिद्धांत है, त्रिवेद में आस्था, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश सम्मिलित हैं। इस त्रिमूर्ति में ब्रह्मा जगत का स्रष्टा है, विष्णु पालनहार और शिव संहारक है। श्रौत-धर्म के तैंतीस देवताओं के स्थान पर स्मार्त-धर्म तीन देवों तक सीमित है।

स्मार्त-धर्म का दूसरा सिद्धांत है, संस्कार। इस धर्म के अनुसार प्रत्येक गृहस्थ को कुछ संस्कार करने होते हैं। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो वह पतित हो जाता है, गरिमा से वंचित हो जाता है।

पौराणिक धर्म

II

पौराणिक धर्म में दंड और प्रायश्चित का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रौत धर्म में दुरात्माओं को और सजा नहीं दी जाती। जीवन में किए गए पाप की सजा मृत्यु के बाद भुगतनी होती है अथवा नहीं, यह तो पता नहीं है लेकिन इस संबंध में पुराणों ने यम की शक्ति का बहुत विस्तार कर दिया है।

"यम मृतकों का न्याय करता है। वह नरक का स्वामी है। जो मरता है, उसे उसके सामने लाया जाता है। फिर उसका सामना पाप-पुण्य का लेखा-जोखा रखने वाले चित्रगुप्त से होता है। पुण्यात्मा स्वर्ग अथवा एलीसियम को भेज दी जाती है जबकि पापात्माओं को नरक अथवा तरतारस में डाल दिया जाता है।"

"भयानक चित्रगुप्त की गर्जना प्रलयंकारी बादलों की गरज के समान है, वह काजल के चमकते पर्वत के समान है। शस्त्रों की चमक के समान आंतकोत्पादक है, उसकी बत्तीस भुजाएं हैं, जो तीन योजन लंबी हैं, लाल-लाल आंखें हैं, लंबी नाक है, उसके नुकीले और लंबे-लंबे दांत हैं, उसकी आंखें गहरे पोखर के समान हैं जिनमें मौत और व्याधियों की भरमार है।"

पाप की सजा मृत्यु के बाद मिलेगी। इसी प्रकार पाप से मुक्ति के लिए निश्चित प्रायश्चित का विधान है।

लेकिन पाप है क्या? पौराणिक धर्म के अनुसार, इसका अर्थ नैतिक दुराचार नहीं है, इसका अर्थ है पौराणिक विधि-विधान का पालन न करना। ऐसा है पौराणिक धर्म।

तांत्रिक धर्म

III

तांत्रिक धर्म शक्ति की पूजा पर केंद्रित है। शक्ति का शाब्दिक अर्थ है ऊर्जा, लेकिन तंत्रवाद में इसका तात्पर्य है—पुरुषदेवता की सहगामिनी नारी। तांत्रिक धर्म का विशाल साहित्य है और यह हिंदुओं के धार्मिक साहित्य की अलग शाखा है। यह समझना जरूरी है कि हिंदुओं के शाक्त मत में अपने व्यापक पौराणिक चरित्र मौजूद हैं। अनेक नारी व्यक्तित्व अर्थात देवियां हैं, जिनका हिंदू देवकुल में विशिष्ट स्थान है।

मूलरूप से तांत्रिक धर्म पौराणिक धर्म का ही विस्तार है। पुराणों में ही पहली बार अविवाहित देवियों को मान्यता दी गई थी। फिर विवाहित देवियों की मान्यता हुई, जो देव-पत्नियां थीं। इसका आधार यही है कि देवताओं की पत्नियों की दैवी-रूप में पूजा की जाए। इसी कारण पुराणों ने शक्ति मत चलाया। पुराणों के अनुसार कोई देवता चाहे अकेला हो, उसका दोहरा चरित्र होता है। उनका एक रूप प्रशांत है और दूसरा विकराल। सक्रिय रूप शक्ति कहलाता है। पुराणों में देवताओं की शक्ति का मानवीकरण देव पत्नी के रूप में किया गया है। यही शक्ति-मत (शाक्तमत) का आधार है, यानी किसी देवपत्नी की आराधना।

शक्ति मत का सार है—देवी की नैसर्गिक शक्ति के रूप में विशिष्ट पूजा, जो एक जगज्जननी, जगदंबा है, एक शक्तिशाली रहस्यमय तत्त्व है। वह दो विशिष्ट कार्यों का संचालन और नियंत्रण करती है। पहला है प्राकृतिक बुभुक्षा और आवेग वह, चाहे शारीरिक संवर्धन के लिए खान-पान हो अथवा कामवासना अर्थात् साहचर्य से जीव-वृद्धि। दूसरा, सिद्धि, वह चाहे किसी के व्यक्तिगत उत्कर्ष के लिए हो या शत्रु के विनाश के लिए।

यहां यह समझना जरूरी है कि हिंदुओं के शाक्त मत में इतने

व्यापक पौराणिक चरित्र हैं, इनमें इतनी देवियां हैं, कि उनका हिंदू देवकुल में विशिष्ट स्थान है।

इसके बावजूद, तांत्रिक नारी देवकुल (=देवियों) की व्यूह-रचना फैलती गई। इसके अनेक रूप-स्वरूप बने। शक्ति मत का उद्‌गम शिवभार्या है। इस विषय में सर्वसम्मति है कि वही संपूर्ण नारी पौराणिक प्रथा का उद्‌गम है। इस परंपरा में उनका सर्वोच्च स्थान है और यह भी उल्लेखनीय है कि उनमें पुरुष देवता शिव के लक्षण विद्यमान हैं। शिव से उनका सामान्य दांपत्य संबंध ही नहीं है बल्कि उनमें उनके गुण भी सघन रूप में समाहित हो गए हैं। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि किस प्रकार देवगण शिव के प्रभामंडल के चारों ओर एकत्र हो गए। सभी देवों के गुण और कर्म उनमें समा गए और वे स्वयं अपने उपासकों के लिए देवाधिदेव महादेव बन गए। इसी प्रकार, बल्कि इससे भी बढ़कर, उनकी भार्या शक्ति-पूजा परंपरा की महादेवी बन गई, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव की नारी रूपों की अभिव्यक्ति होती है और वह उनके कार्यों को स्वयं संपन्न करती है। इसी कारण ब्रह्मा और विष्णु की पत्नियां भी उनकी पुत्री मानी जाती हैं। यहां तक उनके विपरीत और प्रतिकूल गुण-कर्म का प्रश्न है, इनसे हिंदू विचारधारा के लिए कोई मुश्किल नहीं आती। वह हर प्रकार अपने पति का दूसरा रूप हैं बल्कि एक ऐसा स्वरूप जिसमें और भी रंग भर दिए गए हैं। क्योंकि एक समय शिव भी वर्ण और प्रकृति से श्वेत-शुक्ल थे; इस प्रकार वह भी आधी श्वेत (जब उनका नाम गौरी है) और आधी श्याम हो गईं (जब उनका नाम काली है)।

फिर इन विपरीत लक्षणों में विभिन्न संशोधन हुए और इनमें अनवरत रूप से वृद्धि होती गई। गौरवर्ण और शांत स्वभाव वाली देवियां उमा, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि कहलाईं और जिस प्रकार शिव के 1008 नाम अथवा विशेषण हैं, उसी प्रकार उनकी भार्या के भी हैं। उन सबसे संबंध जुड़ा हुआ है। उनकी न्यूनतम एक सहस्र नाम से प्रार्थना की जाती है। कुछ उनकी सौम्य मूर्ति के नाम हैं और कुछ विकराल के। उल्लेखनीय है कि तंत्रों के अनुसार यदि कोई व्यक्ति "म" अक्षर से आरंभ होने वाले उनके आठ नामों का जाप करता है तो राजा स्वयं उसका सेवक बन जाएगा, सभी उसे प्रेम करेंगे और उसके सभी दुख-संताप दूर हो जाएंगे।

संक्षेप में, शाक्तों की सभी देवियां अथवा शक्तियां शिव की नारी-शक्ति में समाहित हो जाती हैं। उनकी संख्या अगणित हो जाती है और उनके भिन्न-भिन्न रूप उभर आते हैं।

परंतु यह पूजा साधारण रूप में चली। शिव के साथ दुर्गा, विष्णु के साथ लक्ष्मी, कृष्ण के साथ राधा, राम के साथ सीता की उपासना आरंभ हो गई। शक्तियों की संख्या निश्चित नहीं की गई।

किसी समय केवल आठ शक्तियां गिनी जाती थीं, किसी समय नौ। जैसे, वैष्णवी, ब्राह्मणी, रौद्री, माहेश्वरी, नरसिंही, वाराही, इंद्राणी, कार्तिकी और प्रधाना। लक्ष्मी के अतिरिक्त विष्णु की पचास शक्तियां और गिनी जाती हैं। शिव अथवा रुद्र की दुर्गा अर्थात् गौरी सहित पचास और शक्तियां हैं। सरस्वती, विष्णु, रुद्र और ब्रह्मा की शक्ति हैं। वायु पुराण के अनुसार शिव की नारी प्रवृत्ति के दो रूप हैं, आधी असित (अश्वेत) और आधी सित (श्वेत), इनमें से प्रत्येक का विस्तार हो गया। श्वेत और शांत स्वभाव की देवियों में उमा, गौरी, लक्ष्मी, सरस्वती आदि सम्मिलित हैं और अश्वेतों तथा विकराल देवियों में दुर्गा, काली, चंडी, चामुंडा आदि शामिल हैं।

बहरहाल, शीघ्र ही सारी शक्तियों का लोक में प्रचार हो गया। इसके परिणामस्वरूप उनके अनगिनत पृथक स्वरूप और रूप उभर आए।

> इस मानवीकरण का आधार विष्णु के अवतार थे जिनमें दैवी-प्रभाव की मात्रा के अनुसार वर्गीकरण हुआ जैसे पूर्णशक्ति, अंश रूपिणी, काल रूपिणी, कालांश रूपिणी। इसकी अंतिम श्रेणी में ब्राह्मण से लेकर नीचे तक की जातियों की साधारण स्त्री भी सम्मिलित कर ली गई, जिन्हें यह समझकर पूजा जाने लगा कि इन पर देवी आती है। यह नहीं भूलना चाहिए कि शाक्त मतावलंबियों की दृष्टि में प्रत्येक स्त्री साक्षात देवी है।
>
> फिर भी अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित वर्गीकरण की शुरुआत महाविद्याओं के रूप में हुई। विष्णु के दस अवतारों की तरह इनकी संख्या भी दस ही रखी गई है। ये महाविद्याएं कहलाती हैं और देवी की महान विद्याओं का स्रोत हैं। इनके विभिन्न गुण हैं। इसी प्रकार इनका नामकरण किया गया है—1. काली (श्यामा) कृष्ण वर्ण विकराल और प्रचंड स्वभाव, 2. तारा, सौम्य स्वरूप, विशेष रूप से कश्मीर में पूजी जाती है। 3. षोडशी, सोलह वर्ष की सुंदर कन्या (त्रिपुरा भी कहलाती है, जो मालाबार में पूजी जाती है)। 4. भुवनेश्वरी, 5. भैरवी, 6. छिन्नमस्तका निर्वस्त्र देवी, हाथ में रक्त-रंजित खड्ग, दूसरे हाथ में अपना ही कटा हुआ सिर जो अपने ही शीशहीन धड़ से उबलते रक्त का पान करती है। 7. धूमवती, धुएं के रूप में 8. बगुला, बकमुखी 9. मातंगी, भंगी जाति की स्त्री 10. कमलात्मिका। इनमें से पहली दो विशेष रूप से महाविद्याएं हैं। अगली पांच विद्याएं हैं, और शेष तीन सिद्ध विद्याएं हैं।
>
> देवियों का अगला मानवीकरण अथवा स्वरूप मातृ अथवा मातृका अथवा महामातृ कहलाता है। भारत के कृषक वर्ग में प्रत्येक पंथ में उपासनीय मातृदेवी

से महाविद्याओं के संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इस पर अगले अध्याय में और विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा।

मातृकाएं इस प्रकार हैं–1. वैष्णवी, 2. ब्राह्मी अथवा ब्राह्मणी। प्रायः ब्रह्मा की भांति चतुर्मुखी होती है। 3. कार्तिकेयी, कभी-कभी मयूरी कहलाती है, 4. इंद्राणी, 5. यमी, 6. वाराही, विष्णु के वाराह अवतार से संबद्ध, 7. देवी अथवा ईशानी, शिव भार्या के रूप में, एक हाथ में त्रिशूल धारी, 8. लक्ष्मी। इनमें से प्रत्येक देवी माता की गोद में एक बच्चा है।

माताओं से घनिष्ठ रूप से संबंधित आठ नायिकाओं का भी मानवीकरण किया गया है। इनका माता होना आवश्यक नहीं। इनकी कल्पना केवल अवैध संभोग के संबंध में की गई है। इनके नाम हैं बालिनी, कामेश्वरी, विमला, अरुणा, मेदिनी, जयिनी, सर्वेश्वरी तथा कौलेसी।

दूसरा रूप है योगिनियों का। ये आठ पिशाचिनियां हैं, जो दुर्गा की सेवा के लिए बनाई गई हैं। कभी-कभी वे उस देवी का रूप भी धारण कर लेती हैं। इनकी संख्या साठ अथवा चौंसठ हैं और ये एक करोड़ तक हो सकती हैं।

एक अन्य नगण्य-सा वर्ग है डाकिनी और शाकिनी का। ये बस सखियां या अति घृणित प्रवृत्तियों वाली राक्षसियां हैं और देवियों के समक्ष इनका रूप चंचल भृत्या के समान है, जो हर समय उनकी सेवा में रहती हैं।

लेकिन इनका सबसे भयंकर रूप काली है जिसकी कलकत्ता (कोलकाता) में पूजा होती है।

काली के स्वरूप के संबंध में तांत्रिकों के दो परिच्छेदों का रूपांतरण इस प्रकार है–

"मद्य और नैवेद्य से पूजा की जानी चाहिए उस काली की जिसका मुख भयानक रूप से खुला हुआ है, बाल बिखरे हुए हैं, जो चतुर्भुजा है, जिसने उन महाबलियों की मुंडमाला पहन रखी है जिनका उन्होंने संहार किया है और रक्तपान किया है। उनके करकमलों में खड्ग है और जो निर्भीक है और वरदान देती है। जो विशाल मेघ के समान काली है और आकाश ही उसके वस्त्र हैं। उन्होंने नरमुण्ड माला धारण की हुई है। उसी में रक्त की बूंद टपकाती हुई एक गर्दन है। वह दो शवों को कुण्डल के रूप में पहने हुए हैं। उनके हाथों में दो शव हैं; उनके लंबे-लंबे दांत व मुस्काता चेहरा है, उनका रूप विरूप है, वह श्मशानवासिनी है। (लाशें खाती है) जो अपने पति महादेव की छाती पर खड़ी है।"

(अंग्रेजी पांडुलिपि के पृष्ठ संख्या 63-64 अप्राप्य हैं। 65 वें पृष्ठ की सामग्री नीचे दी जा रही है जिसका अंतिम पैरा लेखक की हस्तलिपि में है।)

तांत्रिक पूजा श्रौत या पौराणिक पूजा से बिलकुल अलग है। इसके मूल दर्शन के अनुसार उपासना का सबसे अच्छा रूप वह है जिसमें पुरुष की स्त्री के साथ मैथुन इच्छाओं की पूरी संतुष्टि होती है। तांत्रिक पूजा में पंच मकार की प्रधानता है। पंच मकार निम्न प्रकार है–

1. मद्यपान, 2. मांस भक्षण, 3. मत्स्य सेवन, 4. मुद्रा सेवन और 5. मैथुन।

तांत्रिक पूजा में भी ये क्रियाएं संपन्न की जाती हैं। यह बताना जरूरी नहीं कि जो निषेध हैं, तंत्र में वे भी मान्य हैं, बल्कि तंत्र पूजा में स्त्री से मैथुन करना पूजा का एक अंग है। इस तरह का है हिंदू धर्म का विकास। इस इतिहास को पढ़कर सच्चे धर्म का विद्वान यह पूछने के लिए अवश्य बाध्य हो जाएगा कि "हिंदू धर्म में नैतिकता का क्या स्थान है?"

धर्म का प्रारंभ निश्चय ही कई प्रश्नों से हुआ है।

"मैं क्या हूं?" "ब्रह्मांड किसने बनाया?" "यदि ईश्वर ने बनाया है तो उससे हमारा क्या संबंध है?" "ईश्वर को प्रसन्न करने का सम्यक मार्ग क्या है?" "अहं तथा ब्रह्म में क्या अंतर है?" "किसे श्रेष्ठ जीवन कहते हैं?" अथवा "ईश्वर कैसे प्रसन्न होता है?" आदि आदि।

इनमें से कई प्रश्न धर्मतत्त्व, आत्मतत्त्व, दर्शन और नैतिकशास्त्र से जुड़े हैं, जो धर्म के विभिन्न तत्त्व हैं। परंतु एक प्रश्न है, जो धर्म की शिक्षा एवं प्रचार से जुड़ा है कि श्रेष्ठ जीवन क्या है? जिस धर्म में ऐसा नहीं वह धर्म नहीं।

ब्राह्मणों ने हिन्दू धर्म को इस प्रकार नग्न क्यों किया? उसे नैतिकता-विहीन क्यों किया? हिंदू धर्म में अनगिनत देवी-देवता और पेड़-पौधे पूजे जाते हैं, तीर्थ यात्राएं की जाती हैं और ब्राह्मण को दक्षिणा दी जाती है। क्या इस धर्म की रचना मात्र इसलिए की गई है कि ब्राह्मणों की रोटी-रोजी चलती रहे? क्या उन्होंने कभी सोचा है कि नैतिकता ही समाज का आधार है और जब तक धर्म में नैतिकता का समावेश नहीं किया जाता वह निष्प्रभावी[1] है। ब्राह्मणों को इन प्रश्नों का उत्तर देना है।

---

1. पांडुलिपि में ये शब्द नष्ट हो गए हैं

परिशिष्ट : 5

वेद अकाट्य हैं

हिंदुओं से यह आशा की जाती है कि वे प्रतिदिन वेद-पाठ करें। शतपथ ब्राह्मण में इसके कारण बताए गए हैं। उसमें कहा गया है–

> "केवल ये पांच महायज्ञ हैं जिनका अत्यधिक महत्त्व है जैसे, जीवित-प्राणियों को अन्नदान, मनुष्यों को दान, पितरों को दान, भगवत् पूजा, और वेद-पाठ (ब्रह्म यज्ञ) 2. जीवित प्राणियों को प्रतिदिन दाना पानी दें[1] उनके प्रति इतना ही कर्तव्य है। किसी को कुछ न कुछ दान प्रतिदिन दें। चाहे कटोरी भर पानी ही पिलाएं, मानव के प्रति दान-दक्षिणा का कर्तव्य पूरा हो जाता है। ईश्वर की पूजा में भी प्रतिदिन भागीदार बनना चाहिए[2] यहां तक कि लकड़ी का एक गट्ठा चढ़ाकर भी। यह ईश्वर की भक्ति पूर्ण हुई। 3. अब हैं वेदों के प्रति कर्तव्य। इसका अर्थ है उनका एकांत पाठ[3]। इस कार्य में वाणी जुहू है, आत्मा उपभृत् है, नेत्र ध्रुव हैं और बुद्धि स्रुव[4] है। सत्य अर्पण है और स्वर्ग लक्ष्यसिद्धि। जो इसे जानकर प्रतिदिन वेद-पाठ करता है, वह अविकारी लोक में जाता है। वह विद्यमान से तीन गुना बड़ा लोक है। उस लोक में संपदा का साम्राज्य है। इसलिए वेदों का अध्ययन किया जाए। ऋग्वेद की ऋचाएं भगवान के लिए दूध का अर्ध्य है। जो इसे जानता है वह प्रतिदिन वेद-पाठ करता है। प्रतिदिन भगवान को दुग्ध अर्पण से संतुष्ट करता है और देवता संतुष्ट होकर उसे धन-धान्य से संपन्न, स्वास्थ्य, पौरुष तथा दैहिक

---

1. *जैसा कि मैंने जे. आफरेच्ट को पढ़ा है इसके अनुसार पक्षियों को दाना डाला जाता था। यह बोटलिंक और रोथ शब्दकोश में है। दूसरे यज्ञ के बारे में कोलब्रुक के मिस्लेनियस ऐस्सेज पृष्ठ–150, 153, 182 देखें। फुटनोट 203।*
2. *यह कात्यायन के श्रौत सूत्र से संबद्ध है, जिसका उल्लेख प्रो. आफरेच्ट ने किया है। यह मनुस्मृति में भी उपलब्ध है अध्याय 3, 210, 214, 218।*
3. *स्वाध्याय स्वशाखाध्ययनम् (अपनी शाखा में वेद-अध्ययन)*
4. *प्रो. मूलर के फ्युनरल राइटस ऑफ ब्राह्मन्स लेख में इनके चित्र दिए हैं देखें जर्नल ऑफ दि जर्मन ओरि. सैक्सन खंड 9*

शक्ति प्रदान करते हैं। विलक्षण वरदान देते हैं। पिता की सेवा से घी और शहद की नदियां बहती हैं। 5. ईश्वर के लिए यजुस् मंत्रों का पाठ घी की आहुति है। जो इसे जानता है, जो इनका नित्य पाठ करता है, वह देवताओं को घी आहुति से प्रसन्न करता है और वे संतुष्ट होकर, उसे संतुष्ट करते हैं (पूर्वोक्त की भांति)। 6. सामवेद के मंत्र देवताओं को सोम का तर्पण हैं। जो यह जानता है, वह प्रतिदिन इनका पाठ करता है। देवताओं को सोम का तर्पण करता है और वे संतुष्ट होकर आदि (पूर्वोक्तानुसार) 7. अथर्वन् और अंगिरस् (अथर्वांगिरस)[1] के मंत्र देवताओं को वसा (Fat=चर्बी) का अर्पण करते हैं। जो इसे जानता है, वह इनका नित पाठ करता है और देवताओं को वसा से संतुष्ट करता है और वे.... आदि (पूर्वोक्तानुसार) 8. विहित और वैज्ञानिक लेख, संवाद, परंपराएं, कथाएं, मंत्र और स्रोत्र देवताओं को शहद की आहुतियां हैं। जो इसे जानता है और नित्य इनका पाठ करता है, वह देवताओं को शहद की आहुति देता है और वे....आदि (पूर्वोक्तानुसार) 9. इन वैदिक आहुतियों के लिए चार वषट्कार हैं, जब हवा चले, बिजली चमके, बादल गरजें, वृक्षादि गिरें तो जो व्यक्ति जानता है, यह इन्हें क्रम से पढ़े। यह पाठ अनवरत करते रहना चाहिए।[2] जो ऐसा करता है, वह एक ही बार मृत्यु को प्राप्त होता है और ब्रह्म में लीन हो जाता है। यदि वह ओजपूर्वक न भी पढ़ पाए, तो भी उसे देवताओं से संबद्ध अंश का पाठ करना चाहिए। इस प्रकार वह अपने जीवित प्राणियों से वंचित नहीं होगा।"

9.5, 7,1: "अब वैदिक साहित्य के अध्ययन का गुणगान आता है। जो अध्ययन-अध्यापन प्रिय है, ऐसा कार्य करने वाला व्यक्ति धैर्यवान होता है, किसी के अधीन नहीं होता। उसके मनोरथ प्रतिदिन सफल होते हैं। उसे सुख की नींद आती है, वह अपना वैद्य स्वयं है। अपने मन पर नियंत्रण रखता है, उसका चित्त स्थिर रहता है, यश और बुद्धि बढ़ती है, मानवजाति को शिक्षित करने की क्षमता रखता है। इस प्रकार शिक्षित पुरुष ब्राह्मण है। वह चार अधिकारों का पात्र है। आदर, दक्षिणा, दमन से मुक्ति और वध के भय से मुक्ति। 2. दोनों लोकों में जो श्रेष्ठ जाने जाते हैं, उसमें वेदों का अध्ययन सर्वोच्च है, जो इसको जानकर अध्ययन करता है। इस प्रकार इनका अध्ययन करते रहना चाहिए। 3. जब कोई व्यक्ति वैदिक मंत्रों का अध्ययन करता है, वह संपूर्ण यज्ञ करता है अर्थात् जो भी

---

1. अथर्व संहिता इस तरह कही जाती है।

2. देखें बोटलिंग्क और रोथ के शब्दकोश, एस.वी. छाम्बर।

उसे जाने वैसे अध्ययन करे आदि-आदि। 4. और ऐसा व्यक्ति भी जो उबटन से सुगंधित हो, रत्नाभूषित हो, भोजन से तृप्त हो और सुख-शय्या पर आसीन हो, वेदों का अध्ययन करता है तो वह सर्वांग तप करता है,[1] यह जानते हुए अध्ययन करता है उसे आदि। 5. ऋग्वेद की ऋचाएं मधु हैं, सामवेद की घी, यजुस की अमृत, जब कोई वाको-वाक्य (संवाद) और पौराणिक आख्यान पढ़ता है तो वे दोनों क्रमशः उबले दूध और पके मांस की आहुतियों के समान हैं। 6. जो यह जानकर नित्य ऋग्वेद के मंत्र पढ़ता है, यह देवताओं को मधु से संतुष्ट करता है और वे प्रसन्न होकर उसके सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं। 7. और जो यह जानकर नित्य साम मंत्र पढ़ता है, वह देवताओं को घी से संतुष्ट करता है और वे संतुष्ट होकर (यथोपरि) 8. जो यह जानकर नित्य यजुस् मंत्र पढ़ता है, वह देवताओं को अमृत से संतुष्ट करता है और (यथोपरि) 9. जो यह जानकर नित्य वाकोवाक्य और प्राचीन कथाओं का अध्ययन करता है, वह देवताओं को दूध और मांस की आहुतियों से संतुष्ट करता है और वे (यथोपरि) 10. पानी बहता है, सूर्य और चंद्रमा घूमते हैं, नक्षत्र घूमते हैं। यदि किसी दिन ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करता, वह दिन उसके लिए ऐसा ही है जैसे घूमने वाले ये तत्त्व स्थिर हो गए हों। इसलिए यह अध्ययन आवश्यक है। कोई व्यक्ति जब ऋग्वेद, सामवेद अथवा यजुस् की आहुति दे रहा हो अथवा किसी गाथा या काव्य का पाठ कर रहा हो, तो इस बीच उसे टोका न जाए।"

मनु ने शतपथ ब्राह्मण की पुष्टि करते हुए कहा है–

"वेद पितरों की, देवताओं की, और पुरुषों की दिव्य आंखें हैं, ये मानव की शक्ति और समझ के बाहर हैं; यह एक निश्चित निष्कर्ष है, जो परंपराएं वेद विहीन हैं और जो सभी विधर्मी मत हैं, वे परलोक में वृथा हैं क्योंकि उनका आधार ही अंधकार है। वेदों की परिधि के बाहर अन्य ग्रंथ उभरते हैं और नष्ट हो जाते हैं। सभी निर्मूल्य हैं और झूठे हैं। चार वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम जैसे थे, वैसे हैं और आगे भी वैसे ही रहेंगे। ये वेद वर्णित हैं। जिन पदार्थों में स्पर्श, स्वाद, ध्वनि, रूप और गंध हैं, इन सबका ज्ञान वेदों में है। उनकी उत्पत्ति गुण, लक्षण और कर्म भी हैं। शाश्वत वेद

---

1. प्रो. वेबर ने यह वाक्य दूसरी प्रकार से लिखा है, इण्डि स्टड 10, पृ. 112, जैसे; वह (पवित्र अग्नि से) सर्वांग जलाता है। इसी संबंध में आगे कहा गया है कि नक मौद्गल्य ने तैत्तिरीय आरण्यक में कहा है, स्वाध्यायप्रवचने एव तद् हि तपः। आरण्यक 7,8 में कहा गया है कि अध्ययन और अध्यापन साथ-साथ चलना चाहिए जैसे आध्यात्मिक कर्म-कांड यथा सत्यम तप, दम, साम, अग्नि होत्र, यज्ञ आदि, देखें इण्डि स्टड 2, 214 और 10, 113

चराचर के रक्षक हैं। इसलिए मेरे विचार में वह इस जगत, मानव सेवा के निर्देश, राजकीय अधिकार, न्याय प्रक्रिया, और विश्व-सत्ता का मुख्य तत्त्व हैं। बस वही सुपात्र है, जो वेदों को जानता है। जैसे शक्ति पाकर अग्नि हरे वृक्षों तक को जला देती है, इसी प्रकार वेद-ज्ञाता अपनी आत्मा के दोषों को पचा लेता है, जो उसके कार्यों से जन्में हों। जो वेदों का मूल तत्त्व जानता है, वह जीवन के किसी भी मोड़ पर क्यों न हो, ब्रह्मलीन होने को अग्रसर है, इहलोक में भी उसके लिए यह संभव है।"

फिर भी, मनु को संतोष नहीं है। वह और आगे बढ़ जाते हैं और नए सिद्धांत का प्रतिपादन करते हैं–

> श्रुति का अर्थ है–वेद, स्मृति का अर्थ है–विधान, उनके विषय को किसी तर्क से चुनौती नहीं दी जा सकती, क्योंकि इनसे कर्तव्य-बोध होता है। जो ब्राह्मण बौद्धिक लेखों पर विश्वास रखते हैं, वे ज्ञान के इन दो प्राथमिक स्रोतों की अवमानना करते हैं।[1] गुणीजन उन्हें वेदों के प्रति संशयवादी और विद्रोही जानकर उनका बहिष्कार कर दें। 13. जो कर्तव्य ज्ञान चाहते हैं, उनके लिए श्रुति सर्वश्रेष्ठ स्रोत है।"

1. *इसे 12, 106 के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसमें लिखा गया है : आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः। सो धर्मं वेद नापरः। वही केवल वही कर्तव्य बोध से परिचित हैं जो ऋषियों का अनुगमन करते हैं, तर्क द्वारा जो वेद विरुद्ध नहीं हैं।*

भाग-2

सामाजिक

सोलहवीं पहेली

चातुर्वर्ण्य : क्या ब्राह्मणों को अपनी उत्पत्ति का सही ज्ञान है?

प्रत्येक हिंदू का यह मूल विश्वास है कि हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था दैवीय है। इस दैवीय व्यवस्था के तीन आधार हैं। पहला, समाज चार वर्णों में विभक्त है–1. ब्राह्मण, 2. क्षत्रिय, 3. वैश्य, और 4. शूद्र। दूसरा, चारों वर्णों की स्थिति एक-दूसरे से जुड़ी है। उसमें श्रेणीगत असमानता है। ब्राह्मणों का स्थान सबसे ऊपर है। क्षत्रिय ब्राह्मणों के नीचे हैं, लेकिन वैश्यों और शूद्रों से ऊपर हैं। वैश्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों से नीचे हैं, लेकिन शूद्रों से ऊपर है। शूद्र सबसे नीचे हैं। तीसरा, चारों वर्णों का व्यवसाय निश्चित है। ब्राह्मणों का व्यवसाय अध्ययन-अध्यापन है। क्षत्रियों का कार्य लड़ना है। वैश्यों का कार्य व्यापार है और शूद्रों का शारीरिक श्रम से तीनों वर्णों की सेवा करना है। यह हिंदुओं की वर्ण-व्यवस्था कहलाती है। यह हिंदू धर्म की आत्मा है। वर्ण-व्यवस्था को छोड़कर हिंदुओं में ऐसा कुछ नहीं है, जिसमें वे अन्य धर्मों से भिन्न हों। इस तरह यह विवेचन जरूरी हो जाता है कि वर्ण-व्यवस्था कैसे बनी।

इसकी उत्पत्ति की व्याख्या के लिए हमें हिंदुओं के प्राचीन शास्त्रों का मंथन करना होगा कि वे इस विषय में क्या कहते हैं।

I

यह अच्छा होगा कि सबसे पहले वेदों में व्यक्त विचारों को देखा जाए।

इस विषय पर ऋग्वेद के दसवें मंडल के 90वें सूक्त में इस प्रकार कहा गया है–

1. विराट पुरुष के हजार शीर्ष, हजार आंखें और हजार चरण हैं, वह धरती को चारों ओर से घेरकर उससे दस अंगुल ऊपर स्थित है।
2. जो कुछ हो चुका है अथवा होने वाला है, वह सब विराट पुरुष ही है, वह अमृत का स्वामी है, क्योंकि वह कारण अवस्था छोड़कर जगत अवस्था को धारण करता है, इस प्रकार प्राणी उसको भोगते हैं।
3. यह सारा ब्रह्मांड विराट पुरुष की महिमा है। वे स्वयं इससे बड़े हैं। सभी प्राणी उसके चौथाई अंश हैं। इनके तीन अमृत अंश दिव्यलोक में रहते हैं।

4. तीन चरणों वाले विराट पुरुष ऊपर उठे, उनका केवल एक चरण यहां स्थित रहा। इसके पश्चात वे भोजन करने वाली एवं भोजन न करने वाली वस्तुओं के रूप में व्याप्त हुए।
5. उस आदि पुरुष से ब्रह्मांडरूपी विराट उत्पन्न हुआ। ब्रह्मांडरूपी विराट से अनेक पुरुष उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने के पश्चात वह ब्रह्मांड से बड़ा हुआ। इसके बाद उसने भूमि बनाई और भूमि से जीवों का शरीर बनाया।
6. जब पुरुषरूप काल्पनिक हवि से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, उस समय वसंत ऋतु को घी, ग्रीष्म को काष्ठ तथा शरद ऋतु को हवि बनाया।
7. सारी सृष्टि से पहले उत्पन्न पुरुष को यज्ञसाधन के रूप में बलिपशु बनाकर देवों ने काल्पनिक यज्ञ किया। इस साधन में देवों, साध्यों और ऋषियों ने यज्ञ किया।
8. जिस काल्पनिक यज्ञ में उस सर्वात्मक पुरुष का हवन किया जाता है, उससे दही से मिला हुआ घी उत्पन्न हुआ। उसी से वायुदेव से संबंधित जंगली और ग्रामीण पशु भी उत्पन्न हुए।
9. उस सर्वात्मक पुरुष के काल्पनिक होम वाले यज्ञ से ऋक् और साम उत्पन्न हुए। उसी से छंद उत्पन्न हुए और यजु की उत्पत्ति हुई।
10. उसी यज्ञ से घोड़े उत्पन्न हुए, जिनके मुंह में ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत थे। उसी से गायें, बकरियां और भेड़ें उत्पन्न हुईं।
11. प्रजापति के प्राणिरूप देवों ने जब विराट पुरुष को संकल्प से उत्पन्न किया, तब उन्हें कितने प्रकार से उत्पन्न किया? उनका मुख, भुजाएं, हृदय और चरण कौन से कहलाते हैं?
12. ब्राह्मण इनका मुख हुआ। क्षत्रिय को भुजाएं बनाया गया। इनकी दोनों जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।
13. पुरुष के मन से चंद्रमा, आंखों से सूर्य, मुख से इंद्र व अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए।
14. पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, शीश से द्योलोक, चरणों से भूमि व कान से दिशाएं और लोक उत्पन्न हुए।
15. देवों ने जिस समय काल्पनिक यज्ञ का विस्तार करते हुए विराट पशु को बलि पशु के रूप में बांधा, उस समय यज्ञ की सात परिधियां और इक्कीस समिधाएं बनाई गईं।
16. देवों ने मानसिक यज्ञ के द्वारा भौतिक यज्ञ विस्तृत किया, उससे सभी विकारों को धारण करने वाले धर्म सबसे पहले उत्पन्न हुए। जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य एवं देव हैं, उसे उपासक महापुरुष प्राप्त करते हैं।"

इस मंत्र-वृंद का सर्वविदित नाम "पुरुष सूक्त" है और यह जाति और वर्ण-व्यवस्था का शास्त्रीय सिद्धांत माना जाता है।

अन्य वेद इस सिद्धांत की कहां तक पुष्टि करते हैं?

सामवेद के मंत्रों में पुरुष सूक्त सम्मिलित नहीं किया गया, न इसमें वर्ण-व्यवस्था की कोई अन्य व्याख्या की है।

यजुर्वेद की दो शाखाएं हैं, 'श्वेत' और 'कृष्ण'।

कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताएं (मंत्रों का संग्रह) हैं। ये हैं—कठ संहिता, मैत्रायणी संहिता और तैत्तिरीय संहिता।

श्वेत यजुर्वेद में मात्र एक संहिता है—वाजसनेयी संहिता।

कृष्ण यजुर्वेद की मैत्रायणी और कठ संहिताओं में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का कोई संदर्भ नहीं है, न उसमें वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का मूल बताने का कोई प्रयास है।

कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता और श्वेत यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में वर्ण-व्यवस्था के संबंध में कुछ संकेत हैं।

वाजसनेयी संहिता में वर्ण-व्यवस्था के आरंभ के संबंध में केवल एक प्रसंग है। दूसरी ओर तैत्तिरीय संहिता में दो प्रसंग हैं। इन दोनों प्रसंगों के संदर्भ में दो बातें उल्लेखनीय हैं। पहली यह कि इन दोनों में थोड़ी-सी भी समानता नहीं है। वे आपस में एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। दूसरी यह कि एक संहिता में श्वेत यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता से पूर्णतः साम्य है। तैत्तिरीय संहिता का मूल पाठ निम्न प्रकार से है, जिसे स्वतंत्र व्याख्या कहा जा सकता है—

> "वह (व्रात्य) भावावेश से भर उठा तब राजन्य प्रकट हुआ।"
>
> "जिसके घर यह व्रात्य अतिथि रूप में आता है, उसे वह (राजा) स्वयं से श्रेष्ठ जानकर उसका सम्मान करें। ऐसा करके वह राजपद अथवा अपनी सत्ता पर आघात नहीं करता। उससे ब्राह्मण प्रकट हुआ और क्षत्रिय भी। उन्होंने कहा, 'हम किस में प्रवेश करें आदि'।"

वाजसनेयी संहिता में मिलने वाली व्याख्या जो तैत्तिरीय संहिता[1] से साम्य रखती है, इस प्रकार है—

> "उसने एक के साथ स्तुति की। प्राणी बने, प्रजापति राजा थे। उन्होंने तीन के साथ स्तुति की, ब्राह्मण की रचना हुई। ब्रह्मणस्पति शासक थे। उन्होंने पांच के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ उत्पन्न हुए। ब्रह्मणस्पति शासक थे। उन्होंने सात के साथ स्तुति की, सात ऋषिगण उत्पन्न हुए। धातृ शासक थे। उन्होंने नौ के

1. खंड 4, प्रपाठक 3, श्लोक 10

साथ स्तुति की, पितृ उत्पन्न हुए। अदिति स्वामी थे। उन्होंने ग्यारह के साथ स्तुति की, ऋतुएं उत्पन्न हुईं। आर्तव स्वामी थे। उन्होंने तेरह के साथ स्तुति की, मास उत्पन्न हुए। वर्ष राजा था। उन्होंने पन्द्रह के साथ स्तुति की, क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। इंद्र राजा थे। उन्होंने सत्रह के साथ स्तुति की, पशु उत्पन्न हुए। बृहस्पति राजा थे। उन्होंने उन्नीस के साथ स्तुति की, शूद्र और अर्य (वैश्य) उत्पन्न हुए। दिवस और रात्रि शासक थे। उन्होंने इक्कीस के साथ स्तुति की, अविभाजित खुरधारी पशु उत्पन्न हुए। वरुण राजा थे। उन्होंने तेईस के साथ स्तुति की, लघु पशु उत्पन्न हुए। पूषन् राजा थे। उन्होंने पच्चीस के साथ स्तुति की, वन्य जीव उत्पन्न हुए। वायु राजा थे। (ऋ.वे.10.90,8) उन्होंने सत्ताईस के साथ स्तुति की, धरती और स्वर्ग विलग हुए। वसु, रुद्र और आदित्य उनसे विलग हो गए, वे राजा थे। उन्होंने उन्तीस के साथ स्तुति की, वृक्ष उत्पन्न हुए। सोम राजा थे। उन्होंने इकत्तीस के साथ स्तुति की, प्राणी उत्पन्न हुए। मास के पक्ष राजा थे। उन्होंने इकत्तीस के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ शांत हो गए। प्रजापति परमेष्ठी राजा थे।"

यहां यह उल्लेखनीय है कि न केवल ऋग्वेद और यजुर्वेद में ही असमानता है, बल्कि यजुर्वेद की दोनों संहिताओं में भी, वर्णों की उत्पत्ति जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर आपस में विषमता है।

अब हम अथर्ववेद पर आते हैं। इसमें भी दो व्याख्याएं हैं। उसमें पुरुष सूक्त सम्मिलित है, यद्यपि, जिस क्रम में ऋग्वेद के मंत्र हैं, वह वैसा क्रम नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अथर्ववेद पुरुष सूक्त से संतुष्ट नहीं है। इसकी अलग व्याख्या भी है। एक व्याख्या निम्नलिखित[1] है–

"सर्वप्रथम ब्रह्मन् उत्पन्न हुआ। उसके दस सिर और दस मुख थे। उसने सर्वप्रथम सोमपान किया, उसने विष को प्रभावहीन किया।

"देवता राजन्य से भयभीत थे, जब वह गर्भ में था। उन्होंने उसे बंधन 'ग्रस्त कर दिया जब वह गर्भ में था। परिणामस्वरूप, वह राजन्य बंधनयुक्त उत्पन्न हुआ। यदि वह अजन्मा बंधनमुक्त होता तो वह अपने शत्रुओं का वध करता। जो कोई अन्य चाहे कि वह राजन्य बंधनमुक्त उत्पन्न हो और अपने शत्रुओं का हनन करता रहे तो उसे वे ऐन्द्र-बृहस्पत्य आहुतियां दें। राजन्य के लक्षण इंद्र जैसे हैं और ब्रह्मन् बृहस्पति है। ब्रह्मन् के माध्यम से ही कोई राजन्य को बंधनमुक्त कर सकता है। स्वर्णबंध, एक उपहार स्पष्ट रूप से उसे बंधन से मुक्त करता है।"

एक अन्य व्याख्या उन व्यक्तियों का उल्लेख करती है, जो मनु की संतति है। उनका निम्नांकित उद्धरण[2] में उल्लेख है–

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृष्ठ 21-22*
2. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृष्ठ 162-65*

"प्रार्थनाएं और मंत्र पहले इंद्र की उपासना में उस उत्सव में संकलित हुए जिसे अथर्वन्, पिता मनु, और दधीचि ने सुशोभित किया।" "हे रुद्र! यज्ञ से पिता मनु ने जो संपदा अथवा सहायता ग्रहण की, तेरे निर्देश में हमें वही सब प्राप्त हो।"

"आपके वे पवित्र उपचार, हे मरुत! वे जो बहुत मांगलिक हैं, हे शक्तिशाली देव। वे जो बहुत लाभप्रद हैं, जिनको हमारे पिता मनु ने पसंद किया है, रुद्र के वे वरदान और सहायता, हमें प्राप्त हों।"

"जो प्राचीन मित्र दैवी शक्ति से संपन्न था। पिता मनु ने उसके प्रति देवों की सफलता के प्रवेश द्वार की भांति मंत्र रचे थे।"

"यज्ञ मनु हैं, हमारे पालक पिता"

"देवो, तुमने हमें उत्पन्न किया, पोषित किया और हमारे प्रति अनुग्रह किया; हमें पिता मनु के मार्ग से विचलित न करो।"

"वह (अग्नि) जो मनु की संतति के बीच देवताओं के उद्बोधक स्वरूप निवास करता है, वह इनका भी स्वामी है।"

"अग्नि, देवताओं सहित और मनु की संतान सहित मंत्रोच्चारण से विविध यज्ञ कर रहे हैं, आदि। तुम देवों, वाज और ऋभुक्षणू जैसे देवों को प्रसन्न करते हो। मानुष की संतति के बीच शुभ दिन देवताओं के मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ।"

"मानुष-जन ने यज्ञ में अग्नि उद्बोधक की स्तुति की।"

"मनुष्यों के स्वामी अग्नि ने जब भी कृतज्ञ मानुष-जन के आवास को प्रदीप्त किया, उसने राक्षस जन को मार भगाया।"

इस संदर्भ में स्थिति के निरूपण के लिए एक क्षण रुक कर विचार करते हुए यह बात बिलकुल स्पष्ट होती है कि चार वर्णों की उत्पत्ति के विषय में वेदों में कोई सर्वसम्मति नहीं है। किसी अन्य वेद ने ऋग्वेद की पुष्टि नहीं की है कि ब्राह्मण प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुए, क्षत्रिय भुजाओं से, वैश्य जंघाओं से और शूद्र पैरों से।

II

अब हम ब्राह्मण साहित्य पर आते हैं और देखते हैं कि इस बारे में वे क्या कहते हैं? शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या इस प्रकार है–[1]

"प्रजापति ने "भूः" जपते हुए यह पृथ्वी बनाई, "भुवः" के साथ वायु बनाई, "स्वाहा" के साथ आकाश बनाया। ब्रह्मांड का इस संसार से सह-अस्तित्व है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। "भूः" कहकर प्रजापति ने ब्राह्मण उत्पन्न किया, "भुवः" से क्षत्रिय, "स्वाहा" से विश् बनाया। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। "भूः" कहकर

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 17

प्रजापति ने स्वयं को उत्पन्न किया, भुवः कहकर संतति रची। "स्वाहा" से पशु उत्पन्न किए। यह विश्व स्व, संतति और पशु है, अग्नि सर्वत्र व्याप्त है।"

शतपथ ब्राह्मण की एक अन्य व्याख्या[1] है। यह निम्नांकित है—

"(भाष्यकार के अनुसार) यहां ब्रह्म अग्नि रूप में विद्यमान थे। जिसमें ब्राह्मण वर्ण का रूप है। पहले यह एकमात्र (ब्रह्मांड) थे। एक रहते उनकी वृद्धि नहीं हुई। उन्होंने शक्ति से एक श्रेष्ठ क्षत्र उत्पन्न किया अर्थात् देवताओं में वे जिनमें शक्ति है (क्षत्राणि), इंद्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु, ईशान। इस प्रकार क्षत्र से श्रेष्ठ कोई नहीं। इसलिए ब्राह्मण राजसूय यज्ञ में क्षत्रिय से नीचे बैठते हैं। वह क्षत्रिय की गरिमा स्वीकार करता है। ब्रह्म से क्षत्रिय की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार, यद्यपि राजा की श्रेष्ठता है अंत में वह उद्गम हेतु ब्रह्म के आश्रय में जाता है। वह अति दयनीय बन जाता है। उसी के समान जिसकी श्रेष्ठता आहत होती है। 24. उसका विस्तार नहीं हुआ। उसने विश् उत्पन्न किया, देवताओं की इस श्रेणी में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, मारुत आते हैं। 25. उसकी वृद्धि नहीं हुई। उसने शूद्र-वर्ण पूषन् उत्पन्न किया। यह पृथ्वी पूषन् है। सो वह सभी का पोषण करती है। 26. उसकी वृद्धि नहीं हुई, उसने शक्ति से एक विलक्षण रूप उत्पन्न किया, न्याय (धर्म)। यह शासक है (क्षत्र) अर्थात् न्याय। इस प्रकार न्याय से श्रेष्ठ कुछ नहीं। इसलिए निर्बलों को न्याय के माध्यम से सशक्तों से त्राण मिलता है, जैसे एक राजा से। यह न्याय सत्य है। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति के विषय में, वे कहते हैं—"यह सत्य बोलता है, क्योंकि उसमें दोनों गुण हैं।" 27. ये ब्रह्म, क्षत्र, विश् और शूद्र हैं। अग्नि के माध्यम से देवताओं में वह ब्रह्म बन जाता है, मनुष्यों में ब्राह्मण। (दैवी) क्षत्रिय के माध्यम से (मनुष्य) क्षत्रिय, (दैवी) वैश्य से (मनुष्य) वैश्य, (दैवी), दैवी शूद्र के माध्यम से एक (मनुष्य) शूद्र बनता है। अब वह देवों में अग्नि और मनुष्यों में ब्राह्मण है, और वे वास के इच्छुक हैं।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण में तीन व्याख्याएं हैं। प्रथम इस प्रकार है—[2]

यह समस्त (ब्रह्मांड) ब्रह्म द्वारा रचित है। मनुष्य कहते हैं कि वैश्य ऋचाओं से बना है। वे कहते हैं यजुर्वेद के गर्भ से क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। सामवेद से ब्राह्मण प्रकट हुआ। ब्रह शब्द प्राचीनों ने प्राचीनों को कहा था।

दूसरी व्याख्या कहती है—[3]

"ब्राह्मण वर्ण देवों से प्रकट हुआ, शूद्र असुरों से"

---

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 20

2. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 17

3. वही, पृ.21

तीसरी व्याख्या इस प्रकार है–[1]

"वह शुष्क भोजन से स्वेच्छा से दुग्ध की आहुति दे। शूद्र दुग्ध की आहुति न दे, क्योंकि शूद्र (असत्) से जन्मा है। वे कहते हैं कि जब शूद्र दूध चढ़ाता है, तो वह आहुति नहीं होती। शूद्र अग्निहोत्र में दूध से आहुति न दे, क्योंकि वे इसे शुद्ध नहीं करते। जब उसे छान लिया जाए, तब वह आहुति है।"

इन ब्राह्मण ग्रंथों के साक्ष्य को देखें; वे पुरुष सूक्त का कहां तक अनुमोदन करते हैं? उनमें से कोई भी नहीं करता।

III

अगली बात यह देखनी है कि वर्ण-व्यवस्था के संबंध में स्मृतियों की क्या व्याख्या है। उसका ज्ञान आवश्यक है। मनु ने इस संबंध में कहा है[2]–

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ 8 ॥

अर्थ : उस (परमात्मा) ने अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से ध्यान करके अपने शरीर से पहले जल को उत्पन्न किया और उस (जल) में (शक्तिरूप) बीज डाला।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ 9 ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ 10 ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ 11 ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥ 12 ॥

अर्थ : वह (बीज) सूर्य के समान कान्ति वाला सुवर्ण का अंडा हो गया और उसमें सब लोकों का कर्ता ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुआ। (9) जल को 'नार' कहते हैं क्योंकि जल नर (रूप परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है। वही जल इस परमात्मा का प्रथम वासस्थान है। इस कारण परमात्मा 'नारायण' कहा गया है। (10) लोक और वेद में प्रसिद्ध, अव्यक्त (अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों से ग्रहण के अयोग्य) नित्य, और सत् असत् का आत्मा ऐसा, कारण से उत्पन्न हुआ वह पुरुष "ब्रह्मा" नाम से संसार में विख्यात है। (11) उस भगवान ने, अंडे में एक वर्ष तक रहकर आप ही अपने ध्यान से उसके दो टुकड़े कर दिए। (12)

---

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ.21
2. वही, पृ.36-7

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ 31 ॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ 32 ॥

अर्थ : *ब्रह्मा ने लोकों की वृद्धि के लिए मुख, बाहु, जंघा और चरण से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को क्रम से बनाया। (31) वह प्रभु (ब्रह्मा) अपने देह के दो खंड करके आधे से पुरुष और आधे से स्त्री हो गया और उसने स्त्री में विराट् पुरुष को उत्पन्न किया। (32)*

तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ 33 ॥

अर्थ : *हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस विराट् पुरुष ने तप करके जिसको उत्पन्न किया, ऐसा इस सब जगत का रचने वाला मुझे जानो।*

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ 34 ॥

अर्थ : *मैंने प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा से बड़ा कठिन तप करके पहले प्रजापति दश महर्षियों को उत्पन्न किया।*

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ 35 ॥

अर्थ : *(वे हैं) मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद।*

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः।
देवान्देवनिकायांश्च महर्षीश्चामितौजसः ॥ 36 ॥

अर्थ : *इन महातेजस्वी महर्षियों ने अन्य सात मनुओं को, देवताओं को तथा देवताओं के रहने के योग्य स्थानों को और बड़े तेजस्वी महर्षियों को उत्पन्न किया।*

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ 38 ॥

अर्थ : *बिजली, वज्र, मेघ, रोहित, (सीधे धनुष), और टेढ़े इन्द्रधनुष, उल्का, निर्घात (उत्पाद शब्द) केतु (पुच्छल तारे) तथा छोटे बड़े तारों को रचा।*

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान्।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ 39 ॥

अर्थ : *और किन्नर, वानर, मत्स्य और अनेक भांति के पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य, सर्प और दोनों ओर दांत वाले पशु—इनको पैदा किया।*

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम्।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ 40 ॥

अर्थ : कृमि, कीट, पतंग, जूं, मक्खी, खटमल, सब तरह के डांस और मच्छर तथा अनेक प्रकार के स्थावर (लता, वृक्ष आदि) को पैदा किया।

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ 41 ॥

अर्थ : इस भांति इस सारे स्थावर-जंगम को मेरी आज्ञा से इन महात्माओं ने तप के सहयोग से कर्म के अनुसार उत्पन्न किया।

मनु ने अपनी 'स्मृति' में उन आधारभूत कारणों के विषय में एक अन्य मत प्रकट किया है, जिनके परिणाम स्वरूप मनुष्यों को चार श्रेणियों[1] में विभाजित किया गया है—

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम्।
तत्तथा वोऽभिधास्यामि क्रमयोगं च जन्मनि ॥ 42 ॥

अर्थ : जिन प्राणियों का जैसा कर्म कहा गया है वह और किसका जन्म कैसे होता है, यह जन्म-क्रम-योग तुमसे कहूंगा।

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः।
रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥ 43 ॥

अर्थ : दोनों ओर दांत वाले पशु, मृग और हिंसक जंतु, राक्षस, पिशाच, मनुष्य ये सब जरायुज अर्थात् गर्भ से उत्पन्न होने वाले हैं।

अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः।
यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥ 44 ॥

अर्थ : पक्षी, सांप, मगर, मछली, कछुवा और इस प्रकार के जितने स्थलचर (छिपकली आदि) तथा जलचर (शंख सीप आदि) जीव हैं, वे सब अंडज हैं।

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्।
ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किंचिदीदृशम् ॥ 45 ॥

अर्थ : डांस, मच्छर, जूं, मक्खी और खटमल और जो इस प्रकार के जीव हैं, उनकी उत्पत्ति गरमी स्वेद (=पसीने) से होती है, इसलिए वे स्वेदज हैं।

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ॥ 46 ॥

अर्थ : जो स्थावर, बीज या डाल रोपने से उत्पन्न होते हैं वे उद्भिज्ज है और जिनमें बहुत फूल-फल होते हैं और फल पकने पर सूख जाते हैं, वे औषधि कहलाते हैं।

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, पृ. 41

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥ 47 ॥

अर्थ : जिनमें फूल के बिना ही फल लगते हैं वे वनस्पति कहे जाते हैं और जिनमें फूल और फल दोनों होते हैं, वे वृक्ष कहलाते हैं।

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः।
बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्ल्य एव च ॥ 48 ॥

अर्थ : विविध प्रकार के गुच्छ, गुल्म, भिन्न-भिन्न जाति के तृण, फैलने वाली लताएं (कद्दू, आदि), वल्ली (गुरुच आदि) बीजों और टहनियों से उत्पन्न होते हैं।

तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥ 49 ॥

अर्थ : पूर्व जन्मार्जित कर्म के कारण ये सब अत्यंत तमोगुण से घिरे रहते हैं। इनके भीतर चैतन्य रहता है और इन्हें सुख-दुख का अनुभव भी होता है।

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः।
घोरेऽस्मिन्भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥ 50 ॥

अर्थ : इस चराचरमय घोर अनित्य संसार में ब्रह्मा से लेकर यहां तक का उत्पत्ति-क्रम कहा गया।

मनु ऋग्वेद से सहमत हैं अतः उन दोनों के विचारों की तुलना करना व्यर्थ है। मनु में मौलिकता का अभाव है। वह ऋग्वेद का ही अनुगामी है।

IV

यह अच्छा रहेगा कि हम रामायण और महाभारत से इस मत की तुलना करें।

रामायण का कथन है कि चारों वर्ण, मनु की संतान हैं, दक्ष की पुत्री और कश्यप[1] की पत्नी से।

"राम के वचन सुनकर, उस पक्षी (जटायु) ने उन्हें अपने कुल के विषय में, स्वयं अपने विषय में, और समस्त प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में बताया, 'पूर्वकाल में जो-जो प्रजापति हो चुके हैं, उन सबके विषय में प्रारंभ से बताता हूं, सुनो। सर्वप्रथम कर्दम हुए, फिर विकृत, शेष, संश्रय, पराक्रमी बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, शक्तिशाली क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, फिर विवस्वत, अरिष्टनेमि, और अंत में तेजस्वी कश्यप हुए। प्रजापति दक्ष की साठ पुत्रियां थीं। इनमें से आठ सुंदर कन्याओं को कश्यप ने अपनी पत्नी बनाया। इनके नाम हैं अदिति, दिति, दनु, कालका,

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 116-117*

ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला। तब कश्यप ने प्रसन्न होकर इन कन्याओं से कहा, 'तुम मेरे समान पुत्रों को जन्म दोगी, जो तीनों लोकों के संरक्षक होंगे।' अदिति, दिति, दनु और कालका तो कश्यप की बात से सहमत हो गईं; किंतु अन्य सहमत नहीं हुईं। अदिति ने तैंतीस देवताओं को जन्म दिया—इनमें आदित्य, वसु, रुद्र और दो अश्विनी कुमार थे। कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के मनुष्यों को जन्म दिया। ब्राह्मणों का जन्म मुख से, क्षत्रियों का वक्ष से, वैश्यों का जंघाओं से, और शूद्रों का जन्म पैरों से हुआ। वेद यही कहते हैं। अनला से पवित्र फल वाले समस्त वृक्ष उत्पन्न हुए।"

महाभारत चार स्थानों पर चार भिन्न-भिन्न व्याख्याएं देता है। प्रथम इस प्रकार है—

"महान ऋषियों के समान तेजस्वी प्रचेता के दस पुत्र गुणी और पवित्र थे; और उनके मुखों से निकलती अग्नि पहले महिमावानों को भस्म कर चुकी थी। उनसे दक्ष प्राचेतस का जन्म हुआ; और दक्ष से इन प्राणियों का जन्म हुआ। वीरिणी के साथ सहवास करके मुनि दक्ष ने अपने समान एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया, जो अपने धार्मिक कृत्यों के लिए प्रख्यात थे। नारद ने उन्हें मोक्ष का सिद्धांत सिखाया और सांख्य का अनुपम ज्ञान दिया। संतानोत्पत्ति की इच्छा से, प्रजापति दक्ष ने तदुपरांत पचास पुत्रियों को उत्पन्न किया। इनमें से दस कन्याएं उन्होंने धर्म को दे दीं, तेरह कश्यप को, और सत्ताईस समय के नियंत्रक इंदु (सोम) को दीं...अपनी तेरह पत्नियों में सर्वश्रेष्ठ दक्षयानी से मारीचिपुत्र कश्यप ने आदित्यों को उत्पन्न किया, जिनके नेता इंद्र थे। इनके अतिरिक्त उन्होंने विवस्वत् को भी उत्पन्न किया, जिसका पुत्र शक्तिशाली यम वैवस्वत हुआ। मार्तंड (विवस्वत्, सूर्य) ने बुद्धिमान और शक्तिशाली पुत्र मनु और उसके छोटे भाई, प्रसिद्ध यम को उत्पन्न किया। इसका पुत्र मनु धर्मालु था, और वह एक वंश का संस्थापक हुआ। इसलिए मनुष्यों का यह परिवार मनु के वंश के रूप में जाना गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय और अन्य मनुष्यों की उत्पत्ति इसी मनु से हुई। इसी से, हे राजा, ब्राह्मण और क्षत्रिय उपजे।..."

यहां प्रतिपादित सिद्धांत ठीक वैसा ही है जैसा कि रामायण में है। फर्क बस इतना ही है कि महाभारत में मनु को चार वर्णों का पूर्वपुरुष (पुरखा) कहा गया है और दूसरे, इसमें यह नहीं कहा गया है कि चार वर्ण, मनु के चार अंगों से उत्पन्न हुए।

महाभारत की दूसरी व्याख्या[1] ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के समान ही है। वह इस प्रकार है—

1. *मूइर कृत ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1*

"राजा ऐसे व्यक्ति को राज-पुरोहित नियत करे जो दुष्टता का प्रतिरोधी हो। इस विषय में वे यह प्राचीन कथा सुनाते हैं, जिसमें इला पुत्र तरिश्वा (वायु) और पुरुरवा का संवाद सन्निहित है। पुरुरवा ने कहा–"तुम मुझे बताओ कि कब ब्राह्मण, कब अन्य तीन जातियां उत्पन्न हुईं और कब श्रेष्ठता (प्रथम की) स्थापित हुई? मातरिश्वा ने उत्तर दिया–"ब्राह्मण का जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ, उसकी भुजाओं से क्षत्रिय, उसकी जंघाओं से वैश्य जबकि इन तीन वर्णों की सेवा हेतु उसके चरणों से चतुर्थ वर्ण शूद्र उत्पन्न हुआ। जन्म से ही ब्राह्मण धर्मतत्त्व की रक्षार्थ धरती पर भूतजात का स्वामी बन गया। फिर स्रष्टा ने पृथ्वी का शासक क्षत्रिय उत्पन्न किया, प्रजा की संतुष्टि के लिए दंड धारण करने वाला द्वितीय यम और यह ब्रह्मा का आदेश था। इन तीन वर्णों को वैश्य धन-धान्य उपलब्ध कराएं और शूद्र सेवा करें।" तब इला पुत्र ने पूछा–"वायु! मुझे बताओ, अपनी धन-संपदा सहित यह पृथ्वी किस के अधिकार में है, ब्राह्मण के अथवा क्षत्रिय के?" वायु ने उत्तर दिया, "अपनी ज्येष्ठता के आधार पर पृथ्वी पर विद्यमान समस्त संपदा का स्वामी ब्राह्मण है, जो कर्तव्य-विधान में पारंगत है। ब्राह्मण जो खाता है, पहनता है, लुटाता है, वह सब उसी का है। वह सभी जातियों में श्रेष्ठ है। प्रथमजन्मा और सर्वश्रेष्ठ। जिस प्रकार कोई स्त्री अपना पति (पहला) छिन जाने पर अपने देवर, जेठ को दूसरा पति बना लेती है, उसी प्रकार विपत्ति में ब्राह्मण पहला आश्रय है और इसके बाद कोई और।"

महाभारत के शांति पर्व में तीसरी व्याख्या दी गई है–[1]

भृगु ने उत्तर दिया–इस प्रकार ब्रह्मा ने पहले अपनी शक्ति से प्रजापतियों के समान भव्य सूर्य और अग्नि को रचा। तब स्वामी ने सत्य, धर्मनिष्ठा, कठोर-भक्ति, सनातन वेद गुणकर्म, और स्वर्ग (प्राप्ति हेतु) की शुद्धता की सृष्टि की। उसने देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, असुर, महाराग, यक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मानव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्ण प्राणी रचे। ब्राह्मण का वर्ण (रंग) गौर, क्षत्रिय का लाल, वैश्य का पीत और शूद्र का काला बनाया। तब भारद्वाज ने प्रतिवाद किया 'यदि हर जाति का वर्ण (रंग) उसका परिचायक है तो इससे पहचान में भ्रांति होती है। लालसा, क्रोध, भय, लोभ, संताप, कुंठा, भूख, क्लांति, हम सब में समान हैं। तब जाति किस से निर्धारित होती है? स्वेद, मूत्र, मल, श्लेष्मा, पित्त और रक्त सब में समान हैं (सभी शारीरिक विकार हैं) तब जाति किस से निर्धारित होती हैं? अवर्णित चल और

1. *मूइर कृत ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड-1, पृ. 139-40*

अचल पदार्थ हैं, उनका वर्ण कैसे निर्धारित होता है? भृगु ने उत्तर दिया, "जातियों में कोई अंतर नहीं है।"

शांति पर्व में ही चौथी व्याख्या दी गई है। वह कहती है–

भारद्वाज ने फिर पूछा, "परमश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, मुझे बताएं वे क्या गुण हैं कि जिन से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बन जाता है?" भृगु कहते हैं, "जो शुद्ध हैं, प्रसव तथा अन्य संस्कारों से पवित्र हैं, जिसने वेदों का संपूर्ण अध्ययन किया है, जो संस्कारों को शुद्धतापूर्वक पूर्णता से अनुष्ठान संपन्न करते हैं, जो चढ़ावे से बचे पदार्थ ग्रहण करते हैं, अपने धर्म-गुरु से संबद्ध हैं, सदैव धर्मपरायण हैं और सत्य को समर्पित हैं, वे ब्राह्मण कहलाते हैं। जिसमें सत्य के दर्शन होते हैं, जिसमें सत्य, उदारता, अनाक्रामकता, उपकारिता, सादगी, धैर्य और कठोर भक्ति परिलक्षित होते हैं, वे ब्राह्मण हैं। जो राजपद के कर्तव्य का पालन करता है, जिसे वेदाध्ययन का व्यसन है और जो आदान-प्रदान से प्रसन्नता अनुभव करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है। वह जो लगनपूर्वक पशुपालन करता है, जिसको कृषि कार्यों में रुचि है, जो शुद्ध है और वेदों के अध्ययन में पारंगत है–वह वैश्य है। वह जो हर प्रकार के भोजन का व्यसनी है, सभी कार्य करता है, जो अस्वच्छ है, जिसने वेदों का परित्याग कर दिया है, जो पवित्र कर्म नहीं करता, परंपरा से शूद्र कहलाता है और यह (जो मैंने बताया) ये शूद्र के लक्षण हैं और ये ब्राह्मण में नहीं मिलते। (ऐसा) शूद्र, शूद्र ही रहेगा। जो ब्राह्मण (ऐसा करता है) ब्राह्मण नहीं होगा। वह शूद्र की श्रेणी में आ जाता है।

एक स्थान को छोड़कर महाभारत अन्यत्र वर्ण-व्यवस्था की ऋग्वैदिक उत्पत्ति का समर्थन नहीं करता है।

V

आइए, अब यह देखें कि वर्ण-व्यवस्था के संबंध में पुराण क्या कहते हैं?

हम विष्णु पुराण से आरंभ करते हैं। चार वर्णों की उत्पत्ति के बारे में विष्णु पुराण में तीन सिद्धांत हैं। एक में इसका संबंध मनु से जुड़ता है। विष्णु पुराण का मत है–

"ऐहिक अंड से पहले दिव्य ब्रह्मा हिरण्यगर्भ का, समस्त लोकों के शाश्वत जनक का, अस्तित्व था, जो ब्रह्मा का रूप और सार था, जो दिव्य विष्णु हैं; जो ऋक्, यजुस्, साम और अथर्ववेद के समान हैं। ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए; दक्ष की पुत्री अदिति थी; अदिति से विवस्वत् उत्पन्न हुए; और विवस्वत् से मनु उत्पन्न हुए। मनु के

पुत्रों का नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यंत, प्रांशु, नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र था।"

यह व्याख्या अपूर्ण है। इसमें मात्र क्षत्रिय और वैश्यों की उत्पत्ति बताई गई है। उसमें ब्राह्मण और शूद्र की उत्पत्ति की कोई व्याख्या नहीं है।

विष्णु पुराण में एक और भिन्न कथन है। उसके अनुसार–

"पुत्र की इच्छा से मनु ने मित्र और वरुण के निमित्त यज्ञ किया। किंतु होतृ पुरोहित की अनियमितता के कारण गलत आवाहन हो गया, जिससे इला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। फिर मित्र और वरुण की कृपा से वह मनु के लिए सुद्युम्न नामक पुत्र बन गई। किंतु ईश्वर (महादेव) के कोप से वह दोबारा कन्या बन गई, तो वह सोम (चंद्रमा) के पुत्र बुध के आश्रम के निकट विचरण करने लगी। वह उस पर मोहित हो गया और उसके साथ संसर्ग करने से उसे पुरुरवा नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उसके जन्म के पश्चात यज्ञ से; ऋक्, यजुस्, साम और अथर्ववेद से; समस्त वस्तुओं से, मन से, शून्य से बने देवता की, यज्ञ पुरुष की अनंत तेज वाले ऋषियों ने पूजा की, जिनकी इच्छा थी कि सुद्युम्न फिर से पुरुष बन जाए। इस देवता की कृपा से इला फिर से सुद्युम्न बन गई।"

"अत्रि जो ब्रह्मा के पुत्र और सोम (चंद्रमा) के पिता थे, को ब्रह्मा ने पौधों, ब्राह्मणों और नक्षत्रों का राजा नियुक्त किया था। राजसूय यज्ञ संपन्न करने के पश्चात, सोम अभिमान से उन्मत्त हो गया और वह देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को ले गया। यद्यपि ब्रह्मा, देवों और ऋषियों ने उससे बहुत कहा, किंतु सोम ने तारा को नहीं लौटाया। सोम का पक्ष उशना ने लिया जबकि अंगिरस् से शिक्षा प्राप्त करने वाले रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की। देवताओं और दैत्यों द्वारा समर्पित इन दोनों पक्षों के बीच भीषण संघर्ष हुआ। ब्रह्मा ने हस्तक्षेप करते हुए सोम को बाध्य किया कि वह बृहस्पति को उनकी पत्नी लौटा दे। किंतु इस बीच तारा गर्भवती हो गई और उसने बुध नामक पुत्र को जन्म दिया। जब उससे जोरदार आग्रह किया गया, तो उसने स्वीकार किया कि बुध का पिता सोम है। पुरुरवा[2] इसी बुध का पुत्र था जो मनु की पुत्री इला के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पुरुरवा[3] के छह पुत्र थे जिनमें सबसे बड़ा आयुस् था। आयुस् के पांच पुत्र थे–नहुष, क्षत्रवृद्ध, रंभ, रजि और अनेनस्।

क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुनूहोत्र था जिसके तीन पुत्र काश, लेश और गृत्समद थे। गृत्समद से शौनक उत्पन्न हुआ, जिसने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की शुरुआत की। काश का एक पुत्र काशिराज हुआ, जिसका पुत्र दीर्घतमस् था, जैसे दीर्घतमस् का पुत्र धन्वंतरि था।"

तीसरे कथन के अनुसार[1] वर्ण-व्यवस्था के जनक ब्रह्मा थे। वह इस प्रकार है–

मैत्रेय[2] कहते हैं–तुमने मुझे मानव-सृष्टि के संबंध में बताया; अब हे ब्राह्मण! मुझे विस्तार से बताओ कि ब्रह्मा ने इसकी सृष्टि किस प्रकार की। मुझे बताओ, उसने कैसे और किस गुण से वर्ण बनाए और ब्राह्मण तथा अन्य के कार्य कौन-कौन से हैं? पराशर ने उत्तर दिया–3. अपने विचार के अनुसार ब्रह्मा की कामना जगत-सृष्टि की हुई। जिनमें सत्त्व गुण होता है, वे उनके मुख से उत्पन्न हुए, 4. जिनमें रजोगुण होता है, वे उनके वक्ष से जन्मे, जिनमें रजोगुण और तमोगुण होता है, वे उनकी जंघाओं से जन्मे। 5. अन्य उनके चरणों से उत्पन्न हुए जिनका मुख्य लक्षण था, तमोगुण। इससे वर्ण-व्यवस्था बनी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो क्रमशः मुख, वक्ष, जंघा और चरणों से बने हैं।"

विष्णु पुराण में ऋग्वैदिक सिद्धांत को सांख्य दर्शन का अनुमोदन प्राप्त है।

हरिवंश पुराण में दो सिद्धांत आते हैं। एक[3] के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति मनु की एक संतान से हुई–

गृत्समद का पुत्र शुनक था, उससे शौनक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।

"वितथ पांच पुत्रों के पिता थे। वे थे–सुहोत्र, सुहोतृ, गय, गर्ग और कपिल। सुहोत्र के दो पुत्र थे, काशक और राजा गृत्समति। उसके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे।"

दूसरे आख्यान के अनुसार वर्णों की उत्पत्ति विष्णु से हुई, जो ब्रह्मा से प्रकट हुए थे और प्रजापति दक्ष बन गए। यह इस प्रकार है–[4]

"जनमेजय[5] कहता है–"हे ब्राह्मण, मैंने ब्रह्मयुग (का वर्णन) सुना है जो आदि युग था। मेरी कामना है कि आप क्षत्रिय युग के विषय में सारगर्भित और विस्तार से अनेक प्रेक्षणों के आधार, यज्ञ के सोदाहरण उल्लेख का संपूर्ण विवरण दें। वैशंपायन ने उत्तर दिया, "मैं उस युग के विषय में बताता हूं जिसका यज्ञों के कारण आदर है और जो मुक्ति में अनेक कर्मों की विशिष्टता

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 61-62*
2. *विष्णु पुराण वार्तालाप के रूप में है, जिसमें शिष्य मैत्रेय प्रश्न पूछता है और ऋषि पराशर उसके प्रश्नों का उत्तर देते हैं।*
3. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 227*
4. *वही, पृ. 152-53*
5. *हरिवंश पुराण जनमेजय और वैशंपायन के बीच संवाद है।*

से संपन्न है, जिसका आदर तब के मनुष्यों के कारण किया जाता है। मुक्ति के लिए अबाध कर्म किए जाते थे। ब्रह्म के प्रति चित्त की एकाग्रता थी और संयम था। ब्राह्मणों के उद्देश्य महानतम थे। ब्राह्मण अपने व्यवहार से गौरवान्वित और मर्यादित थे। संयम का जीवन व्यतीत करते थे। ब्राह्मणों के अनुसार अनुशासन था, वे अपने कर्तव्य-पालन में त्रुटिहीन थे। उनका ज्ञान अथाह था। वे मननशील थे। तब सहस्रों युग व्यतीत होने पर ब्राह्मणों की सत्ता शिखर पर थी। तब ये मुनि इस विश्व के विलय में सम्मिलित हुए। ब्रह्मा से विष्णु प्रकट हुए जो इन्द्रिय ज्ञान से परे हो गए और ध्यानावस्थित हो गए। दक्ष प्रजापति बन गए और उन्होंने अनेक प्राणियों की सृष्टि की। ब्राह्मण को सौम्य (=प्रियदर्शन) और अक्षय बनाया गया। क्षत्रियों को नश्वर तत्त्वों से रचा। एकांतरण (परिवर्तन) से वैश्य बने और धूम्र परिष्करण से शूद्रों को बनाया गया। जब विष्णु वर्णों पर विचार कर रहे थे तो ब्राह्मण को गौर, लाल, पीत तथा नीले रंग से बनाया गया। इस प्रकार विश्व में मानव वर्णों में विभाजित हो गए। उनकी पहचान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में हुई। एक स्वरूप अनेक कार्य। दो पैरों पर चलने वाला अत्यंत आश्चर्यजनक शक्तिमान और अपने व्यवसाय में पारंगत। तीन उच्च वर्णों के संस्कारों का वेदों में निर्धारण हुआ। प्राणियों की योगावस्था से ब्रह्मा प्रकट हुए। विष्णु जैसी उसी ध्यानावस्था से भगवान प्राचेतस् (दक्ष) अर्थात् महान योगी विष्णु अपनी मेधा एवं ऊर्जा से ध्यानावस्था से कर्मक्षेत्र में उतरे। उन्मूलन से शूद्र उपजे; वे संस्कार रहित हैं। इस कारण वे शुद्धि संस्कारों में सम्मिलित नहीं हो सकते, न पवित्र ज्ञान से उनका संबंध है, वैसे ही जैसे धुंआ पैदा होता है और ईंधन के घर्षण से आग जलाते समय उसकी यज्ञ में कोई आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार धरती पर घूमने वाले शूद्र हैं। वे यज्ञ में किसी उपयोग के नहीं हैं। क्योंकि उनका जीवन शुद्धता से वंचित रखा गया है और वेदों में उन्हें यज्ञ आदि से रहित कहा गया है।"

भागवत पुराण[1] में भी वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या है। इसका कथन है—

"कई सहस्र वर्षों के उपरांत अपने कर्मों और प्राकृतिक गुणों से काल में विद्यमान जीवित आत्मा ने जल पर उतराते अंडे को जीवरूप प्रदान किया। फिर पुरुष ने उसका विखंडन कर उससे एक सहस्र जंघाएं, चरण, भुजाएं, चक्षु, मुख और शीर्ष प्रकट किए। विश्व व्यवस्थापक ने अपने सहयोगी ऋषियों के साथ विश्व की रचना की। उन्होंने अपनी कटि से सात अधोभुवन रचे और जघन् स्थल सात ऊर्ध्व भुवनों की रचना की। ब्राह्मण पुरुष का मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाओं

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 156

से उपजे और शूद्र उस देव पुरुष के चरणों से जन्मे। पृथ्वी उनके पैरों से बनी, वायु उनकी नाभि से। उनके हृदय से स्वर्ग और उनके वक्ष से महालोक बने।"

अब अंत में वायु पुराण को देखें कि यह क्या कहता है? इसके अनुसार वर्ण-व्यवस्था मनु ने रची।

> गृत्समद का पुत्र शुनक था। उससे शौनक जन्मा। उसी के परिवार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए; द्विज मानव विभिन्न कर्मों के साथ जन्मे।

VI

यह कैसी अव्यवस्था है? ब्राह्मण चार वर्णों की उत्पत्ति के विषय में एकरूपता और ठोस प्रमाण क्यों नहीं प्रस्तुत करते?

वर्णों की सृष्टि के विषय में कोई एकमत नहीं है। ऋग्वेद के अनुसार चार वर्ण प्रजापति ने बनाए। उसमें यह नहीं बताया गया कि कौन से प्रजापति ने। हम यह जानना चाहते हैं कि किस प्रजापति ने वर्ण बनाए, क्योंकि प्रजापति अनेक हैं। यह मान भी लें कि प्रजापति ने बनाए, तो भी सहमति नहीं है। एक का कहना है कि ब्रह्मा ने बनाए, दूसरे का मत है कश्यप ने, तीसरे का विचार है मनु ने बनाए।

इस विषय पर भी एक राय नहीं है कि स्रष्टा ने—चाहे वह जो भी रहा हो—कितने वर्ण बनाए। ऋग्वेद के अनुसार वर्ण चार थे। परंतु अन्य अधिकारी विद्वान कहते है केवल दो वर्ण बनाए गए। कुछ का विचार है कि ये दो ब्राह्मण और क्षत्रिय थे और कुछ मानते हैं कि ब्राह्मण और शूद्र थे।

वर्णों के आपसी संबंधों के विषय में, ऋग्वेद ने चारों वर्णों में एक के बाद एक असमानता का नियम निर्धारित किया है जो वर्ण विशेष के उद्‌गम अंग के महत्त्व के अनुसार श्रेष्ठ या हीन है। लेकिन श्वेत यजुर्वेद, ऋग्वेद के सिद्धांत से सहमत नहीं हैं। ऐसे ही उपनिषद्, रामायण, महाभारत और पुराण कहते हैं, किंतु हरिवंश पुराण विस्तार से बताता है कि शूद्र द्विज हैं, वायुपुराण का भी यही मत है।

ऐसा लगता है कि इस कुटिलता का कारण चातुर्वर्ण्य की कहानी को सनातन रूप देना है, जिसे ब्राह्मणों ने स्थापित परंपराओं के विपरीत ऋग्वेद से जोड़ दिया।

उद्देश्य क्या था? ब्राह्मणों का इस सिद्धांत गढ़ने के पीछे क्या प्रयोजन था?

सत्रहवीं पहेली

चार आश्रम—उनका कारण और परिणति

समाज का चार वर्णों में विभाजन ही हिंदू समाज की एकमात्र विशिष्टता नहीं है। आश्रम-धर्म एक और विशिष्टता है। फिर भी, इन दोनों में एक अंतर है। वर्ण-धर्म समाज के संगठन का सिद्धांत है। दूसरी ओर आश्रम व्यक्तिगत जीवन को विनियमित करने का सिद्धांत है।

आश्रम-धर्म के अनुसार व्यक्ति का निजी जीवन चार चरणों में विभाजित किया गया है—1. ब्रह्मचर्य आश्रम, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थ आश्रम, और 4. संन्यास आश्रम। ब्रह्मचर्य आश्रम का सरलार्थ और भावार्थ है—अविवाहित स्थिति। इसका भावार्थ है—गुरु के पास विद्याध्ययन करना। गृहस्थाश्रम का अर्थ है—वैवाहिक और पारिवारिक जीवन। संन्यास का तात्पर्य है—सांसारिकता का परित्याग। यह संसार से वीतराग की स्थिति है। वानप्रस्थ आश्रम दो—आश्रमों गृहस्थ और संन्यास—के बीच की स्थिति है। इसके अधीन वह समाज का अंग होकर भी समाज से दूर रहता है। इसके नाम के अनुरूप इसमें वन में रहना होता है।

हिंदुओं की मान्यता है कि समाज के कल्याण के लिए वर्ण-धर्म की भांति आश्रम-धर्म का पालन भी अनिवार्य है। वे दोनों को संयुक्त नाम देकर वर्णाश्रम-धर्म कहते हैं। ये दोनों मिलकर हिंदू समाज की कठोर मर्यादाएं निर्धारित करते हैं। इससे पूर्व कि हम इसके तात्पर्य, विशदस्वरूप और इसकी उत्पत्ति पर विचार करें, यह ठीक रहेगा कि हम आश्रम-धर्म को समझ लें। आश्रम-धर्म के दिग्दर्शन का सर्वोत्तम साधन मनुस्मृति है।

इस संदर्भ में मनुस्मृति से कुछ प्रासांगिक अंश प्रस्तुत हैं—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ 36 ॥

अर्थ : *ब्राह्मण का जनेऊ गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का गर्भ से ग्यारहवें में और वैश्य का गर्भ से बारहवें वर्ष में करें।*[1]

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ 168 ॥

---

1. मनुस्मृति, अध्याय 2, 36

अर्थ : जो ब्राह्मण वेद को न पढ़कर और दूसरे शास्त्रों में परिश्रम करता है, वह जीते जी कुटुंब सहित शीघ्र शूद्र हो जाता है।[1]

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ 1 ॥

अर्थ : ब्रह्मचारी को गुरु के पास तीनों वेदों का व्रत अर्थात् उनका अध्ययन 36 वर्ष तक वा 18 वर्ष तक वा 9 वर्ष तक वा ब्रह्मचर्य के अंत तक ही करना चाहिए।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ 2 ॥

अर्थ : जिसका ब्रह्मचर्य खंडित नहीं हुआ हो, ऐसा ब्रह्मचारी तीनों वेदों को वा दो वेदों को, वा एक वेद को क्रम से पढ़कर गृहस्थाश्रम में वास करे, अर्थात् अपना विवाह करे।[2]

"विद्यार्थी, गृहस्थ, एकांतवासी और तापस ये चार स्थितियां हैं। इन सबका उद्गम गृहस्थ है।"

"किंतु सभी (अथवा) कोई भी नियम, जिसका विधानानुकूल पालन किया गया हो, ब्राह्मण को उच्च स्थिति प्रदान करता है।"

"वैदिक नियमानुसार और स्मृति के अनुरूप गृहस्थ को उन सबमें श्रेष्ठ बताया गया है क्योंकि वह अन्य तीनों का सहायक है[3]।"

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।
द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत् ॥ 1 ॥

अर्थ : ब्राह्मण को चाहिए कि आयु के पहले चौथे भाग में गुरु के यहां रहकर अध्ययन करे और आयु के दूसरे भाग में स्त्री से विवाह कर घर में निवास करे।

अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः।
या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥ 2 ॥

अर्थ : ब्राह्मण को चाहिए कि प्राणियों के अद्रोह से अर्थात् जिसमें किसी प्राणी की कुछ हानि न हो अथवा थोडे द्रोह से अर्थात् जिसमें प्राणी की थोड़ी हानि हो ऐसी अपनी (शिलोञ्छ आदि) आजीविका करके अनापद (सामान्य) काल में जीवन बिताए।[4]"

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥ 33 ॥

---

1. *मनुस्मृति, अध्याय 2, 168*
2. *वही, अध्याय 3, 1-2*
3. *वही, अध्याय 4, 87-9*
4. *वही, अध्याय 4, 1-2*

अर्थ *: इस प्रकार आयु के तीसरे भाग को वनों में विहार करके बिताए और आयु के चतुर्थ भाग में विषयों को त्यागकर संन्यास आश्रम का ग्रहण करे।*

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ 34 ॥

अर्थ *: अग्निहोत्र करके और जितेन्द्रिय होकर और भिक्षा तथा बलिवैश्वदेव की पूर्ण सेवा करके और एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर (अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में जा करके) द्विज परलोक में वृद्धि पाता है अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है।*

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ 35 ॥

अर्थ : ऋषि, देव और पितृ इन तीनों के ऋण चुकाकर मोक्षसाधन में मन लगाना चाहिए, क्योंकि इनका ऋण बिना चुकाए मोक्ष के लिए यत्न करने से नरक प्राप्त होता है।

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ 36 ॥

अर्थ : विधिपूर्वक वेद पढ़कर, धर्मपूर्वक पुत्र उत्पन्न करके और शक्ति के अनुसार *यज्ञ करके मोक्ष में मन लगाना उचित है।*

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ 37 ॥

अर्थ *: द्विज यदि बिना वेद पढ़े, बिना संतान उत्पन्न किए और बिना यज्ञ किए ही मोक्ष की इच्छा करे, तो उसकी अधोगति होती है।*[1]

इन नियमों से यह स्पष्ट है कि मनु के अनुसार आश्रम-धर्म के तीन रूप हैं। पहला यह कि यह शूद्रों और महिलाओं के लिए नहीं है। दूसरा यह कि ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। ऐसे ही गृहस्थ आश्रम भी अनिवार्य है। वानप्रस्थ और संन्यास अनिवार्य नहीं हैं। तृतीय यह कि इनका निर्धारित क्रम से पालन किया जाए। पहले ब्रह्मचर्य, दूसरे गृहस्थ, तीसरे वानप्रस्थ और चौथे संन्यास। कोई एक को लांघकर दूसरे आश्रम में नहीं जा सकता।

व्यक्तिगत जीवन में जीवन की नियोजित अर्थ-व्यवस्था के लिए बताई जाने वाली इस आश्रम प्रणाली पर विहंगम दृष्टि डालें, तो कुछ सवाल खड़े होते हैं। वेदों के संदर्भ में आश्रमों का यह सिद्धांत अज्ञात है। वेदों में ब्रह्मचारी का उल्लेख है, परंतु ब्रह्मचर्य को जीवन का पहला और अनिवार्य सोपान बनाए जाने का कोई प्रसंग नहीं है। ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचर्य को अनिवार्य क्यों बनाया? आश्रम-धर्म के संबंध में यह पहली भ्रांति है।

---

1. मनुस्मृति, अध्याय 6, 33-37

दूसरा सवाल यह है कि मनु ने व्यक्ति के लिए एक ही क्रम में आश्रम प्रणाली क्यों रखी? इसमें संदेह नहीं रहा है कि एक समय ऐसा था, जब कोई ब्रह्मचारी तीनों में से कोई सा भी आश्रम अपना सकता था। वह गृहस्थ बन सकता था अथवा गृहस्थ बने बिना संन्यासी भी बन सकता था। यहां तुलना करें कि धर्म-सूत्र इस विषय में क्या कहते हैं?

वशिष्ठ धर्म-सूत्र[1] का मत है—

"चार सोपान हैं—विद्यार्थी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक।"

"जिस व्यक्ति ने एक, दो अथवा तीन वेदों का अध्ययन विद्यार्थी धर्म का उल्लंघन किए बिना किया है, वह जिस आश्रम में जीवन बिताना चाहे, बिता सकता है।"

गौतम धर्म-सूत्र[2] का मत है—

"कोई (बताता है कि) वह (जिसने वेदाध्ययन किया है) किसी भी आश्रम का चयन कर सकता है।"

"चार आश्रम हैं—विद्यार्थी, गृहस्थ, भिक्षु, वैखानस।"

धर्म-सूत्रों के विचार जानने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि एक समय था जब गृहस्थाश्रम वैकल्पिक था। ब्रह्मचर्य के बाद कोई व्यक्ति वानप्रस्थ अथवा संन्यास-आश्रम में प्रवेश कर सकता था। मनु ने विकल्प क्यों समाप्त किया और गृहस्थ को क्यों अनिवार्य बनाया? उन्होंने वानप्रस्थ से पूर्व गृहस्थ को और संन्यास से पूर्व वानप्रस्थ को अनिवार्य क्यों घोषित किया?

गृहस्थाश्रम के बाद जीवन के दो सोपान हैं, वानप्रस्थ और संन्यास। प्रश्न यह है कि मनु ने यह आवश्यक क्यों माना कि गृहस्थाश्रम के बाद दो आश्रम और रखे जाएं? संन्यास-आश्रम ही क्यों पर्याप्त नहीं? वानप्रस्थ और संन्यास-आश्रम के लिए निर्धारित नियम कुछ इतने समान हैं कि असमंजस होता है।

मनु ने वानप्रस्थ और संन्यास की जो तुलनात्मक संहिता बनाई है, उसकी सारणी निम्नवत् है—

वानप्रस्थ के लिए संहिता	संन्यासी के लिए संहिता
गांव के आहार (व्रीहियव आदि) को और (शय्या, सवारी आदि) सब सामग्री त्यागकर और स्त्री को पुत्रों के हाथ सौंपकर, व स्त्री को साथ लेकर, वन को जाए।। 6/3।।	प्रजापति यज्ञ समाप्त करके, सर्वस्व दक्षिणा देके, आत्मा में अग्नि को स्थापित करके ब्राह्मण अपने घर से निकल जाए और संन्यास आश्रम ग्रहण करे।। 6/38।।
अग्निहोत्र और घर तथा अग्नि की सामग्री	जो ब्राह्मण सब प्राणियों को अभयदान देकर और

1. अध्याय 7, श्लोक 1, 2, 3

2. वही, अध्याय 3, श्लोक 1 और 2

लेकर ग्राम से बाहर जितेन्द्रिय होकर वन में वास करे।। 6/4।।

अनेक प्रकार के (नीवार आदि) मुनियों के शुद्ध अन्नों से व शाकमूलफल से इन्हीं (पांच) महायज्ञों को विधिपूर्वक करे।। 6/5।।

मृग आदि का चर्म व पुराना वस्त्र धारण करे, प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करे, जटा, दाढ़ी आदि बालों और नखों को सदा धारण करे।। 6/6।।

जो खाने का पदार्थ हो उसमें से ही अपनी शक्ति के अनुसार बलि और भिक्षा दे और आश्रम में आए हुए अभ्यागतों का जल, मूल, फल की भिक्षा से सत्कार करे।। 6/7।।

द्विज को चाहिए कि वेद-पाठ में लगा रहे, सर्दी गर्मी आदि को सहे, सबका उपकार करे, मन को रोके रहे, सदा दान दे परंतु प्रतिग्रह न ले और सब प्राणियों पर दया रखे।। 6/8।।

अमावास्या और पूर्णिमा के दिन, पर्वों, को नहीं त्यागता हुआ विधिपूर्वक वैतानिक अग्निहोत्र करे।। 6/9।।

नक्षत्रयज्ञ और नए अन्न का यज्ञ और चातुर्मास्य उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञों को भी क्रम से करे।। 6/10।।

बसंत और शरद ऋतु में उत्पन्न हुए, पवित्र और आप ही लाए हुए मुनियों के (नीवारादि)

घर से निकलकर संन्यास ग्रहण करता है वह ब्रह्मवादी तेजोमय लोकों को पाता है।। 6/39।।

जिस द्विज से किसी प्राणी को थोड़ा-सा भी भय नहीं होता, उसे शरीर छोड़ने के बाद कहीं भय नहीं मिलता।। 6/40।।

द्विज को चाहिए कि घर से निकलकर, पवित्र दंड, कमंडलु साथ लेकर अनायास मिले हुए पदार्थों से निर्वाह करे और निःस्पृह होकर संन्यास ग्रहण करे।। 6/41।।

सबका संग त्यागने वाले एक की ही मुक्ति होती है। यह जानकर जो द्विज सिद्धि के लिए किसी को सहायक न रखकर सदा अकेला विचरता है न वह किसी का त्याग करता है और न कोई उसका त्याग करता है, अर्थात् वह सदा सुख-दुख में ममता को त्याग कर मुक्ति पाता है।। 6/42।।

(लौकिक) अग्निरहित, गृहहीन, व्याधि की चिकित्सा से रहित, स्थिरबुद्धि, मौनी और सदा ब्रह्म में एकाग्रचित्त ऐसा होकर समय बितावे और केवल भिक्षा के लिए गांव में जाए।। 6/43।।

मट्टी का सकोरा आदि भिक्षा के लिए, रहने के लिए वृक्ष की जड़, पहने को जीर्ण (कौपीन, कंथा आदि) वस्त्र, अकेला निवास और सबमें समान दृष्टि ये मुक्त व्यक्ति के लक्षण हैं।। 6/44।।

जीवन व मरण किसी की इच्छा न करे, परंतु जैसे सेवक वेतन के लिए नियत समय की राह देखता है उसी भांति काल की प्रतीक्षा करे।। 6/45।।

सदा ब्रह्म का ध्यान करे, योगासन से बैठे, सब विषयों से विरक्त रहे, (दंड, कमंडलु

अन्नों से पुरोडाश और चरुओं को शास्त्र विधि से जुदा-जुदा तैयार करे।। 6/11।

उस वन के, (नीवारादि से बनाई गई) परम पवित्र हवि को देवताओं को अर्पण करके, शेष हवि का और स्वयं बनाए लवण (मय पदार्थ) का भोजन करे।। 6/12।।

पृथ्वी और जल में उत्पन्न हुए शाक और पवित्र वृक्षों से उत्पन्न हुए पुष्प, मूल, फल और फलों से निकले स्नेह का भक्षण करे।। 6/13।।

शहद, मांस, भूमि में उत्पन्न हुए छत्राक, भूस्तृण, (सांप की छत्री, खुम्भी) शिग्रु और बहेड़े के फलों को त्याग दे।। 6/14।।

पहला इकट्ठा किया हुआ (नीवारादि) मुनियों का अन्न और जीर्ण वस्त्र तथा शाक, मूल, फल इन्हें आश्विन के महीने में त्याग दे।। 6/15।।

भूखा होने पर भी, हल से जोती हुई भूमि में उत्पन्न हुए और किसी से छोड़े गए अन्न को तथा गांव में उत्पन्न हुए मूलों व फलों को न खाना चाहिए।। 6/16।।

(वानप्रस्थ द्विज) अग्नि से पके हुए अन्न का भोजन करे, अथवा समय पर पके हुए फल आदि खाए, अथवा फलों को पत्थर से कूटकर व दातों से चबाकर खाए।। 6/17।।

(वानप्रस्थ द्विज) एक ही दिन के लिए, अथवा एक मास के लिए, अथवा छः महीने

आदि) किसी बात की इच्छा न करे और केवल आत्मसहाय से ही अर्थात् अकेला ही मोक्ष के सुख का चाहने वाला संन्यासी इस संसार में विचरे (अर्थात् सबका संग और ममता को त्याग दे)।। 6/49।।

भूमिकंप आदि उत्पात व नेत्रस्पंदन आदि शकुन व नक्षत्र तथा हाथ की रेखा आदि का फलाफल बताकर अथवा शास्त्र की आज्ञा दिखाकर किसी से भीख मांगने की इच्छा न करे।। 6/50।।

जिस घर में अन्य तपस्वी, ब्राह्मण, पक्षी, कुत्ते और अन्य भिक्षुक विद्यमान हों वहां भीख मांगने की इच्छा से न जाना चाहिए।। 6/51।।

दाढ़ी, मूंछ, नख और बाल कटवाकर, दंड-कमंडलु तथा भिक्षापात्र लेकर और किसी प्राणी को दुख न देकर इस प्रकार संन्यासी को सदा नियमसहित विचरना चाहिए।। 6/52।।

उस संन्यासी का भिक्षापात्र धातु का न हो और पात्र में छेद भी न हो, और जैसे यज्ञ में चमस शुद्ध होते हैं वैसे ही इन सब पात्रों की जल से शुद्धि कही गई है।। 6/53।।

तूंबा और काठ, मिट्टी तथा बांस का पात्र संन्यासी के लिए स्वयंभू मनु ने कहा है।। 6/54।।

संन्यासी प्राण धारण करने के लिए दिन में एक बार भीख मांगे और विस्तार में न लगे क्योंकि भिक्षा में अधिक मन लगाने से संन्यासी विषयभोगों में पड़ जाता है।। 6/55।।

जब घर में रसोई का धुआं बंद हो जाए, मूसल का काम पूरा हो जाए, अग्नि बुझ

के लिए, अथवा एक वर्ष के निर्वाह के लिए नीवार आदि का संचय करे।। 6/18।।

अपनी शक्ति के अनुसार अन्न लाकर रात्रि को अथवा दिन में भोजन करे, अथवा चौथे प्रहर में व आठवें प्रहर में भोजन करे।। 6/19।।

शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चान्द्रायण व्रत करे, अथवा पूर्णिमा और अमावस्या को पकी हुई लपसी का एक बार भोजन करे।। 6/20।।

अथवा वानप्रस्थ द्विज समय पर पके हुए और अपने आप गिरे हुए केवल फल मूल से सदा जीवन निर्वाह करे।। 6/21।।

भूमि पर लेटे व दिन भर एक चरण से खड़ा रहे, अथवा कभी आसन पर और कभी आसन से उठकर अपना समय बिताए, और तीनों काल स्नान करे।। 6/22।।

अपने तप को क्रम से बढ़ाता हुआ वानप्रस्थ ग्रीष्मऋतु में पंचाग्नि में तप करे, वर्षा ऋतु में वर्षा की जगह नग्न बैठा रहे, और हेमन्त (जाड़े की) ऋतु में गीले वस्त्र धारण करे।। 6/23।।

तीनों काल में स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करे और कठिन तपस्या करके अपने शरीर को सुखाए।। 6/24।।

विधि के अनुसार वैतान नामक अग्निओं को अपनी देह में रखकर, अर्थात् उनकी भस्म पीकर, अग्नि और गृह को त्याग दे, और मौन व्रत धारण करके और फल-मूल खाकर समय बिताए।। 6/25।।

जाए और गृहस्थ के भोजन के बाद जूठे पात्र फेंक दिए जाएं उस समय संन्यासी भिक्षा के लिए विचरे।। 6/56।।

संन्यासी को चाहिए कि भीख न मिलने पर दुखी और मिलने पर आनंदित न हो; जितने में प्राणों का निर्वाह हो सके उतना ही अन्न मांग ले और व्यवहार की अन्य वस्तुओं में बुद्धि न करे।। 6/57।।

आदरपूर्वक भिक्षा पाने की कभी इच्छा न करे, क्योंकि मुक्ति की अवस्था में रहने पर भी संन्यासी को अत्यंत सत्कार से संसार बंधन हो सकता है।। 6/58।।

थोड़े से अन्न का भोजन करके और निर्जन स्थान में निवास करके संन्यासी, विषयों में लगी हुई इन्द्रियों को वहां से धीरे-धीरे अलग करे।। 6/59।।

इन्द्रियों के रोकने से, रागद्वेषादि छोड़ने से और सब प्राणियों के प्रति अहिंसा से संन्यासी को मुक्ति मिल सकती है।। 6/60।।

इस भांति मन से जब उन सब विषयों में दोष देख उन पदार्थों से विरक्त होता है, तब इस संसार में और परलोक में सदा सर्वत्र अविनाशी सुख मिलता है।। 6/80।।

इस प्रकार (स्त्री, पुत्रादि में ममता रूपी) सब संगों को धीरे-धीरे छोड़कर और (आसक्ति, मान, अपमान, सर्दी, गरमी, सुख और दुख आदि) सब द्वंद्वभावों से छूटकर वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।। 6/81।।

जो कुछ पहले कहा है सब ध्यान से प्राप्त होता है, इसलिए अध्यात्मज्ञान-रहित कोई पुरुष कदापि किसी कार्य का फल नहीं पा सकता।। 6/82।।

सुख देने वाले विषयों में लिप्त होने का यत्न न करे, ब्रह्मचारी रहे (अर्थात् स्त्री भोगादि न करे) भूमि पर सोए, निवास स्थान से ममता न करे और वृक्ष की जड़ में निवास करे।। 6/26।।

फल मूल न मिलें तो तपस्वी वानप्रस्थी को चाहिए कि ब्राह्मणों से अथवा अन्य वनवासी गृहस्थ द्विजातियों के यहां से अपने प्राणधारण करने के योग्य भिक्षा मांग लाए।। 6/27।।

यदि वन में रहकर भिक्षा न मिले तो गांव से पत्ते के दोने व सकोरे में, अथवा हाथ में ही भीख मांगकर लाए और वानप्रस्थी केवल आठ ग्रास भोजन करे।। 6/28।।

वानप्रस्थी ब्राह्मण वन में बसकर इन पूर्वोक्त तथा अन्य सब नियमों का पालन करे और आत्मज्ञान की सिद्धि के लिए उपनिषद आदि अनेक श्रुतियों का अभ्यास करे।। 6/29।।

यज्ञ और देवता संबंधी जिसमें मंत्र हों और जो आध्यात्मिक हों (अर्थात् जिसमें जीव का स्वरूप हो) और जो उपनिषदों (वेदांत) में कहा है उसको सदा जपे।। 6/83।।

जो वेदों का अर्थ नहीं जानते उनकी गति वेद है और जो अर्थ जानते हैं उनकी भी गति वेद है, और स्वर्ग तथा मोक्ष की इच्छा करने वालों के लिए भी केवल वेद ही अवलंब है।। 6/84।।

इस भांति विधिपूर्वक जो ब्राह्मण संन्यास आश्रम को ग्रहण करता है वह इस लोक में सब पापों से रहित होकर परब्रह्म को पाता है।। 6/85।।

वानप्रस्थ की संन्यास से और गृहस्थाश्रम की वानप्रस्थ से तुलना करने पर इनके बीच साफ तौर पर समानता दिखाई देती है। जब वानप्रस्थ की संन्यास से तुलना करते हैं तो उनके अनुसार जीवनयापन में बहुत कम अंतर मिलता है। पहला तो यह कि वानप्रस्थ अपनी पत्नी और संपत्ति के अधिकार का त्याग नहीं करता है। लेकिन संन्यासी को दोनों का त्याग करना पड़ता है। दूसरी बात यह कि वानप्रस्थ का निवास स्थायी होता है, चाहे वह वनवास ही क्यों न हो। लेकिन संन्यासी का आवास स्थायी नहीं होता, यहां तक कि वनों में भी उसे स्थान-स्थान पर रमण करना होता है। तीसरे यह कि संन्यासी के शास्त्रों की व्याख्या करने पर प्रतिबंध है, जबकि वानप्रस्थ के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं है। जहां तक अन्य बातों का सवाल है, वे एक जैसी हैं।

गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थाश्रम के बीच भी बहुत समानता है। मूलरूप से वानप्रस्थ गृहस्थ ही है। जैसे, वानप्रस्थी का वैवाहिक जीवन जारी रहता है। गृहस्थी की तरह वह संपत्ति का स्वामी रहता है। गृहस्थ की तरह ही वह संसार का त्याग नहीं करता। वह वैदिक धर्म का पालन करता है। गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ के बीच तीन बातों का अंतर है—(1) गृहस्थ के भोजन और वस्त्र पहनने में कोई सादगी नहीं है, जबकि वानप्रस्थ के लिए ऐसी व्यवस्था है,

(2) गृहस्थ समाज में रहता है, जबकि वानप्रस्थ को वनों में रहना होता है, (3) वानप्रस्थ, वेदांत का अध्ययन कर सकता है, जबकि गृहस्थ वेदों तक ही सीमित रहता है। बाकी बातें समान हैं।

गृहस्थाश्रम और वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम के बीच इतनी सारी समानताओं के होते हुए, यह समझना कठिन है कि मनु ने गृहस्थाश्रम और संन्यास के बीच एक तीसरे वानप्रस्थ आश्रम की रचना क्यों की, जो उक्त दोनों से बिलकुल भिन्न है? वास्तव में केवल तीन आश्रम हो सकते थे—(1) ब्रह्मचर्य, (2) गृहस्थ, (3) संन्यास। शंकराचार्य का मत भी ऐसा ही लगता है, जिन्होंने अपने ब्रह्म-सूत्र में संन्यास को सही बताते हुए पूर्व मीमांसा परंपरा के विपरीत तीन आश्रमों की बात कही है।

मनु के मन में वानप्रस्थाश्रम का विचार कहां से आया? उनको प्रेरणा कहां से मिली? जैसा कि पहले कहा जा चुका है, ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम अनिवार्य नहीं था। ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम अपनाए बिना सीधे संन्यासी बन सकता था। परंतु मानव जीवन का अन्य भी एक चरण था। जो ब्रह्मचारी तुरंत विवाह नहीं करना चाहता था, वह अरण्यमनाः[1] (वनवासी) बन सकता था। वे ऐसे ब्रह्मचारी थे, जो अविवाहित रहकर अध्ययन जारी रखना चाहते थे। ये अरण्यवासी आबादी से दूर वनों में रहते थे। जिन वनों में अरण्य तापस बसते थे, वे **आरण्यक** कहलाते थे। यह स्पष्ट है कि मनु का वानप्रस्थ दो भिन्नताओं के लिए मूलतः अरण (अरण्य) था। 1. वह अरण को वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने को विवश करता है और 2. यह अरण अवस्था, दूसरी अवस्था की जगह तीसरी अवस्था बना दी गई। मनु की पूरी योजना इस सिद्धांत पर आधारित है कि विवाह अनिवार्य है। कोई ब्रह्मचारी अगर संन्यासी बनना चाहे तो उसे वानप्रस्थ में जाना होता था और वानप्रस्थ बनने के लिए गृहस्थ बनना अनिवार्य था, यानी उसके लिए विवाह अनिवार्य था। मनु ने विवाह से मुक्ति को असंभव बना दिया। क्यों?

---

1. राधा कुमुद मुकर्जी—एंशिएंट इंडिया एजूकेशन, पृ. 6

अठारहवीं पहेली

मनु का पागलपन अथवा मिश्रित जातियों की उत्पत्ति की ब्राह्मणवादी व्याख्या

मनुस्मृति पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति यह समझ जाएगा कि मनु ने विचार-विमर्श के उद्देश्य से विभिन्न जातियों को कुछ विशिष्ट श्रेणियों के अंतर्गत रखा है। ये हैं–1. आर्य जातियां, 2. अनार्य जातियां, 3. व्रात्य जातियां, 4. पतित जातियां और 5. संकर जातियां।

आर्य जातियों का अर्थ है, चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। दूसरे शब्दों में मनु चार वर्णों को आर्यवाद का सार मानते हैं। अनार्य का अर्थ है वे जातियां जो चातुर्वर्ण्य को स्वीकार नहीं करती हैं। वह दस्यु को अनार्य[1] जाति मानते हैं। व्रात्य जातियां वे हैं, जो कभी वर्णों को मानती थीं परंतु बाद में जिन्होंने इसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया।

मनु ने व्रात्यों की सूची में निम्नलिखित जातियों को सम्मिलित किया है–

क्र.	व्रात्य ब्राह्मण	व्रात्य क्षत्रिय	व्रात्य वैश्य
1.	भूर्ज (भृज्ज) कंटक	1. झल्ल	1. सुधन्वन्
2.	आवन्त्य	2. मल्ल	2. आचार्य
3.	वाटधान	3. लिच्छवी	3. कारुष
4.	पुष्पध	4. नट	4. विजन्मन्
5.	शैख	5. करण	5. मैत्र
		6. खस	6. सात्वत
		7. द्रविड़	

पतित जातियों में मनु ने उन्हें सम्मिलित किया है जिन क्षत्रियों ने आर्य अनुष्ठान

1. मनु 10.45। यह श्लोक दो कारणों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। एक तो यह कि इसमें शूद्रों को दस्यु से भिन्न बताया गया है। दूसरे, इससे पता चलता है कि शूद्र आर्य हैं।

त्याग दिए थे, जो शूद्र बन गए थे, और जिनके यहां ब्राह्मण पुरोहित नहीं आते थे। मनु ने इसका उल्लेख इस प्रकार किया है–

1. पौंड्रक, 2. चोल, 3. द्रविड़, 4. काम्बोज, 5. यवन, 6. शक, 7. पारद, 8. पल्लव, 9. चीन, 10. किरात, 11. दर्द

संकर जातियां मनु के अनुसार वे हैं, जिनके माता-पिता का वर्ण भिन्न था।

इन संकर जातियों की भी कई श्रेणियां हैं। 1. विभिन्न आर्य जातियों की संतानों का भी विभाजन दो श्रेणियों में किया गया है, (क) अनुलोम, (ख) प्रतिलोम 2. अनुलोम और प्रतिलोम से उत्पन्न जातियां की संतानें, 3. अनार्यों और आर्यों की अनुलोम और प्रतिलोम संतानें। मनु ने जिन जातियों को संकर जातियों की सूची में रखा है, उनकी विभिन्न श्रेणियां निम्न प्रकार से हैं–

1. मिश्रित आर्य जातियों की संतानें

पिता	माता	जाति का नाम	अनुलोम अथवा प्रतिलोम
ब्राह्मण	क्षत्रिय	?	...
ब्राह्मण	वैश्य	अम्बष्ठ	अनुलोम
ब्राह्मण	शूद्र	निषाद (पारशव)	अनुलोम
क्षत्रिय	ब्राह्मण	सूत	प्रतिलोम
क्षत्रिय	वैश्य	?	...
क्षत्रिय	शूद्र	उग्र	अनुलोम
वैश्य	ब्राह्मण	वैदेहक	प्रतिलोम
वैश्य	क्षत्रिय	मागध	प्रतिलोम
वैश्य	शूद्र	करण	अनुलोम
शूद्र	ब्राह्मण	चांडाल	प्रतिलोम
शूद्र	क्षत्रिय	क्षत्रिय	प्रतिलोम
शूद्र	वैश्य	आयोगव	प्रतिलोम

2. आर्य अनुलोम-प्रतिलोम से उत्पन्न जातियां

क्र.	पिता	माता	जाति का नाम
1.	ब्राह्मण	उग्र	अवरीट
2.	ब्राह्मण	अम्बष्ठ	आभीर
3.	ब्राह्मण	आभीर	धितवण
4.	शूद्र	निषाद	कुक्कुट

3. अनुलोम और प्रतिलोम जातियों के बीच मिश्रित विवाहों से उत्पन्न संतानें

क्र.	पिता	माता	जाति का नाम
1.	वैदेह	आयोगव	मैत्रेयक
2.	निषाद	आयोगव	मार्गव (दास) कैवर्त्त
3.	निषाद	वैदेह	कारावर
4.	वैदेहक	अम्बष्ठ	वेण
5.	वैदेहक	कारावर	आंध्र
6.	वैदेहक	निषाद	मेद
7.	चांडाल	वैदेह	पांडु सोपाक
8.	निषाद	वैदेह	आहिंडिक
9.	चांडाल	पुक्कस (पुल्कस)	श्वपाक (सोपाक)
10.	चांडाल	निषाद	अंतावासायी
11.	क्षत्रिय	उग्र	श्वपाक

मनु ने संकर जातियों की जो सूची प्रस्तुत की थी, उसमें उनके परवर्तियों ने और नाम जोड़े हैं। इनमें उशना स्मृति, बौधायन स्मृति, वशिष्ठ स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और सूत संहिता के लेखक शामिल हैं।

उशना स्मृति के नए नाम इस प्रकार हैं–

क्र.	संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1.	पुलक्स	शूद्र	क्षत्रिय
2.	येकज	पुलक्स	वैश्य
3.	चर्मकारक	आयोगव	ब्राह्मण
4.	वेणुक	सूत	ब्राह्मण

बौधायन स्मृति में निम्नलिखित नाम जोड़े गए–

क्र.	संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1.	क्षत्रिय	क्षत्रिय	वैश्य
2.	ब्राह्मण	ब्राह्मण	क्षत्रिय
3.	वेण अथवा बैण	वैदेहक	अम्बष्ठ
4.	श्वपाक	उग्र	क्षत्रिय

वशिष्ठ स्मृति में एक नाम जोड़ा गया है–

क्र.	संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1.	वेण	शूद्र	क्षत्रिय

याज्ञवल्क्य स्मृति में दो नाम जोड़े गए हैं–

क्र.	संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1.	मूर्धावसिक्त	ब्राह्मण	क्षत्रिय
2.	माहिष्य	क्षत्रिय	वैश्य

सूत संहिता के रचनाकार की बहुत लंबी सूची है। उसमें तिरसठ जातियां हैं।

क्र.	संकर जाति का नाम	पिता की जाति	माता की जाति
1.	अम्बष्ठ	क्षत्रिय	वैश्य
2.	ऊर्ध्वनापित	ब्राह्मण	वैश्य
3.	कटकार	वैश्य	शूद्र
4.	कुंभकार	ब्राह्मण	वैश्य
5.	कुंड	ब्राह्मण	विवाहित ब्राह्मण
6.	गोलक	ब्राह्मण	ब्राह्मण विधवा
7.	चक्री	शूद्र	वैश्य
8.	दौष्यन्त्य	क्षत्रिय	शूद्र
9.	दौषन्ती	क्षत्रिय	शूद्र
10.	पट्टनशाली	शूद्र	वैश्य
11.	पुलिन्द	वैश्य	क्षत्रिय
12.	बाह्यदास	शूद्र	ब्राह्मण
13.	भोज	वैश्य	क्षत्रिय
14.	महिकर	वैश्य	वैश्य
15.	माणविक	शूद्र	शूद्र
16.	म्लेच्छ	वैश्य	क्षत्रिय
17.	शालिक	वैश्य	क्षत्रिय
18.	शौंडिक	ब्राह्मण	शूद्र
19.	शूलिक	क्षत्रिय	शूद्र
20.	सपर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय
21.	आग्नेयनर्तक	अम्बष्ठ	अम्बष्ठ
22.	अपितर्	ब्राह्मण	दौषती
23.	आश्रमक	दंतकेवल	शूद्र

24.	उद्बंध	सनक	क्षत्रिय
25.	करण	नट	क्षत्रिय
26.	कर्मा	करण	क्षत्रिय
27.	कर्मकर	रेणुक	क्षत्रिय
28.	कर्मार	माहिष्य	करण
29.	कुक्कुन्द	मागध	शूद्र
30.	गुहक	श्वपच	ब्राह्मण
31.	चर्मोपजीवी	वैदेहिक	ब्राह्मण
32.	चमकार	आयोगव	ब्राह्मणी
33.	चर्मजीवी	निषाद	कारुषी
34.	तक्ष	माहिष्य	करण
35.	तक्षवृत्ति	उग्र	ब्राह्मण
36.	दंतकवेलक	चांडाल	वैश्य
37.	दस्यु	निषाद	आयोगव
38.	द्रुमिल	निषाद	क्षत्रिय
39.	नट	पिच्छल्ल	क्षत्रिय
40.	नापित	निषाद	ब्राह्मण
41.	नीलादिवर्णविक्रेता	आयोगव	चिरकरी
42.	पिच्छल्ल	मल्ल	क्षत्रिय
43.	पिंगल	ब्राह्मण	आयोगव
44.	भागलब्ध	दौषन्त	ब्राह्मणी
45.	भरुष	सुधंवा	वैश्य
46.	भैरव	निषाद	शूद्र
47.	मातंग	विजन्मा	वैश्य
48.	मधुक	वैदेहिक	आयोगव
49.	मालाकार	दस्यु	वैश्य
50.	मैत्र	विजन्मा	वैश्य
51.	रजक	विदेह	ब्राह्मण
52.	रथकार	माहिष्य	करण
53.	रेणुक	नापित	ब्राह्मण
54.	लोहकार	माहिष्य	ब्राह्मणी
55.	वर्धकी	माहिष्य	ब्राह्मण

56.	वार्य	सुधंवा	वैश्य
57.	विजन्मा	भरुष	वैश्य
58.	शिल्प	माहिष्य	करण
59.	श्वपच	चांडाल	ब्राह्मणी
60.	सनक	मागध	क्षत्रिय
61.	समुद्र	तक्षवृति (व्रती)	वैश्य
62.	सात्वत	विजन्मा	वैश्य
63.	सुनिषाद	निषाद	वैश्य

जातियों की पांच कोटियों में से चार की जो व्याख्या मनु ने की है उसे सरलता से समझा जा सकता है। लेकिन इनमें से पांचवीं श्रेणी संकर जाति के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। मन में कई सवाल उठते हैं। पहली बात तो यह है कि मनु की यह सूची आधी-अधूरी है। यह एक ऐसी संपूर्ण सूची नहीं हैं, जिसमें संकर जातियों की सभी संभावनाएं हों।

अनुलोम और प्रतिलोम विवाहों से आर्य जातियों से उत्पन्न मिश्रित जातियों के विषय में चर्चा आती है, तो मनु द्वारा जातियों के नाम स्पष्ट किए जाने चाहिए थे। चार आर्य जातियों से प्रत्येक वर्ण से बारह अनुलोम-प्रतिलोम जातियां जन्मीं। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो अड़तालिस जातियां बननी चाहिए थीं। दरअसल उन्होंने मिश्रित विवाहों से उत्पन्न केवल चार जातियों का उल्लेख किया है।

अनुलोम और प्रतिलोम जातियों के विवाहों से उत्पन्न संतानों की 144 जातियों की सूची मनु को प्रस्तुत करनी चाहिए थी, क्योंकि इन अनुलोम-प्रतिलोम विवाहों की संख्या बारह है। वास्तव में मनु ने केवल ग्यारह जातियां बताई हैं। इन ग्यारह जातियों के निर्माण के विषय में उन्होंने केवल पांच जातियों के मिश्रण का उल्लेख किया है। इनमें से एक (वैदेह) अनुलोम-प्रतिलोम की सूची से बाहर है। आठ का प्रसंग छोड़ ही दिया गया है।

आर्य और अनार्य जातियों के मेल से उत्पन्न संकर जातियों के विषय में भी उसके कथन में विसंगति है। हमें सबसे पहले तो आर्यों के प्रत्येक वर्ण के अनार्यों से मिश्रण से उत्पन्न जातियों की सूची प्राप्त होनी चाहिए थी। वह अप्राप्य है। हम यह मान लेते हैं कि एक ही अनार्य जाति—दस्यु—थी। फिर भी, उसका प्रत्येक अनुलोम-प्रतिलोम जाति के साथ संयोग होने से 12 जातियों का ज्ञान होना चाहिए, जबकि मनु ने केवल एक मिश्रण का उल्लेख किया है।

संकर जातियों पर विचार करते समय मनु ने व्रात्य और आर्य जातियों के मिश्रण पर ध्यान नहीं दिया, व्रात्य और अनुलोम-प्रतिलोम का भी कोई उल्लेख नहीं है और न व्रात्य और अनार्य जातियों के संयोग का उल्लेख है।

मनु की इन त्रुटियों में कुछ तो बहुत ज्वलंत और महत्त्वपूर्ण हैं। ब्राह्मण और क्षत्रियों से उत्पन्न संकर जाति को लेते हैं। मनु इस संबंध में मौन हैं कि इनमें कौन-सी जाति बनी। न ही उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि वे विवाह अनुलोम थे अथवा प्रतिलोम। क्या ऐसा मान लिया जाए कि मनु के समय में ऐसी संकर जातियां उत्पन्न ही नहीं हुई थीं? या वह ऐसा उल्लेख करने से भय खाते थे? यदि वह बात थी तो डर किस का था?

मनु और अन्य स्मृतिकारों ने संकर जातियों के जो नाम गिनाए हैं, उनमें से कुछ जाली लगते हैं क्योंकि जिन जातियों को जारज उत्पत्ति का बताया गया है, मनु से पूर्व उनका नाम किसी ने नहीं सुना था और यह भी पता नहीं चलता है कि तब से आज तक वे कहां विलीन हैं। आज उनका कोई पता नहीं है और कहीं उनका उल्लेख नहीं मिलता। जाति एक अमिट परंपरा है और एक बार बन जाने पर उसका अलग अस्तित्त्व जारी रहता है जब तक कि लुप्त हो जाने का कोई विशेष कारण न हो। ऐसा हो तो सकता है, लेकिन कुछ ही के साथ।

ये आयोगव, धिग्वण, उग्र, पुक्कस, श्वपाक, श्वपच, पांडु सोपाक, अहिंडिक, बंदिक, मट्ट, महिकर, शलिक, शूलिक, येकज, कुकुंद कौन हैं? ये तो थोड़े से ही गिनाए गए हैं। ये कहां गए? इनका क्या हुआ?

अब हम मनु की अन्य स्मृतिकारों से तुलना करें। उन्होंने किन जातियों का उल्लेख किया है? क्या वे इन संकर जातियों की उत्पत्ति के विषय में एकमत हैं? ऐसा नहीं है। यह निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है–

1. आयोगव

क्र.	स्मृति	पिता	माता
1.	मनु	शूद्र	वैश्य
2.	उशना	वैश्य	क्षत्रिय
3.	याज्ञवल्क्य	शूद्र	वैश्य
4.	बौधायन	वैश्य	क्षत्रिय
5.	अग्नि पुराण	शूद्र	क्षत्रिय

2. उग्र

1.	मनु	क्षत्रिय	शूद्र
2.	उशना	ब्राह्मण	शूद्र
3.	याज्ञवल्क्य	क्षत्रिय	वैश्य
4.	वसिष्ठ	क्षत्रिय	वैश्य
5.	सूत संहिता	वैश्य	शूद्र

3. निषाद

1.	मनु	ब्राह्मण	शूद्र
2.	उशना	ब्राह्मण	शूद्र
3.	बौधायन	ब्राह्मण	शूद्र
4.	याज्ञवल्क्य	ब्राह्मण	शूद्र
5.	सूत संहिता	ब्राह्मण	वैश्य
6.	सूत संहिता	ब्राह्मण	शूद्र
7.	वशिष्ठ	वैश्य	शूद्र

4. पुक्कस

1.	मनु	निषाद	शूद्र
2.	बृहद् विष्णु	शूद्र	क्षत्रिय
3.	बृहद् विष्णु	वैश्य	क्षत्रिय

5. मागध

1.	मनु	वैश्य	क्षत्रिय
2.	सूत	वैश्य	क्षत्रिय
3.	बौधायन	शूद्र	वैश्य
4.	याज्ञवल्क्य	वैश्य	क्षत्रिय
5.	बृहद् विष्णु	वैश्य	क्षत्रिय
6.	बृहद् विष्णु	शूद्र	क्षत्रिय
7.	बृहद् विष्णु	वैश्य	ब्राह्मण

6. रथकार

1.	उशा	क्षत्रिय	ब्राह्मण
2.	बौधायन	वैश्य	शूद्र
3.	सूत	क्षत्रिय	ब्राह्मण

7. वैदेहक

1.	मनु	शूद्र	वैश्य
2.	मनु	वैश्य	ब्राह्मण
3.	याज्ञवल्क्य	वैश्य	ब्राह्मण

अगर विभिन्न स्मृतिकार में संकर जातियों की उत्पत्ति के विषय में तथ्यों के आधार पर बात कर रहे हैं तो फिर विचारों में इतनी भिन्नता क्यों है? दो जातियों के मेल से तीसरी जाति की रचना तार्किक हो सकती है परंतु उन्हीं दो वर्णों के मिश्रण से

भिन्न-भिन्न जातियां कैसे बन गईं? यही तो मनु और उनके अनुयायी कह रहे प्रतीत होते हैं। निम्नांकित तथ्यों को देखें–

1. क्षत्रिय पिता और वैश्य माता का संयोग–
   क. बौधायन कहते हैं कि वह संतति क्षत्रिय है।
   ख. याज्ञवल्क्य का कथन है कि वह माहिष्य है।
   ग. सूत का मत है कि यह अम्बष्ठ है।
2. शूद्र पिता और क्षत्रिय माता का संयोग–
   क. मनु कहते हैं कि वह संतति क्षत्रिय है।
   ख. उशना के अनुसार पुलक्स है।
   ग. वशिष्ठ का मत है कि वह वैण है।
3. ब्राह्मण पिता और वैश्य माता का मेल–
   क. मनु के अनुसार संतति अम्बष्ठ है।
   ख. सूत का एक मत है कि वह उर्ध्वनापित है। उसका दूसरा कथन है कि वह कुंभकार है।
4. वैश्य पिता और क्षत्रिय माता का मेल–
   क. मनु की दृष्टि में वह संतति मागध है,
   ख. सूत का मत है–1. भोज, 2. म्लेच्छ, 3. शालिक, 4. पुलिंद ये इस एक ही मिश्रण से उपजी जातियां हैं।
5. क्षत्रिय पिता और शूद्र माता का मेल–
   क. मनु का कथन है वह संतति उग्र है।
   ख. सूत के अनुसार 1. दौषन्त्य, 2. दौषंती, और 3. शूलिक, एक ही मिश्रण से बने हैं।
6. शूद्र पिता और वैश्य माता का मेल–
   क. मनु का कथन है, यह संतति आयोगव है।
   ख. सूत के अनुसार–1. पट्टनशाली, और 2. चक्री इसएक ही मिश्रण से बनी है।

अब एक अन्य प्रश्न पर विचार किया जाए। क्या संकर जातियों की उत्पत्ति के विषय में मनु की व्याख्याएं ऐतिहासिक रूप से सत्य हैं?

शुरुआत आभीर से करते हैं। मनु कहता है कि ये ब्राह्मण पुरुष और अम्बष्ठ नारी की जारज संतान हैं। इस संबंध में इतिहास क्या कहता है? इतिहास कहता है कि आभीर (जिसका अपभ्रंश अहीर है) एक चरवाहा जनजाति थी, जो सिंध कहे जाने वाले निचले उत्तर-पश्चिमी जिलों में विचरती थी। वह एक स्वतंत्र शासक जनजाति थी और विष्णु पुराण[1] के अनुसार आभीरों ने मगध को जीत लिया था और कई वर्षों तक वहां शासन किया था।

---

1. भाग 4, अध्याय 24

अम्बष्ठ[1] के विषय में मनु का कहना है कि वे ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री की संतान हैं। पतंजलि का कहना है कि अम्बष्ठ लोग अम्बष्ठ देश के निवासी हैं। यह निर्विवाद है कि अम्बष्ठ एक स्वतंत्र जनजाति थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की राजसभा में यूनानी दूत मेगस्थनीज ने अम्बष्ठों का उल्लेख किया है कि वह पंजाब की एक जनजाति थी, जिसने भारत पर सिकंदर के आक्रमण के समय उसके साथ युद्ध किया। अम्बष्ठों का महाभारत में भी उल्लेख है। उनकी राज्य-व्यवस्था और शौर्य का सम्मानजनक वर्णन है।

मनु कहते हैं कि आंध्र[2] द्वितीय श्रेणी की जारज संतान थी जो वैदेहक पुरुष और कारावर स्त्री से उत्पन्न बताए गए हैं, जो स्वयं जारज जातियां थीं। ऐतिहासिक साक्ष्य बिलकुल अलग हैं। आंध्र वे लोग हैं जो दक्षिण के पठार के पूर्वी भाग में रहते हैं। आंध्रों का मेगस्थनीज ने भी उल्लेख किया है। वरिष्ठ प्लीनी (77 ई.) के अनुसार यह दक्षिणवासी एक शक्तिशाली जाति है, जिसकी दक्षिण में सार्वभौम सत्ता है। उनके अधिकार में अनेक गांव हैं। तीन नगरों का परकोटा है। उनकी रक्षा खाई खंदकों से होती है और अपने राजा को वे एक लाख पैदल, दो हजार अश्वारोही और एक हजार हाथी उपलब्ध कराते हैं।

मनु के अनुसार मागध[3] वैश्य पुरुष और क्षत्रिय नारी से उत्पन्न जारज संतान हैं। वैयाकरण पाणिनि ने "मागध" की व्युत्पत्ति भिन्न प्रकार से की है—"मागध" का अर्थ है मगध देश का वासी। इस समय मगध का अर्थ है बिहार के पटना और गया जनपद। ज्ञात समय से ही उन्हें संप्रभु बताया गया है, उनका सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद में आया है। प्रसिद्ध जरासंध मगध का राजा था। वह पांडवों का समकालीन था।

मनु का कहना है कि निषाद, ब्राह्मण पुरुष और शूद्र स्त्री की जारज संतान हैं। इतिहास के साक्ष्य एकदम अलग हैं। निषाद एक देशी जनजाति थी, जिसका स्वतंत्र प्रदेश या अपने राजा होते थे। यह एक बहुत प्राचीन जनजाति है। रामायण में गुह को निषाद-राज बताया गया है, जिसकी राजधानी शृंगवेरपुर थी। जब राम वनवास को जा रहे थे, तो उसने उनका आतिथ्य किया था।

वैदेहक के विषय में मनु का मत है कि वे वैश्य पुरुष और ब्राह्मण स्त्री की जारज संतान हैं। व्युत्पत्ति शास्त्र के अनुसार वैदेहक[4] का अर्थ विदेह देश के निवासी से है।

---

1. *अम्बष्ठ के लिए देखें जायसवाल की, हिंदू पोलिटी, भाग 1, पृ. 73-4*
2. *आंध्र के लिए देखिए, 'अर्ली डायनैस्टिज ऑफ आंध्र देश, भावराजू वेंकट कृष्ण राव। उन्हें सातवाहन भी कहा जाता है।*
3. *मगध के इतिहास के लिए देखें एंशिएंट इण्डियन ट्राइब्स, अध्याय 4, : बी.सी. लाहा*
4. *विदेह के इतिहास के लिए देखें क्षत्रिय क्लांस इन बुद्धिस्ट इन इंडिया, भाग 2, अध्याय 1 द्वारा बी.सी. लाहा*

प्राचीन विदेह बिहार के दरभंगा और चंपारन जनपद में स्थित था। यह देश और इसके निवासियों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। यजुर्वेद में भी इसका उल्लेख है। राम की पत्नी सीता, जनक की पुत्री थी, जो विदेह के राजा थे। उसकी राजधानी मिथिला थी।

ऐसे और भी बहुत से तथ्यों की विवेचना की जा सकती है। हमारे लिए ये ही पर्याप्त हैं। इनके आधार पर कहा जा सकता है कि मनु ने इतिहास को विकृत कर दिया और अत्यंत सम्मानित तथा शक्तिशाली जनजातियों को जारज (Bastards) घोषित कर दिया। बड़े-बड़े समुदायों को थोक के भाव जारज बता डालने वाले मनु ने व्रात्यों को छोड़ दिया। परंतु परवर्तियों ने वही योजना जारी रखी और व्रात्यों को भी जारज घोषित कर दिया। मनु के अनुसार करण व्रात्य थे। परंतु ब्रह्मवैवर्त पुराण ने उन्हें जारज बताया, और कहा है कि वे वैश्य पिता और शूद्र माता की संतान हैं। मनु ने पौंड्रकों को व्रात्य माना है। लेकिन ब्रह्मवैवर्त पुराण में उन्हें वैश्य पिता और चुंदी माता की संतान बताया गया है। मल्ल को मनु व्रात्य कहते हैं लेकिन ब्रह्मवैवर्त पुराण में वे लेत्त पिता और तिबर माता से उत्पन्न हुए हैं। भर्ज्जकौतुक को मनु व्रात्य ब्राह्मण मानते हैं। लेकिन गौतम संहिता में वे ब्राह्मण पिता और वैश्य मां की संतान हैं। मनु ने यवनों को व्रात्य क्षत्रिय बताया है। लेकिन गौतम संहिता के अनुसार वे क्षत्रिय पिता और शूद्र मां से जन्मे हैं। मनु किरातों को व्रात्य क्षत्रिय कहते हैं। वल्लाल चरित में उन्हें वैश्य पिता और ब्राह्मण माता की संतान बताया गया है।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि मनु ने जिन जातियों को जारज कहा है, उनमें से कइयों की उत्पत्ति स्वतंत्र है। फिर भी, मनु और अन्य स्मृतिकार उन्हें जारज बताते हैं। उनमें ऐसा पागलपन क्यों? क्या उनके पागलपन के पीछे कोई योजना है?

इन तथ्यों पर विचार करने के बाद यह एक पहेली ही है कि मनु ने संकर जातियों का सवाल क्यों खड़ा किया। आखिर इसके पीछे उनका अभिप्राय क्या था?

ऐसा संभव है कि मनु को यह बात समझ में आ गई थी कि चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का ढांचा चरमरा रहा है और उन जातियों की बहुत बड़ी संख्या हो गई थी जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्रों की परिधि में नहीं आती थीं, जो चातुर्वर्ण्य के विफल हो जाने का उत्तम प्रमाण था। इसलिए वह चातुर्वर्ण्य के नियमों को अनदेखा करके चातुर्वर्ण्य से बाहर की जातियों के अस्तित्व के विषय में प्रकाश डालने को विवश हो गए।

लेकिन क्या मनु ने अनुभव किया था कि उन्होंने जो व्याख्या की थी, वह कैसी भयानक है? उस के क्या अर्थ निकलते हैं?

पुरुष और विशेषकर स्त्री जाति पर यह उनका कैसा चिंतन था? यह स्पष्ट है कि पुरुषों और नारियों के बीच संबंध गुप्त थे, क्योंकि चातुर्वर्ण्य ने उन्हें खुले संबंध से प्रतिबंधित कर दिया था। लेकिन ये गुप्त संबंध इक्का-दुक्का रहे होंगे, वे थोक में नहीं हो

सकते थे। लेकिन जब तक हम यह नहीं मान लेते कि दुराचार इतने व्यापक स्तर पर विद्यमान था, तब तक इस बात का औचित्य कैसे ठहराया जा सकता है कि मनु द्वारा वर्णित इतने सारे चांडाल और अस्पृश्य समाज में पैदा हो गए हैं?

मनु ने कहा है कि चांडाल जाति ब्राह्मण स्त्री और शूद्र पुरुष के बीच अवैध संभोग का परिणाम है। क्या यह सच हो सकता है? इसका अर्थ तो यह हुआ कि ब्राह्मण स्त्रियों का चरित्र बहुत भ्रष्ट रहा होगा। शायद इसका यह मतलब है कि शूद्रों[1] से संभोग करने का उनके मन में विशेष आकर्षण था। क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है?

चांडालों की जनसंख्या इतनी अधिक है कि यदि प्रत्येक ब्राह्मण स्त्री भी एक शूद्र की रखैल रही होती तो भी समाज में इतने अधिक चांडाल पैदा न होते जितने वे हैं, जितनी उनकी जनसंख्या है।

क्या मनु ने सोचा था कि संकर जाति संबंधी अपने इस सिद्धांत को प्रतिपादित करके वह देश में इतने बड़े जन-समुदाय को अकुलीन घोषित कर रहे हैं और वे लोग समाज में सामाजिक एवं नैतिक दृष्टि से नीच बन जाएंगे? उन्होंने क्यों कहा कि ये जातियां उत्पत्ति की दृष्टि से संकर हैं जबकि वास्तव में इन जातियों का स्वतंत्र अस्तित्व था?

---

1. मेगस्थनीज का कथन है कि ब्राह्मणों को अपनी पत्नियों पर संदेह है इसलिए उन्होंने अपने दार्शनिक सिद्धांत उन्हें नहीं बताए कि कहीं वे इन्हें कुपात्रों को न बता दें।

उन्नीसवीं पहेली

पितृत्व से मातृत्व की ओर– ब्राह्मणों को इससे क्या मिला?

हिंदू विधान पर अपने शोध प्रबंध में मेयने (Mayne) ने सगोत्रता विधान में कुछ विसंगतियां बताई हैं। उनका कहना है–

> "हिंदू विधान में इतनी विसंगतियां और कहीं नहीं हैं, जितनी पारिवारिक संबंधों के प्रसंग में हैं। इससे न केवल प्राचीन व्यवस्था और आधुनिक व्यवस्था के बीच में निरंतरता पूरे तौर पर भंग हो गई है, बल्कि प्राचीन व्यवस्था की विभिन्न प्रणालियों के बीच प्रत्यक्ष टकराव भी दिखाई देता है। उसमें एक उत्तराधिकार का विधान है, जिसमें अविरल चौदह पीढियों तक पुरुष पूर्वज की संभावना का अनुमान किया जाता है। साथ ही एक कुटुंब-विधान है, जिसमें विवाह की कुछ स्वीकृत पद्धतियां शील हरण औंर बलात्कार का ही एक रूप हैं। यहां बारह प्रकार के पुत्रों को मान्यता है और इनमें से अधिकांश का पिता से कोई रक्त-संबंध नहीं है।"

इन विसंगतियों की मौजूदगी की बात वास्तव में सच है, जो हिंदू-विवाह तथा पितृत्व विधान का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाएगी।

हिंदू विधान में आठ प्रकार के विवाहों को मान्यता है। उनके नाम इस प्रकार हैं–

1. ब्राह्म, 2. दैव, 3. आर्ष, 4. प्राजापात्य, 5. आसुर, 6. गांधर्व, 7. राक्षस और 8. पैशाच।

ब्राह्म विवाह के अनुसार किसी वेद ज्ञाता को वस्त्रालंकृत पुत्री उपहार में दे दी जाती थी, जिसे उसका पिता स्वेच्छा से आमंत्रित करके उसकी सम्मानपूर्वक अगवानी करता था।

दैव-विवाह वह था जब कोई पिता अपने घर यज्ञ करने वाले पुरोहित को दक्षिणास्वरूप अपनी पुत्री दान कर देता था।

आर्ष विवाह के अनुसार वर को वधू के लिए उसके पिता को कुछ पैसा देना होता है।

प्राजापात्य विवाह का अर्थ है, वर द्वारा वधू के पिता से पुत्री प्रदान करने का आग्रह। प्राजापात्य और ब्राह्म विवाह में अंतर यह था कि एक में पिता द्वारा पुत्री उपहारस्वरूप दे दी

जाती थी। किंतु दूसरे में इसके लिए आग्रह करना होता था। आसुर विवाह वह था, जब वर अपनी होने वाली पत्नी के पिता और उसके संबंधियों को अपनी सामर्थ्य भर संपत्ति देता था और पुत्री को भी धन दिया जाता था। आर्ष और आसुर विवाह में कोई अंतर नहीं था। दोनों में पुत्री बेची जाती थी। अंतर मात्र इतना था कि आर्ष में पुत्री का मूल्य निश्चित किया जाता था, जबकि आसुर विवाह में मूल्य निश्चित नहीं किया जाता था।

गांधर्व विवाह में अधार्मिक तथा इन्द्रिय सुख हेतु परस्पर सहमति से विवाह होता था। राक्षस विवाह उसे कहते थे जब किसी कन्या को वर-पक्ष वाले बरबस उठा ले जाते थे। जब वह सहायता के लिए रोती-चिल्लाती थी, तो उसका घर ध्वस्त करा दिया जाता और उसके परिजनों और उनके मित्रों को युद्ध में आहत कर दिया जाता था या उन्हें मार दिया जाता था।

पैशाच विवाह का अर्थ है किसी कन्या के साथ उस समय बलात्कार करना, जब वह सोई हुई हो या उसे बहुत नशीली शराब पिलाई गई हो या उसकी बुद्धि का हरण कर लिया गया हो।

हिंदू विधान के अनुसार तेरह प्रकार के पुत्र होते थे। 1. औरस, 2. क्षेत्रज, 3. पुत्रिका पुत्र, 4. कानीन, 5. गुह्यज, 6. पौनर्भव, 7. सहोढ, 8. दत्तक, 9. कृत्रिम, 10. क्रीत, 11. अपविद्ध, 12. स्वयंदत्त, और 13. निषाद।

औरस पुत्र वे होते थे, जिन्हें कोई पुरुष अपनी वैध पत्नी से पैदा करता था।

"पुत्रिकापुत्र" से आशय है, पुत्री से उत्पन्न पुत्र। इसका महत्त्व यह है कि इस प्रथा के अनुसार कोई पिता, जिसका अपना पुत्र नहीं होता था, वह अपनी पुत्री से किसी व्यक्ति द्वारा संभोग कराकर पुत्र उत्पन्न कराता था। यदि इस शारीरिक संबंध के कारण उस कन्या को पुत्र प्राप्त हो जाता था, तो वह बालक पुत्री का पुत्र कहा जाता है और वह लड़की के बाप का पुत्र माना जाता था। व्यक्ति को यह अधिकार प्राप्त था कि वह अपनी पुत्री का विवाह कर देने के पश्चात भी पुत्र प्राप्ति हेतु उसे विवश कर सकता था कि उसकी पुत्री उसके द्वारा नियत पुरुष के साथ संभोग करे। इसी कारण यह चेतावनी दी जाती थी कि उस कन्या के साथ विवाह न किया जाए, जिसके भाई न हों।

क्षेत्रज के शब्दार्थ और भावार्थ समान हैं। इसका अर्थ है- क्षेत्र से उत्पन्न पुत्र। क्षेत्र का अर्थ है, पत्नी। हिंदू आदर्शों के अनुरूप स्त्री खेत के समान है और पति उस खेत का स्वामी है। यदि पति की मृत्यु हो जाती थी अथवा वह जीवित तो होता था, परंतु नपुंसक होता था अथवा उसे असाध्य रोग होता था तो उसका भाई या अन्य सपिंड व्यक्ति उससे पुत्र उत्पन्न कर सकता था। इस प्रथा को "नियोग" कहते थे। इस प्रकार जो पुत्र पैदा होता था, वह "क्षेत्रज" कहलाता था।

यदि कन्या अपने पिता के घर अवैध संबंधों के कारण गर्भवती हो जाती और किसी पुत्र को जन्म देती और यदि फिर उसका विवाह हो जाता तो विवाह-पूर्व जन्मे पुत्र पर उसके पति का अधिकार हो जाता था, और इस तरह उत्पन्न बालक "कानीन" कहलाता था।

"गुह्यज" वे पुत्र होते थे, जब यह संदेह होता था कि पुत्र अनाचार का परिणाम है या उस स्त्री के वैध पति की संतान है। वह इसी कारण 'गुह्यज' कहलाता था क्योंकि उसका पिता संदिग्ध था।

"सहोढ" वे पुत्र होते थे, जब कोई कन्या अपने विवाह के समय गर्भवती होती थी और यह निश्चय नहीं होता था कि पुत्र उसके पति का है जिसके उस कन्या के साथ पहले से ही शारीरिक संबंध होते थे अथवा वह किसी अन्य व्यक्ति का बीज है। परंतु यह निश्चित था कि "सहोढ" उस गर्भवती स्त्री से उस व्यक्ति का उत्पन्न पुत्र माना जाता था, जिसके साथ उस कन्या का विवाह होता था। "पौनर्भव" उस स्त्री का पुत्र है जिसे उसके पति ने त्याग दिया हो और वह अन्य के साथ सहवास के पश्चात् पुनः अपने घर आ गई हो। इससे ऐसी स्त्री के पुत्र का भी बोध होता है जो एक नपुंसक, अस्पृश्य, अथवा पागल या मृत पति के बाद दूसरा पति चुन लेती है।

"पारशव"[1] किसी ब्राह्मण द्वारा शूद्र नारी से उत्पन्न किए पुत्र को कहते थे। शेष पुत्र गोद लिए गए पुत्र होते थे जिन पर पितृत्व अधिकार होता था।

"दत्तक" ऐसा पुत्र है, जिसे उसके माता-पिता किसी को दे देते थे। उसे प्राप्तकर्ता का पुत्र माना जाता था।

"कृत्रिम" पुत्र का अर्थ है केवल प्राप्तकर्ता की इच्छा से प्राप्त पुत्र। 'क्रीत' ऐसा पुत्र, जिसे उसके अभिभावकों से क्रय किया जाता था।

"अपविद्ध" ऐसा पुत्र है जिसका उसके जनक परित्याग कर दें और पुनः गोद ले लें और अपना पुत्र मान लें।

"स्वयंदत्त" ऐसा पुत्र है जिसे उसके जनक त्याग दें और वह किसी से यह कहकर आश्रय मांगे कि "मुझे अपना पुत्र बना लो"। यदि स्वीकार कर लिया जाता है तो वह स्वीकार करने वाले का पुत्र माना जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि विवाह की कई प्रणालियां शीलहरण और बलात्कार का ही एक रूप है। कई पुत्रों का अपने पिता से कोई रक्त संबंध नहीं होता था। मनु के समय तक ये विभिन्न प्रकार के विवाह और पुत्र वैध माने जाते थे और मनु ने जो परिवर्तन किए हैं, वे मामूली-से हैं। जहां तक विवाहों का संबंध है मनु[2] ने उन्हें अवैध घोषित नहीं किया। उन्होंने मात्र इतना ही कहा है कि आठ में से प्रथम छः ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापात्य, आसुर, गंधर्व ब्राह्मण के लिए वैध है; आसुर, गान्धर्व, पैशाच और राक्षस, क्षत्रिय के लिए वैध हैं और तीन-आसुर, गंधर्व और पैशाच-वैश्य और शूद्र के लिए वैध हैं।

---

1. *उसमें निषाद भी है। जीमूतवाहन पारासव और निषादों को भिन्न मानता है। पारशव शूद्र कन्या से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न है और निषाद ब्राह्मण द्वारा शूद्र पत्नी से उत्पन्न है।*
2. मनु, *3.23*

इसी प्रकार वे बारह प्रकार के पुत्रों में से किसी की भी श्रेणी अलग नहीं करते। इसके विपरीत वह उन्हें परिजन (बांधव) स्वीकार करते हैं। उन्होंने मात्र इतना परिवर्तन किया है कि उत्तराधिकार-नियम को बदल दिया है और उनके दो वर्ग कर दिए—1. उत्तराधिकारी (दायाद) तथा परिजन (बांधव), और 2. परिजन (बांधव), किंतु उत्तराधिकारी (दायाद) नहीं। वह कहते हैं[1] :

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट् ॥ 159 ॥

अर्थ : *औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढ़ोत्पन्न और अपविद्ध ये छः प्रकार के पुत्र पिता के धन के भागी और बांधव गिने जाते हैं।*

कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
स्वयं दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः ॥ 160 ॥

अर्थ : *कानीन, सहोढ़, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और शौद्र (पारशव) ये छः प्रकार के पुत्र दायके भागी (दायाद) नहीं होते, केवल बांधव कहलाते हैं।*

यद्येकरिक्थिनौ स्यातामौरसक्षेत्रजौ सुतौ।
यस्य यत्पैतृकं रिक्थं स तद्गृह्णीत नेतरः ॥ 162 ॥

अर्थ : *एक पुरुष के औरस और क्षेत्रज दो प्रकार के पुत्र एक धन के भागी हो जाए, तो जिसके बाप का धन है वह उसे ले, दूसरा क्षेत्रज न ले।*

एक एवौरसः पुत्रः पित्र्यस्य वसुनः प्रभुः।
शेषाणामानृशंस्यार्थं प्रदद्यात्तु प्रजीवनम् ॥ 163 ॥

अर्थ : *केवल औरस पुत्र ही पितृ धन का अधिकारी है, परंतु वह क्षेत्रज आदि शेष पुत्रों को दोष निवृत्ति के लिए भोजन-वस्त्र आदि दे।*

सगोत्रता विधान का एक और अंग है, जिसमें अनेक बदलाव किए गए हैं लेकिन जिसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह है बालक का वर्ण निर्धारण। बालक का वर्ण क्या हो? उसे पिता का वर्ण मिलता है या माता का? मनु से पूर्व पिता का माना जाता था, माता के वर्ण का कोई महत्त्व नहीं था। इस संबंध में कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो इस शोध की पुष्टि करते हैं।

	पिता		माता		संतान	
क्र.	नाम	वर्ण	नाम	वर्ण	नाम	वर्ण
1.	शांतनु	क्षत्रिय	गंगा	अज्ञात	भीष्म	क्षत्रिय
2.	पराशर	ब्राह्मण	मत्स्यगंधा	मछेरा	कृष्णद्वैपायन	ब्राह्मण
3.	वसिष्ठ	ब्राह्मण	अक्षमाला	—	पायन	—

1. मनु, 9.159-60: 162-63: पृ. 359-60

4.	शांतनु	क्षत्रिय	मत्स्यगंधा	मछेरा	विचित्रवीर्य	क्षत्रिय
5.	विश्वामित्र	क्षत्रिय	मेनका	अप्सरा	शकुंतला	क्षत्रिय
6.	ययाति	क्षत्रिय	देवयानी	ब्राह्मण	यदु	क्षत्रिय
7.	ययाति	क्षत्रिय	शर्मिष्ठा	आसुरी	द्रुह्यु	क्षत्रिय
8.	जरत्कारु	ब्राह्मण	जनत्कारी	नाग	आस्तीक	ब्राह्मण

मनु क्या करते हैं? संतान के वर्ण-निर्णय संबंधी विधान में मनु ने जो बदलाव किए वे क्रांतिकारी हैं। मनु[1] ने निम्नांकित नियम निर्धारित किए।

सर्ववर्णेषु तुल्यासु पत्नीष्वक्षतयोनिषु।
आनुलोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एव ते ॥ 5 ॥

अर्थ *: चारों वर्णों में विवाहिता, सवर्णा, अक्षतयोनि स्त्रियों में जो ब्राह्मण से ब्राह्मणी में, क्षत्रिय से क्षत्रिया में, इस क्रम से पैदा हुए हैं, उन्हें माता-पिता की जाति का ही जानना चाहिए।*

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान्।
सदृशानेव तानाहुर्मातृदोषविगर्हितान् ॥ 6 ॥

अर्थ *: अपने से अनन्तर वर्ण (एक वर्ण नीचे की) की स्त्रियों में द्विजों ने जो पुत्र उत्पन्न किए हों (जैसे ब्राह्मण ने क्षत्रिया में, क्षत्रिय ने वैश्या में) वे पिता के समान जाति वाले होते हैं और माता के (हीन वर्णवाली होने से) दोष से निन्दित होते हैं।*

पुत्रा येऽनन्तरस्त्रीजाः क्रमेणोक्ता द्विजन्मनाम्।
ताननन्तरनाम्नस्तु मातृदोषात्प्रचक्षते ॥ 14 ॥

अर्थ *: जो पुत्र अनन्तर वर्ण की स्त्रियों में क्रम से उत्पन्न हुए द्विजातियों के कहे हैं उनको माता के दोष से जिस अनन्तर वर्ण की स्त्रियों में पैदा हुए हों, उन स्त्रियों की ही जाति वाले कहते हैं (यद्यपि ये माता-पिता की जाति से भिन्न संकीर्ण जाति के होते हैं तो भी इनको माता की जाति वाले इसलिए कहा है कि उनके संस्कार माता की जाति के ही अनुसार होते हैं)।*

सजातिजानन्तरजाः षट् सुता द्विजधर्मिणः।
शूद्राणां तु सधर्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः ॥ 41 ॥

अर्थ *: तीनों द्विजातियों में सजातीय स्त्रियों में उत्पन्न हुए और अनन्तर वर्ण की स्त्रियों में अर्थात् अनुलोम विधि से ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिया और वैश्या में दो और क्षत्रिय से वैश्या में एक यों छः प्रकार के पुत्रों का उपनयन संस्कार होता है और जो पुत्र प्रतिलोम विधि से उत्पन्न होते हैं (सूत आदि) वे सब शूद्र के समान धर्म वाले होते हैं (इसलिए उनका उपनयन नहीं होता)।*

1. मनु, अध्याय 10, श्लोक 5, 6, 14 और 41 पृ. 402, 403, 404 और 412

मनु ने निम्नांकित भिन्नताएं नियत की हैं–

1. जहां पिता और माता समान वर्ण के हों।
2. जहां माता का वर्ण पिता से एक वर्ण निम्न हो, जैसे–ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय माता, क्षत्रिय पिता और वैश्य माता, वैश्य पिता और शूद्र माता।
3. जहां माता का वर्ण पिता से एकाधिक वर्ण नीचे हो, जैसे–ब्राह्मण पिता और वैश्य अथवा शूद्र माता और क्षत्रिय पिता तथा शूद्र माता।

पहली श्रेणी में संतान का वर्ण पिता का वर्ण होगा। दूसरी श्रेणी में भी पिता का वर्ण ही मिलेगा। परंतु तीसरी श्रेणी में उन्हें पितृ वर्ण नहीं मिलेगा। मनु ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि पिता का वर्ण नहीं मिलेगा, तो फिर कौन-सा वर्ण मिलेगा। लेकिन मनु के सभी भाष्यकार मेधातिथि, कुल्लूक भट्ट, नारद और नंदपण्डित स्पष्ट कहते हैं कि ऐसी संतानों को माता का वर्ण दिया जाएगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनु ने पितृवर्ण (पितृसवर्ण) को मातृवर्ण (मातृसवर्ण) में परिवर्तित कर दिया।

यह एक महान क्रांतिकारी बदलाव है। खेद है कि इस बात को बहुत कम लोग समझ पाए हैं कि प्रचलित विवाह पद्धतियों, पुत्रों की श्रेणियों, अनुलोम विवाह के प्रचलन और पितृवर्ण के सिद्धांत के कारण वर्ण-व्यवस्था एक मुक्त व्यवस्था बनी रही जबकि ब्राह्मणों की इच्छा थी कि वह बंद पद्धति बन जाए। कहा जा सकता है कि वर्ण-व्यवस्था में अनेक खामियां थीं। वर्ण-व्यवस्था से विवाह की कई पद्धतियों का कोई संबंध नहीं था। राक्षस-पैशाच विवाहों में, इस बात की हर संभावना है कि इनमें पुरुष निम्न वर्ण के थे और स्त्रियां उच्च वर्णों से संबंधित थीं।

पुत्रत्व विधान में भी अत्यंत दोष थे क्योंकि शूद्रों के पुत्र ब्राह्मण बन सकते थे। जैसे गुह्यज, सहोढ, कानीन। कौन कह सकता है कि ये शूद्र से अथवा ब्राह्मण से या क्षत्रिय या वैश्य से उत्पन्न हुए हैं? ये संदेह अनुलोम प्रथा में संभव थे, जिसमें यह कानूनी मान्यता थी जो पितृवर्ण प्रथा से संबद्ध थी, जिसके अनुसार यह गुंजाइश थी कि निम्न वर्ण के व्यक्ति उच्च वर्ण में आ जाएं। कोई शूद्र कभी ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य नहीं बन सकता था किंतु किसी शूद्र स्त्री की संतान वैश्य बन सकती थी यदि वैश्य का उससे विवाह हो जाता। इसी प्रकार वह संतान क्षत्रिय और ब्राह्मण भी बन सकती थी यदि उसकी शादी क्षत्रिय या ब्राह्मण से हो जाती। निम्न श्रेणी का उच्च श्रेणी में मिश्रण या संयोग एक सकारात्मक और निश्चित प्रक्रिया थी, चाहे वह अप्रत्यक्ष माध्यम से ही क्यों न थी। यह प्राचीन व्यवस्था का परिणाम था। इसका दूसरा परिणाम यह था कि हर वर्ण मिश्रित और मिले-जुले लोगों का समुदाय बन जाता था। ब्राह्मण वर्ग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समुदाय की स्त्रियों से उत्पन्न संतानें हो सकती थीं और उन्हें ब्राह्मणों को प्राप्य अधिकार प्राप्त थे। क्षत्रिय समुदाय में क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्त्रियों से उत्पन्न संतानें हो सकती थीं और उन्हें क्षत्रियों के अधिकार प्राप्त

होते थे। इसी प्रकार वैश्य समुदाय में वैश्य तथा शूद्र स्त्रियों से उत्पन्न संतानें वैश्य समझी जाती थीं और उन्हें वही अधिकार प्राप्त थे।

मनु ने जो बदलाव किए, वे हिंदुओं के कुछ मौलिक आदर्शों के विरुद्ध थे। पहली बात तो यह है कि उसमें हिंदुओं के क्षेत्र-क्षेत्रज विधान का ही विरोध करता है। संतान के संपत्ति के अधिकार से संबंधित इस विधान के अनुसार संतान का मालिक उसकी माता का औपचारिक (कानूनन) पति है, वास्तविक पिता नहीं। इस बात को मनु ऐसे कहते हैं[1]:

"इस प्रकार वे पुरुष, जिनका किसी स्त्री से वैवाहिक संबंध नहीं है, परंतु किसी ऐसी स्त्री के गर्भ में उनका बीज है जो किसी अन्य की पत्नी है तो संतान पर पति का अधिकार रहेगा। परंतु बीज डालने वाला उससे कोई लाभ नहीं उठा सकता, जब तक क्षेत्र के स्वामी और बीज डालने वाले के बीच कोई सहमति न हो। स्पष्ट रूप से जमीन का स्वामी स्त्री का पति है, क्योंकि भूमि का महत्त्व बीज से अधिक है।"

यही कारण है कि बारह प्रकार के पुत्रों का अधिकार नियत किया गया।

यह बदलाव पुत्रों पर पिता के अधिकार के नियम (Patria potestas) के विरुद्ध था। हिंदू परिवार रोम की भांति पितृ सत्तात्मक हैं। दोनों समाजों में पिता को परिवार के सदस्यों पर अधिकार है। मनु इससे अवगत थे और उन्होंने उसे खूब स्वीकार किया। हिंदू पिता के अधिकारों की परिभाषा करते हुए मनु कहते हैं—

> "तीन व्यक्ति, पत्नी, पुत्र और दास सामान्यतः किसी संपत्ति के स्वामी नहीं हो सकते। जो संपत्ति उन्होंने अर्जित की हो, उसका भी स्वामी वही है जिससे वे संबद्ध हैं।"

वह परिवार के प्रमुख की—अर्थात् पिता की है। नियम यह भी था कि पिता पुत्र द्वारा अर्जित संपत्ति का स्वामी है। पितृसत्तात्मक विधान में बदलाव का अर्थ है पिता की निश्चित हानि।

मनु ने पितृ-सावर्ण्य को मातृ-सावर्ण्य में क्यों बदल दिया?

---

1. मेयने—हिंदू ला, पृ. 83

बीसवीं पहेली

कलिवर्ज्य अथवा पाप को पापकर्म घोषित किए बिना स्थगन की ब्राह्मणवादी कला

ब्राह्मणों के कलिवर्ज्य नामक सिद्धांत के बारे में बहुत कम लोगों ने सुना है। कलियुग के बारे में अन्य ब्राह्मणवादी सिद्धांतों से इसको मिलाकर भ्रमित नहीं होना चाहिए। कलिवर्ज्यों की सूची में कुछ प्रथाओं और व्यवहारों को गिनाया गया है जो अन्य युगों में व्यावहारिक थे लेकिन कलियुग में उनके अनुपालन पर पाबंदी है। इन अनुदेशों के प्रसंग विभिन्न पुराणों में बिखरे मिलते हैं, परंतु आदित्य पुराण में उन्हें संहिताबद्ध[1] करके संग्रहीत कर दिया गया है। कलिवर्ज्य प्रथाएं निम्नांकित हैं–

1. विधवा से पुत्र उत्पन्न करने हेतु पति के भाई की नियुक्ति।
2. किसी (विवाहित) स्त्री का पुनर्विवाह (उसका जिसका विवाह पक्का नहीं हुआ) (अथवा उसका जिसका विवाह पक्का हो गया था) दूसरे पति के साथ पहले पति की मृत्यु के बाद।
3. तीनों द्विज वर्णों के बीच अन्य वर्णों की कन्याओं से विवाह।
4. आततायी ब्राह्मण का सीधे युद्ध में वध।
5. किसी ऐसे द्विज से व्यवहार (उसके साथ खान-पान जैसा व्यवहार) जो समुद्र यात्रा पर जाता है, चाहे उसने प्रायश्चित भी क्यों न कर लिया हो,
6. सत्र (सहपाठी) का उपनयन कराना।
7. जल हेतु कमंडलु लेकर चलना।
8. लंबी यात्रा पर जाना।
9. गोमेध में गाय की बलि देना।
10. सौत्रामणी यज्ञ में मद्यपान।
11. और 12 अग्निहोत्र के पश्चात बचे हुए प्रसाद को ग्रहण करने हेतु उसमें प्रयुक्त कलछी को चाटना और बाद में अग्निहोत्र में उस कलछी का प्रयोग करना।
13. शास्त्रानुसार वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश।

---

1. *मैंने उन्हें महामहोपाध्याय काणे के शोध-पत्र से लिया है।*

14. (जन्म और मृत्यु होने पर) व्यवहार और वैदिक ज्ञान के आधार पर अशुचिता की अवधि घटाना।
15. प्रायश्चित स्वरूप मौत का विधान ब्राह्मणों के लिए।
16. नैतिक पाप (स्वर्ण) चोरी को छोड़कर और पापियों (महापातकों) के साथ संपर्क होने पर (गुप्त) प्रायश्चित।
17. वर, अतिथि और पितरों को मंत्रों के साथ जानवरों के मांस की भेंट।
18. औरस तथा दत्तक पुत्र के अतिरिक्त अन्य को पुत्रों के रूप में स्वीकार करना।
19. उन व्यक्तियों के साथ प्रायश्चित के उपरांत भी संपर्क, जिन्होंने उच्च जाति की महिला के साथ संभोग किया है।
20. यदि किसी वृद्ध अथवा सम्मानित व्यक्ति की पत्नी ने परपुरुष से संभोग किया है और उसके लिए वह प्रताड़ित की गई है, उसका परित्याग।
21. किसी एक व्यक्ति के लिए दूसरे का वध।
22. जूठन छोड़ना।
23. जीवन निर्वाह के लिए (पैसा लेकर) किसी देवता विशेष की मूर्ति की पूजा का संकल्प।
24. मृत्यु के उपरांत अग्निक्रिया के अधीन फूल चुनने के पश्चात उन व्यक्तियों का स्पर्श।
25. ब्राह्मण द्वारा पशु की वास्तविक बलि।
26. ब्राह्मण द्वारा सोम पादप का विक्रय।
27. छह बार का भोजन अथवा छ समय अर्थात तीन दिन तक भूखा रहने के उपरांत भी ब्राह्मण का शूद्र से भोजन ग्रहण करना।
28. ब्राह्मण गृहस्थ का अपने शूद्र वर्ण के दास के हाथ से बना भोजन ग्रहण करना, गोशाला में और उन व्यक्तियों के हाथ का भोजन करना, जो बटाई पर उसकी खेती करते हैं।
29. बहुत लंबी तीर्थ यात्रा पर जाना।
30. गुरु पत्नी के साथ वैसा व्यवहार जैसा स्मृतियों में गुरु के लिए निर्धारित है।
31. ब्राह्मण द्वारा विपरीत परिस्थितियों में गलत कार्यों द्वारा जीवनयापन के लिए कल के लिए भोजन की परवाह न करना।
32. जातकर्म होम के समय ब्राह्मण द्वारा अणि (अग्नि उत्पन्न करने के लिए दो लकड़ियों के खंड) स्वीकार करना, जिसके अनुसार शिशु के जातकर्म से उसके पाणिग्रहण तक के संस्कार कराने का कार्यक्रम हो।
33. ब्राह्मण द्वारा सतत यात्रा।
34. बांस निर्मित फूंकनी के बिना आग में मुंह से फूंक मारना।

35. शास्त्रों में वर्णित प्रायश्चित के पश्चात भी किसी ऐसी स्त्री को जाति में सम्मिलित होने की स्वीकृति देना, जो बलात्कार से कलंकित हो चुकी हो।
36. संन्यासी द्वारा सभी वर्णों (शूद्रों सहित) से भिक्षा ग्रहण करना।
37. जमीन से निकाले जाने वाले जल का पान करने हेतु दस दिन तक प्रतीक्षा।
38. अध्यापक को दीक्षांत पर (मांगने पर) शास्त्रानुसार दक्षिणा।
39. ब्राह्मण और अन्यों के लिए शूद्रों से भोजन बनवाना।
40. वृद्धों द्वारा चट्टान से अथवा आग में कूदकर आत्महत्या।
41. जूठे पानी का सम्मानित व्यक्तियों द्वारा आचमन, चाहे वह गाय का ही जूठा क्यों न हो?
42. पिता और पुत्र के मध्य झगड़े में साक्षी को दंडित करना।
43. संन्यासी जहां रात हो जाए, वहीं शयन करे।

इस कलिवर्ज्य संहिता के विषय में यह आश्चर्य की बात है कि इसके महत्त्व को पूर्ण समझा नहीं गया। इसे उन वर्जित कार्यों की सूचीमात्र समझा गया जो कलियुग में निषिद्ध हैं। परंतु वर्जित कार्यों की सूची के पीछे और कुछ भी है। इसमें संदेह नहीं कि कलिवर्ज्य संहिता में अनेक कार्य वर्जित हैं। परंतु प्रश्न यह है कि क्या इन कार्यों को अनैतिक माना गया है, निंदित पापकर्म अथवा समाज में हानिकर? इसका उत्तर है, नहीं। प्रश्न यह है कि यदि वर्जित है तो निंदित् क्यों नहीं है? यही कलिवर्ज्य संहिता की पहेली है। बिना निंदित बताए प्राचीनकाल के इन व्यवहारों को वर्जित घोषित करने की प्रणाली प्राचीन प्रणाली के विपरीत है। एक उदाहरण लेते हैं। आपस्तंब धर्म-सूत्र में संपूर्ण संपत्ति ज्येष्ठ पुत्र को ही दिया जाना वर्जित है। परंतु वह इसकी निंदा करता है। ब्राह्मणों ने यह प्रणाली क्यों अपनाई कि वर्जित है किंतु निंदित नहीं। इसके पीछे कोई विशेष कारण होना चाहिए। वह कारण क्या है?

परिशिष्ट : 1

वर्णाश्रम-धर्म की पहेली

वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म के दो सिद्धांतों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, जिन दोनों से मिलकर वर्णाश्रम-धर्म बनता है और जो हिंदुत्व का मूल आधार है। इन विचित्र सिद्धांतों पर प्राचीन लेखकों के विचार जानना ज्ञानवर्धक ही होगा।

I

शुरुआत वर्ण-धर्म से करते हैं। बेहतर होगा कि वेदों में व्यक्त विचारों को सबसे पहले एक स्थान पर संकलित किया जाए।

इस विषय पर ऋग्वेद के दसवें मंडल में 90वें सूक्त को देखना है। वह इस प्रकार है–

1. विराट पुरुष के हजार शीर्ष, हजार आंखें और हजार चरण हैं, वह धरती को चारों ओर से घेरकर उससे दस अंगुल ऊपर स्थित है।
2. जो कुछ हो चुका है अथवा होने वाला है, वह सब विराट पुरुष ही है, वह अमृत का स्वामी है, क्योंकि वह कारण अवस्था छोड़कर जगत अवस्था को धारण करता है, इस प्रकार प्राणी उसको भोगते हैं।
3. यह सारा ब्रह्मांड विराट पुरुष की महिमा है। वे स्वयं इससे बड़े हैं। सभी प्राणी उसके चौथाई अंश हैं। इनके तीन अमृत अंश दिव्यलोक में रहते हैं।
4. तीन चरणों वाले विराट पुरुष ऊपर उठे, उनका केवल एक चरण यहां स्थित रहा। इसके पश्चात वे भोजन करने वाली एवं भोजन न करने वाली वस्तुओं के रूप में व्याप्त हुए।
5. उस आदि पुरुष से ब्रह्मांडरूपी विराट उत्पन्न हुआ। ब्रह्मांडरूपी विराट से अनेक पुरुष उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने के पश्चात वह ब्रह्मांड से बड़ा हुआ। इसके बाद उसने भूमि बनाई और भूमि से जीवों का शरीर बनाया।
6. जब पुरुषरूप काल्पनिक हवि से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, उस समय वसंत ऋतु को घी, ग्रीष्म को काष्ठ तथा शरद ऋतु को हवि बनाया।
7. सारी सृष्टि से पहले उत्पन्न पुरुष को यज्ञसाधन के रूप में बलि-पशु बनाकर देवों ने काल्पनिक यज्ञ किया। इस साधन में देवों, साध्यों और ऋषियों ने यज्ञ किया।

8. जिस काल्पनिक यज्ञ में उस सर्वात्मक पुरुष का हवन किया जाता है, उससे दही से मिला हुआ घी उत्पन्न हुआ। उसी से वायुदेव से संबंधित जंगली और ग्रामीण पशु भी उत्पन्न हुए।
9. उस सर्वात्मक पुरुष के काल्पनिक होम वाले यज्ञ से ऋक् और साम उत्पन्न हुए। उसी से छंद उत्पन्न हुए और यजु की उत्पत्ति हुई।
10. उसी यज्ञ से घोड़े उत्पन्न हुए, जिनके मुंह में ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत थे। उसी से गाएं, बकरियां और भेड़ें उत्पन्न हुईं।
11. प्रजापति के प्राणिरूप देवों ने जब विराट पुरुष को संकल्प से उत्पन्न किया, तब उन्हें कितने प्रकार से उत्पन्न किया? उनका मुख, भुजाएं, हृदय और चरण कौन से कहलाते हैं?
12. ब्राह्मण इनका मुख हुआ। क्षत्रिय को भुजाएं बनाया गया। इनकी दोनों जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।
13. पुरुष के मन से चंद्रमा, आंखों से सूर्य, मुख से इंद्र व अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए।
14. पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, शीश से द्योलोक, चरणों से भूमि व कान से दिशाएं और लोक उत्पन्न हुए।
15. देवों ने जिस समय काल्पनिक यज्ञ का विस्तार करते हुए विराट पशु को बलि-पशु के रूप में बांधा, उस समय यज्ञ की सात परिधियां और इक्कीस समिधाएं बनाई गईं।
16. देवों ने मानसिक यज्ञ के द्वारा भौतिक यज्ञ विस्तृत किया, उससे सभी विकारों को धारण करने वाले धर्म सबसे पहले उत्पन्न हुए। जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य एवं देव हैं, उसे उपासक महापुरुष प्राप्त करते हैं।

इस मंत्र वृंद का प्रचलित नाम पुरुष सूक्त है और यह जाति और वर्ण-व्यवस्था का शास्त्रीय सिद्धांत माना जाता है।

सबसे पहले तो यह देखना है कि अन्य किस वेद में वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की भांति मानी गयी है। विभिन्न वेदों की समीक्षा अगर इस दृष्टि से की जाए तो उसके अद्भुत परिणाम सामने आते हैं–

सामवेद की ऋचाओं में पुरुष सूक्त सम्मिलित नहीं किया गया है और न उसमें वर्ण-व्यवस्था की कोई व्याख्या दी गयी है।

यजुर्वेद में इस संबंध में अत्यधिक मतभेद है। हम शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद को अलग से देखते हैं। कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताओं में से दो–कठ संहिता और मैत्रायणी संहिता–में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का कोई उल्लेख नहीं है और न उन में वर्ण-व्यवस्था की कोई अन्य व्याख्या दी गई है। शक्ल यजुर्वेद की मात्र वाजसनेयी संहिता

ही ऐसी संहिता है, जिसमें पुरुष सूक्त है, परंतु इसमें मंत्रों का क्रम बदल गया है। साथ ही वाजसनेयी संहिता में एक नई और मौलिक व्याख्या दी गई है, जो पुरुष सूक्त से बिलकुल अलग है। पुरुष सूक्त में कहा गया[1] है–

> "उसने एक के साथ स्तुति की। प्राणी बने। प्रजापति राजा थे। उन्होंने तीन के साथ स्तुति की। ब्राह्मण की रचना हुई। ब्रह्मणस्पति राजा थे। उन्होंने पांच के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ उत्पन्न हुए। भूतानामूपति राजा थे। उन्होंने सात के साथ स्तुति की, सप्तऋषि उत्पन्न हुए। धात्री राजा थे। उन्होंने नौ के साथ स्तुति की, नितृगण उत्पन्न हुए। अदिति राजा थे। उन्होंने ग्यारह के साथ स्तुति की, ऋतुएं उत्पन्न हुईं। आर्तव राजा थे। उन्होंने तेरह के साथ स्तुति की, मास उत्पन्न हुए। वर्ष राजा था। उन्होंने पंद्रह के साथ स्तुति की, क्षत्रिय उत्पन्न हुआ। इंद्र राजा थे। उन्होंने सत्रह के साथ स्तुति की, पशु उत्पन्न हुए। बृहस्पति राजा थे। उन्होंने उन्नीस के साथ स्तुति की, शूद्र और अर्य (वैश्य) उत्पन्न हुए। दिवस और रात्रि शासक थे। उन्होंने इक्कीस के साथ स्तुति की, अविभाजित सूंडधारी पशु उत्पन्न हुए। वरुण राजा थे। उन्होंने तेईस के साथ स्तुति की, लघु पशु उत्पन्न हुए। पूषन् राजा थे। उन्होंने पच्चीस के साथ स्तुति की, वन्य जीव उत्पन्न हुए। वायु राजा थे (ऋ. वे. 10. 90.8); उन्होंने सत्ताईस के साथ स्तुति की, धरती और स्वर्ग विलग हुए। वसु, रुद्र और आदित्य उनसे विलग हो गए वे राजा थे। उन्होंने उन्तीस के साथ स्तुति की, वृक्ष उत्पन्न हुए। सोम राजा थे। उन्होंने इक्तीस के साथ स्तुति की, प्राणी उत्पन्न हुए। मास के पक्ष राजा थे। उन्होंने इक्तीस के साथ स्तुति की, विद्यमान पदार्थ शांत हो गए, प्रजापति परमेष्ठी राजा थे।"

अब कृष्ण यजुर्वेद पर आते हैं। इसमें केवल एक संहिता तैत्तिरीय संहिता कहलाती है। इसमें दो व्याख्याएं हैं। प्रथम व्याख्या[2] वही है, जो वाजसनेयी संहिता में मूलरूप में दी गई है। दूसरी व्याख्या इसकी अपनी है और यह वाजसनेयी संहिता में उल्लिखित नहीं है। वह इस प्रकार है–[3]

> "वह व्रात्य भावावेश से भर उठा तब राजन्य प्रकट हुआ।"
>
> "जिसके घर यह व्रात्य अतिथि रूप में आता है, उसे वह (राजा) स्वयं से श्रेष्ठ जानकर उसका सम्मान करे। ऐसा करके वह राजपद अथवा अपनी सत्ता पर आघात नहीं करता। उससे ब्राह्मण प्रकट हुआ और क्षत्रिय भी। उन्होंने कहा हम किस में प्रवेश करें आदि।"

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 18*
2. *खंड 4 देखें, प्रपाठक 3, श्लोक 10*
3. *वही 1, पृ. 22*

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाजसनेयी संहिता में ऋग्वेद का पुरुष सूक्त सन्निहित है जबकि तैत्तिरीय संहिता में इसका उल्लेख हटा दिया गया है।

अथर्ववेद में पुरुष सूक्त तो है लेकिन मंत्रों का क्रम ऋग्वेद से अलग है। साथ ही यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता और तैत्तिरीय संहिता की तरह अथर्ववेद पुरुष सूक्त से संतुष्ट नहीं है। इसकी दूसरी व्याख्या है। यह उतनी पूर्ण और सर्वमान्य नहीं, जैसा पुरुष सूक्त है, किंतु इसकी अपनी विशेषता है[1] :

"सर्वप्रथम ब्रह्मन् उत्पन्न हुआ। उसके दस सिर और दस मुख थे। उसने सर्वप्रथम सोम पान किया, उसने विष को प्रभावहीन किया।"

"देवता राजन्य से भयभीत थे, जो गर्भ में था। जब वह गर्भ में था, उन्होंने उसे बांध दिया। परिणामस्वरूप यह राजन्य बंधनयुक्त उत्पन्न हुआ। यदि वह अजन्मा निर्बंध होता तो वह अपने शत्रुओं का वध करता। जो कोई अन्य, चाहे कि वह सजन्य बंधनमुक्त उत्पन्न हो और अपने शत्रुओं का हनन करता रहे तो वह ऐन्द्र-बृहस्पत्य आहुतियां दे। राजन्य के लक्षण इंद्र जैसे हैं और ब्रह्मन् बृहस्पति है। ब्रह्मन् के माध्यम से ही कोई राजन्य को बंधनमुक्त कर सकता है। स्वर्णबंध, एक उपहार, स्पष्ट रूप से उसे बेड़ियों से मुक्त करता है।"

केवल पुरुष सूक्त ही चार वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या ही नहीं करता बल्कि वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति की ओर संकेत करता है, जो वेदों में पाई जाती है। एक अन्य व्याख्या में उन व्यक्तियों का उल्लेख है, जो मनु की संतति हैं[2] : उनका निम्नांकित उद्धरण में उल्लेख है—

"प्रार्थनाएं और मंत्र पहले इंद्र की उपासना में उस उत्सव में संकलित हुए जिसे अथर्वन्, पिता मनु और दधीचि ने सुशोभित किया।"

"हे रुद्र! यज्ञ से संकट मोचन पिता मनु ने जो संपदा ग्रहण की, तेरे निर्देश में हमें वही सब प्राप्त हो।"

"जो प्राचीन मित्र दैवी शक्ति से संपन्न था। पिता मनु ने उसके प्रति देवों की सफलता के प्रवेश द्वार की भांति मंत्र रचे थे।"

"यज्ञ मनु है हमारे पालक पिता।"

"हे देवताओ! तुमने हमें उत्पन्न किया, पोषित किया और हमारे प्रति अनुनय किया, हमें पिता मनु के मार्ग से विचलित न करें।"

"वह (अग्नि) जो मनु की संतति के बीच देवताओं के उद्बोधक स्वरूप निवास करता है, वह इनका भी स्वामी है।"

"अग्नि, देवताओं और मनु की संतान सहित मंत्रोच्चारण से विविध यज्ञ कर रहे हैं।"

---

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 21-2

2. वही, पृ. 162-165

"तुम देव, वाज और ऋभुक्षण् जैसे देवों को प्रसन्न करते हो, मानुष की संतति के बीच शुभ दिन देवताओं के मार्ग से हमारे यज्ञ में आओ।"

"मानव गण ने यज्ञ में अग्नि उद्‌बोधक की स्तुति की।"

"लोक स्वामी अग्नि ने जब भी कृतज्ञ मानव के आवास को प्रदीप्त किया, उसने राक्षस गण को मार भगाया।"

अब हम ब्राह्मण साहित्य पर आते हैं और देखते हैं कि इस बारे में वे क्या कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या इस प्रकार है–[1]

"प्रजापति ने "भूः" जपते हुए पृथ्वी बनाई, "भुवः" के साथ वायु बनाई, 'स्वाहा' के साथ आकाश बनाया। ब्रह्मांड का इस संसार से सह-अस्तित्व है। अग्नि सर्वत्र व्यप्त है। "भूः" कहकर प्रजापति ने ब्राह्मण उत्पन्न किया "भुवः" से क्षत्रिय, "स्वाहा" से विष बनाया। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है। "भूः" कहकर प्रजापति ने स्वयं को उत्पन्न किया, "भुवः" कहकर संतति रची। "स्वाहा" से पशु उत्पन्न किए। यह विश्व स्व, संतति और पशु है। अग्नि सर्वत्र व्याप्त है।"

इसी शतपथ ब्राह्मण की ही एक अन्य व्याख्या है। यह निम्नांकित है–

"ब्रह्म (यहां व्याख्याकार के अनुसार वह अग्नि स्वरूप है और ब्राह्मण वर्ग का रूप है) पहले यह एकमात्र (ब्रह्मांड) थे। एक रहते उनकी वृद्धि नहीं हुई। उन्होंने शक्ति से एक श्रेष्ठ (क्षत्र) क्षेत्र उत्पन्न किया अर्थात् देवताओं में वे जिनमें शक्ति है (क्षत्राणि) इंद्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु, ईशान। इस प्रकार क्षत्र से श्रेष्ठ कोई नहीं। इसलिए ब्राह्मण राजसूय यज्ञ में क्षत्रिय से नीचे बैठते हैं। वह क्षत्रिय की गरिमा स्वीकार करता है। ब्रह्म, क्षत्रिय का उद्‌गम है। इस प्रकार यद्यपि राजा की श्रेष्ठता है, अंत में वह उद्‌गम हेतु ब्रह्म के आश्रय में जाता है। वह अति दयनीय बन जाता है। उसी के समान जिसकी श्रेष्ठता आहत होती है। 24. उसकी वृद्धि नहीं हुई। उसने विश् उत्पन्न किया। देवताओं की श्रेणी में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, मारुत आते हैं। 25. उसकी वृद्धि नहीं हुई उसने शूद्र वर्ण उत्पन्न किया। यह पृथ्वी पूषन् है। सो वह सभी का पोषण करती है। 26. उसकी वृद्धि नहीं हुई उसने शक्ति से एक विलक्षण रूप उत्पन्न किया; न्याय (धर्म) यह शासक है (क्षत्र) अर्थात् न्याय। इस प्रकार न्याय से श्रेष्ठ कुछ नहीं। इसलिए निर्बल बलवान से त्राण को न्याय मांगता है जैसे एक राजा से। यह न्याय सत्य है। परिणामस्वरूप, ऐसे व्यक्ति के विषय में वे कहते हैं–"यह सत्य बोलता है, क्योंकि उसमें दोनों गुण हैं।" 27. यह ब्रह्म क्षत्र, विश् और शूद्र हैं।

---

1. मूइर, द्वारा, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ.17 पर उद्‌धृत

"अग्नि के माध्यम से देवताओं में वह ब्रह्म बन जाता है, मनुष्यों में ब्राह्मण, (दैवी) क्षत्रिय के माध्यम से (मनुष्य) एक क्षत्रिय, दैवी वैश्य के माध्यम से एक (मनुष्य) वैश्य। दैवी शूद्र के माध्यम से एक (मनुष्य) शूद्र बनता है। अब वह देवों में अग्नि और मनुष्यों में ब्राह्मण है।"

तैत्तिरीय ब्राह्मण में निम्नांकित व्याख्याएं हैं। प्रथम इस प्रकार है–[1] :

"यह समस्त (ब्रह्मांड) ब्रह्म द्वारा रचित है। मनुष्य कहते हैं कि वैश्य ऋचाओं से बने हैं। वे कहते हैं, यजुर्वेद के गर्भ से क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है। सामवेद से ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह शब्द प्राचीनों ने प्राचीनों को कहा था[2]"

द्वितीय संदर्भ में मात्र दो वर्ण हैं–केवल ब्राह्मण और शूद्र। उसके अनुसार[3]–

"ब्राह्मण वर्ण देवों से प्रकट हुआ, शूद्र असुरों से"

शूद्रों की उत्पत्ति के संबंध में तीसरी व्याख्या निम्न प्रकार है[4]–

"वह शुष्क भोजन से स्वेच्छा से दुग्ध की आहुति दे। शूद्र दुग्ध की आहुति न दे, क्योंकि शूद्र (असत्) से जन्मा है। वे कहते हैं, जब शूद्र दूध चढ़ाता है, तो वह आहुति नहीं होती। शूद्र अग्निहोत्र में दूध से आहुति न दे, क्योंकि वे इसे शुद्ध नहीं करते। जब उसे छान लिया जाए, तब यह आहुति है।

अगली बात यह देखनी है कि वर्ण-व्यवस्था के संबंध में स्मृतियों की क्या व्याख्या है, उसका ज्ञान आवश्यक है। मनु ने अपनी स्मृति[5] में इस संबंध में क्या कहा है–

"उस (स्वयंभू) ने इच्छा करके और अपनी देह से विभिन्न जीवों की रचना के मनोरथ से पहले सागर की सृष्टि की और उसमें एक बीज छोड़ दिया।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ 9 ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ 10 ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ 11 ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा ॥ 12 ॥

---

1. *मूइर, खंड 1, पृ. 17*
2. *मूइर, खंड 1, पृ. 17*
3. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 21*
4. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 21*
5. *वही, पृ. 36-7*

अर्थ : *वह (बीज) सूर्य के समान कान्ति वाला सुवर्ण का अंडा हो गया और उसमें सब लोकों का कर्ता ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुआ। (9) जल को 'नार' कहते हैं क्योंकि जल नर (रूप परमात्मा) से उत्पन्न हुआ है। वही जल इस परमात्मा का प्रथम वासस्थान है। इस कारण परमात्मा 'नारायण' कहा गया है। (10) लोक और वेद में प्रसिद्ध, अव्यक्त (अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियों से ग्रहण के अयोग्य) नित्य, और सत् असत् का आत्मा ऐसा, कारण से उत्पन्न हुआ वह पुरुष "ब्रह्मा" इस नाम से संसार में विख्यात है। (11) उस भगवान ने, अंडे में एक वर्ष तक रहकर आप ही अपने ध्यान से उसके दो टुकड़े कर दिए। (12)*

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ 13 ॥

अर्थ : *उन (टुकड़ों) से स्वर्ग और पृथ्वी को बनाया और बीच में आकाश, आठों दिशाओं और जल का स्थिर स्थान अर्थात् समुद्र बनाया।*

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ 32 ॥

अर्थ : *वह प्रभु (ब्रह्मा) अपने देह के दो खंड करके आधे से पुरुष और आधे से स्त्री हो गया और उसने स्त्री में विराट् पुरुष को उत्पन्न किया।*

तपस्तप्त्वासृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ 33 ॥

अर्थ : *हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस विराट् पुरुष ने तप करके जिसको उत्पनन किया ऐसा इस सब जगत का रचने वाला मुझे जानो।*

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ 34 ॥

अर्थ : *मैंने प्रजा को उत्पन्न करने की इच्छा से बड़ा कठिन तप करके पहले प्रजापति दश महर्षियों को उत्पन्न किया।*

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ 35 ॥

अर्थ : *(वे हैं) मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद।*

एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन्भूरितेजसः।
देवान्देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ 36 ॥

अर्थ : *इन महातेजस्वी महर्षियों ने अन्य सात मनुओं को, देवताओं को तथा देवताओं के रहने के योग्य स्थानों को और बड़े तेजस्वी महर्षियों को उत्पन्न किया।*

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ 38 ॥

अर्थ : *बिजली, वज्र, मेघ, रोहित, (सीधे धनुष), और टेढ़े इन्द्रधनुष, उल्का, निर्घात (उत्पाद शब्द) केतु (पुच्छल तारे) तथा छोटे-बड़े तारों को रचा।*

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान्विविधांश्च विहङ्गमान्।
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ 39 ॥

अर्थ : *और किन्नर, वानर, मत्स्य और अनेक भांति के पक्षी, पशु, मृग, मनुष्य, सर्प और दोनों ओर दांत वाले पशु—इनको पैदा किया।*

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम्।
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ 40 ॥

अर्थ : *कृमि, कीट, पतंग, जूं, मक्खी, खटमल, सब डांस और मच्छर और अनेक प्रकार के स्थावर (लता, वृक्ष आदि) को पैदा किया।*

एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथाकर्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ 41 ॥

अर्थ : *इस भांति इस सारे स्थावर-जंगम को मेरी आज्ञा से इन महात्माओं ने तप के सहयोग से कर्म के अनुसार उत्पन्न किया।*

मनु ने अपनी 'स्मृति' में उन आधारभूत कारणों के विषय में एक अन्य मत प्रकट किया है जिनके परिणामस्वरूप मनुष्यों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया[1]—

> "अब मैं संक्षेप में बताता हूं कि किस क्रम से अपने गुणानुसार आत्माएं अपनी स्थिति को पहुंचती हैं। 40. सत्व-संपन्न आत्माएं देवता बन जाती हैं, रजोगुण युक्त मनुष्य बनती हैं; जबकि तमोगुण वाली वन्य-जंतु होती हैं—ये तीन गतियां हैं। 43. हाथी, अश्व, शूद्र और घृणित म्लेच्छ, सिंह, बाघ और सूकर की मध्यम अंधकारमयी स्थिति... 46. राजा, क्षत्रिय, राज-पुरोहित और वे व्यक्ति, जिनका मुख्य व्यवसाय वाद-प्रतिवाद है, वासना की मध्य स्थिति... 48. भक्त, तापस, ब्राह्मण, विमानारूढ़ देवतागण, तारामंडल और दैत्य सद्गुण की न्यूनतम स्थिति होते हैं। 49. अग्निहोत्री, ऋषि, देवतागण, वेद स्रष्टा ब्रह्मा, सदाचारी, महंत, अव्यक्तों में सर्वाधिक सदगुण होते हैं। 50. स्रष्टा, सदाचारी, महंत् और अव्यक्त ब्रह्म श्रेष्ठता की सर्वोच्च स्थिति है।

इन विचारों की रामायण और महाभारत में व्यक्त विचारों से तुलना की जाए तो अच्छा रहेगा। आओ हम रामायण और महाभारत से इस मत की

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 41

तुलना करें। रामायण में कहा गया है कि चारों वर्ण मनु की सन्तान है। वे दक्ष की पुत्री और कश्यप की पत्नी से उत्पन्न हुए हैं–

"राम के वचन सुनकर, उस पक्षी (जटायु) ने उन्हें अपने कुल के विषय में, स्वयं अपने विषय में, और समस्त प्राणियों की उत्पत्ति के विषय में बताया, 'पूर्वकाल में जो-जो प्रजापति हो चुके हैं, उन सबके विषय में प्रारंभ से बताता हूं, सुनो। सर्वप्रथम कर्दम हुए, फिर विकृत, शेष, संश्रय, पराक्रमी बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, शक्तिशाली क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, फिर विवस्वत, अरिष्टनेमि, और अंत में तेजस्वी कश्यप हुए। प्रजापति दक्ष की साठ पुत्रियां थीं। इनमें से आठ सुंदर कन्याओं को कश्यप ने अपनी पत्नी बनाया। इनके नाम हैं अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला। तब कश्यप ने प्रसन्न होकर इन कन्याओं से कहा, 'तुम मेरे समान पुत्रों को जन्म दोगी जो तीनों लोकों के संरक्षक होंगे।' अदिति, दिति, दनु और कालका तो कश्यप की बात से सहममत हो गईं; किंतु अन्य सहमत नहीं हुईं। अदिति ने तैंतीस देवताओं को जन्म दिया–इनमें आदित्य, वसु, रुद्र और दो अश्विनी कुमार थे। कश्यप की पत्नी मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के मनुष्यों को जन्म दिया। ब्राह्मणों का जन्म मुख से, क्षत्रियों का वक्ष से, वैश्यों का जंघाओं से और शूद्रों का जन्म पैरों से हुआ। वेद यही कहते हैं। अनला से पवित्र फल वाले समस्त वृक्ष उत्पन्न हुए।"

महाभारत की व्याख्या निम्न प्रकार से है[1]–

"महान ऋषियों के समान तेजस्वी प्रचेता के दस पुत्र गुणी और पवित्र थे; और उनके मुखों से निकलती अग्नि पहले महिमावानों को भस्म कर चुकी थी। उनसे दक्ष प्राचेतस का जन्म हुआ; और दक्ष से इन प्राणियों का जन्म हुआ। वीरिणी के साथ सहवास करके मुनि दक्ष ने अपने समान एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया, जो अपने धार्मिक कृत्यों के लिए प्रख्यात थे। नारद ने उन्हें मोक्ष का सिद्धांत सिखाया और सांख्य का अनुपम ज्ञान दिया। संतानोत्पत्ति की इच्छा से, प्रजापति दक्ष ने तुदपरांत पचास पुत्रियों को उत्पन्न किया। इनमें से दस कन्याएं उन्होंने धर्म को दे दीं, तेरह कश्यप को, और सत्ताईस समय के नियंत्रक इंदु (सोम) को दीं...अपनी तेरह पत्नियों में सर्वश्रेष्ठ दक्षयानी से मारीचिपुत्र कश्यप ने आदित्यों को उत्पन्न किया जिनके नेता इंद्र थे। इनके अतिरिक्त उन्होंने विवस्वत् को भी उत्पन्न किया, जिसका पुत्र शक्तिशाली यम वैवस्वत हुआ। मार्तंड (विवस्वत्, सूर्य) ने बुद्धिमान और शक्तिशाली पुत्र मनु और उसके छोटे भाई,

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 125*

प्रसिद्ध यम को उत्पन्न किया। यह मनु धर्मालु थे, और वह एक वंश के संस्थापक हुए। इसलिए मनुष्यों का यह परिवार मनु के वंश के रूप में जाना गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय और अन्य मनुष्यों की उत्पत्ति इन्हीं मनु से हुई। उन्हीं से, हे राजा, ब्राह्मण और क्षत्रिय उपजे। उनमें से मनु की संतान ब्राह्मणों ने वेदांग सहित वेद को धारण किया। मनु की संतान वेण, धृणु, नरिश्यांत, नायाग, इक्ष्वाकु, करुष, शर्याति, इला, प्रशाद्र और नामगरिष्ट थे। मनु के पचास अन्य पुत्र भी थे। किंतु जैसा कि हमने सुना है, वे सभी आपसी फूट के कारण नष्ट हो गए। बाद में, इला से पुरूरवा उत्पन्न हुए, और हमने सुना है कि इला उनकी मां भी थी और पिता भी।

महाभारत की दूसरी व्याख्या ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के समान है। वह इस प्रकार है–

"राजा किसी ऐसे व्यक्ति को राज पुरोहित नियुक्त करे। जो उत्तमता का संरक्षक और दुष्टता का प्रतिरोधी हो। इस विषय में वे इस प्राचीन कथा को सुनाते हैं, जिसमें इलापुत्र मातरिश्वा (वायु) और पुरुरवा का संवाद सन्निहित है। पुरुरवा ने कहा, "तुम मुझे बताओ कि कब ब्राह्मण, कब अन्य तीन जातियां उत्पन्न हुईं और कब श्रेष्ठता (प्रथम की) स्थापित हुई। मातरिश्वा ने उत्तर दिया–"ब्राह्मण का जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ, उसकी भुजाओं से क्षत्रिय, उसकी जंघाओं से वैश्य जबकि इन तीन वर्णों की सेवा हेतु उसके चरणों से चतुर्थ वर्ण शूद्र उत्पन्न हुआ। जन्म से ही ब्राह्मण धर्म तत्त्व की रक्षार्थ धरती पर भूतजात का स्वामी बन गया। फिर स्रष्टा ने पृथ्वी का शासक क्षत्रिय उत्पन्न किया। प्रजा की संतुष्टि के लिए दंड धारण करने वाला द्वितीय यम। और ब्रह्मा का यह आदेश था, इन तीन वर्णों को वैश्य धन-धान्य उपलब्ध कराएं और शूद्र सेवा करें।" तब इला पुत्र ने पूछा, "वायु मुझे बताओ अपनी धन-संपदा सहित यह पृथ्वी किसके अधिकार में है, ब्राह्मण के अथवा क्षत्रिय के।" वायु ने उत्तर दिया, "अपनी ज्येष्ठता के आधार पर पृथ्वी पर विद्यमान समस्त संपदा का स्वामी ब्राह्मण है, जो कर्तव्य-विधान में पारंगत है। ब्राह्मण जो खाता है, पहनता है, लुटाता है, वह सब उसी का है। वह सभी जातियों में श्रेष्ठ है, प्रथम जन्मा और सर्वश्रेष्ठ। जिस प्रकार कोई स्त्री अपना पति (पहला) छिन जाने पर अपने देवर या जेठ को दूसरा पति बना लेती है, उसी प्रकार विपत्ति में ब्राह्मण पहला आश्रय है और इसके बाद कोई और।"

महाभारत[1] के शांति पर्व में तीसरी व्याख्या दी गई है–

भृगु ने उत्तर दिया, "जिस प्रकार ब्रह्मा ने पहले अपनी शक्ति से प्रजापतियों के समान भव्य सूर्य और अग्नि को रचा। तब स्वामी ने सत्य, धर्मनिष्ठा, कठोर भक्ति, शाश्वत वेद, गुणकर्म, और स्वर्ग (प्राप्ति हेतु) शुद्धता की सृष्टि की।

1. मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 139-40

उसने देवता, दानव, गंधर्व, दैत्य, असुर, महाराग, वक्ष, राक्षस, नाग, पिशाच और मानव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, साथ ही वर्ण के प्राणी रचे। ब्राह्मण का वर्ण (रंग) गौर, क्षत्रिय का लाल, वैश्य का पीत और शूद्र का काला बनाया। तब भारद्वाज ने प्रतिवाद किया—'यदि हर जाति का वर्ण (रंग) उसका परिचायक है तो इससे पहचान में भ्रांति होती है। मनोकामना, क्रोध, भय, लोभ, संताप, कुंठा, भूख, क्लांति हम सब में समान है, तब जाति किससे निर्धारित होती है। स्वेद, मूत्र, मल, श्लेष, श्लेष्मा, पित्त और रक्त (सब में समान हैं) सभी शारीरिक विकार हैं, तब जाति किस से निर्धारित होती है। अनगिनत चल और अचल पदार्थ हैं, उनका वर्ण कैसे निर्धारित होता है?'

भृगु ने उत्तर दिया, "जातियों में कोई अंतर नहीं है।"

शांति पर्व में ही चौथी व्याख्या[1] दी गई है। वह कहती है—भारद्वाज ने फिर पूछा, "परमश्रेष्ठ ब्रह्मर्षि, मुझे बताएं वे क्या गुण हैं कि जिनसे कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र बन जाता है।" भृगु कहते हैं—"जो शुद्ध है। प्रसव तथा अन्य संस्कारों से पवित्र है, जिसने वेदों का संपूर्ण अध्ययन किया है, जो छह संस्कारों को संपन्न करता है, शुद्धता के अनुष्ठान पूर्णता से संपन्न करता है, जो चढ़ावे से बचे पदार्थ ग्रहण करता है, अपने धर्म-गुरु से संबद्ध है, सदैव धर्मपरायण है और सत्य को समर्पित है, ब्राह्मण कहलाता है। जिसमें सत्य के दर्शन होते हैं, जिसमें स्वाधीनता, अनाक्रामकता, उपकारिता, सादगी, धैर्य और कठोर भक्ति परिलक्षित हो, वह ब्राह्मण है। जो राजपद के कर्तव्य का पालन करता है, जिसे वेदाध्ययन का व्यसन है और जो लेने और देने से प्रसन्नता अनुभव करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है। वह, जो तत्परता से पशुपालन करता है, जिसकी कृषि कार्यों की लगन है, जो शुद्ध है और वेदों के अध्ययन में पारंगत है, वह वैश्य है। वह, जो हर प्रकार के भोजन का व्यसनी है, सभी कार्य करता है, जो अस्वच्छ है, जिसने वेदों का परित्याग का दिया है, जो पवित्र कर्म नहीं करता, परंपरा से शूद्र कहलाता है और यह (जो मैंने बताया) ये शूद्र के लक्षण हैं और ये ब्राह्मण में नहीं मिलते। (ऐसा) शूद्र शूद्र ही रहेगा। जो ब्राह्मण (जो ऐसा करता है) ब्राह्मण नहीं होगा।"

आइए, अब यह देखें कि वर्ण-व्यवस्था के संबंध में पुराण क्या कहते हैं?

हम विष्णु पुराण से आरंभ करते हैं। चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति के विषय में विष्णु पुराण में तीन सिद्धांत हैं। एक में इसका संबंध मनु से जुड़ता है।[2] विष्णु पुराण का मत—

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 141-142*
2. *वही, पृ. 220-21*

"ऐहिक अंड से पहले दिव्य ब्रह्मा हिरण्यगर्भ का, समस्त लोकों के शाश्वत जनक का, अस्तित्व था, जो ब्रह्मा का रूप और सार था, जो दिव्य विष्णु हैं, जो ऋक्, यजुस्, साम और अथर्ववेद के समान हैं। ब्रह्मा के दाहिने अंगूठे से प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए; दक्ष की पुत्री अदिति थी; अदिति से विवस्वत् उत्पन्न हुए; और विवस्वत् से मनु उत्पन्न हुए। मनु के पुत्रों का नाम इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यंत, प्रांशु, नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र था।

विष्णु पुराण में एक और भिन्न कथन है। उसके अनुसार–

पुत्र की इच्छा से मनु ने मित्र और वरुण के निमित्त यज्ञ किया। किंतु होतृ पुरोहित की अनियमितता के कारण गलत आवाहन हो गया, जिससे इला नाम की पुत्री उत्पन्न हुई। फिर मित्र और वरुण की कृपा से वह मनु के लिए सुद्युम्न नामक पुत्र बन गई। किंतु ईश्वर (महादेव) के कोप से वह दोबारा कन्या बन गई, तो वह सोम (चंद्रमा) के पुत्र बुध के आश्रम के निकट विचरण करने लगी। वह उस पर मोहित हो गया और उसके साथ संसर्ग करने से उसे पुरुरवा नामक पुत्र प्राप्त हुआ। उसके जन्म के पश्चात यज्ञ से, ऋक्, यजुस्, साम और अथर्ववेद से, समस्त वस्तुओं से, मन से, शून्य से बने देवता की, यज्ञ पुरुष की अनंत तेज वाले ऋषियों ने पूजा की, जिनकी इच्छा थी कि सुद्युम्न फिर से पुरुष बन जाए। इस देवता की कृपा से इला फिर से सुद्युम्न बन गई।"

"अत्रि ब्रह्मा के पुत्र और सोम (चंद्रमा) के पिता थे, जिन्हें ब्रह्मा ने पौधों, ब्राह्मणों और नक्षत्रों का राजा नियुक्त किया था। राजसूय यज्ञ संपन्न करने के पश्चात, सोम अभिमान से उन्मत्त हो गया और वह देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा को ले गया। यद्यपि ब्रह्मा, देवों और ऋषियों ने उससे बहुत कहा, किंतु सोम ने तारा को नहीं लौटाया। सोम का पक्ष उशना ने लिया जबकि अंगिरा से शिक्षा प्राप्त करने वाले रुद्र ने बृहस्पति की सहायता की। देवताओं और दैत्यों द्वारा समर्पित इन दोनों पक्षों के बीच भीषण संघर्ष हुआ। ब्रह्मा ने हस्तक्षेप करते हुए सोम को बाध्य किया कि वह बृहस्पति को उनकी पत्नी लौटा दे। किंतु इस बीच तारा गर्भवती हो गई और उसने बुध नामक पुत्र को जन्म दिया। जब उससे जोरदार आग्रह किया गया, तो उसने स्वीकार किया कि बुध का पिता सोम था। पुरुरवा[2] इसी बुध का पुत्र था जो मनु की पुत्री इला के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। पुरुरवा[3] के छह पुत्र थे जिनमें सबसे बड़ा आयुस् था। आयुस् के पांच पुत्र थे–नहुष, क्षत्रवृद्ध, रंभा, रजि और अनेनस् (=अनेना)।

क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुनूहोत्र था जिसके तीन पुत्र काश, लेश और गृत्समद थे। गृत्समद से शौनक उत्पन्न हुआ, जिसने चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की शुरुआत की। काश का एक पुत्र काशिराज हुआ, जिसका पुत्र दीर्घतमस् (दीर्घतमा) था, जैसे दीर्घतमस (दीर्घतमा) का पुत्र धन्वंतरि था।"

एक अन्य कथन के अनुसार वर्ण-व्यवस्था के जनक ब्रह्मा थे। जैसा कि विष्णु पुराण में निम्नांकित उद्धरण कह हैं–

"मैत्रेय कहते हैं–तुमने मुझे अर्वाक्स्रोत अथवा मानवसृष्टि के संबंध में बताया। अब हे ब्राह्मण! मुझे विस्तार से बताओ। ब्रह्मा ने इसकी सृष्टि किस प्रकार की? मुझे बताओ, उसने कैसे और किस गुण से वर्ण बनाए और ब्राह्मण तथा अन्य के कार्य कौन-कौन से हैं? पराशर ने उत्तर दिया–3. अपने विचार के अनुसार ब्रह्मा की कामना जगत सृष्टि की हुई। जिनमें सत्त्व गुण होता है, वे उनके मुख से उत्पन्न हुए। 4. जिनमें रजोगुण होता है, वे उनके वक्ष से जन्मे; जिनमें रजोगुण और तमोगुण होता है, वे उनकी जंघाओं से जन्मे। 5. अन्य उनके चरणों से उत्पन्न हुए जिनका मुख्य लक्षण था तमोगुण। इससे वर्ण-व्यवस्था की चार जातियां बनी–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो क्रमशः मुख, वक्ष, जंघा और चरणों से बने हैं। 6. ब्रह्मा ने यह चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था यज्ञ के लिए की थी। देवताओं ने वर्षा कर मानवता पर उपकार किया। यज्ञ से संपन्नता आती है। 8. इसे गुणी, सदाचारी और दुष्कर्मों से दूर रहने वाले लोग संपन्न करते हैं। 9. मानव अपनी नम्रता से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करतें है और वे वांछित लोक को प्रस्थान करते हैं।

हरिवंश में दो सिद्धांत दिखाई देते हैं। एक के अनुसार वर्णो की उत्पत्ति मनु के एक वंशज से हुई।

"गृत्समद का पुत्र शुनक था, उससे शौनक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए।"

"वितथ पांच पुत्रों के पिता थे। वे थे–सुहोत्र, सुहोतृ, गय, गर्ग और कपिल। सुहोत्र के दो पुत्र थे, काशक और राजा गृत्समति। उसके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य थे।"

दूसरे आख्यान के अनुसार वर्णो की उत्पत्ति विष्णु से हुई जो ब्रह्मा से प्रकट हुए थे और प्रजापति दक्ष बन गए। यह इस प्रकार है[1]–

जनमेजय[2] कहता है–हे ब्राह्मण! मैंने ब्रह्मयुग (का वर्णन) सुना है जो आदि युग था। मेरी कामना है कि आप क्षत्रिय युग के विषय में सार-गर्भित और विस्तार से अनेक प्रेक्षणों के आधार, यज्ञ के सौदाहरण उल्लेख का संपूर्ण विवरण दें। वैशंपायन ने उत्तर दिया–"मैं उस युग के विषय में बताता हूं, जिसका यज्ञों के कारण आदर है और जो मुक्ति में अनेक कर्मो की विशिष्टता से संपन्न है, जिसका आदर तब के मनुष्यों के कारण किया जाता है। मुक्ति के लिए अबाध-कर्म किए

1. मूइर, खंड 1, पृ. 152-153

2. हरिवंश में जनमेजय और वैशंपायन के मध्य वार्तालाप।

जाते थे। ब्रह्मा के प्रति चित्त की एकाग्रता थी और संयम था। ब्राह्मणों के उद्देश्य महानतम थे। ब्राह्मण अपने व्यवहार से गौरवान्वित और मर्यादित थे, संयम का जीवन व्यतीत करते थे। ब्राह्मणों में अनुशासन था, वे अपने कर्तव्य पालन में त्रुटिहीन थे। उनका ज्ञान अथाह था। वे मननशील थे। तब सहस्रों युग व्यतीत होने पर ब्राह्मणों की सत्ता शिखर पर थी। तब ये मुनि इस विश्व के विलयन में सम्मिलित हुए। ब्रह्मा से विष्णु प्रकट हुए वे इन्द्रियज्ञान से परे हो गए और ध्यानावस्थित हो गए, प्रजापति दक्ष बन गए और अनेक प्राणियों की सृष्टि की। ब्राह्मण को सौम्य (चंद्रमा को प्रिय) और अक्षय बनाया गया। क्षत्रियों को नश्वर तत्त्वों से रचा, एकांतरण से वैश्य बने और धूम्र परिष्करण से शूद्रों को बनाया गया। जब विष्णु वर्णों पर विचार कर रहे थे तो ब्राह्मण को गौर, लाल, पीत तथा काले रंग का बनाया गया। इस प्रकार विश्व में मानव वर्णों में विभाजित हो गए। उनकी पहचान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में हुई। एक स्वरूप अनेक कार्य, दो पैरों पर चलने वाला अत्यंत आश्चर्यजनक, शक्तिमान और अपने व्यवसाय में पारंगत। तीन उच्च वर्णों के संस्कारों का वेदों में निर्धारण हुआ। प्राणियों की योगावस्था से ब्रह्मा प्रकट हुए। विष्णु जैसी उसे ध्यानावस्था से भगवान प्राचेतस (दक्ष) अर्थात् महान योगी विष्णु अपनी मेधा एवं ऊर्जा से ध्यानावस्था से कर्मक्षेत्र में उतरे। उन्मूलन से शूद्र उपजे, वे संस्कार रहित हैं। इस कारण वे शुद्धि संस्कारों में सम्मिलित नहीं हो सकते। न ही पवित्र ज्ञान से उनका संबंध है, वैसे ही जैसे आग जलाते समय ईंधन के घर्षण से धुआं पैदा होता है और लुप्त हो जाता है, उसकी यज्ञ में कोई आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार धरती पर घूमने वाले शूद्र हैं। कुल मिलाकर वे यज्ञ के किसी उपयोग के नहीं हैं, क्योंकि उनका जीवन शुद्धता से वंचित रखा गया है और उनकी वेदों में उन्हें यज्ञ आदि से रहित कहा गया है।"

अंत में भागवत पुराण[1]–

"कई सहस्र वर्षों के उपरांत अपने कर्मों और प्राकृतिक गुणों से तत्कालीन प्राणियों ने जल पर उतराते अंडे को जीव रूप प्रदान किया। फिर पुरुष ने उसका विखंडन कर उससे एक सहस्र जंघाएं, चरण, भुजाएं, चक्षु, मुख और शीर्ष प्रकट किए। विश्व-व्यवस्थापक ने अपने सहयोगी ऋषियों के साथ विश्व की रचना की। उन्होंने अपनी कटि से सात अधोभुवन रचे और जघन स्थल से सात ऊर्ध्व भुवनों की रचना की। ब्राह्मण पुरुष का मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाओं से उपजे और शूद्र उस देव पुरुष के चरणों से जन्में। पृथ्वी उनके पैरों से बनी। वायु उनकी नाभि से, उनके हृदय से स्वर्ग और उनके वक्ष से महालोक बने।"

---

1. *मूइर, ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 156*

अब अंत में वायु पुराण को देखें। यह क्या कहता है? यह मनु के सिद्धांत को स्वीकार करता है, परंतु कहता है–

"गृत्समद का पुत्र शुनक था। उससे शौनक जन्मा। उसी के परिवार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए–द्विज मानव विभिन्न कर्मों के साथ जन्मे।

यह सर्वेक्षण हमें क्या दिखाता है? परिणाम यह निकलता है कि ब्राह्मणों ने वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या करने के लिए अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न कर दी है। इन व्याख्याओं में एकरूपता नहीं है और न ही कोई बात निश्चित रूप से कही गई है। एक ही सत्ता द्वारा दी व्याख्याओं में कुछ पौराणिक हैं, कुछ रहस्यात्मक और कुछ बौद्धिक हैं। सभी का अभिप्राय वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या करना है।

वेदों में यह बताने की चेष्टा की गई है कि वर्ण पुरुष से, मनु से, प्रजापति से, व्रात्य से और सोम से उत्पन्न हुए हैं।

ब्राह्मण ग्रंथों और वेदों के बीच पर्याप्त मतभेद हैं। वे पुरुष, मनु, व्रात्य अथवा सोम से इसकी उत्पत्ति नहीं मानते। वे प्रजापति और ब्रह्म के बीच अटक जाते हैं। यह नई बात है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का अनूठा ही सिद्धांत है। उसका कहना है कि ब्राह्मण देवताओं से उत्पन्न हुए और शूद्र असुरों से।

मनुस्मृति की दो तरह की व्याख्याएं हैं, पौराणिक और बौद्धिक। पौराणिक व्याख्या के अनुसार इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा से है और बौद्धिक व्याख्या का निष्कर्ष है कि यह व्यक्ति की बनावट का परिणाम है। रामायण, महाभारत और पुराणों का मत यह लगता है कि वर्णों की उत्पत्ति मनु से हुई है। मनु संबंधी सिद्धांत के प्रसंग में उन्होंने इसे पूरा भ्रामक बना डाला है। रामायण में 'मनु' एक स्त्री है, जो दक्ष की पुत्री कश्यप की पत्नी है। महाभारत में 'मनु' पुरुष है, स्त्री नहीं। वह विवस्वत का पुत्र है, जो कश्यप के पुत्र हैं। महाभारत में कश्यप की पत्नी मनु नहीं है, दक्षयानी है जो दक्ष की पुत्री बताई गई है। पुराण वर्ण-व्यवस्था के उदय पर मनु संबंधी सिद्धांत को तो स्वीकार करते हैं, लेकिन वे अलग-अलग मत प्रकट करते हैं। विष्णु पुराण इसका जन्मदाता उसके पुत्रों को मानता है। लेकिन उसमें इतनी जल्दबाजी है कि वह दो वर्णों की व्याख्या ही भूल जाता है। यही विष्णु पुराण एक अन्य स्थान पर भिन्न सिद्धांत प्रतिपादित करता है कि चारों वर्ण मनु की पुत्री इला की प्रणाली है। दूसरे सिद्धांत के अनुसार इला का विवाह पुरुरवा से हुआ, जिसके छह पुत्र थे। ज्येष्ठतम था आयु। आयु से क्षेत्रवृद्ध, उससे सुनहोत्र, उससे गृत्समद। गृत्समद से चार वर्ण बने। वायु पुराण को यह स्वीकार नहीं। उसका कहना है कि वर्ण गृत्समद के पौत्र शौनक से उत्पन्न हुए। 'हरिवंश पुराण एक स्थान पर विष्णु पुराण का मत स्वीकार कर लेता है कि वर्णों का जनक गृत्समद था किंतु उसमें अंतर यह है कि शूद्र उससे उत्पन्न नहीं हुए। पुराण में यह नहीं बताया गया

कि फिर शूद्र कहां से आ गए। एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि वर्ण गृत्समद के पुत्र शुनक से निकले। इस प्रकार उसमें अंतर्विरोध है और वह विष्णु पुराण और वायु पुराण से भी भिन्न मत प्रकट करता है।

यह व्याख्याएं अल्पबुद्धि लोगों की सनकें प्रतीत होती हैं। इससे पता चलता है कि वर्ण-व्यवस्था का औचित्य ठहराने के लिए ब्राह्मणों ने किस प्रकार एड़ी-चोटी का जोर लगाया। प्रश्न यह है कि जो ब्राह्मण इस व्यवस्था के इतने दृढ़ प्रचारक थे वे वर्ण-व्यवस्था के उद्गम पर एक ही बात पर जम क्यों नहीं सके। वे एक समान और निर्विवाद रूप में ग्राह्य और बौद्धिक व्याख्या क्यों नहीं दे पाए?

इन अनेक व्याख्याओं में से वर्ण-व्यवस्था के औचित्य के मामले में ब्राह्मण केवल दो बातों पर ही ठहरते हैं।

पहली यह कि इसकी उत्पत्ति पुरुष से हुई है जिसका उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में हैं। यदि यह पौराणिक है तो भी पौराणिकता इतिहास ही है, चाहे उसमें अतिशयोक्ति ही क्यों न हो? परंतु ऐसा नहीं है। यह व्याख्या पूर्णतः रहस्यात्मक है। यह किसी खब्ती दिमाग की उड़ान है। इसी कारण इसे कभी व्याख्या स्वीकार नहीं किया गया और यही कारण है कि कई अन्य भी परस्पर विरोधी व्याख्याएं दी जाती हैं। इसमें तनिक भी शिष्टाचार नहीं बरता गया है। यहां तक कि वैदिक लेखकों में भी यही प्रवृत्ति विद्यमान है। यह दो परिस्थितियों से स्पष्ट है। एक तो इसका संदर्भ ऋग्वेद के विविध अंशों में है। दूसरे, श्वेत यजुर्वेद की कठ और मैत्रायणी संहिताओं तथा कृष्ण यतुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में इसका उल्लेख नहीं है। सामवेद में ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के मात्र पांच मंत्र हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि इन पांच मंत्रों को समाहित करते समय उन मंत्रों को छोड़ दिया गया है, जिनमें यह कहा गया है कि वर्ण पुरुष के चार अंगों से उपजे। यह (पुरुष सूक्त) निश्चय ही बहुत बाद की रचना है और इसे चारों वेदों के वर्तमान स्वरूप में आने के बाद ही जोड़ा गया। परंतु इसी के साथ यह स्पष्ट संकेत है कि इसके लेखकगण उस व्याख्या के संबंध में आश्वस्त नहीं थे। संभवतः यह अन्योक्तिपूर्ण और प्रतीकात्मक वर्णन था और ब्राह्मणों ने इसे शाब्दिक तौर पर ठोस तथ्यों में बदलने की चेष्टा की। इससे पहेली का उत्तर नहीं मिलता, बल्कि एक उलझन पैदा हो गई है। वह यह है कि ब्राह्मण चातुर्वर्ण्य को इतना बढ़ावा क्यों दे रहे थे?

इसके पीछे बौद्धिक व्याख्या भगवद्गीता की है। हिंदुओं के देवता कृष्ण यह समझाते हैं कि वह चातुर्वर्ण्य के रचयिता हैं और यह सिद्धांत प्रतिपादित करते हैं कि यह गुणों में अंतर पर आधारित है। गुणों में भिन्नता का सिद्धांत कपिल के सांख्य-दर्शन से लिया गया है। कृष्ण चातुर्वर्ण्य की व्याख्या प्रशंसात्मक शैली में करते हैं, मानो यह अपरिवर्तनशील हो। सांख्य-दर्शन में, बेशक यही कहा गया है कि इसका मूल आधार यह है कि प्रकृति में तीन गुण—सतो, रजो, तमो गुण हैं। प्रकृति जड़ नहीं है। जब तीनों गुणों की शक्ति समान है, तब अस्थायी साम्य था। इसमें उस समय गतिशीलता आ जाती है जब समानता नष्ट होती है, जब एक गुण का दूसरे पर प्रभुत्व हो जाता

है। कृष्ण ने वर्ण-व्यवस्था को वैज्ञानिक स्वरूप देने के लिए सांख्य की गुण-धर्म की मान्यता स्वीकार करके अत्यंत चतुराई दिखाई है। परंतु ऐसा करके कृष्ण अपने जाल में स्वयं फंस जाते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि गुण तीन हैं और वर्ण चार हैं। वह इसका कोई कारण नहीं बता सके हैं कि चार वर्णों के लिए तीन से अधिक गुणों की आवश्यकता वह क्यों अनुभव नहीं करते हैं। और क्यों ऐसे सिद्धांत को आधार बनाते हैं, जिसमें तीन से ज्यादा गुण हैं ही नहीं। इस प्रकार जिस व्याख्या को बौद्धिक बताने की चेष्टा की गई, वह अनर्गल है। इससे गुत्थी सुलझती नहीं है बल्कि और पेचीदा हो जाती है। ब्राह्मण चातुर्वर्ण्य को सही ठहराने के लिए इतना क्यों जूझ रहे थे?

II

आश्रम-धर्म में व्यक्ति के जीवन को चार चरणों में विभाजित किया गया है— 1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थ, और 4. संन्यास। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है, अविवाहित जीवन। इसका आधिकारिक अर्थ है गुरु से शिक्षा ग्रहण करना। गृहस्थाश्रम वह अवस्था है जब कोई व्यक्ति वैवाहिक जीवन बिताता है। संन्यास वह है जब कोई व्यक्ति वैराग्य ले लेता है। गृहस्थाश्रम और संन्यास के मध्य की स्थिति वानप्रस्थ है। यह वह स्थिति है जब कोई व्यक्ति समाज का अंग होते हुए भी उससे पृथक रहता है। जैसा कि नाम से प्रकट है, इसका अर्थ है—जंगलों में रहना।

हिंदुओं का विश्वास है कि आश्रम-धर्म ऐसी संस्था है जो वर्ण-धर्म के समान प्राचीन है। वे इन दोनों को एक साथ मिलाकर वर्णाश्रम-धर्म कहते हैं क्योंकि ये दोनों ही संश्लिष्ट हैं, और दोनों ही मिलकर हिंदू-धर्म को लौहस्वरूप बनाती हैं।

यह उचित रहेगा कि हम आश्रम-धर्म के प्रादुर्भाव, प्रयोजन और विशिष्टता पर विचार करने से पहले इसके बारे में पूरे तौर पर समझ लें। आश्रम-प्रथा के दिग्दर्शन का सबसे अच्छा स्रोत मनुस्मृति है, जिसमें से निम्नांकित अंशों को उद्धृत किया जा रहा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ 36 ॥

अर्थ : ब्राह्मण का जनेऊ गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय का गर्भ से ग्यारहवें में और वैश्य का गर्भ से बारहवें वर्ष में करें।[1]

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ 168 ॥

अर्थ : जो ब्राह्मण वेद को न पढ़कर और शास्त्रों में परिश्रम करता है वह जीते जी कुटुंब सहित शीघ्र शूद्र हो जाता है।[2]

---

1. *मनुस्मृति, अध्याय 2, 36*
2. *मनुस्मृति, अध्याय 2, 168*

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥ 1 ॥

अर्थ : *ब्रह्मचारी को गुरु के पास तीनों वेदों का व्रत अर्थात् उनका अध्ययन, 36 वर्ष तक वा 18 वर्ष तक वा 9 वर्ष तक व ब्रह्मचर्य के अंत तक ही करना चाहिए।*

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ 2 ॥

अर्थ : *जिसका ब्रह्मचर्य खंडित नहीं हुआ हो ऐसा ब्रह्मचारी तीनों वेदों को वा दो वेदों को, वा एक वेद को क्रम से पढ़कर गृहस्थाश्रम में वास करे, अर्थात् अपना विवाह करे।*[1]

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ 6/8 ॥

अर्थ : *द्विज को चाहिए कि वेद-पाठ में लगा रहे, सरदी गर्मी आदि को सहे, सबका उपकार करे, मन को रोकें रहे, सदा दान दे परंतु प्रतिग्रह न ले और सब प्राणियों पर दया रखे।*

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ 6/88 ॥

अर्थ : *शास्त्रविधि से क्रमपूर्वक सेवन करने से ये सब चारों आश्रम यथोक्तकर्ता ब्राह्मण को परमगति को पहुंचा देते हैं।*

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥ 6/89 ॥

अर्थ : *इन सब चारों आश्रमों में, वेद और स्मृति की विधि से चलने वाले गृहस्थाश्रम को ऋषियों ने श्रेष्ठ कहा है, क्योंकि वह गृहस्थाश्रम तीनों आश्रमों का पालन करता है।*

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ 6/1 ॥

अर्थ : *स्नातक द्विज इस प्रकार विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम में रहकर फिर शास्त्रोक्त विधि से इन्द्रियों को रोककर नियम से वन में वास करे।*

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ 6/2 ॥

अर्थ : *जब गृहस्थी देख ले कि अपने शरीर का चमड़ा ढीला हो गया है और केश पक गए और पुत्र के भी पुत्र हो गया है, तब वन का आश्रय ले।*

---

1. मनुस्मृति, *अध्याय 3, 1-2*

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥ 6/33 ॥

अर्थ : *इस प्रकार आयु के तीसरे भाग को वनों में विहार करके और आयु के चतुर्थ भाग में विषयों से त्यागकर संन्यास आश्रम का ग्रहण करे।*

आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोमो जितेन्द्रियः।
भिक्षाबलिपरिश्रान्तः प्रव्रजन्प्रेत्य वर्धते ॥ 6/34 ॥

अर्थ : *अग्निहोत्र करके और जितेन्द्रिय होकर और भिक्षा तथा बलिवैश्वदेव की पूर्ण सेवा करके और एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाकर (अर्थात् ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ आदि अपना करके) द्विज परलोक में वृद्धि पाता है अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाता है।*

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ 6/35 ॥

अर्थ : *ऋषि, देव और पितृ इन तीनों के ऋण चुकाकर मोक्षसाधन में मन लगाना चाहिए, क्योंकि इनका ऋण बिना चुकाए मोक्ष के लिए यत्न करने से नरक प्राप्त होता है।*

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ 6/36 ॥

अर्थ : *विधिपूर्वक वेद पढ़कर, धर्मपूर्वक पुत्र उत्पन्न करके और शक्ति के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में मन लगाना उचित है।*

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ 6/37 ॥

अर्थ : *जो द्विज बिना वेद पढ़े, बिना संतान उत्पन्न किए और बिना यज्ञ किए ही मोक्ष की इच्छा करे, उसकी अधोगति होती है।*

इन नियमों से स्पष्ट है कि मनु के अनुसार आश्रम-धर्म के तीन रूप हैं। पहला यह कि यह शूद्रों और महिलाओं के लिए नहीं हैं। दूसरा यह कि ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। ऐसे ही गृहस्थ भी। वानप्रस्थ और संन्यास अनिवार्य नहीं हैं। तीसरा यह कि इनका निर्धारित क्रम से पालन किया जाए। पहले ब्रह्मचर्य, दूसरे गृहस्थ, तीसरे वानप्रस्थ और चौथे संन्यास। कोई एक को लांघकर दूसरे आश्रम में नहीं जा सकता।

मनु के कथन को इतिहास के आलोक में देखने पर कई सवाल पैदा होते हैं। वेदों को आश्रमों का यह सिद्धांत अज्ञात है। वेदों में ब्रह्मचारी का उल्लेख है परंतु ब्रह्मचर्य को जीवन का पहला और अनिवार्य सोपान बनाए जाने का कोई प्रसंग नहीं है। इसी तरह यति है। ऋग्वेद में यतियों का उल्लेख है, परंतु वे जीवन की कोई अनिवार्य अवस्था नहीं थे। संन्यासियों की तरह यति भी ऋग्वेद में एक घृणित चीज

थे। वस्तुतः ऋग्वेद के कई सूक्तों में इन्द्र द्वारा यतियों को भेडियों के आगे फेंकने का वर्णन है। ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत जीवन में चार आश्रमों को अनिवार्य क्यों बनाया? आश्रम-धर्म के संबंध में यह पहली पहेली है।

दूसरी पहेली यह है कि मनु ने व्यक्ति के लिए एक ही क्रम में आश्रम-प्रणाली क्यों रखी। यह निश्चित है कि एक समय ऐसा था जब कोई ब्रह्मचारी तीनों में से कोई सा भी आश्रम अपना सकता था। वह गृहस्थ बन सकता था, या गृहस्थ बने बिना संन्यासी भी बन सकता था। मनु के कथनों की उससे तुलना करें जो धर्म-सूत्र इस विषय में कहते हैं। वशिष्ठ धर्म-सूत्र का मत है[1]–

> "चार सोपान हैं–विद्यार्थी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक।"
>
> "जिस व्यक्ति ने एक, दो अथवा तीन वेदों का अध्ययन विद्यार्थी धर्म का उल्लंघन न करते हुए किया है, वह जिस आश्रम में जीवन बिताना चाहे, बिता सकता है।"

गौतम धर्म-सूत्र[2] का मत है–

> "कुछ विद्वान कहते हैं कि वह (जिसने वेदाध्ययन किया है) किसी भी आश्रम का चयन कर सकता है।" चार आश्रम हैं–विद्यार्थी, गृहस्थ, भिक्षु (वानप्रस्थी), वैखानस (संन्यासी)।

मनु ने विकल्प को रद्द करके गृहस्थ को अनिवार्य क्यों बनाया? उसने गृहस्थ को भिक्षु से पूर्व की शर्त क्यों बनाया और भिक्षु को वैखानस से पूर्व की शर्त क्यों रखा?

अगर किसी महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन के चार चरणों की आवश्यकता है, तो फिर यह समझना कठिन है कि शूद्रों और स्त्रियों को इससे बाहर क्यों रखा गया है? मनु की योजना के अनुसार शूद्र और स्त्रियां केवल गृहस्थ ही बन सकते हैं। वे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी क्यों नहीं हो सकते? यदि आश्रम-धर्म उन पर भी लागू कर दिया जाए तो उससे उन्हें अथवा समाज को क्या हानि हो सकती है?

आश्रम-धर्म के संबंध में और भी पहेलियां हैं। पहली तो यह कि उन्होंने ब्रह्मचारियों[3] के संबंध में भेदभाव क्यों रखा।

कार्ष्णरौरवबास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः।
वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥ 2/41 ॥

अर्थ : *(ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों के) ब्रह्मचारी को चाहिए कि काला मृग, रुरु मृग और बकरा इनके चर्म को (दुपट्टे की जगह) और सन, रेशम और ऊन इनके वस्त्र वर्ण क्रम से धोती व कौपीन के लिए धारण करे।*

---

1. *सै.बु.ई., खंड 14, पृ. 40, अध्याय 7, श्लोक 1, 2, 3*
2. *वही, खंड 2, पृ. 192, अध्याय 3, सूत्र 1, 2*
3. *वही, खंड 2, मनु पृ. 37-9*

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
क्षत्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतान्तवी ॥ 42 ॥

अर्थ : ब्राह्मण की मेखला मूंज की, तीन लड़ की और चिकनी हो, क्षत्रिय की मूर्वानाम रुखड़ी की हो, जिसकी धनुष की प्रत्यंचा बनती है और वैश्य की सन के सूत की बनानी चाहिए।

मुञ्जालाभे तु कर्तव्याः कुशाश्मन्तकबल्वजैः।
त्रिवृता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा ॥ 43 ॥

अर्थ : मूंज न मिले तो क्रम से कुशा, अश्मन्तक और बल्वज (तृण) की मेखला बनानी चाहिए और उसे तीन लड़ की, एक गांठ, तीन गांठ व पांच गांठ की बनावे।

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविजसौत्रिकम् ॥ 44 ॥

अर्थ : ब्राह्मण का जनेऊ कपास के सूत का, ऊपर को बटा हुआ और तीन लड़ का, क्षत्रिय का सन के सूत का, और वैश्य का भेड़ की ऊन का होना चाहिए।

ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ।
पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ॥ 45 ॥
केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः।
ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः ॥ 46 ॥

अर्थ : ब्राह्मण को बेल व ढाक का, क्षत्री को बड़ या खैर का, वैश्य को पीलू व गूलर का दंड धर्मानुसार धारण करना चाहिए।।45।। ब्राह्मण का केश तक, क्षत्रिय का मस्तक तक और वैश्य का नासिका तक ऊंचा दंड बनाना चाहिए।।46।।

ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः।
अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥ 47 ॥

अर्थ : सब दंड सीधे, बिना गांठ के, देखने में सुंदर, मनुष्यों को बुरे न लगने वाले, अग्नि में न जले हुए और छालयुक्त होने चाहिएं।

प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम्।
प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥ 48 ॥

अर्थ : ब्राह्मण आदि इच्छित दंड को लेकर, सूर्य के सामने खड़ा होकर और अग्नि की परिक्रमा करके विधिपूर्वक भिक्षा मांगे।

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः।
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥ 49 ॥

अर्थ : *यज्ञोपवीत वाला ब्राह्मण "भवत्" शब्द को पहले कहकर, क्षत्रिय "भवत" शब्द को मध्य में और वैश्य "भवत्" शब्द को अंत में कहकर भिक्षा मांगे, अर्थात् ब्राह्मण कहे* ***"भवति भिक्षां देहि",*** *क्षत्रिय कहे* ***"भिक्षां भवति देहि,"*** *और वैश्य कहे* ***"भिक्षां देहि भवति"।***

ब्रह्मचारी सभी द्विज होते हैं। उन्हें अपने ऊपरी परिधान में अंतर क्यों रखना चाहिए? जनेऊ में अंतर क्यों रखा गया है? वे दंड में अंतर क्यों रखें? भिक्षा मांगने के तरीके में अंतर क्यों रखा गया है? ब्राह्मण ब्रह्मचारी ही यह क्यों कहे–**"भवति भिक्षाम् देहि"**? क्षत्रिय ब्रह्मचारी इतना ही क्यों कहे–**"भिक्षाम् भवति देहि"**? वैश्य क्यों कहे–**"भिक्षाम् देहि भवति?"**

आश्रम-धर्म हिंदुओं की विशिष्टता है और उन्हें इस पर गर्व है। यह सच है कि यह अनुपम है। लेकिन यह भी सच है कि इसमें कोई गुण नहीं है। अनिवार्य ब्रह्मचर्य बहुत आकर्षक लगता है, क्योंकि इसके अनुसार बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था बताई जाती है। लेकिन वह सबके लिए नहीं थी। शूद्र और स्त्रियों को इससे वंचित रखा गया है। शूद्र और स्त्रियां हिंदू समाज का 9/10 वां भाग है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि यह योजना बुद्धिमत्तापूर्ण न होकर धूर्ततापूर्ण है। इसमें बहुसंख्यक समाज के साथ भेदभाव रखा गया है और शिक्षा का प्रावधान कुलीन वर्ग के लिए ही है। अनिवार्य विवाह भी एक मूर्खतापूर्ण व्यवस्था है। किसी व्यक्ति की आर्थिक और शारीरिक क्षमताओं को ध्यान में रखे बिना विवाह के लिए विवश करना दो व्यक्तियों के जीवन और राष्ट्र को बर्बाद करने का मार्ग खोलता है, बशर्ते कि सरकार प्रत्येक व्यक्ति के निर्वाह का भरोसा दे। सर्वाधिक मूर्खतापूर्ण है–वानप्रस्थ और संन्यास। इनके संबंध में नियम इस प्रकार हैं। वानप्रस्थ[1] के लिए, निम्नांकित मनु व्यवस्था है–

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ 3 ॥

अर्थ : *गांव के आहार (व्रीहियव आदि) और (शय्या, सवारी आदि) सब सामग्री को त्यागकर और स्त्री को पुत्रों के हाथ सौंपकर, व स्त्री को साथ लेकर, वन को जाए।*

अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम्।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ 4 ॥

अर्थ : *अग्निहोत्र और घर अग्नि तथा सामग्री लेकर ग्राम से बाहर जितेन्द्रिय होकर वन में वास करे।*

मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ 5 ॥

अर्थ : *अनेक प्रकार के (नीवार आदि) मुनियों के शुद्ध अन्नों से व शाकमूलफल से इन्हीं (पांच) महायज्ञों को विधिपूर्वक करे।*

---

1. सै.बु.ई., खंड 30, पृ. 199-203

वसीत चर्म चीरं वा सायं स्नायात्प्रगे तथा।
जटाश्च बिभृयान्नित्यं श्मश्रुलोमनखानि च ॥ 6 ॥

अर्थ : *मृग आदि का चर्म व पुराना वस्त्र धारण करे, प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करे, जटा-दाढ़ी आदि बालों को और नखों को सदा धारण करे।*

यद्भक्ष्यं स्यात्ततो दद्याद्बलिं भिक्षां च शक्तितः।
अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतान् ॥ 7 ॥

अर्थ : *जो खाने का पदार्थ हो उसमें से ही अपनी शक्ति के अनुसार बलि और भिक्षा दे और आश्रम में आए हुए अभ्यागतों का जल, मूल, फल की भिक्षा से सत्कार करे।*

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ 8 ॥

अर्थ : *द्विज को चाहिए कि वेद-पाठ में लगा रहे, सरदी गर्मी आदि को सहे, सबका उपकार करे, मन को रोके रहे, सदा दान दे परंतु प्रतिग्रह न ले और सब प्राणियों पर दया रखे।*

वैतानिकं च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि।
दर्शमस्कन्दयन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥ 9 ॥

अर्थ : *अमावस्या और पूर्णिमा के दिनों—पर्वों—को नहीं त्यागता हुआ विधिपूर्वक वैतानिक अग्निहोत्र करे।*

ऋक्षेष्ट्याग्रयणं चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्।
तुरायणं च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च ॥ 10 ॥

अर्थ : *नक्षत्रयज्ञ और नए अन्न का यज्ञ और चातुर्मास्य उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञों को भी क्रम से करे।*

वासन्तशारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः।
पुरोडाशांश्चरूंश्चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥ 11 ॥

अर्थ : *बसंत और शरद ऋतु में उत्पन्न हुए, पवित्र और आप ही लाए हुए मुनियों के (नीवारादि) अन्नों से पुरोडाश और चरुओं को शास्त्र विधि से जुदा-जुदा तैयार करे।*

देवताभ्यस्तु तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः।
शेषमात्मनि युञ्जीत लवणं च स्वयं कृतम् ॥ 12 ॥

अर्थ : *उस वन के, (नीवारादि से बनाई गई) परम पवित्र हवि को देवताओं को अर्पण करके, शेष हवि का और स्वयं बनाए लवण (मय पदार्थ) का भोजन करे।*

स्थलजौदकशाकानि पुष्पमूलफलानि च।
मेध्यवृक्षोद्भवान्यद्यात्स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥ 13 ॥

अर्थ : पृथ्वी और जल में उत्पन्न हुए शाक और पवित्र वृक्षों से उत्पन्न हुए पुष्प, मूल, फल और फलों से निकले स्नेह का भक्षण करे।

वर्जयेन्मधु मांसं च भौमानि कवकानि च।
भूस्तृणं शिग्रुकं चैव श्लेष्मातकफलानि च ॥ 14 ॥

अर्थ : शहद, मांस, भूमि में उत्पन्न हुए छत्राक, भूस्तृण, (सांप की छत्री), शिग्रु और बहेड़े के फलों को त्याग दे।

त्यजेदाश्वयुजे मासि मुन्यन्नं पूर्वसंचितम्।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥ 15 ॥

अर्थ : पहला इकट्ठा किया हुआ (नीवारादि) मुनियों का अन्न और जीर्ण वस्त्र तथा शाक, मूल, फल इन्हें आश्विन के महीने में त्याग दे।

न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्।
न ग्रामजातान्यार्तोऽपि मूलानि च फलानि च ॥ 16 ॥

अर्थ : भूखा होने पर भी, हल से जोती हुई भूमि में उत्पन्न हुए और किसी से छोड़े गए अन्न को तथा गांव में उत्पन्न हुए मूल और फल को न खाना चाहिए।

अग्निपक्वाशनो वा स्यात्कालपक्वभुगेव वा।
अश्मकुट्टो भवेद्वापि दन्तोलूखलिकोऽपि वा ॥ 17 ॥

अर्थ : (वानप्रस्थ द्विज) अग्नि से पके हुए अन्न का भोजन करे, अथवा समय पर पके हुए फल आदि खाए, अथवा फलों को पत्थर से कूटकर व दांतों से चबाकर खाए।

सद्यः प्रक्षालको वा स्यान्माससंचयिकोऽपि वा।
षण्मासनिचयो वा स्यात्समानिचय एव वा ॥ 18 ॥

अर्थ : (वानप्रस्थ द्विज) एक ही दिन के लिए, अथवा एक मास के लिए, अथवा छः महीनों के लिए, अथवा एक वर्ष के निर्वाह के लिए नीवार आदि का संचय करे।

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा वाहृत्य शक्तितः।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वाप्यष्टमकालिकः ॥ 19 ॥

अर्थ : अपनी शक्ति के अनुसार अन्न लाकर रात्रि को अथवा दिन में भोजन करे, अथवा चौथे प्रहर में व आठवें प्रहर में भोजन करे।

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्लकृष्णे च वर्तयेत्।
पक्षान्तयोर्वाप्यश्नीयाद्यवागूं कथितां सकृत् ॥ 20 ॥

अर्थ : शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चान्द्रायण व्रत करे, अथवा पूर्णिमा और अमावस्या को पकी हुई लपसी का एक बार भोजन करे।

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा।
कालपक्वैः स्वयंशीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥ 21 ॥

अर्थ : *अथवा वानप्रस्थ द्विज समय पर पके हुए और अपने आप गिरे हुए केवल फल मूल से सदा जीवन निर्वाह करे।*

भूमौ विपरिवर्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम्।
स्थानासनाभ्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥ 22 ॥

अर्थ : *भूमि पर लेटे वा दिन भर एक चरण से खड़ा रहे, अथवा कभी आसन पर और कभी आसन से उठकर अपना समय बितावे, और तीनों काल स्नान करे।*

ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्धयंस्तपः ॥ 23 ॥

अर्थ : *अपने तप को क्रम से बढ़ाता हुआ वानप्रस्थ ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि में तप करे, वर्षा ऋतु में वर्षा की जगह नग्न बैठा रहे, और हेमन्त (जाड़े की) ऋतु में गीले वस्त्र धारण करे।*

उपस्पृशंस्त्रिषवणं पितृन्देवांश्च तर्पयेत्।
तपश्चरंश्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥ 24 ॥

अर्थ : *तीनों काल में स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करे और कठिन तपस्या करके अपने शरीर को सुखाए।*

अग्नीनात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि।
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मूलफलाशनः ॥ 25 ॥

अर्थ : *विधि के अनुसार वैतान नामक अग्निओं को अपनी देह में रखकर, अर्थात् उनकी भस्म पीकर, अग्नि और गृह (कमरे आदि) को त्याग दे, और मौन व्रत धारण करके और फल व मूल खाकर समय बिताए।*

अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः।
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ 26 ॥

अर्थ : *सुख देने वाले विषयों में लिप्त होने का यत्न न करे, ब्रह्मचारी रहे (अर्थात् स्त्री भोगादि न करे) भूमि पर सोवे, निवास स्थान से ममता न करे और वृक्ष की जड़ को घर समझकर वहां निवास करे।*

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्षमाहरेत्।
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥ 27 ॥

अर्थ : *फल मूल न मिलें तो तपस्वी वानप्रस्थ को चाहिए कि ब्राह्मणों से अथवा अन्य वनवासी गृहस्थ द्विजातियों के यहां से अपने प्राणधारण करने के योग्य भिक्षा मांग लाए।*

ग्रामादाहृत्य वाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन्।
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा ॥ 28 ॥

अर्थ *: यदि वन में रहकर भिक्षा न मिले तो गांव से पत्ते के दोने व सकोरे में, अथवा हाथ में ही भीख मांग लाए और वानप्रस्थ केवल आठ ग्रास भोजन करे।*

एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः ॥ 29 ॥

अर्थ *: वानप्रस्थ ब्राह्मण वन में बसकर इन पूर्वोक्त तथा अन्य सब नियमों का पालन करे और आत्मज्ञान की सिद्धि के लिए उपनिषदों की श्रुतियों का अभ्यास करे।*

मनुस्मृति में संन्यासी के लिए निम्न विधान हैं–[1]

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ 38 ॥

अर्थ *: प्रजापति यज्ञ समाप्त करके, सर्वस्व दक्षिणा देके, आत्मा में अग्निओं को स्थापन करके ब्राह्मण अपने घर से निकल जाए और संन्यास आश्रम ग्रहण करे।*

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ 39 ॥

अर्थ *: जो ब्राह्मण सब प्राणियों को अभयदान देकर और घर से जाकर संन्यास ग्रहण करता है, वह ब्रह्मवादी तेजोमय लोकों को पाता है।*

यस्मादण्वपि भूतानां द्विजान्नोत्पद्यते भयम्।
तस्य देहाद्विमुक्तस्य भयं नास्ति कुतश्चन ॥ 40 ॥

अर्थ *: जिस द्विज से किसी प्राणी को थोड़ा-सा भी भय नहीं होता, उसे शरीर छोड़ने के पीछे कहीं भय नहीं मिलता।*

अगारादभिनिष्क्रान्तः पवित्रोपचितो मुनिः।
समुपोढेषु कामेषु निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥ 41 ॥

अर्थ *: द्विज को चाहिए कि घर से निकलकर, पवित्र दंड, कमंडलु साथ लेकर अनायास मिले हुए पदार्थों के प्रति निःस्पृह होकर अर्थात इच्छा त्यागकर संन्यास ग्रहण करे।*

एक एव चरेन्नित्यं सिद्ध्यर्थमसहायवान्।
सिद्धिमेकस्य संपश्यन्न जहाति न हीयते ॥ 42 ॥

अर्थ *: सबका संग त्यागने वाले एक की ही मुक्ति होती है–यह जानकर जो द्विज*

---

1. सै.बु.ई., खंड 25, अध्याय 6, श्लोक 38-45, पृ. 205-206

सिद्धि के लिए किसी को सहायक न रखकर सदा अकेला विचरता है न वह किसी का त्याग करता है और न कोई उसका त्याग करता है, अर्थात् वह सदा सुख-दुख में ममता को त्याग कर मुक्ति पाता है।

अनग्निरनिकेतः स्यादग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।
उपेक्षकोऽसंकुसुको मुनिर्भावसमाहितः ॥ 43 ॥

अर्थ : (लौकिक) अग्निरहित, गृहहीन, व्याधि की चिकित्सा से रहित, स्थिरबुद्धि, मौनी और सदा ब्रह्म में एकाग्रचित्त ऐसा होकर समय बिताए और केवल भिक्षा के लिए गांव में जाए।

कपालं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता।
समता चैव सर्वस्मिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ 44 ॥

अर्थ : मिट्टी का सकोरा आदि भिक्षा के पात्र, रहने के लिए वृक्ष की जड़, जीर्ण (कौपीन, कंथा आदि) वस्त्र, अकेला निवास और सब में समान दृष्टि रखना—ये मुक्त के लक्षण हैं।

नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा ॥ 45 ॥

अर्थ : जीवन व मरण किसी की इच्छा न करे, परंतु जैसे सेवक वेतन के लिए नियत समय की राह देखता है उसी भांति काल (मौत) की प्रतीक्षा करे।

अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ 49 ॥

अर्थ : सदा ब्रह्म का ध्यान करे, योगासन से बैठे, सब विषयों से विरक्त रहे, (दंड कमंडलु आदि) किसी बात की इच्छा न करे और केवल आत्मसहाय से ही अर्थात् अकेला ही मोक्ष के सुख का चाहने वाला संन्यासी इस संसार में विचरे अर्थात् सबका संग त्याग दे।

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्राङ्गविद्यया।
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥ 50 ॥

अर्थ : भूमिकंप आदि उत्पात व नेत्रस्पंदन आदि शकुन व नक्षत्र तथा हाथ की रेखा आदि का फलाफल बताकर अथवा शास्त्र की आज्ञा दिखाकर किसी से भीख मांगने की इच्छा न करे।

न तापसैर्ब्राह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः।
आकीर्णं भिक्षुकैर्वान्यैरगारमुपसंव्रजेत् ॥ 51 ॥

अर्थ : जिस घर में अन्य तपस्वी, ब्राह्मण, पक्षी, कुत्ते और अन्य भिक्षुक विद्यमान हों वहां भीख मांगने की इच्छा से न जाना चाहिए।

क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान्।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ 52 ॥

अर्थ : दाढ़ी, मूछ, नख और बाल कटवाकर; दंडकमंडलु तथा भिक्खापात्र लेकर और किसी प्राणी को दुख न देते हुए संन्यासी को सदा नियमसहित विचरना चाहिए।

अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च।
तेषामद्‌भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥ 53 ॥

अर्थ : उस संन्यासी का भिक्षापात्र धातु का न हो और पात्र में छेद भी न हो, और जैसे यज्ञ में चमस शुद्ध होते हैं वैसे ही इन सब पात्रों की जल से शुद्धि कही गई है।

अलाबुं दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा।
एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ 54 ॥

अर्थ : तूंबा और काठ, मिट्टी तथा बांस का पात्र संन्यासी के लिए स्वयंभू मनु ने कहा है।

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ 55 ॥

अर्थ : संन्यासी प्राण धारण करने के लिए दिन में एक बार भीख मांगे और विस्तार में न लगे, क्योंकि भिक्षा में अधिक मन लगाने से संन्यासी विषयभोगों में पड़ जाता है।

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ 56 ॥

अर्थ : जब घर में रसोई का धुआं बंद हो जाए, मूसल का काम पूरा हो जाए, अग्नि बुझ जाए और गृहस्थ के भोजन के बाद जूठे पात्र फेंक दिए जाएं—उस समय संन्यासी भिक्षा के लिए विचरे।

अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत्।
प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥ 57 ॥

अर्थ : संन्यासी को चाहिए कि भीख न मिलने पर दुखी और मिलने पर आनंदित न हो; जितने में प्राणों का निर्वाह हो सके उतनी ही भिक्षा मांगे और व्यवहार की अन्य वस्तुओं में वृद्धि न करे।

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः।
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बद्ध्यते ॥ 58 ॥

अर्थ : आदरपूर्वक भिक्षा पाने की कभी इच्छा न करे, क्योंकि मुक्ति की अवस्था में रहने पर संन्यासी को अत्यंत सत्कार से भी संसार-बंधन हो सकता है।

अल्पान्नाभ्यवहारेण रहःस्थानासनेन च।
ह्रियमाणानि विषयैरिन्द्रियाणि निवर्तयेत् ॥ 59 ॥

अर्थ : थोड़े से अन्न का भोजन और निर्जन स्थान में निवास करके संन्यासी, विषयों में लगी हुई इन्द्रियों को वहां से धीरे-धीरे अलग करे।

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ 60 ॥

अर्थ : इन्द्रियों के रोकने से, रागद्वेषादि छोड़ने से और सब प्राणियों की अहिंसा से संन्यासी को मुक्ति मिल सकती है।

यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निःस्पृहः।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ 80 ॥

अर्थ : व्यक्ति जब मन से सब विषयों में दोष देखकर उन पदार्थों से विरक्त होता है तब इस संसार में और परलोक में सदा सर्वत्र अविनाशी सुख मिलता है।

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा सङ्गाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ 81 ॥

अर्थ : इस प्रकार (स्त्री पुत्रादि में ममता रूपी) सब संगों को धीरे-धीरे छोड़कर और (आसक्ति, मान, अपमान, सर्दी, गरमी, सुख और दुख आदि) सब द्वंद्वभावों से छूटकर वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

ध्यानिकं सर्वमेवैतद्यदेतदभिशब्दितम्।
न ह्यनध्यात्मवित्कश्चित्क्रियाफलमुपाश्नुते ॥ 82 ॥

अर्थ : जो कुछ पहले कहा है सब ध्यान से प्राप्त होता है, इसलिए अध्यात्मज्ञान-रहित कोई पुरुष कदापि किसी ध्यान का फल नहीं पा सकता।

अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत् ॥ 83 ॥

अर्थ : यज्ञ और देवता संबंधी जिसमें मंत्र हों और जो आध्यात्मिक हो (अर्थात् जिसमें जीवका स्वरूप हो) और जो उपनिषदों में कहा है उस वेदांत में वर्णित मंत्र को सदा जपे।

इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम्।
इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम् ॥ 84 ॥

अर्थ : जो वेदों का अर्थ नहीं जानते उनकी गति वेद है और जो अर्थ जानते हैं उनकी भी गति वेद है, और स्वर्ग तथा मोक्ष की इच्छा करने वालों के लिए भी केवल वेद ही अवलंब है।

अनेन क्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ 85 ॥

अर्थ : इस भांति जो ब्राह्मण विधिपूर्वक संन्यास आश्रम का ग्रहण करता है। वह इस लोक में सब पापों से रहित होकर परब्रह्म को पाता है।

वानप्रस्थ और संन्यासी की तुलना से पता चलता है कि इनके पालन में इतनी

समानता है कि हमें यह जिज्ञासा होती है कि इन दोनों अवस्थाओं को भिन्न क्यों रखा गया है। दोनों के बीच बहुत कम अंतर है। पहली बात तो यह है कि वानप्रस्थी अपनी पत्नी को साथ रख सकता है, संन्यासी नहीं। दूसरे यह कि वानप्रस्थी अपनी संपत्ति रख सकता है और संन्यासी को उसका परित्याग करना होता है। तीसरे यह कि वानप्रस्थी वनों में निवास (घर) बना सकता है किंतु संन्यासी एक ही स्थान पर नहीं टिक सकता है, उसे यहां-वहां रमण करना होता है। शेष बातों में दोनों का जीवन समान है। ब्राह्मणों ने वानप्रस्थ की अतिरिक्त मान्यता क्यों रखी जबकि संन्यास पर्याप्त था? परंतु यह सवाल तो फिर भी बना ही हुआ है कि इन दोनों की ही क्या आवश्यकता थी? ये आत्म-बलिदान के उदाहरण नहीं कहे जा सकते। वानप्रस्थी और संन्यासी केवल वृद्ध ही हो सकते हैं। मनु इस संबंध में स्पष्ट हैं कि किस अवस्था में मनुष्य वानप्रस्थ हो जाए। इसका समय तभी आता है जब झुर्रियां पड़ जाएं। यह काफी आयु के बाद होता है। संन्यासी की आयु तो और भी अधिक होनी चाहिए। ऐसे व्यक्तियों को आत्मत्यागी कहना गलत है और मूर्खता से कम नहीं है। जिन्होंने जीवन के सभी सुख भोगे हों और जब वे सुख भोगने योग्य ही न रहें तो उनका परित्याग कर दें। यह निर्विवाद है कि परिवार और घर का त्याग, समाज-सेवा या दीन-दुखियों की सेवा के उद्देश्य से नहीं किया जाता। इसका आशय है, तपस्या करना और शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा करना! यह मूर्खता की चरमसीमा ही है कि वृद्ध व्यक्तियों को घर-परिवार से दूर जंगलों में मरने के लिए छोड़ दिया जाए, जहां उनके लिए कोई दो आंसू बहाने वाला भी न हो।

ब्राह्मणों ने नियोजित अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य से आश्रम-प्रणाली बनाई। यह इतनी बड़ी मूर्खता है कि उसका कारण और उद्देश्य समझ पाना एक बहुत बड़ी पहेली है।

परिशिष्ट : 2

अनिवार्य वैवाहिक अवस्था

मनु की व्यवस्था के अनुसार लोगों का जीवन चार भागों में विभाजित होना चाहिए। ये चार अवस्थाएं हैं–1. ब्रह्मचर्य, 2. गृहस्थ, 3. वानप्रस्थ और 4. संन्यास। ब्रह्मचर्य विद्यार्थी जीवन है। यह एक ऐसी अवस्था है जब मनुष्य का जीवन वेदों के अध्ययन को समर्पित होता है। गृहस्थाश्रम का अर्थ है, वैवाहिक जीवन। जैसा कि मनु ने कहा है, इस अवस्था में गृहस्थ रहकर सुख भोगना और परिवार-वृद्धि करना होता है। वानप्रस्थ की स्थिति में गृहस्थी से दूर रहना होता है; इस अवस्था में व्यक्ति गृह-त्याग कर देता है फिर भी वह अपनी पत्नी का त्याग नहीं करता। वह जंगलों में रहता है लेकिन अपनी संपत्ति का अधिकार नहीं त्यागता। जहां तक गृहस्थ जीवन और धार्मिक कृत्यों का संबंध है, वह मरे के समान है किंतु सामाजिक रूप से वह मरता नहीं है। संन्यास वह अवस्था है, जब मनुष्य अपने वैवाहिक बंधन तोड़ देता है। वह गृहस्थी त्याग देता है और गृहस्थों के लिए आवश्यक धर्म-कर्म से नाता तोड़ लेता है, और ब्रह्म की उपासना करने जंगलों में चला जाता है। सामाजिक दृष्टि से उसे मृत समझा जाता है।

मनुष्य जीवन के विभाजन की प्रथा मनु से भी पुरानी है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मनु ने इसमें संशोधन कर दिया।

पहला बदलाव यह है कि मनु ने विवाह को अनिवार्य बना दिया। ब्रह्मचारी को अध्ययन समाप्त करने पर विवाह करना चाहिए। यह नियम मनु ने बनाया, जो निम्न व्यवस्थाओं से प्रकट है–

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥ 3/2 ॥

अर्थ : *जिसका ब्रह्मचर्य खंडित नहीं हुआ हो ऐसा ब्रह्मचारी तीनों वेदों को वा दो वेदों को, वा एक वेद को क्रम से पढ़कर गृहस्थाश्रम में वास करे, अर्थात् अपना विवाह करे।*

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ 3/4 ॥

अर्थ : *जब द्विज विधिपूर्वक (व्रत) स्नान और समावर्तन कर चुके अर्थात अध्ययन पूरा कर ले तब गुरु की आज्ञा से अपने वर्ण की अच्छे लक्षण वाली कन्या से विवाह करे।*

मनु ने जो दूसरा संशोधन यह किया कि ब्रह्मचारी के लिए संन्यास आश्रम में प्रवेश वर्जित कर दिया। मनु ने संन्यास से पूर्व विवाह की शर्त लगा दी। उन्होंने कहा कि गृहस्थ में प्रवेश किए बिना संन्यास ग्रहण करना पाप है।

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ 6/35 ॥

अर्थ : ऋषि, देव और पितृ इन तीनों के ऋण चुकाकर मोक्षसाधन में मन लगाना चाहिए, क्योंकि इनका ऋण बिना चुकाए मोक्ष के लिए यत्न करने से अधोगति होती है।

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ 6/36 ॥

अर्थ : विधिपूर्वक वेद पढ़कर, धर्मपूर्वक पुत्र उत्पन्न करके और शक्ति के अनुसार यज्ञ करके मोक्ष में मन लगाना उचित है।

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ 6/37 ॥

अर्थ : जो द्विज बिना वेद पढ़े, बिना संतान उत्पन्न किए और बिना यज्ञ किए ही मोक्ष की इच्छा करे उसकी अधोगति होती है।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ॥ 6/38 ॥

अर्थ : प्रजापति यज्ञ समाप्त करके, सर्वस्व दक्षिणा दे करके, आत्मा में अग्निओं का स्थापन करके ब्राह्मण अपने घर से निकल जाए और संन्यास आश्रम ग्रहण करे।

मनु ने तीसरा संशोधन जो किया, वह यह है कि एक गृहस्थ बिना वानप्रस्थ में प्रवेश किए संन्यासी नहीं हो सकता।

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ 6/1 ॥

अर्थ : स्नातक द्विज इस प्रकार विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम में रहकर फिर शास्त्रोक्त विधि से इन्द्रियों को रोककर नियम से वन में निवास करे।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ 6/2 ॥

अर्थ : जब गृहस्थी देख ले कि अपने शरीर का चमड़ा ढीला हो गया है और केश पक गए और पुत्र के भी पुत्र हो गया तब वह वन का आश्रय ले।

संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम्।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ 6/3 ॥

अर्थ : *गांव के आहार (व्रीहि, यव आदि) और (शय्या, सवारी आदि) सब सामग्री को त्यागकर और स्त्री को पुत्रों के हाथ सौंपकर, व स्त्री को साथ लेकर, वन को जाए।*

मनु ने जो संशोधन किए, वे वास्तव में उनसे पहले प्रचलित नियमों की तुलना में क्रांतिकारी हैं। इस संबंध में हम केवल दो प्रासंगिक नियमों का उल्लेख करेंगे, जो दो धर्म-सूत्रों वशिष्ठ धर्म-सूत्र और गौतम धर्म-सूत्र में हैं।

वशिष्ठ धर्म-सूत्र का[1] कथन है–

"चार सोपान हैं–विद्यार्थी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और परिव्राजक।"

"जिस व्यक्ति ने एक दो अथवा तीन वेदों का अध्ययन विद्यार्थी धर्म का उल्लंघन न करते हुए किया है, वह जिस आश्रम में जीवन बिताना चाहे, बिता सकता है।"

गौतम धर्म-सूत्र[2] के अनुसार–

"कुछ (कहते हैं कि) वह (जिसने वेदों का अध्ययन किया है) अपनी इच्छानुसार (किस) अवस्था में रहना चाहता है (इसका वरण कर सकता है)। (चार अवस्थाएं हैं) विद्याध्ययन, गृहस्थ, भिक्षु और वैखानस।"

जैसा कि दो धर्म-सूत्रों से स्पष्ट है, यह चयन करना किसी व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर है कि वह ब्रह्मचर्य धर्म निभाने के बाद किस आश्रम में जाना चाहता है। वह चाहे तो विवाह कर सकता है और गृहस्थ बन सकता है, या बिना विवाह किए वह सीधे संन्यास आश्रम में प्रवेश कर सकता है। मनु ने वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम से पूर्व अनिवार्य गृहस्थ का निर्देश देकर सचमुच क्रांतिकारी बदलाव किया है, यह स्पष्ट है।

ऐसा लगता है कि मनु ने एक और बदलाव भी किया है। यह समझ नहीं आता कि गृहस्थ के पश्चात संन्यास ग्रहण करने से पहले वानप्रस्थ की क्या आवश्यकता है? कोई व्यक्ति सीधे ही संन्यासी क्यों नहीं बन सकता? क्या वानप्रस्थ और संन्यास के बीच कोई ऐसा अंतर है, जिसे मूलभूत कहा जा सके? अध्ययन के इस प्रकरण में हमने मनु के द्वारा वानप्रस्थ और संन्यासी के लिए बनाए नियमों का संग्रह किया है। इन नियमों का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनमें शायद ही कोई भिन्नता है। बस वानप्रस्थ को कुछ धर्म-कर्म करने पड़ते हैं जिनकी व्यवस्था गृहस्थी के लिए है, इसके सिवाय दोनों आश्रमों (वानप्रस्थ और संन्यास) के बीच कोई ठोस अंतर नहीं है। यह भी उतना ही सच है कि वानप्रस्थ और संन्यासी के लक्ष्य एक जैसे होते हैं। मनु के निम्नांकित नियमों से पता चल जाएगा कि उनमें कैसी समानता है।

---

1. अध्याय 7, सूत्र 1,2,3

2. अध्याय 3, सूत्र 1 और 2

प्रापतव्य लक्ष्य

वानप्रस्थ	संन्यासी
ब्राह्मण वन में बसकर इन पूर्वोक्त तथा अन्य सब नियमों का पालन करे व आत्म-ज्ञान की सिद्धि के लिए उपनिषद आदि अनेक श्रुतियों का अभ्यास करे ॥ 29 ॥	इस भांति विधिपूर्वक जो ब्राह्मण संन्यास आश्रम का ग्रहण करता है वह इस लोक में सब पापों से रहित होकर परब्रह्म को पाता है ॥ 85 ॥

फिर मनु ने गृहस्थ और संन्यास से अलग वानप्रस्थ की रचना क्यों कर डाली? वानप्रस्थ के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह स्थिति मनु से पूर्व विद्यमान थी। वे अरण कहलाते थे। प्रोफेसर राधा कुमुद मुकर्जी[1] के अनुसार—

> "उन ब्रह्मचारियों को अरण अथवा अरणमना कहा जाता था, जो ज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा में अविवाहित रहना चाहते थे। ये अरण गांव के बाहर आबादी से दूर वैखानस के रूप में वनों में रहते थे। वह जंगल जहां अरण तापस रहते थे, अरण्य कहलाते थे। इन तापसों की दार्शनिक जिज्ञासा परम समस्याओं पर थी, जैसे—ब्रह्म, सृष्टि, आत्मा अथवा अमरता।"

प्राचीन अरण को मनु ने वानप्रस्थ का नाम दे दिया जबकि उसका अर्थ अरण ही है। मनु ने न केवल नाम ही बदला, उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण बदलाव और कर दिया। उन्होंने ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ के बीच में वैवाहिक अवस्था डाल दी। मूल वानप्रस्थ अथवा अरण की व्यवस्था अविवाहितों के लिए थी। मनु का वानप्रस्थ अनिवार्य रूप में विवाहित के लिए है। प्राचीन व्यवस्था में ब्रह्मचारी स्वेच्छा से वानप्रस्थ अथवा गृहस्थ बन सकता था। मनु ने क्रम बदल दिया, जिससे कि कोई व्यक्ति बिना विवाह किए वानप्रस्थ न बन पाए।

प्राचीन व्यवस्था के अनुसार वानप्रस्थ या संन्यासी अपनी पत्नी या संतान के साथ कोई कठोरता नहीं बरतते थे। मनु की नई व्यवस्था से यह आरंभ हो गया क्योंकि पहले तो किसी को विवाह के लिए विवश किया जाए और फिर उसे अपनी पत्नी को त्यागने की अनुमति दे दी जाए, अगर यह अपराध नहीं है तो अत्याचार व क्रूरता तो है ही। लेकिन, मनु ने इसकी कोई परवाह नहीं की। वह तो सभी के लिए वैवाहिक अवस्था अनिवार्य करने पर तुले थे।

मनु ने ऐसा क्यों किया? उन्होंने वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए गृहस्थाश्रम की अनिवार्यता क्यों रखी? मनु ने सभी आश्रमों में गृहस्थ को श्रेष्ठ बताया है। वह कहते हैं—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ 87 ॥

1. *एजूकेशन इन एंशिएंट इंडिया, पृ. 6*

अर्थ : *ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और यति ये चारों अलग-अलग आश्रम गृहस्थ से उत्पन्न हुए हैं।*

सर्वेऽपि क्रमशस्त्वेते यथाशास्त्रं निषेविताः।
यथोक्तकारिणं विप्रं नयन्ति परमां गतिम् ॥ 88 ॥

अर्थ : *शास्त्रविधि से क्रमपूर्वक सेवन करने से ये सब चारों आश्रम यथोक्तकर्ता ब्राह्मण को परमगति को पहुंचा देते हैं।*

सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।
गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान्बिभर्ति हि ॥ 89 ॥

अर्थ : *इन सब चारों आश्रमों में, वेद और स्मृति की विधि से चलने वाले गृहस्थाश्रम को ऋषियों ने श्रेष्ठ कहा है, क्योंकि वह (गृहस्थाश्रम) तीनों आश्रमों का पालन करता है।*

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ 90 ॥

अर्थ : *जैसे सब नदी-नद समुद्र में जाकर स्थित होते हैं वैसे ही अन्य सब आश्रम वाले गृहस्थाश्रम के आश्रय से जीते हैं।*

इस कथन को सच मान भी लें, तो सवाल फिर भी बचता है कि मनु ने वानप्रस्थ और संन्यास के पूर्व विवाह की शर्त क्यों रखी? इसका एक ही जवाब है कि वह लोगों को संन्यासी बनने से रोकना चाहते थे। मनु को संन्यास और वानप्रस्थ क्यों पंसद थे? इसका जवाब यह है कि बौद्ध-धम्म का समर्थन और प्रचार आमतौर पर भिक्खु कहलाने वाले संन्यासियों ने किया था। अविवाहित लोगों के लिए भिक्खु बनना सरल था। मनु इसे रोकना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने विवाह को अनिवार्य कर दिया।

संग्रह

वानप्रस्थ और संन्यास की तुलनात्मक संहिता

I. आश्रम में प्रवेश करते समय परिवार से संबंध

वानप्रस्थ	संन्यासी
गांव के आहार (व्रीहियव आदि) को और (शय्या, सवारी आदि) सब सामग्री त्यागकर और स्त्री को पुत्रों के हाथ सौंपकर, व स्त्री को साथ लेकर, वन को जाए ॥ 6/3 ॥	प्रजापति यज्ञ समाप्त करके, सर्वस्व दक्षिणा देके, आत्मा में अग्निओं को स्थापित करके ब्राह्मण अपने घर से निकल जाए और संन्यास आश्रम ग्रहण करे ॥ 6/38 ॥

II. आवास संबंधी नियम

वानप्रस्थ	संन्यासी
अग्निहोत्र और घर तथा अग्नि की सामग्री	द्विज को चाहिए कि घर से निकलकर, पवित्र

लेकर ग्राम से बाहर जितेन्द्रिय होकर वन में वास करे ॥ 6/4 ॥	दंड, कमंडल साथ लेकर अनायास मिले हुए पदार्थों से निर्वाह करे और निःस्पृह होकर संन्यास ग्रहण करे ॥ 6/41 ॥
	सबका संग त्यागने वाले एक की ही मुक्ति होती है यह जानकर जो द्विज सिद्धि के लिए किसी को सहायक न रखकर सदा अकेला विचरता है, न वह किसी का त्याग करता है और न कोई उसका त्याग करता है, अर्थात् वह सदा सुख-दुख में ममता को त्याग कर मुक्ति पाता है ॥ 6/42 ॥
	(लौकिक) अग्निरहित, गृहहीन, व्याधि की चिकित्सा से रहित, स्थिरबुद्धि, मौनी और सदा ब्रह्म में एकाग्रचित्त ऐसा होकर समय बितावे और केवल भिक्षा के लिए गांव में जाए ॥ 6/43 ॥

III. जीवन-चर्या के नियम

वानप्रस्थ	संन्यासी
मृग आदि का चर्म व पुराना वस्त्र धारण करे, प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करे, जटा, दाढ़ी आदि बालों को और नखों को सदा धारण करे ॥ 6/6 ॥	मिट्टी का सकोरा आदि भिक्षा के लिए, रहने के लिए वृक्ष की जड़, पहनने को जीर्ण (कौपीन, कंथा आदि) वस्त्र, अकेला निवास और सबमें समान दृष्टि ये मुक्त व्यक्ति के लक्षण हैं ॥ 6/44 ॥
	दाढ़ी, मूछ, नख और बाल कटवाकर, दंडक-मंडलु तथा भिक्षापात्र लेकर और किसी प्राणी को दुख न देकर इस प्रकार संन्यासी को सदा नियम सहित विचरना चाहिए ॥ 6/52 ॥
	उस संन्यासी का भिक्षापात्र धातु का न हो और पात्र में छेद भी न हो, और जैसे यज्ञ में चमस शुद्ध होते हैं वैसे ही इन सब पात्रों की जल से शुद्धि कही गई है ॥ 6/53 ॥
	तूंबा और काठ, मिट्टी तथा बांस का पात्र संन्यासी के लिए स्वयंभू मनु ने कहा है ॥ 6/54 ॥

IV. आजीविका के नियम

वानप्रस्थ	संन्यासी
बसंत और शरद ऋतु में उत्पन्न हुए, पवित्र और आप ही लाए हुए मुनियों के (नीवारादि) अन्नों से पुरोडाश और चरुओं को शास्त्रविधि से जुदा-जुदा तैयार करे ॥ 6/11 ॥	सदा ब्रह्म का ध्यान करे, योगासन से बैठे, सब विषयों से विरक्त रहे, (दंड, कमंडलु आदि) किसी बात की इच्छा न करे और केवल आत्मसहाय से ही अर्थात् अकेला ही मोक्ष के सुख का चाहने वाला संन्यासी इस संसार में विचरै (अर्थात् सबका संग और ममता को त्याग दे) ॥ 6/49 ॥
उस वन के, (नीवारादि से बनाई गई) परम पवित्र हवि को देवताओं को अर्पण करके, शेष हविका और स्वयं बनाए लवण (मय पदार्थ) का भोजन करे ॥ 6/12 ॥	भूमिकंप आदि उत्पात व नेत्रस्पंदन आदि शकुन व नक्षत्र तथा हाथ की रेखा आदि का फलाफल बताकर अथवा शास्त्र की आज्ञा दिखाकर किसी से भीख मांगने की इच्छा न करे ॥ 6/50 ॥
सुख देने वाले विषयों में लिप्त होने का यत्न न करे, ब्रह्मचारी रहे (अर्थात् स्त्री भोगादि न करे) भूमि पर सोए, निवास स्थान से ममता न करे और वृक्ष की जड़ में निवास करे ॥ 6/26 ॥	जिस घर में अन्य तपस्वी, ब्राह्मण, पक्षी, कुत्ते और अन्य भिक्षुक विद्यमान हो, वहां भीख मांगने की इच्छा से न जाना चाहिए ॥ 6/51 ॥
फल मूल न मिलें तो तपस्वी वानप्रस्थी को चाहिए कि ब्राह्मणों से अथवा अन्य वनवासी गृहस्थ द्विजातियों के यहां से अपने प्राणधारण करने के योग्य भिक्षा मांग लाए ॥ 6/27 ॥	
यदि वन में रहकर भिक्षा न मिले तो गांव से पत्ते के दोने व सकोरे में, अथवा हाथ में ही भीख मांग कर लाए और वानप्रस्थी केवल आठ ग्रास भोजन करे ॥ 6/28 ॥	

V. भोजन संबंधी नियम

वानप्रस्थ	संन्यासी
पृथ्वी और जल में उत्पन्न हुए शाक और पवित्र वृक्षों से उत्पन्न हुए पुष्प, मूल, फल और फलों से निकले स्नेह का भक्षण करे ॥ 6/13 ॥	संन्यासी प्राण धारण करने के लिए दिन में एक बार भीख मांगे और विस्तार में न लगे, क्योंकि भिक्षा में अधिक मन लगाने से संन्यासी विषय भोगों में पड़ जाता है ॥ 6/55 ॥

शहद, मांस, भूमि में उत्पन्न हुए छत्राक, भूस्तृण, (सांप की छत्री) शिग्रु और बहेड़े के फलों को त्याग दे ॥ 6/14 ॥

पहला इकट्ठा किया हुआ (नीवारादि) मुनियों का अन्न और जीर्ण वस्त्र तथा शाक, मूल, फल इन्हें आश्विन के महीने में त्याग दे ॥ 6/15 ॥

भूखा होने पर भी, हल से जोती हुई भूमि में उत्पन्न हुए और किसी से छोड़े गए अन्न को तथा गांव में उत्पन्न हुए मूलों व फलों को न खाना चाहिए ॥ 6/16 ॥

(वानप्रस्थ द्विज) अग्नि से पके हुए अन्न का भोजन करे, अथवा समय पर पके हुए फल आदि खाए, अथवा फलों के पत्थर से कूटकर व दातों से चबाकर खाए ॥ 6/17 ॥

(वानप्रस्थ द्विज) एक ही दिन के लिए, अथवा एक मास के लिए, अथवा छः महीने के लिए, अथवा एक वर्ष के निर्वाह के लिए नीवार आदि का संचय करे ॥ 6/18 ॥

अपनी शक्ति के अनुसार अन्न लाकर रात्रि को अथवा दिन में भोजन करे, अथवा चौथे प्रहर में व आठवें प्रहर में भोजन करे ॥ 6/19 ॥

शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चान्द्रायण व्रत करे, अथवा पूर्णिमा और अमावस्या को पकी हुई लपसी का एक बार भोजन करे ॥ 6/20 ॥

अथवा वानप्रस्थ द्विज समय पर पके हुए और अपने आप गिरे हुए केवल फल मूल से सदा जीवन निर्वाह करे ॥ 6/21 ॥

भूमि पर लेटे व दिन भर एक चरण से खड़ा

जब घर में रसोई का धुआं बंद हो जाए, मूसल का काम पूरा हो जाए, अग्नि बुझ जाए और गृहस्थ के भोजन के बाद जूठे पात्र फेंक दिए जाएं उस समय संन्यासी भिक्षा के लिए विचरे ॥ 6/56 ॥

संन्यासी को चाहिए कि भीख न मिलने पर दुखी और मिलने पर आनंदित न हो; जितने में प्राणों का निर्वाह हो सके उतना ही अन्न मांग लें और व्यवहार की अन्य वस्तुओं में बुद्धि न करे ॥ 6/57 ॥

आदरपूर्वक भिक्षा पाने की कभी इच्छा न करे, क्योंकि मुक्ति की अवस्था में रहने पर भी संन्यासी को अत्यंत सत्कार से संसारवर्धन हो सकता है ॥ 6/58 ॥

रहे, अथवा कभी आसन पर और कभी आसन से उठकर अपना समय बिताए, और तीनों काल स्नान करे ॥ 6/22 ॥

VI. पालनार्थ कर्तव्य

वानप्रस्थ	संन्यासी
अनेक प्रकार के (नीवार आदि) मुनियों के शुद्ध अन्नों से या शाक, मूल, फल से इन्हीं (पांच) महायज्ञों को विधिपूर्वक करे ॥ 6/5 ॥	योग से परमात्मा के सूक्ष्म रूप को और उत्तम-अधम देहों में उत्पत्ति का विचार करे ॥ 6/65 ॥
जो खाने का पदार्थ हो उसमें से ही अपनी शक्ति के अनुसार बलि और भिक्षा दे और आश्रम में आए हुए अभ्यागतों का जल, मूल, फल की भिक्षा से सत्कार करे ॥ 6/7 ॥	इस भांति विधिपूर्वक जो ब्राह्मण संन्यास आश्रम का ग्रहण करता है वह इस लोक में सब पापों से रहित होकर परब्रह्म को पाता है ॥ 6/85 ॥
द्विज को चाहिए कि वेद-पाठ में लगा रहे, सरदी गरमी आदि को सहे, सबका उपकार करे, मन को रोके रहे, सदा दान दे परंतु प्रतिग्रह न ले और सब प्राणियों पर दया रखे ॥ 6/8 ॥	
अमावस्या और पूर्णिमा के दिन—पर्वों—को नहीं त्यागता हुआ विधिपूर्वक वैतानिक अग्निहोत्र करे ॥ 6/9 ॥	
अपने तप को क्रम से बढ़ाता हुआ वानप्रस्थ ग्रीष्मऋतु में पंचाग्नि में तप करे, वर्षाऋतु में वर्षा की जगह नग्न बैठा रहे, और हेमन्त (जाड़े की) ऋतु में गीले वस्त्र धारण करे ॥ 6/23 ॥	
तीनों काल में स्नान करके पितर और देवताओं का तर्पण करे और कठिन तपसया करके अपने शरीर को सुखाए ॥ 6/24 ॥	
विधि के अनुसार वैतान नामक अग्निओं को अपनी देह में रखकर, अर्थात् उनकी भस्म पीकर, अग्नि और गृह को त्याग दे, और मौन व्रत धारण करके और फल मूल खाकर समय बिताए ॥ 6/25 ॥	

भाग-3

राजनीतिक

इक्कीसवीं पहेली

मन्वंतर का सिद्धांत

ब्राह्मणों का एक सिद्धांत था कि उनके देश का शासन स्वर्ग से चलता है। मन्वंतर का यही अर्थ प्रतीत होता है।

मन्वंतर का आशय देश की राजनीतिक सत्ता से है। इसके पीछे यह विश्वास है कि निश्चित अवधि के लिए सत्ता एक निगम (corporation) को सौंप दी जाती है। इस मंडली में एक मनु, सप्तऋषि और एक इंद्र होता है। यह निगम स्वर्ग में अपने आसनों से प्रजा से पूछे बिना अथवा उसकी इच्छा जाने बिना शासन-सूत्र चलाता है। एक समूह के शासनकाल को, जिसमें मनु की सत्ता सर्वोपरि है, मन्वंतर कहते हैं। एक मनु का शासनकाल समाप्त हो जाता है तो दूसरा आ जाता है। यह क्रम चलता रहता है। युगों की तरह मन्वंतर का भी काल-चक्र है। चौदह मन्वंतरों का एक चक्र होता है।

विष्णु पुराण से मन्वंतरों का आभास मिलता है, जो इस प्रकार है–

> तब ब्रह्मा ने सृष्टि-पालन हेतु स्वयं को मनु स्वायंभुव बना लिया, जो स्वयमेव मौलिक रूप में एक रूप जन्मे और अपने नारी भाग से उन्होंने शतरूपा को रचा जिसे सृजित प्राणियों की रक्षा हेतु तपस्या द्वारा, वर्जित वैवाहिकता के, पाप से शुद्ध किया, और उसे मनु स्वायंभुव ने अपनी पत्नी बनाया।"

एक क्षण को हम यहां ठहरकर विचार करते हैं, इसका क्या अर्थ है? क्या इसका अर्थ यह है कि ब्रह्मा उभयलिंगी थे? क्या इसका अर्थ यह है कि स्वायंभुव मनु ने अपनी बहन शतरूपा को पत्नी बना लिया? विष्णु पुराण के अनुसार कहा गया यदि यह सही है तो यह कितना विचित्र है। विष्णु पुराण में आगे कहा गया है–

> "इस युगल से दो पुत्र जन्मे, प्रियव्रत और उत्तानपाद और दो पुत्रियां जन्मीं, प्रसूति और आकूति जो अत्यंत लावण्यमयी और गुणवती थीं। प्रसूति का विवाह दक्ष से और आकूति का रुचि प्रजापति से। आकूति से जुड़वा बच्चे उत्पन्न हुए यज्ञ और दक्षिणा जिन्होंने परस्पर विवाह कर लिया (भाई-बहन के विवाह का एक और उदाहरण)। उनके बारह पुत्र उत्पन्न हुए। वे देवता स्वायंभुव मन्वंतर में यम कहलाए।"

"प्रथम मनु स्वायंभुव था फिर स्वारोचिष। उसके उपरांत क्रमशः औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष, ये छः तिरोहित हो गए। सातवें वर्तमान मन्वंतर के मनु, सूर्य-पुत्र वैवस्वत मनु हैं।"

विष्णु पुराण का लेखक कहता है, "अब मैं स्वारोचिष मनु के पुत्रों, देवताओं और ऋषियों के विषय में बताता हूं। इस काल (द्वितीय मन्वंतर) के देवता थे पारावत और तुषित। उनका इंद्र था "विपश्चित्"। उनके सप्त ऋषि थे ऊर्ज, स्तंभ, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्वारीवत्। चैत्र, किंपुरुष तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

"तीसरे मन्वंतर के मनु थे, औत्तमि। उसके समय के इंद्र थे सुशांति। देवताओं के नाम हैं—सुधाम, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वशवर्ती और ये पांच वर्ग थे बारह देवताओं के। उस समय के सप्त ऋषि वसिष्ठ के सात पुत्र, सात ऋषिगण थे और अज, परसु, दिव्य तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

"चौथे मनु तापस के काल में पूजनीय देवता थे सुरूप, हरि, सत्य और सुधि। प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस देवता थे। शिवि उस काल का इंद्र था। सौ यज्ञ संपन्न करने के कारण उसे शतक्रतु भी कहा जाता है। सप्तऋषि थे ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक, और पीवर। तामस के बलशाली पुत्र थे—राजा नर, ख्याति, संथ्य, जानुजंघ आदि।

"पांचवें मन्वंतर के मनु रैवत थे। उनका इंद्र विभु था। देवतागण, जिनमें प्रत्येक के चौदह देवता होते थे, इस प्रकार थे—अमिताभ, भूतरय, वैकुंठगण, सुमेधागण। तत्कालीन सप्तऋषि थे—हिरण्यरोमा, वेदश्री, उर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुद्युम्न, पर्जन्य और महामुनि। रैवत के पुत्र इस प्रकार थे—बालबंधु, सुसंभाव्य, सत्यक तथा अन्य वीर राजा।

"ये चार मनु—स्वारोचिष, औत्तमि, तामस और रैवत—प्रियव्रत के वंशज थे, जिसने विष्णु को अपनी उपासना से प्रसन्न करके अपनी संतति के लिए मन्वंतरों का मनु बनाए जाने का वर प्राप्त कर लिया था।

"छठे मन्वंतर का मनु चाक्षुष था। उसका इंद्र मनोजव था। उस काल के पांच वर्ग के देवता थे—आद्य, प्रस्तुत, भव्य, पृथुग और उदारता की प्रतिमूर्ति लेख। उस काल के सप्त ऋषि थे—सुमेधा, विरजा, हविष्मत, उत्तम, मधु, अभिनामन् और सहिष्णु। पृथ्वी के स्वामी चाक्षुष के शक्तिशाली पुत्र थे—उरु, पुरु, शतद्युम्न आदि।

"वर्तमान सातवें मन्वंतर के मनु श्राद्ध देव, सूर्य की अनुपम संतान (वैवस्वत) हैं और उनके देवता हैं—आदित्य, वसु और रुद्र। उनका इंद्र पुरंदर है, सप्त ऋषि हैं—वसिष्ठ, काश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज। वैवस्वत मनु के नौ धर्मनिष्ठ पुत्र हैं—राजा इक्ष्वाकु, नाभागारिष्ट, करूष, पृषध्र और विख्यात वसुमत्।"

अभी सात मन्तवरों का विवरण दिया गया है जो विष्णु पुराण में उल्लिखित हैं। यह विष्णु पुराण लिखे जाने तक की स्थिति थी। क्या मन्वंतर शासन बाहर से होता था? इस विषय में ब्राह्मण मौन हैं। परंतु विष्णु पुराण के लेखक को पता है कि सात मन्वंतर अभी और आने हैं। उनका विवरण इस प्रकार है—

"विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी थी, उसकी तीन संतानें हुई—मनु (वैवस्वत) यम और यमी (अथवा यमुना)—अपने पति का तेज झेलने में असमर्थ संज्ञा ने उसे छाया दे दी और स्वयं उपासना के लिए वनों में चली गई। सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी संज्ञा जानकर उससे तीन संतानें और पैदा कीं। शनिश्चर (शनि), मनु (सावर्णी) और पुत्री तपती (ताप्ती नदी)। छाया को एक बार यम पर क्रोध आ गया। उसने उसे शाप दिया। साथ ही उसने यम को और सूर्य को यह भी बता दिया कि वह वास्तविक संज्ञा नहीं है। छाया के यह बताने पर कि उसकी पत्नी जंगलों में चली गई है सूर्य ने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा कि वह घोड़ी (अश्वी) रूप में उत्तरकरु इलाके में तपस्यारत है। सूर्य ने घोड़े के रूप में पुनर्जन्म ले लिया और वह अश्वरूपिणी अपनी पत्नी के पास पहुंच गया और उससे तीन अन्य संतानें पैदा कीं—दो आश्विनी कुमारो और रैवत (रेवन्त) को। फिर वह संज्ञा को घर ले आया। विश्वकर्मा ने सूर्य (नक्षत्र) की गहनता कम करने और उसकी दीप्ति घटाने के उद्देश्य से उसे अपनी चक्री पर चढ़ाया और उसे घिसाकर आठवां भाग कर दिया क्योंकि इससे अधिक उसे विभाजित नहीं किया जा सकता था। जो दैवी वैष्णव भव्यता सूर्य में थी, वह विश्वकर्मा के घिसाने से धरती पर आ गिरी। शिल्पकार (विश्वकर्मा) ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर का शस्त्र और कार्त्तिकेय शक्ति नामक अस्त्र बनाया और अन्य देवों के शस्त्रों का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने इन सबको सूर्य की तेजोपम किरणों से बनाया।

"छाया पुत्र भी मनु कहलाता था। उसके अपने बड़े भाई मनु वैवस्वन के वर्ण का होने के कारण उसका दूसरा नाम **सावर्णी** पड़ा। वह आठवें मन्वंतर का मनु है। अब मैं उसका विवरण निम्न बातों के साथ देता हूं। जिस काल में सावर्णी मनु बनेंगे, उनके देवगण होंगे सुतप, अभिताभ और मुख्यगण तथा प्रत्येक के 21 देवगण होंगे तथा सप्तऋषि इस प्रकार होंगे—दीप्तिमत्, गालव, राम, कृप और द्रोणि। मेरा पुत्र व्यास छठा और ऋष्यश्रृंग सातवां ऋषि होगा। विष्णु भगवान की कृपा से राजा विरोचन का पुत्र बलि इस युग का इन्द्र होगा। सावर्णी की संतानें होंगी—विरजा, ऊर्वरीवान्, निर्मोह आदि।"

"नौवें मनु दक्ष सावर्णी होंगे। उस समय के तीन प्रकार के देव होंगे—पार, मरीचिगर्भ, और सुधर्मा। प्रत्येक वर्ग में बारह देव होंगे और उनका प्रमुख इंद्र होगा। तब इन्द्र का नाम अद्भुत होगा। सवन, द्युतिमत्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योमिष्मान् और सत्य, ये सप्तऋषि होंगे। धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त, निराम, पृथुश्रवा आदि मनु के पुत्र होंगे।"

"दसवें मन्वंतर में मनु ब्रह्म सावर्णी होंगे; उनके देवगण होंगे सुधामा, विरुद, शतसंख्यक। उनका इंद्र बलशाली शांति होगा; सप्तऋषि होंगे—हविष्मान्, सुकृत; सत्य, अपांमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु। मनु के दस पुत्र होंगे—सुक्षेत्र, उत्तमौजा, हरिषेण आदि।"

"ग्यारहवें मन्वंतर के मनु धर्मसावर्णी होंगे। उसके समय देव होंगे विहंगम, कामगम और निर्माणरति और प्रत्येक की संख्या तीस-तीस होगी। इस मन्वंतर का इंद्र वृष होगा। सप्त ऋषि होंगे—निश्चर, अग्नितेज, वपुष्मान्, विष्णु आरुणी, हविष्मान् और अनघ। पृथ्वीपालक मनु के पुत्र होंगे—सावर्ग, सर्वधर्मा, देवानीक और अन्य"

"बारहवें मन्वंतर में रुद्र पुत्र—सावर्णी मनु होगा; उस काल का इंद्र होगा ऋतुधामा, देवों के नाम होंगे हरित, लोहित, सुमना और सुकर्मा। प्रत्येक की संख्या पंद्रह होगी। सप्त ऋषि इस प्रकार होंगे—तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति और तपोधन और मनु के मेधावी और बलशाली पुत्र होंगे—देव, उपदेव तथा देवश्रेष्ठ आदि।"

"तेरहवें मन्वंतर का मनु रौच्य (रुचि) होगा। देववर्ग होगा—सुधामन्, सुधर्मन्, और सुकर्मन्, उनका इंद्र दिवस्पति होगा। सप्त ऋषि होंगे—निर्मोह, तत्त्वदर्शन, निष्प्रकंप, निरुत्सुक धृतिमत्, अव्यय और सुतपा तथा चित्रसेन, विचित्र तथा अन्य नृप होंगे।"

"चौदहवें मन्तंवर का मनु भौत्य (भौम) होगा। शुचि उसका इंद्र होगा। देवताओं के पांच वर्ग होंगे—चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिर, और वाचावृद्ध। सप्त ऋषि इस प्रकार होंगे—अग्निबाहु, शुचि, क्रु मागध, गृध्र, युक्त और अजित। मनु के पुत्रों के नाम होंगे—उरु, गंभीरबुद्धि, आदि राजा होंगे और इस धरा के शासक होंगे।"

इस प्रकार की है मन्वंतरों की कहानी। आजकल हम सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की बातें सुनते हैं। ब्राह्मणों का सिद्धांत इसके ठीक विपरीत है। उनका सिद्धांत है सर्वहारा पर स्वर्ग में बैठे पिताओं का अधिनायकवाद।

इस तरह एक प्रमुख सवाल उठता है : एक के बाद एक मनुओं ने किस तरह प्रजा पर शासन किया? "प्रजा के लिए उन्होंने कौन से विधान बनाए?" इसका उत्तर केवल मनुस्मृति से प्राप्त होता है।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय से यह उत्तर मिलता है—

मनुमेकाग्रमासीनमभिगम्य महर्षयः।
प्रतिपूज्य यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन् ॥ 1/1 ॥

अर्थ : *ऋषिगण मनु के पास गए जो एकाग्रचित्त बैठे थे; उनकी समुचित उपासना करके उन्होंने ऐसा कहा–*

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः।
अन्तरप्रभवाणां च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि ॥ 1/2 ॥

अर्थ : *हे देव, हमें साररूप में उचित क्रम में चारों (मुख्य) और वर्णों मध्यवर्तियों के लिए पवित्र विधान बताएं।*

त्वमेको ह्यस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः।
अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ 1/3 ॥

अर्थ : *क्योंकि हे देव! केवल आपको ज्ञात है कि स्वयंभू (मनु) ने क्या अनुष्ठान और आत्मा के ज्ञान का उपदेश किया है, जो ज्ञान और अनुभव के परे हैं।*

मनु उन्हें उत्तर देते हैं–

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ 1/5 ॥

अर्थ : *यह ब्रह्मांड अंधकारमय व अदृश्य था। इसका कोई आकार नहीं था। पहचान नहीं थी। न इसे समझा जा सकता था, न इसे जाना जा सकता था क्योंकि यह गहरी निद्रा में सुप्त था।*

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ 1/8 ॥

अर्थ : *स्वयंभू भगवान ने सोचा मैं एक से अनेक होऊं। उन्होंने सर्वप्रथम जल की रचना की और उसमें बीज डाल दिया।*

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ 1/9 ॥

अर्थ : *वह (बीज) एक स्वर्णिम अंड बन गया। दीप्ति में सूर्य के जैसे इसी अंडे से समस्त सृष्टि के रचयिता ब्रह्मा जन्मे।*

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन्प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ 1/34 ॥

अर्थ : *तब मैंने सृष्टि रचना के लिए कठोर तप किया। इसके पश्चात मैंने दस महान ऋषियों को बनाया।*

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ 35 ॥

अर्थ : मैंने मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद को रचा।

इदं शास्त्रं तु कृत्वासौ मामेव स्वयमादितः।
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ 58 ॥

अर्थ : परंतु उस ब्रह्मा ने पवित्र विधान का संपादन कर स्वयं मुझे सिखाया। फिर मैंने वे (विधान) मरीचि और अन्य ऋषियों को पढ़ाए।

एतद्वोऽयं भृगुः शास्त्रं श्रावयिष्यत्यशेषतः।
एतद्धि मत्तोऽधिजगे सर्वमेषोऽखिलं मुनिः ॥ 59 ॥

अर्थ : भृगु ये विधान तुम्हें बताएंगे क्योंकि उस ऋषि ने संपूर्ण रूप में यह शास्त्र मुझसे सीखा है।"

इससे यह पता चलता है कि जिस एकमात्र मनु ने विधान बनाया वह स्वायंभुव मनु था। विष्णु पुराण के अनुसार प्रत्येक मन्वंतर का एक मनु है। उन्होंने अपने मन्वंतरों के लिए विधान क्यों नहीं बनाए? अथवा स्वायंभुव मनु का बनाया विधान क्या शाश्वत है, यदि ऐसा है तो ब्राह्मणों ने अलग मन्वंतर क्यों बनाए?

बाईसवीं पहेली

ब्रह्म धर्म नहीं है, ब्रह्म किस काम का?

इतिहास में कई प्रकार की सरकारों का वर्णन है, वे हैं–राजतंत्र, कुलीनतंत्र और प्रजातंत्र। इसमें तानाशाही को भी जोड़ा जा सकता है।

इस समय सबसे अधिक सरकारें प्रजातांत्रिक हैं। बहरहाल इस बात पर कोई सहमति नहीं है कि प्रजातंत्र क्या है। इस विषय का निरूपण करने पर हमें इस संबंध में दो विचार मिलते हैं। एक विचार है कि प्रजातंत्र एक प्रकार की सरकार है। इस विचार के अनुसार जब सरकार प्रजा द्वारा चुनी जाती है और जहां प्रतिनिधि सरकार है, वही प्रजातंत्र है। इसके अधीन प्रजातंत्र और प्रतिनिधि सरकार पर्यायवाची है, जिसका अर्थ है वयस्क मताधिकार और समय-समय पर चुनाव होना।

दूसरे मत के अनुसार प्रजातंत्र सरकार की प्रणाली से भी बढ़कर है। यह समाज के संगठन का स्वरूप है। इसके लिए दो आवश्यक स्थितियां हैं, जो इस बात का लक्षण है कि समाज प्रजातांत्रिक ढंग से गठित है। पहला यह कि समाज को वर्गों में विभक्त न किया जाए। दूसरा, व्यक्तियों और समूहों की यह सामाजिक आदत कि वे निरंतर पुनः समायोजन और हित सहयोजन को तत्पर रहें। जहां तक प्रथम का संबंध है, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह प्रजातंत्र का अति आवश्यक अंग है। जैसा कि प्रो. डेवी का मत है–[1]

(लेखक द्वारा निर्दिष्ट उद्धरण–'डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन', पृष्ठ 98–मूल पांडुलिपि में उपलब्ध नहीं है।)

प्रजातांत्रिक ढंग से गठित समाज के लिए दूसरी शर्त भी उतनी ही आवश्यक है। समूहों और व्यक्तियों के हितों में परस्पर सहयोजन न होने के प्रजातंत्र-विरोधी परिणाम होते हैं जिनका प्रो. डेवी ने[2] भली-भांति वर्णन किया है–

(निर्दिष्ट उद्धरण पांडुलिपि में उपलब्ध नहीं है)

प्रजातंत्र के इन दो विचारों में निश्चय ही पहला विचार अगर गलत नहीं भी हो तो भी अनावश्यक है। कोई सरकार प्रजातांत्रिक सरकार तब तक नहीं कहला

---

1. *डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन, पृ. 98*
2. *वही, पृ. 99*

सकती जब तक कि उस समाज की रचना पद्धति प्रजातांत्रिक न हो, जिसके लिए वह कार्यरत है। जो यह सोचते हैं कि प्रजातंत्र का अर्थ मात्र चुनाव कराना है, वे तीन गलतियां करते हैं।

पहली गलती तो यह है कि सरकार और समाज बिलकुल अलग-अलग हैं। दरअसल सरकार समाज से अलग नहीं है। सरकार अनेक ऐसी संस्थाओं में से है जो समाज में जन्म लेती हैं और सामूहिक सामाजिक जीवन के लिए उसे कुछ आवश्यक काम सौंपे जाते हैं।

दूसरी गलती वे यह करते हैं कि वे यह नहीं समझते कि सरकार किसी समाज के अंतिम लक्ष्य, उद्देश्यों और आकांक्षाओं का प्रतिबिंब होती है और यह तभी संभव है जब उस समाज की बुनियाद प्रजातांत्रिक हो जिसमें वह सरकार है। अगर समाज की संरचना प्रजातांत्रिक नहीं तो सरकार भी प्रजातांत्रिक नहीं हो सकती। जहां समाज शासक और शासित वर्गों में बंटा होगा, वहां सरकार निश्चित रूप से शासक वर्ग की होगी।

उनकी तीसरी गलती यह है कि वे यह भूल जाते हैं कि किसी सरकार का अच्छा या बुरा होना, प्रजातांत्रिक या अप्रजातांत्रिक होना, आमतौर से उसके प्रशासनतंत्र पर, विशेष रूप से उसकी प्रशासनिक सेवाओं पर, निर्भर करता है, जिसके ऊपर सरकार को कानून-व्यवस्था के पालन हेतु निर्भर रहना पड़ता है। यह सब उस सामाजिक वातावरण पर निर्भर है जिसमें प्रशासक पलता है। यदि सामाजिक परिवेश ही अप्रजातांत्रिक है तो सरकार भी अप्रजातांत्रिक ही होगी।

लोग एक और गलती करते हैं जो इस सोच के लिए जिम्मेदार है कि प्रजातंत्र के कार्य करने के लिए बस प्रजातांत्रिक किस्म की सरकार ही काफी होती है। सत्ताधारी वर्ग के लोग अगर सत्ता का उपयोग सारे समाज या दलित वर्ग के लिए न करके अपने वर्ग के हित में करते हैं, तो वह अच्छी सरकार नहीं हो सकती।

कोई प्रजातांत्रिक सरकार भली प्रकार चल सकती है या नहीं, यह समाज के सदस्यों पर निर्भर करता है। यदि समाज के लोगों की मानसिकता प्रजातांत्रिक है तो प्रजातांत्रिक सरकार से अच्छे परिणामों की अपेक्षा की जा सकती है। अगर ऐसा नहीं है तो प्रजातांत्रिक सरकार आसानी से एक खतरनाक तरीके की सरकार हो सकती है। यदि किसी समाज के सदस्य जातियों या वर्गों में बंटे होंगे और एक-दूसरे से कोई मतलब नहीं रखेंगे और जहां प्रत्येक व्यक्ति की आस्था सबसे पहले उसके अपने वर्ग के प्रति होगी, वहां हर व्यक्ति जातिवादी या वर्गवादी बन जाएगा और अपने वर्ग के हितों को सबसे ऊपर रखकर चलेगा और कानून और न्याय को विकृत करके अपने अधिकारों का प्रयोग अपने वर्ग के हित-संवर्धन में करेगा और इस उद्देश्य से उन लोगों के प्रति जीवन के हर क्षेत्र में नियोजित रूप से भेदभाव बरतेगा, जो उसके वर्ग से संबद्ध नहीं हैं। ऐसे में प्रजातांत्रिक सरकार क्या

कर लेगी? जिस समाज में विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष होता है और समाज-विरोधी गतिविधियां और आक्रामक भावनाएं पनपती हैं वहां सरकार न्याय और निष्पक्षता से अपना कार्य नहीं कर सकती। ऐसे समाज में सरकार अगर लोगों की है और लोगों द्वारा बनाई भी गई है तब भी वह लोगों के लिए नहीं हो सकती। यह एक वर्ग की और एक वर्ग के लिए है। लोगों के लिए सरकार वही हो सकती है जहां प्रत्येक नागरिक का व्यवहार प्रजातांत्रिक है। इसका अर्थ है : जहां प्रत्येक नागरिक अन्य सभी नागरिकों को समान समझने के लिए तैयार है; उतनी ही स्वतंत्रता देने के लिए तैयार है जितनी वह स्वयं चाहता है। प्रजातांत्रिक मानसिकता से एक प्रजातांत्रिक समाज में व्यक्ति का समाजीकरण हो जाता है। प्रजातांत्रिक सरकारों का पतन आमतौर से इस कारण हुआ है कि जिस समाज के लिए वे बनीं, वह समाज ही प्रजातांत्रिक नहीं था।

खेद है कि इस बात को ठीक से समझा ही नहीं जाता कि अच्छी सरकार अपने समाज की मानसिक और नैतिक प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। प्रजातंत्र एक राजनीतिक तंत्र से आगे भी कुछ है। यह एक सामाजिक प्रणाली से भी बढ़कर है। यह मन की प्रवृत्ति है, सोचने का तरीका है और जीवन-दर्शन है।

कुछ लोग प्रजातंत्र की बराबरी समानता और स्वतंत्रता से करते हैं। बेशक प्रजातंत्र का समानता और स्वतंत्रता सें बहुत गहरा सरोकार है। परंतु इससे भी महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि समानता और स्वतंत्रता कैसे सुरक्षित रह सकती है। कुछ व्यक्ति कह सकते हैं कि सरकार कानून, समानता और स्वतंत्रता की रक्षक होती है। यह सही जवाब नहीं है। समानता और स्वतंत्रता सहभावना से आती है। फ्रांस की राज्यक्रांति के कर्णधारों ने उसे बंधुत्व कहा था। बंधुत्व अपने में सम्यक अभिव्यक्ति नहीं है। कुछ ने इसके लिए सही शब्द 'मैत्री' कहा है।

बंधुत्व के बिना स्वतंत्रता समानता को नष्ट कर देगी। और समानता स्वतंत्रता को समाप्त कर देगी। यदि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में स्वतंत्रता को और समानता स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करती तो इसका अर्थ यही है कि वहां बंधुत्व है—सद्भावना है, क्योंकि स्वतंत्रता और समानता का आधार बंधुत्व ही है। इस तरह स्पष्ट है कि बंधुत्व प्रजातंत्र की जड़ है।

यह सारी चर्चा मुख मुद्दे की भूमिका मात्र है। मुख्य प्रश्न है—उस बंधुत्व की जड़ कहां है जिसके बिना प्रजातंत्र का अस्तित्व असंभव है? इसका निर्विवाद उत्तर यही है कि बंधुत्व की जड़ धर्म में है।

प्रजातंत्र की उत्पत्ति की संभावनाओं का पता लगाने के लिए अथवा इस बात को जानने के लिए कि क्या प्रजातंत्र सफल होगा—हमें लोगों के धर्म के पास जाना होगा और देखना होगा कि क्या वह बंधुत्व की शिक्षा देता है या नहीं। यदि वह बंधुत्व की शिक्षा देता है तो प्रजातांत्रिक सरकार की संभावनाएं बहुत ज्यादा हैं। यदि यह बंधुत्व की शिक्षा नहीं देता तो संभावनाएं बहुत क्षीण हैं। हां, अन्य कारक भी इन संभावनाओं को प्रभावित

करते हैं। परंतु यदि बंधुत्व नहीं है तो प्रजातंत्र को बनाने का कोई आधार ही नहीं है। भारत में प्रजातंत्र क्यों नहीं पैदा हुआ? यह मुख्य प्रश्न है। इसका उत्तर बिलकुल सरल है। हिंदू धर्म बंधुत्व की शिक्षा नहीं देता। इसके विपरीत, वह समाज को वर्णों या वर्गों में बांटने की शिक्षा देता है, वह पृथक वर्ग होने की चेतना को सदा बनाए रखता है। ऐसे धर्म के होते हुए प्रजातंत्र के लिए अवकाश कैसे हो सकता है?

हिंदू समाज व्यवस्था ऐसे ही अप्रजातांत्रिक नहीं है। यह जान-बूझकर प्रजातंत्र-विरोधी बनाई गई है। इसका समाज को वर्णों, जातियों, उपजातियों, जाति-बहिष्कृतों आदि में बांटने का सिद्धांत नहीं है, बल्कि आदेश है। ये सब आदेश प्रजातंत्र के मार्ग में खड़े किए गए मार्गावरोध हैं।

इससे यही लगेगा कि हिंदू धर्म और दर्शन में बंधुत्व का सिद्धांत ही अज्ञात है। परंतु यह निष्कर्ष ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। हिंदुओं के धार्मिक और दार्शनिक विचारों की एक विचारधारा में बंधुत्व से भी बढ़कर सामाजिक प्रजातंत्र था, यह विचारधारा थी ब्रह्म-दर्शन[1]।

कोई अगर यह पूछे कि यह ब्रह्म-दर्शन क्या है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हिंदुओं तक के लिए यह एक नई बात है। हिंदुओं को वेदांत का ज्ञान है। वे ब्राह्मणवाद से परिचित हैं, किंतु ब्रह्मवाद को नहीं जानते। आगे बढ़ने से पहले यहां विवेचना के कुछ शब्द देना आवश्यक है।

हिंदुओं के दर्शन और धर्म के तीन अंग हैं—वे इस प्रकार हैं—1. ब्रह्मवाद, 2. वेदांत और 3. ब्राह्मणवाद। यद्यपि उनका परस्पर संबंध है परंतु इनकी तीन भिन्न विचारधाराएं और मत हैं। वे हैं—

1. सर्वं खल्विदं ब्रह्म — सभी कुछ ब्रह्म है।
2. अहं ब्रह्मास्मि — आत्मा ही ब्रह्म है इसलिए मैं ही ब्रह्म हूं।
3. तत्त्वमसि — आत्मा और परमात्मा एक हैं। इसलिए तू भी ब्रह्म है।

ये महावाक्य कहलाते हैं और इन्हीं में ब्रह्मवाद का सार है। निम्नलिखित मतों में वेदांत की शिक्षा का सार है—

1. ब्रह्म ही सत्य है।
2. जगत माया अथवा मिथ्या.है।
3. जीव और ब्रह्म का संबंध—
   (i) एक है,
   (ii) एक नहीं परंतु परमात्मा का अंश है। उससे भिन्न नहीं है,
   (iii) वे दो भिन्न और पृथक तत्व हैं।

---

1. मैंने यह शब्द प्रोफेसर हॉपकिंस की पुस्तक 'एपिक्स ऑफ इंडिया' से लिया है।

ब्राह्मणवाद का सार इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है–

1. चातुर्वर्ण्य में विश्वास।
2. वेदों की पवित्रता और अकाट्यता (अचूक होना)।
3. यज्ञ को मुक्ति का एकमात्र मार्ग मानना।

अधिकांश लोग वेदांत और ब्राह्मणवाद के बीच के भेद से परिचित हैं और यह जानते हैं कि उनके बीच क्या मतभेद हैं। किंतु ब्रह्मवाद और वेदांत के बीच के भेद को बहुत कम लोग जानते हैं। यहां तक कि हिंदू भी ब्रह्मवाद के सिद्धांत से अवगत नहीं हैं और न ही यह जानते हैं कि इसमें और वेदांत में क्या भेद हैं? किंतु इनके बीच स्पष्ट अंतर है। ब्रह्मवाद और वेदांत के बीच इस बात पर सहमति है कि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं। परंतु ब्रह्मवाद जगत को मिथ्या नहीं मानता, वेदांत इसे मिथ्या मानता है। दोनों के बीच यही मौलिक भेद है।

ब्रह्मवाद का सार है–विश्व सत्य है और विश्व के सत्य के पीछे ब्रह्म है। इसलिए प्रत्येक तत्त्व का सार ब्रह्म है।

ब्रह्मवाद के विरुद्ध दो प्रकार की आलोचनाएं की जाती हैं। यह कहा जाता है कि ब्रह्मवाद ढिठाई है, क्योंकि “अहं ब्रह्मास्मि” कहना एक तरह का अभिमान है। इसकी दूसरी आलोचना यह की जाती है कि कोई व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जान सकता। इसलिए “अहं ब्रह्मास्मि” कहना एक गर्वोक्ति है। परंतु यह किसी का अपनी योग्यता में विश्वास भी हो सकता है। जिस संसार में मानवता इतने हीन भाव से ग्रस्त है, वहां एक व्यक्ति द्वारा ऐसी घोषणा करना स्वागत के योग्य है। प्रजातंत्र का तकाजा है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने सामर्थ्य का अहसास होना चाहिए। यह भी जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि वह भी अन्य के समान है। जो “अहं ब्रह्मस्मि” का उपहास करते हैं, वे महावाक्य का दूसरा अंश भूल जाते हैं। वह है “तत्त्वमसि”। तत्त्वमसि को छोड़कर अगर केवल अहं ब्रह्मास्मि कहा जाएगा तो यह हास्यापद होगा। किंतु तत्त्वमसि कहने से ब्रह्मवाद पर गर्वोक्ति का आरोप नहीं लग सकता।

यह ठीक है कि ब्रह्म अजेय है। लेकिन इसके बावजूद ब्रह्म के सिद्धांत के कुछ सामाजिक प्रभाव हैं। इसमें प्रजातंत्र का बीज चकित करता है। अगर सभी व्यक्ति ब्रह्म का अंश हैं तो सभी समान भी हुए। इसलिए उनमें लोकतंत्र के बीज विद्यमान हैं। इस दृष्टिकोण से ब्रह्म अज्ञेय हो सकता है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रजातंत्र का जितना बीज रूप ब्रह्म के सिद्धांत में है, उतना और कहीं नहीं।

केवल इस बात पर प्रजातंत्र का समर्थन करना एक बहुत कमजोर आधार है कि हम सभी ईश्वर की संतानें हैं। इसलिए जब प्रजातंत्र इस आधार को अपनाता है तो वह ढुलमुल रहता है। लेकिन यह पहचानने और समझने के लिए कि हम सब एक ही तत्त्व से बने हैं तो इससे प्रजातंत्र में विश्वास के सिवाय अन्य कोई सिद्धांत नहीं बचता। यह मात्र लोकतंत्र का उपदेश नहीं देता। वह प्रजातंत्र को सबके लिए अनिवार्य बना देता है।

प्रजातंत्र के संबंध में पश्चिमी विद्वानों ने यह प्रचारित किया है कि प्रजातंत्र का उद्गम या तो ईसाई मत से हुआ है अथवा अफलातून (प्लेटो) से और इसके सिवाय प्रजातंत्र का कोई अन्य प्रेरणास्रोत नहीं है। यदि उन्हें यह पता होता कि भारत में ब्रह्मवाद का सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है, जो प्रजातंत्र का बेहतर आधार प्रदान करता है तो वे इतने हठधर्मी न होते। भारत के योगदान को भी प्रजातंत्र का सैद्धांतिक आधार तैयार करने में स्वीकार किया जाना चाहिए।

सवाल यह है कि ब्रह्मवाद के इस सिद्धांत का क्या हुआ? यह स्पष्ट है कि ब्रह्मवाद का कोई सामाजिक प्रभाव नहीं है। इसे धर्म का आधार नहीं बनाया गया। जब यह पूछा गया कि ऐसा क्यों हुआ, तो उत्तर यही मिला कि ब्रह्मवाद तो केवल दर्शन है, जैसे कि दर्शन सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब न होता हो, शून्य में ही रम गया हो। दर्शन केवल सैद्धांतिक ही नहीं होता। यह एक व्यावहारिक संभावना है। दर्शनशास्त्र का मूल जीवन की समस्याओं में है और दर्शनशास्त्र से जो सिद्धांत निकलते हैं, वही समाज के पुनर्निर्माण के कारक बनकर समाज में आ जाते हैं। केवल जानना ही पर्याप्त नहीं है। जो जानते हैं उन्हें इसे साकार करने का प्रयास भी करना चाहिए।

ब्रह्मवाद नया समाज क्यों नहीं दे पाया? यह एक बड़ी पहेली है। बात यह नहीं है कि ब्राह्मणों ने ब्रह्मवाद को मान्यता नहीं दी। वह तो दी। परंतु उन्होंने कभी क्या यह भी पूछा कि ब्राह्मण को मानते हुए ब्राह्मण और शूद्र, पुरुष और नारी, छूत-अछूत के बीच विषमता का समर्थन कैसे कर सकते है? नहीं, उन्होंने नहीं पूछा। इसका परिणाम यह निकला कि एक ओर तो हमारे सामने शुद्धतम प्रजातांत्रिक ब्रह्मवाद का सिद्धांत है तो दूसरी ओर जातियों, उपजातियों, अछूतों, आदिम जातियों, जरायम पेशा जातियों के खानों में बंटा समाज है। क्या इससे बड़ा भी कोई अजूबा हो सकता है? और भी हास्यास्पद बात है महान शंकराचार्य के उपदेश। क्योंकि यह शंकराचार्य ही थे जिन्होंने कहा—एक ब्रह्म है, यही सत्य है, वही निरंतर है। और उसी शंकराचार्य ने ब्राह्मणवादी समाज की सभी असमानताओं को शिरोधार्य किया। कोई पागल ही ऐसे दो परस्पर विरोधी सिद्धांतों का प्रतिपादक हो सकता है। सचमुच ब्राह्मण एक गाय के समान है, इसलिए गाय की तरह वह कोई भी और हर कोई चीज खा सकता है, और फिर भी ब्राह्मण बना रह सकता है।

तेइसवीं पहेली

कलियुग : ब्राह्मणों ने इसे अनन्त क्यों बनाया?

अगर हिंदुओं में कोई धारणा सर्वाधिक व्याप्त है जिसके बारे में सभी स्त्री-पुरुष, बूढ़े और जवान, परिपक्व और अपरिपक्व सभी अच्छी तरह से जानते हैं, तो वह है–कलियुग। यह सभी जानते हैं कि आज का युग कलियुग है और वे कलियुग में रह रहे हैं। कलियुग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव लोगों के दिमाग में घुसा हुआ है। इसका अर्थ है कि यह अमांगलिक युग है। यह अनैतिक युग है। इसलिए यह जानना आवश्यक है कि ऐसी भावना क्यों पनपी? हमें चार बातों का पता होना चाहिए। वे हैं–1. कलियुग क्या है?, 2. कलियुग का आरंभ कब हुआ?, 3. कलियुग कब समाप्त होगा?, और 4. लोगों में ऐसी धारणा क्यों फैलाई गई?

I

शुरुआत पहले सवाल से करते हैं। इसकी विवेचना के लिए यह उचित होगा कि सबसे पहले हम इसका समास विग्रह करें और इस पर अलग से विचार करें। युग का अर्थ क्या है? ऋग्वेद में "युग" का प्रयोग काल, पीढ़ी और जनजाति के अर्थ में किया गया है जैसे कि युगे-युगे (हर युग में), उत्तरयुगानि, (भविष्य काल में), उत्तर युगे (बाद के काल में) और पूर्वानि युगानि (पूर्व काल में) आदि अभिव्यक्तियां हैं। यह मानुषी, मानुष, मनुष्य के संबंध में प्रयुक्त हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ मानव की पीढ़ियों से है। इसका एक ही अर्थ है–काल। यह सिद्ध करने के अनेक प्रयास हुए हैं कि वैदिक जन "युग" को कितने समय का मानते हैं। युग की व्युत्पत्ति संस्कृत की युज् धातु से है, जिसका अर्थ है, योजित करना और वह अर्थ ज्योतिष में योग के अर्थ में लिया जाता है। प्रो. वेबर का मत है कि युग का समय चंद्रमा की चार गतियों के बराबर है।

इस बात पर प्रो. रंगाचार्य[1] ने एक सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि "संभवतः युग का अर्थ नव चंद्रमा से एक माह की अवधि है, जब सूर्य और चंद्रमा आमने-सामने होते हैं अर्थात् जब उनका योग होता है।" अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं। उदाहरणार्थ श्याम शास्त्री[2] के अनुसार युग एक साधारण वर्ष है जैसा कि स्कन्द पुराण का भाग कहे जाने वाले सेतुमाहात्म्य में कहा गया है। इसी विद्वान के मत में इसे शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के लिए भी प्रयुक्त किया गया है।

---

1. *युगजः ए क्वश्चन ऑफ हिंदू क्रोनोलाजी एंड हिस्ट्री, पृ. 19*
2. *द्रप्सः दि वैदिक साइकिल ऑफ एक्लीप्स्ज, (1938) पृ. 88*

इन प्रयासों से यह जानने में मदद नहीं मिलती कि वैदिकजन युग का समय कितना समझते थे।

वैदिकों के अथवा धर्म मीमांसकों के साहित्य में युग के संबंध में कोई यथार्थता नहीं है। ज्योतिषशास्त्रियों (वेदांग ज्योतिष के रचनाकारों) ने इसका अर्थ वैदिकजन से भिन्न एक निश्चित काल के लिए किया है। उनके अनुसार युग का अर्थ है पांच वर्ष का समय चक्र, जिसके अंग इस प्रकार हैं–1. संवत्सर, 2. परिवत्सर, 3. इद्वत्सर, 4. अनुवत्सर, और 5. वत्सर।

अब हम कलि पर आते हैं जो कृत, त्रेता, द्वापर और कलि, चार युगों के चक्र का एक भाग है। 'कलि' शब्द का आरंभ कहां से हुआ? कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का उपयोग विभिन्न तीन प्रसंगों में किया गया है। कलि शब्द तथा अन्य शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग जुए के पासों में हुआ करता था।

ऋग्वेद से पता चलता है कि पासों की गोटियां विभीतक वृक्ष के फलों की हुआ करती थीं। यह वृक्ष जायफल के आकार का होता है जिसके पांच सपाट रुख होते हैं। बाद में पासे चौकोन बनाए जाने लगे। चारों कोनों पर चार अंक होते थे 4,3,2,1। जिस ओर '4' लिखा होता, वह 'कृत' था, 3 वाला त्रेता, 2 वाला द्वापर और 1 की गिनती वाला भाग कलि क़हलाता था। श्याम शास्त्री बताते हैं कि किस प्रकार जुआ यज्ञ का अंग बन गया, किस प्रकार यह खेला जाता था? इसका वर्णन[1] इस प्रकार है–

> "यजमान की गाय ले जाते समय अनेक खिलाड़ी मार्ग में उसके साथ चला करते थे और गाय पर दांव लगाते थे। वे कई दलों में बंटकर जुआ खेला करते थे। दांव के रूप में अनाज जमा कराया करते थे। प्रत्येक खिलाड़ी एक सौ अथवा उससे अधिक कौड़ियां जमीन पर फेंका करता था और इस प्रकार फेंकी गई कौड़ियों में से जब अधिक चित हुआ करती थीं या पट हुआ करती थीं, तो दाव के अनुसार उनकी संख्या चार से विभाजित हो जाती थी तो यजमान जीत जाता था। यदि नहीं तो वह हार जाता था। इस प्रकार जीते गए अनाज़ से यज्ञ के दिन चार ब्राह्मण जिमाए जाते थे।"

वैदिक साहित्य के विषय में प्रो. इगलिंग के कथन से इस संबंध में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि आदिकाल से ही जुए का प्रचलन था। यह भी स्पष्ट है कि यह खेल पांच पासों से खेला जाता था[2]। जिनमें से चार कृत और पांचवां कलि कहलाता था। वह यह भी बताते हैं कि खेल कई प्रकार का होता था और सबसे पहला खेल इस प्रकार का होता था कि यदि सारे पासे एक जैसे पड़ते थे तो खिलाड़ी जीत जाता था। जुआ राजसूय के समय और पवित्र अग्नि की स्थापना पर किए जाने वाले यज्ञ के समय भी खेला जाता था।

कृत, त्रेता, द्वापर और कलि शब्दों का गणित में भी प्रयोग किया जाता था। यह भगवती सूत्र पर अभयदेव सूरी की निम्न टीका से स्पष्ट है, जो कि जैनधर्म का विशाल ग्रंथ है।

---

1. द्रप्सः दि वैदिक साइकिल ऑफ एक्लीप्स्ज, (1938) पृ. 88

2. शतपथ ब्राह्मण में तत्संबंधी उनकी टिप्पणी देखें, खंड 4, पृ. 107

"गणित की शब्दावली में सम संख्या युग्म कहलाती थी और विषम संख्या को ओज कहते हैं। दो संख्याओं को ही युग्म कहा जाना चाहिए और दो को ही ओज। फिर भी, युग्म शब्द से अर्थ है—चार युग्म अर्थात् चार संख्याएं। उनमें कृत युग्म बनता है। कृत का आशय है संपूर्ण। क्योंकि चार के आगे संख्या नहीं है, जिसे अलग नाम दिया जाता हो। (अर्थात् वह नाम कृत आदि) चार नामों से भिन्न है। जो संख्या अपूर्ण है, जैसे त्र्योज और दूसरी संख्याएं और जो विशेष सम संख्या है वह है, कृत युग्म। जहां तक त्र्योज का संबंध है, तो यह विषम संख्या है। जो कृतयुग के ऊपर विषम है वह त्र्योज है। जहां तक द्वापरयुग्म का प्रश्न है, वह भी कृतयुग्म की भांति सम संख्या है किंतु उससे भिन्न है जो आरंभ के दो से अथवा कृतयुग्म के ऊपर से आरंभ होती है। वह द्वापरयुग्म है। द्वापर एक विशेष व्याकरणिक शब्द है। कल्योज वह विषम संख्या है, जो कलि से अविभाज्य है। अर्थात् एक कृतयुग्म के लिए एक कल्योज है। वे संख्याएं, जिन्हें चार से विभाजित किया जा सकता है और संख्या पूरी तरह विभाजित हो जाती है, तो वह कृतयुग्म है। संख्याओं के क्रम में, यद्यपि चार को चार से विभक्त करने की आवश्यकता नहीं थी। यह स्वयं चार है, फिर भी यह कृतयुग्म कहलाती है।"

श्याम शास्त्री[1] इस शब्दावली को दूसरे आशय से प्रयोग करते हैं। उनके अनुसार, इनका उपयोग पर्व नाम से किया गया है जैसे, कृतपर्व, त्रेतापर्व, द्वापरपर्व और कलिपर्व। एक पर्व 15 तिथियों की अवधि का होता है या ये दिन पक्ष के नाम से पुकारे जाते हैं, क्योंकि तिथियां धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़ी होती हैं। इसलिए पर्व-समापन का सही समय महत्त्वपूर्ण है। यह कहा जाता था कि पर्व अपने समाप्ति काल के कारण चार भागों में विभाजित हैं, 1. वे या तो सूर्योदय पर समाप्त होते हैं, या 2. पहले पहर में, 3. अथवा दोपहर बाद, 4. अथवा तीन पहर बाद। पहले को कृत पर्व कहते थे, दूसरे को त्रेता पर्व, तीसरे को द्वापर पर्व और चौथे को कलि पर्व।

उस समय 'कलि' और 'युग' शब्दों के कुछ भी अर्थ क्यों न रहे हों, लेकिन कलियुग शब्द लंबे समय से प्रयोग में होने के कारण हिंदुओं की कालगणना में इकाई का द्योतक रहा है। हिंदुओं के अनुसार चार युगों का एक चक्र है, उन्हीं में से कलियुग भी एक है। अन्य युग हैं—कृत, त्रेता और द्वापर।

II

वर्तमान कलियुग की शुरुआत कब हुई? इस सवाल के दो अलग-अलग जवाब हैं।

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, इसकी शुरुआत वैवस्वत मनु के पुत्र नाभागारिष्ट से हुई है। पुराणों के अनुसार इसकी शुरुआत महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण के देहांत से हुई।

---

1. श्याम शास्त्री द्रप्स, पृ. 92-3

समय निर्धारण में पहले, डॉ. श्याम शास्त्री का कथन[1] है, जिसके अनुसार कलियुग ईसा से 3,101 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ। दूसरा अनुमान गोपाल अय्यर की गणना है। उनके अनुसार महाभारत युद्ध 14 अक्टूबर, 1194 ई. पू. को आरंभ होकर 31 अक्टूबर को समाप्त हुआ था। उनका कहना है कि कृष्ण का देहांत युद्ध-समाप्ति के 16 वर्षों के पश्चात हुआ। उनका अनुमान इस बात पर आधारित है कि जब परीक्षित् का राजतिलक हुआ, तो उसकी आयु सोलह वर्ष की थी और पांडवों ने परीक्षित् का राजतिलक करते ही महाप्रस्थान किया था। राजतिलक उसी दिन हुआ था जिस दिन कृष्ण का देहांत हुआ था। इससे वह समय 1177 ई.पू. बैठता है, जब से कलियुग आरंभ हुआ।

इस तरह कलियुग की शुरुआत के संबंध में दो तिथियां हैं–3,101 ई.पू. और 1,177 ई.पू.। कलियुग के संबंध में यह पहली पहेली है। कलियुग के आरंभ के संबंध में दो भिन्न तिथियां दी गई हैं, जिनमें बहुत बड़ा कालांतर है। एक व्याख्या कहती है कि 3101 ई.पू. कल्प परिवर्तन की तिथि है न कि कलि के आरंभ की और यह नकल करने वाले की गलती है जिसने कल्प को कलि पढ़ लिया और भ्रांति पैदा कर दी। दूसरी व्याख्या डॉ. श्याम शास्त्री की है। उनके अनुसार कलियुग दो हैं। एक, वह जो 3101 ई.पू. में आरंभ हुआ और दूसरा 1260 अथवा 1240 में आरंभ हुआ। पहला कलियुग 1840 अथवा 1860 वर्ष रहा और समाप्त हो गया।

III

कलियुग का अंत कब होगा? इस सवाल पर महान भारतीय ज्योतिषाचार्य गर्गाचार्य ने अपने 'सिद्धांत' में प्रकाश डाला है। वह कहते हैं कि अशोक के चौथे उत्तराधिकारी मौर्य शासक ने निम्न प्रकार से अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किए[2]–

> तब दुष्ट यूनानी योद्धा साकेत, पांचाल और मथुरा को रौंदते हुए कुसुमध्वज (पटना) पहुंचेंगे। तब पुष्प पुर विजयोपरांत निश्चय ही सभी प्रांतों में अव्यवस्था होगी। अपराजेय यवन मध्यदेश में नहीं रहेंगे। उनके मध्य परस्पर आतंकपूर्ण और भयानक युद्ध होगा। तब यूनानियों के विनाश के पश्चात युग की समाप्ति पर सात शक्तिशाली राजा अवध पर शासन करेंगे।

महत्त्वपूर्ण शब्द हैं–'यूनानियों के विनाश के पश्चात युग की समाप्ति पर'। इन शब्दों से दो सवाल पैदा होते हैं–1. गर्ग के दिमाग में कौन-सा युग था? और 2. भारत में यूनानियों की पराजय कब हुई? इन सवालों के जवाब में कोई संदेह नहीं है। युग से उनका आशय है कलियुग, और यूनानी भारत में 165 ई.पू. में पराजित हुए। यह कोई अटकल नहीं है। महाभारत के वन पर्व में अध्याय 188 और 190 में स्पष्ट लिखा है–'कलियुग के अंत में' बर्बर शक, यवन, बाह्लीक और अन्य जातियां भारतवर्ष को रौंद डालेंगी।

---

1. गवाम् अयन।

2. सिवीलाइजेशन ऑफ एंशिएंट इण्डिया नामक अपनी पुस्तक में आर.सी. दास द्वारा उद्धृत।

इन दोनों कथनों का यह परिणाम निकलता है कि कलियुग 165 ई.पू. में समाप्त हो गया। इस निष्कर्ष को बल प्रदान करने के लिए और तर्क भी हैं। महाभारत के अनुसार कलियुग का समय एक हजार वर्ष था[1] अगर हम यह मानकर चलें कि कलियुग 1171 ई.पू. में आरंभ हो गया था और तब से एक हजार वर्ष कम कर दें, तो हम इसी निष्कर्ष पर आते हैं कि कलियुग का अंत 171 ई.पू. हो गया होगा। जो गर्ग द्वारा दिए ऐतिहासिक तथ्य से बहुत दूर भी नहीं है कि यह कलियुग के अंत में हुआ। यहां यह संदेह नहीं रहना चाहिए कि प्रमुख ज्योतिषाचार्य[2] के विचार से कलियुग 165 ई.पू. में समाप्त हो जाना चाहिए था। परंतु स्थिति क्या है? वैदिक ब्राह्मणों के अनुसार कलियुग समाप्त नहीं हुआ है। यह जारी है। यह उस "संकल्प" शब्द से स्पष्ट है, जो किसी भी धार्मिक अनुष्ठान में हिंदू लोग आज भी दुहराते हैं। वह संकल्प इस प्रकार है[3]–

> इस शुभ दिन और शुभ मुहुर्त में प्रथम ब्रह्मा के द्वितीय परार्ध में जो श्वेत वाराह कल्प कहलाता है, कलियुग में वैवस्वत मनु के काल में भारत देश के जंबूद्वीप भरत खंड में साठ वर्ष के वर्ष चक्र में जो प्राध्व से आरंभ होकर क्षय और अक्षय पर समाप्त होता है और जिसे विष्णु की आज्ञा से अमुक वर्ष दक्षिणी और उत्तरी अयन में अमुक शुक्ल या कृष्ण पक्ष, अमुक तिथि को मैं अमुक (नाम) अनुष्ठान के उद्देश्य से परमपिता के नाम पर संकल्प करता हूं।

हमारे सामने सवाल यह है कि वैदिक ब्राह्मण कलि को क्यों जारी रखना चाहते हैं जबकि ज्योतिषाचार्य के अनुसार वह बीत चुका है। पहली बात यह देखनी है कि कलियुग का मूल समय क्या है। विष्णु पुराण के अनुसार–

> "कृत युग चार हजार वर्ष का है, त्रेता तीन हजार वर्ष का, द्वापर दो हजार वर्ष का और कलियुग एक हजार वर्ष का। यह उनका कहना है जो भूतकाल को जानते हैं।"

इस प्रकार वास्तविकता यह है कि कलियुग केवल एक हजार वर्ष का होता है। यह स्पष्ट है कि वैदिक ब्राह्मणों की गणना के अनुसार भी कलियुग कब का बीत चुका होता। लेकिन यह नहीं बीता। कारण क्या है? यह स्पष्ट है कि कलियुग जितने समय का होना चाहिए उसकी अवधि को बढ़ा दिया गया है। यह दो प्रकार से हुआ है।

पहली बात यह कि इसके आदि और अंत में दो समय और जोड़ दिए गए हैं–संध्या और संध्यांश। यह बात विष्णु पुराण में उपर्युक्त प्रसंग में कही गई है, जो इस प्रकार है--

> युग आरंभ होने से पूर्व का काल संध्या कहलाता है.......जो युग समाप्ति

---

1. *क्रोनोलाजी ऑफ एंशिएंट इण्डिया, पृ. 117*
2. *गर्ग का वक्तव्य महाभारत से लिया गया है जिसमें कलियुग 1000 वर्ष का बताया गया है। इसमें 171 और जोड़ देने पर 1171 बनता है, जिसे कलि का आरंभ कहा गया है।*
3. *श्याम शास्त्री, द्रप्स, पृष्ठ 84*

से पूर्व आता है वह संध्यांश कहलाता है, उसकी अवधि भी उतनी ही होती है। संध्या और संध्यांश के मध्य के काल युग कहलाते हैं, कृत, त्रेता आदि।

संध्या और संध्यांश की अवधि कितनी होती है? क्या यह प्रत्येक युग में अलग-अलग थी? संध्या और संध्यांश की अवधि समान नहीं थी। प्रत्येक युग में उनकी अवधि भिन्न है। निम्नांक्ति तालिका में चार युगों और संध्या तथा संध्यांश की अवधि दी गई है–

महायुग का नाम	काल	संध्या	संध्यांश	योग
कृतयुग	4000	400	400	4800
त्रेतायुग	3000	300	300	3600
द्वापरयुग	2000	200	200	2400
कलियुग	1000	100	100	1200
महायुग	–	–	–	12000

कलियुग की आयु 1000 वर्ष बताई जाने के बावजूद संध्या और संध्यांश को जोड़कर 1200 वर्ष बना दी गई।

दूसरी बात यह है कि इसमें एक नया अनुसंधान कर लिया गया है। उनका कहना है कि युगों की जो अवधि नियत की गई थी, वह देवताओं के वर्ष के अनुसार है, मानव वर्षों की तरह नहीं। वैदिक ब्राह्मणों के अनुसार, देवताओं का एक दिन धरती के एक वर्ष के बराबर है। इस प्रकार कलियुग का समय जो 1000 वर्ष और 200 (दो सौ) वर्ष था (संध्या और संध्यांश मिलाकर 1200 वर्ष बैठता है,) वह अब हो गया (1200X360) अर्थात् 4,32,000 वर्ष। जिस कलियुग के अंत की घोषणा 165 ईसा पूर्व कर देनी चाहिए थी और जैसाकि ज्योतिषाचार्य ने ही गणना की थी, उसी की वैदिक ब्राह्मणों ने दो प्रकार उमर बढ़ाकर 4,32,000 वर्ष की अवधि कर दी है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कलियुग अब भी चालू है और लाखों वर्ष चलता रहेगा। कलियुग का अंत ही नहीं होगा।

IV

कलियुग का अर्थ क्या है? कलियुग का अर्थ है, अधर्म का युग, ऐसा युग जो अनैतिक है, ऐसा युग जिसमें राजा के बनाए विधान का पालन नहीं होता। यहां एक सवाल एकदम उठता है। कलियुग पूर्व युगों की अपेक्षा अधिक अनैतिक क्यों है? कलियुग से पूर्व युगों में आर्यों के नैतिक मूल्य क्या थे? यदि कोई व्यक्ति बाद के आर्यों की प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक व्यवहार की तुलना प्राचीन आर्यों से करेगा तो उसमें आश्चर्यजनक सुधार मिलेगा और उनके व्यवहार और नैतिकता में सामाजिक क्रांति का पता चलेगा।

वैदिक आर्यों का धर्म बर्बर और अश्लील था। उस समय नरमेध यज्ञ हुआ करते थे। इसका यजुर्वेद संहिता, यजुर्वेदीय ब्राह्मणों, शांखायन और वैतानसूत्र में सविस्तार वर्णन है।

प्राचीन आर्य लिंग पूजा करते थे। लिंग पूजा को स्कंभ कहते थे, जो आर्य धर्म का अंग थी जैसा कि अथर्ववेद के मंत्र 10.7 में है। एक और अश्लीलता थी, जिसने प्राचीन आर्य धर्म को विकृत किया हुआ था। वह था अश्वमेध यज्ञ अथवा घोड़े की बलि। अश्वमेध यज्ञ का एक आवश्यक हिस्सा यह था कि मेधित (मृत अश्व) का लिंग यजमान की मुख्य पत्नी की योनि में ब्राह्मणों द्वारा पर्याप्त मंत्रोच्चारण करते हुए डाला जाता था। वाजसनेयी संहिता का एक मंत्र 23.18 प्रकट करता है कि रानियों के बीच इस बात के लिए प्रतिस्पर्धा रहा करती थी कि घोड़े से योजित होने का श्रेय किसे प्राप्त होता है। जो इस विषय में और अधिक जानना चाहते हैं, वे यजुर्वेद की महीधर की टीका में ज्यादा विस्तार से पढ़ सकते हैं, जहां वह इस वीभत्स अनुष्ठान का पूरा विवरण देते हैं जो आर्य धर्म का अंग था।

प्राचीन आर्यों का जैसा धर्म था वैसा ही चरित्र भी था। आर्य एक जुआरी जाति थी। आर्य सभ्यता के प्रारंभ से ही उन्होंने द्यूत-क्रीड़ा विज्ञान की रचना कर ली थी। यहां तक कि उन्होंने अपने पासों की तकनीकी शब्दावली भी बना डाली थी। सबसे सौभाग्यशाली दांव 'कृत' होता था और सबसे अभागा 'कलि'। त्रेता और द्वापर का मध्यम दर्जा था। प्राचीन आर्यों में न केवल बाजियां खेली जाती थीं, बल्कि उन पर दांव भी अवश्य लगा करते थे और वे इतने ताव में आकर खेलते थे कि जुए में उनका कोई सानी नहीं होता था। राजा नल ने अपना राजपाट ही जुए में खो दिया। पांडव तो और आगे बढ़ गए। उन्होंने न केवल अपने राजपाट से हाथ धोया बल्कि अपनी पत्नी तक को हार बैठे। केवल धनी आर्य ही जुआरी नहीं होते थे, अन्य कंगालों को भी इसकी लत थी।

प्राचीन आर्य एक पियक्कड़ जाति थी। मदिरा-पान उनके धर्म का अंग था। वैदिक देवता भी शराब पीते थे। देवताओं की शराब सोम कहलाती थी। क्योंकि आर्यों के देवता ही शराब पीते थे, इसलिए उन्हें भी पीने में कोई संकोच नहीं था बल्कि शराब पीना आर्य धर्म में कर्तव्य माना जाता था। आर्यों में इतने सोम यज्ञ हुआ करते थे कि मुश्किल से ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा, जब सोमपान न किया जाता हो। सोम केवल तीन उच्च वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तक सीमित था। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि शूद्र नशाखोरी से मुक्त थे। जिन्हें सोम पीने की आज्ञा नहीं थी, वे सुरा पीते थे, कच्ची शराब जो बाजारों में बिका करती थी। न केवल आर्य पुरुष शराब पीते थे बल्कि उनकी स्त्रियां भी नशे में धुत रहा करती थीं। कौषीतकि गृह्यसूत्र 1.11.12 में सलाह दी गई है कि चार अथवा आठ स्त्रियां, जो विधवा न हों, शराब और भोजन से तृप्त होकर विवाह से पूर्व रात्रि को चार बार नृत्य करने के लिए बुलाई जाएं। मद्यपान केवल अब्राह्मण स्त्रियों में ही प्रचलित नहीं था, बल्कि ब्राह्मण स्त्रियों में भी इसकी आदत थी। मदिरा-पान पाप नहीं था। यह शर्म की बात नहीं थी बल्कि इसे सम्मानजनक माना जाता था। ऋग्वेद में कहा गया है—

"मदिरा-पान से पूर्व सूर्यापासना करें"

यजुर्वेद कहता है–

"हे सोम देव! सुरा से शक्तिमान और प्रबल होकर देवों को शुद्ध मन से प्रसन्न कर, यजमान को सरस भोजन और ब्राह्मण और क्षत्रियों को बल दे।"

मंत्र ब्राह्मण का कथन है–

"जिससे स्त्रियों को पुरुषों के भोगने के योग्य बनाया गया है, जिससे पानी मदिरा में बदल जाता है (पुरुषों के आनंद हेतु) आदि....."

रामायण के उत्तरकांड में स्वीकार किया गया है कि राम और सीता दोनों ने मदिरा पी थी–

"जैसे इंद्र ने शचि (अपनी पत्नी को), वैसे ही रामचंद्र ने सीता को शुद्ध मधु की शुद्ध मदिरा पिलाई। राम के कर्मचारीगण, मांस और मधुर फल लाए।"

वैसा ही कृष्ण और अर्जुन ने भी किया। महाभारत के उद्योग पर्व में संजय कहता है–

"अर्जुन और कृष्ण, मधु से बनी मीठी और सुगंधयुक्त मदिरा पिए, पुष्पहार धारण किए, भव्य वस्त्राभूषण धारण किए, रत्नमंडित स्वर्ग सिंहासन पर आसीन थे। मैंने श्रीकृष्ण के पैर अर्जुन की गोद में रखे देखे हैं और अर्जुन के पांव द्रौपदी और सत्यभामा की गोद में।"

अब हम स्त्री-पुरुष के वैवाहिक संबंधों पर आते हैं। इतिहास क्या कहता है? आरंभ में आर्यों में विवाह के कोई नियम ही नहीं थे। समाज के उच्च और निम्न, दोनों वर्गों में स्वच्छंद संभोग प्रथा थी। इस संबंध में कोई प्रतिबंध नहीं था। निम्नांकित उदाहरणों से यह स्पष्ट है।

ब्रह्मा ने अपनी स्वयं की पुत्री शतरूपा से विवाह किया। उनका पुत्र मनु पृथुवंश का संस्थापक था। उसी से इक्ष्वाकु और इला की उत्पत्ति हुई।

हिरण्यकशिपु, ने अपनी पुत्री रोहिणी से विवाह किया। पिता-पुत्री के विवाह के आम उदाहरण हैं। जैसे, वशिष्ठ और शतरूपा, जह्नु और जाह्नवी, सूर्य और उषा। पिता-पुत्री के बीच विवाह एक सामान्य बात थी। यह कानीन पुत्रों की मान्यता से प्रकट हैं। कानीन पुत्र का अर्थ है कुंवारी कन्या से पुत्रोत्पत्ति। विधानानुसार वे पुत्री के पिता के पुत्र होते थे। स्पष्ट है कि वे उनके पिताओं द्वारा ही उत्पन्न पुत्र होते थे।

ऐसे भी उदाहरण हैं कि पिता और पुत्र एक ही स्त्री के साथ सहवास करते थे। ब्रह्मा मनु के पिता थे और शतरूपा मनु की मां। यही शतरूपा मनु की पत्नी भी थी। दूसरा उदाहरण श्रद्धा का है। वह विवस्वत् की पत्नी है। मनु उनका पुत्र है। परंतु श्रद्धा मनु की पत्नी भी है। इससे संकेत मिलता है कि पिता और पुत्र एक ही स्त्री से सहवास करते थे। अपने भाई की पुत्री से विवाह करने की स्वतंत्रता थी। धर्म ने दक्ष की दस कन्याओं से विवाह किया जबकि दक्ष और धर्म भाई-भाई थे। चचेरी बहन से विवाह का भी प्रचलन था। कश्यप की तेरह पत्नियां थीं और वे सभी दक्ष पुत्रियां थीं। दक्ष कश्यप के पिता मरीचि का भाई था।

ऋग्वेद में यम और यमी का प्रसंग आया है। यह प्रसंग भी बहुत कुख्यात है जिसमें भाई-बहन के विवाह संबंधों पर प्रकाश पड़ता है। क्योंकि यम ने यमी के साथ संभोग करने से इनकार कर दिया अतः इससे यह नहीं कहा जा सकता कि उस युग में ऐसा होता नहीं था।

महाभारत के आदिपर्व में एक वंशावली दी गई है, जो ब्रह्मदेव से आरंभ होती है। इस वंशावली के अनुसार ब्रह्मा के तीन पुत्र थे—मरीचि, दक्ष और ब्रह्मा तथा एक पुत्री, जिसका नाम खेद है, वंशावली में नहीं है। इसी वंशावली में कहा गया है कि दक्ष ने ब्रह्मा की पुत्री, जो दक्ष की बहन ही हुई, से शादी की। उन दोनों से 50-60 पुत्रियां उत्पन्न हुईं। भाई-बहन के विवाह के अन्य उदाहरण भी उपलब्ध हैं। वे हैं—पूषन् और उसकी बहन अच्छोदा और अमावसु, पुरुकुत्स और नर्मदा, विप्रचित्ति और सिंहिका, नहुष और विरजा, शुक्र-उशना और गो, अशुंमान और यशोदा, दशरथ और कौशल्या, राम और सीता, शुक और पीवरी, द्रौपदी और प्रश्नि। ये भाई-बहन के विवाह थे।

निम्नांकित उदाहरणों से पता चलता है कि माता और पुत्र के बीच भी सहवास होता था। पूषा और उसकी मां, मनु और शतरूपा और मनु और श्रद्धा इसके उदाहरण हैं। दो अन्य बातों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अर्जुन एवं उर्वशी और अर्जुन और उत्तरा। उत्तरा का अभिमन्यु से विवाह हुआ था, जो अर्जुन का पुत्र था। उस समय उसकी आयु केवल 16 वर्ष की थी। उत्तरा का अर्जुन के साथ संपर्क था। वह उसे नृत्य-संगीत सिखाता था। यह बताया गया है कि उत्तरा के मन में अर्जुन के प्रति प्रेमांकुर थे और महाभारत कहता है इन प्रेम-संबंधों की विवाह में प्राकृतिक परिणति हुई। महाभारत यह नहीं कहता कि उनका विधिवत् विवाह हुआ। परंतु यदि हुआ तो कहा जा सकता है कि अभिमन्यु ने अपनी माता से विवाह किया। इस संबंध में अर्जुन-उर्वशी का उदाहरण और भी ठोस है।

इंद्र तो अर्जुन का वास्तविक पिता था। उर्वशी उस इंद्र की रखैल थी। इस प्रकार वह अर्जुन की मां समान थी। वह अर्जुन की शिक्षिका थी और उसे नृत्य और संगीत सिखाती थी। उर्वशी अर्जुन पर मोहित हो गई। उसके पिता इंद्र की सहमति से उसने अर्जुन से संभोग करने के लिए निवेदन किया। अर्जुन ने सहवास से यह कहकर इनकार कर दिया कि वह उसकी माता के समान है। ऐतिहासिक रूप से अर्जुन की अस्वीकृति के स्थान पर उर्वशी का व्यवहार अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसके दो कारण हैं। उर्वशी द्वारा इंद्र की सहमति से अर्जुन से प्रणय निवेदन करना इस बात का परिचायक है कि उस समय ऐसा हुआ करता था। दूसरी बात यह है कि उर्वशी ने अर्जुन से कहा कि यह तो एक पुरानी प्रथा है और अर्जुन के पूर्वजों ने ऐसे आमंत्रण को बेहिचक स्वीकार किया है।

सहवास के लिए, सगोत्र का ध्यान न रखने की निम्नांक्ति कहानी से बड़ा अन्य उदाहरण मिल ही नहीं सकता, जो हरिवंश पुराण के दूसरे अध्याय में दी गई है। इसके अनुसार सोम दस पिताओं का पुत्र था, यह बहुपतित्व-प्रथा का संकेत है। हर एक पिता का नाम था—प्रचेता। सोम की एक पुत्री थी—मारिषा। सोम के दस पिता और स्वयं सोम उसके साथ सहवास करते थे।

यह एक ऐसा उदाहरण है, जब किसी स्त्री के पितामह और पिता उसके पति भी थे, यानी वह अपने पितामहों और पिता की पत्नी थी। इसी अध्याय में आता है कि दक्ष प्रजापति सोम का पुत्र था, उसने अपनी 27 पुत्रियां अपने पिता को संतति-वृद्धि के लिए ब्याह दीं। 'हरिवंश' के तीसरे अध्याय में लेखक कहता है कि दक्ष ने अपनी एक बेटी का विवाह अपने पिता ब्रह्मा से कर दिया। उससे एक पुत्र नारद उत्पन्न हुआ। ये सपिंड स्त्री-पुरुषों के सहवास के प्रसंग हैं।

प्राचीन आर्य स्त्रियां बेची जाती थीं। आर्ष विवाह के रूप में पुत्रियों के विक्रय के साक्ष्य उपलब्ध हैं। किसी लड़के का पिता, किसी स्त्री का जो मूल्य चुकाता था, उसके लिए पारिभाषिक शब्द "गो-मिथुन" प्रचलित था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि गो-मिथुन के बदले लड़कियां बेच दी जाती थीं। "गो-मिथुन" का अर्थ है एक गाय और एक वृषभ, जो किसी कन्या का समुचित मूल्य समझा जाता था। केवल पिता ही अपनी पुत्रियों को नहीं बेचा करते थे बल्कि पति अपनी पत्नियां भी बेच दिया करते थे। हरिवंश पुराण के 79 वें अध्याय में इस बात का जिक्र है कि पुण्यक व्रत नामक एक अनुष्ठान में यज्ञ करने वाले पुरोहित को शुल्क कैसे दिया जाए। इसमें कहा गया है कि इसके लिए ब्राह्मणों की पत्नियां उनके पतियों से खरीद ली जाएं और उन्हें पुरोहित को दक्षिणा के रूप में दे दिया जाए। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण बेझिझक अपनी पत्नियां बेचते थे।

सच तो यह भी है कि प्राचीन आर्य अपनी स्त्रियों को दूसरों को सहवास के लिए किराए पर दे दिया करते थे। महाभारत (उद्योगपर्व) के अध्याय 103 से 123 में माधवी के जीवन का उल्लेख है। इस आख्यान के अनुसार माधवी राजा ययाति की पुत्री थी। ययाति ने उसे गालव को उपहार में दे दिया था, जो एक ऋषि था। गालव ने उसे एक के बाद एक तीन राजाओं को क्रमशः सहवास और पुत्र प्राप्ति हेतु दे दिया। जब तीसरे राजा की भोग की अवधि समाप्त हो गई तो गालव ने माधवी को अपने गुरु विश्वामित्र को सहवास के लिए दे दिया, जिसको उन्होंने अपनी पत्नी बना लिया और तब तक उसे अपने पास रखा, जब तक उन्हें एक पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। इसके बाद विश्वामित्र ने उसे गालव को लौटा दिया। अंत में गालव ने उसे उसके पिता ययाति को वापस दे दिया।

प्राचीन आर्य समुदाय में बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व, दोनों प्रथाएं प्रचलित थीं। उदाहरण इतने अधिक हैं कि उनको प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं है। लेकिन शायद जिसका लोगों को पूरी तरह पता नहीं है, वह है—स्वच्छंद संभोग। स्वच्छंद संभोग उस स्थिति में स्पष्ट दिखाई देता है जब हम नियोग-प्रथा पर विचार करते हैं। नियोग-प्रणाली को आर्यों ने प्रथा का रूप दे दिया, जिसमें कोई स्त्री विवाहित पति के अतिरिक्त, किसी अन्य व्यक्ति से नियोग (सहवास) करके संतान प्राप्त (उत्पन्न) कर सकती थी। इस प्रणाली के कारण समाज में संभोग की पूरी स्वच्छंदता थी, क्योंकि उस पर कोई नियंत्रण नहीं था। पहले तो इस पर कोई सीमा नहीं थी कि किसी स्त्री से कितने नियोग कराए जाएं। माधुति (माद्री) को एक नियोग की अनुमति थी। अंबिका ने एक वास्तविक नियोग कराया और दूसरे की इच्छा प्रकट की।

सरदण्डया के साथ तीन बार नियोग हुआ। पांडु ने अपनी पत्नी कुंती को चार नियोगों की आज्ञा दी। व्युषिताश्व को सात की आज्ञा थी और वाली के विषय में लिखा है कि उसने 17 बार नियोग की आज्ञा प्रदान की। इनमें से 11 एक पत्नी के साथ और 6 दूसरी के साथ। जैसे नियोगों की संख्या पर कोई सीमा नहीं थी, वैसे ही इसकी भी कोई परिभाषा नहीं थी कि किस स्थिति में नियोग कराया जा सकता है। नियोग किसी व्यक्ति के जीवन-काल में होता था और उन स्थितियों में भी जहां पति संतानोत्पत्ति की अक्षमता से उभर नहीं पाता हो। संभवतः पहल पत्नी की ओर से की जाती थी। हां, पुरुष का चुनाव भी उसी का होता था। उसे यह निर्णय करने की छूट थी कि उसे किस पुरुष से नियोग करना है और कितनी बार। नियोग अवैध संभोग का दूसरा नाम है, जो एक रात के लिए हो सकता था, बारह वर्ष तक या तब तक हो सकता था जब तक कि इस व्यभिचार के प्रश्रयदाता पति की सहमति होती थी।

आर्यों के प्राचीन समाज में जन-सामान्य का यह आचरण और नैतिकता थी। ब्राह्मणों का चरित्र कैसा था? सच यह है कि वे जन-सामान्य से बेहतर नहीं थे। ब्राह्मणों की दुश्चरित्रता के अनेक उदाहरण हैं। परंतु कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि ब्राह्मण अपनी पत्नियां बेच दिया करते थे। हम उनकी दुश्चरित्रता के और उदाहरण देंगे। उत्तंक वेद का शिष्य था जो जनमेजय तृतीय का पुरोहित था। वेद की पत्नी उत्तंक से अनुनय करती है कि वह उसे पत्नी के रूप में भोगे और संभोग-सुख के लिए उसके पास आए। दूसरा प्रसंग उद्दालक की पत्नी का है। वह स्वेच्छा से अथवा बुलाने पर किसी भी ब्राह्मण के पास जा सकती थी। श्वेतकेतु उसका पुत्र है, जो उसके पति के एक शिष्य से उत्पन्न हुआ था। ये केवल व्यभिचार के उदाहरण नहीं हैं। ये तो ब्राह्मण स्त्रियों को दी गई छूट के मामले हैं। जटिल गौतमी एक ब्राह्मण स्त्री थी, जिसके सात पति थे, जो ऋषि थे। महाभारत में कहा गया है कि जब द्रौपदी को नगरवासियों की पत्नियों ने अपने पांच पतियों के साथ देखा तो उसकी प्रशंसा की और उसकी उपमा जटिल गौतमी से दी जिसके सात पति थे। ममता उतथ्य की पत्नी है लेकिन उतथ्य का भाई बृहस्पति उसके पास उतथ्य के जीवन-काल में ही खुलेआम आता-जाता है। उसे केवल एक बार ममता के एतराज का सामना करना पड़ा, जब उसने कहा कि क्योंकि वह गर्भवती है, इसलिए अभी प्रतीक्षा करे, परंतु उसने यह नहीं कहा कि यह संबंध अनुचित या अवैध है।

ब्राह्मणों के बीच ऐसी अनैतिकता व्याप्त थी कि जब बहुपतित्व के कारण दुर्योधन ने द्रौपदी पर कटाक्ष किया और उसकी गाय से उपमा दी तो उसने कहा कि तेरे पतियों को तो ब्राह्मण के घर पैदा होना चाहिए था।

अब जरा ऋषियों की नैतिकता की विवेचना करें। हम वहां क्या देखते हैं? पहली बात जो हम ऋषियों में देखते हैं, वह है पशुगमन। विभांडक ऋषि का उदाहरण लें। महाभारत के वन पर्व के 100 वें अध्याय में कहा गया है कि वह एक हिरनी के साथ व्यभिचार करता था। उससे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, जिसे श्रृंग ऋषि कहा जाता है।

महाभारत के आदि पर्व के अध्याय एक और 118 में एक कथानक है कि किस प्रकार पांडवों के पिता पांडु को दम (महाभारत में किंदम नाम है) ऋषि ने शाप दिया। व्यास कहते हैं कि किंदम ऋषि एक हिरन के साथ जंगल में मैथुन में संलग्न था। जब वह इसमें लिप्त था तो पांडु ने उस पर एक तीर छोड़ा और किंदम ऋषि ने प्राण त्याग दिए। लेकिन मरने से पहले उसने पांडु को यह शाप दिया कि जब भी वह अपनी पत्नी से सहवास के लिए उद्यत होगा, तभी उसका प्राणांत हो जाएगा। ऋषि के पशु-मैथुन पर पर्दा डालने के लिए व्यास कहते हैं कि ऋषि और उसकी पत्नी ने संभोग के लिए हिरन और हिरन का रूप धारण कर रखा था। भारत के प्राचीन धार्मिक साहित्य में मैथुन के अन्य उदाहरण ढूंढने में कोई कठिनाई नहीं होगी, बशर्ते कि कोई थोड़ी मेहनत करे।

ऋषियों की एक अन्य घृणास्पद प्रवृत्ति थी स्त्रियों के साथ खुले में और आम जनता के सम्मुख संभोग करना। महाभारत के आदि पर्व के अध्याय 63 में ऐसी ही एक घटना का प्रसंग है कि ऋषि पराशर ने सत्यवती यानी मत्स्यगंधा के साथ कैसे सहवास किया जो एक मछुआरे की पुत्री थी। व्यास कहते हैं कि उन्होंने खुले में सबके सामने मैथुन किया। आदि पर्व अध्याय 104 में भी ऐसी ही एक अन्य घटना का उल्लेख है। वहां कहा गया है कि ऋषि दीर्घतमा ने लोगों के सामने संभोग किया। महाभारत में ऐसी अनेक घटनाएं हैं। सबको यहां गिनाने की आवश्यकता नहीं। 'अयोनिजा' शब्द यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि यह आम बात क्या थी। अधिकांश हिंदू जानते हैं कि सीता, द्रौपदी और अन्य प्रमुख नारियों को अयोनिजा कहा जाता है। अयोनिजा का अर्थ है, ऐसा शिशु जिसका गर्भधारण निष्कलंक हो। 'अयोनि' शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति के माध्यम से ऐसा नहीं है। 'योनि' का मूल अर्थ है गृह। योनिज का अर्थ है ऐसा शिशु जिसका जन्म घर में हुआ हो। अयोनिजा का अर्थ है ऐसा शिशु जो घर में उत्पन्न न हुआ हो। यदि अयोनिजा की यह व्युत्पत्ति ठीक है तो इससे प्रमाणित होता है कि तब सरेआम लोगों के सामने संभोग का चलन था।

छांदोग्य उपनिषद् में ऋषियों की अनैतिकता का एक और साक्ष्य मिलता है। इस उपनिषद के अनुसार लगता है कि ऋषियों ने यह नियम बनाया था कि यदि कोई यज्ञ कर रहा है और उस समय कोई स्त्री ऋषि से संभोग करना चाहे तो ऋषि यज्ञ को अधूरा छोड़कर और किसी एकांत स्थान पर जाने के बजाए यज्ञ-मंडप में ही सार्वजनिक रूप से उस स्त्री के साथ मैथुन करे। इस अनैतिकता को भी धार्मिक रूप दे दिया गया था। इसे वामदेव व्रत कहते थे। कालांतर में यही वाममार्ग कहलाया।

आर्यों परमपवित्र साहित्य ऋषियों की इतनी ही नैतिकता नहीं दर्शाता। अभी उसका एक पक्ष और बताना शेष है।

ऐसा प्रतीत होता है, प्राचीन आर्यों की लालसा होती थी कि उनकी संतति अच्छी उत्पन्न हो और इस इच्छा की पूर्ति के लिए वे अपनी पत्नियों को दूसरों के पास भेजा करते थे, विशेष रूप से ऋषियों के पास, जो आर्यों की दृष्टि में कुलीन सांड थे। ऐसे ऋषियों

की संख्या बहुत अधिक थी। असल में कुछ ऋषियों ने तो इसे बाकायदा धंधा बना लिया था और वे इतने भाग्यशाली थे कि राजा तक अपनी रानियों को गर्भवती कराने के लिए उनकी शरण में जाया करते थे। अब जरा देवों[1] पर भी एक दृष्टिपात डालें।

देवगण शक्तिशाली और अत्यंत कामुक प्राणी हुआ करते थे। यह एक सुविदित आख्यान है कि इंद्र ने गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ बलात्कार किया। किंतु आर्य स्त्रियों के साथ उन्होंने कितनी बदकारी की, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आरंभ से ही देव जाति ने आर्य संप्रदाय में अपना दबदबा कायम कर लिया था। इसी कारण इन देवों की हवस मिटाने के लिए आर्य स्त्रियों को वेश्या के स्तर तक गिरा दिया गया था। आर्य इस बात पर गर्व करते थे कि उनकी पत्नी के किसी देव से शारीरिक संबंध हैं और किसी देव ने उसकी पत्नी को गर्भवती बना दिया है। इसका उल्लेख महाभारत और हरिवंश पुराण में है, जब आर्य स्त्रियों को इंद्र, यम, अग्नि, वायु और अन्य देवों से पुत्र पैदा हुए। इसका उल्लेख इतनी बार है कि आश्चर्य होता है कि कितने बड़े पैमाने पर देवों के आर्यों की स्त्रियों के साथ अवैध संबंध थे।

समय बीतने पर देवों और आर्यों के बीच संबंध स्थायी रूप लेने लगे और लगता है यह प्रवृत्ति सामंतवाद के रूप में पनपी। देवताओं ने आर्यों से दो अधिकार (लाभ)[2] प्राप्त किए।

पहला अधिकार यज्ञ था जो आर्यों द्वारा देवों को समय-समय पर दिए जाने वाले भोज के रूप में होता था, जिसके बदले में देवजाति के लोग राक्षसों से आर्यों की रक्षा करते थे। यज्ञ कुछ नहीं थे बल्कि यह देवों की सामंती वसूली होती थी। इसको समझने में अगर भूल हुई है तो इसका कारण यही है कि देवों को एक जाति के स्थान पर भ्रांति से ईश्वर (देवता) समझ लिया गया। जो आर्यों के समाज की प्रारंभिक अवस्था में इस शब्द का अर्थ कभी नहीं था। (अवेस्ता के अनुसार देव देओ (giant) को कहते हैं—अनु.)

देवों को आर्यों से दूसरा अधिकार यह मिला हुआ था कि वे आर्यों की स्त्रियों को भोग सकते थे। इसकी शुरुआत बहुत पहले ही हो गई थी। ऋग्वेद में एक उल्लेख है 10.85.40 जिसके अनुसार आर्यों की स्त्रियों पर पहले सोम, फिर गंधर्व, फिर अग्नि और सबके बाद आर्यों को सहवास का अधिकार था। प्रत्येक आर्य स्त्री किसी देव की होती थी। किसी आर्य कन्या

---

1. *पता नहीं, जिन्होंने प्रथम बार संस्कृत से अंग्रेजी में अनुवाद किया, उन्होंने देवों को देवता क्यों समझ लिया? यह एक भयानक गलती थी, जिससे ऐसी भ्रांति पैदा हुई कि वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य में आर्यों के सामाजिक जीवन को ठीक से समझा नहीं जा सका। देव एक जाति का नाम था, यह निर्विवाद है। राक्षस, दैत्य, देव विभिन्न समुदायों के नाम हैं, जैसे कि आर्य और दस्यु, समुदाय हैं।*
2. *क्या देवों और आर्यों के बीच ऐसे संबंध थे जैसे किसी स्वामी के अपनी प्रजा के साथ सामंती युग में होते हैं? इस बात की अभी छान-बीन नहीं की गई है, क्योंकि देवों को मानव समुदाय का नहीं समझा जाता। देवगण आर्यों से जो उपहार प्राप्त करते थे, वे वैसे ही थे जैसे स्वामी अपनी प्रजा से लेता है। 1. मौसम के पहले फल, फसल आदि। 2. सुहागरात का अधिकार।*

के किशोरावस्था में आने पर उसे सबसे पहले किसी देव से सहवास करना होता था। इससे पूर्व कि किसी आर्य कन्या का विवाह हो, उसे देव को भेंट चढ़ाकर शांत करना होता था। आश्वलायन गृह्य-सूत्र के प्रथम अध्याय की 7वीं कंडिका में विवाह-संस्कार का जो वर्णन है, वह इस बात का ज्वलंत प्रमाण है। इस सूत्र का सावधानी और विश्लेषणात्मक दृष्टि से अनुशीलन किया जाए तो पता चलेगा कि विवाह के समय तीन देव होते थे—अर्यमन्, वरुण और पूषन्। स्पष्ट है कि उनका कन्या पर पहले से ही अधिकार होता था। सबसे पहला काम वर यह करता है कि वह कन्या को एक पत्थर के टुकड़े के पास ले जाता है और उससे कहता है कि "उस पर" पैर रख और पत्थर के समान कठोर बन। शत्रु से मुक्ति पा, शत्रु को पैर के नीचे दबा। इसका अर्थ है कि वर कन्या को उन तीन देवों के नियंत्रण से मुक्ति के लिए कहता है, जिन्हें वह अपना शत्रु मानता है। देवों को क्रोध आता है और वे वर की ओर बढ़ते हैं। कन्या का भाई बीच में आता है और विवाद सुलझाने का प्रयास करता है। वह क्रुद्ध देवों को भुना अन्न भेंट करता है जिससे कन्या पर से उनके अधिकार का मूल्य चुकाया जा सके। तब भाई बहन से अंजलि बनाने के लिए कहता है, फिर वह उसकी अंजलि में भुना अन्न भर देता है और उसमें घी डालता है और कन्या से वह तीनों देवों को तीन बार अर्पित करने के लिए कहता है। यह अवदान कहलाता है। जब बहन देवों को अवदान अर्पित करती है तो उसका भाई एक विशेष वचन दोहराता है जिसे जानना महत्त्वपूर्ण है। वह कहता है "यह कन्या अग्नि के माध्यम से अर्यमन् को अवदान अर्पित करती है। अर्यमन् इस पर से अपना अधिकार छोड़ दें और वर के अधिकार को बाधित न करें।" कन्या दो अन्य देवों को भी अलग से अवदान देती है और प्रत्येक बार उसका भाई यह दोहराता है। अवदान के पश्चात अग्नि की प्रदक्षिणा होती है, जो सप्तपदी कहलाती हैं। इसी के पश्चात विवाह संबंध वैध और उत्तम माना जाता है। यह सब अत्यंत स्पष्ट है और इससे आर्यों पर देवों की दासता प्रकट होती है। साथ ही यह देवों और आर्यों के चरित्र के पतन का भी परिचायक है।

विधि-विशेषज्ञ जानते हैं कि हिंदू विवाह में सप्तपदी नितांत अनिवार्य है और इसके बिना हिंदू विवाह वैध नहीं होता। लेकिन यह बहुत कम लोग जानते हैं कि हिंदू विवाह में सप्तपदी का इतना महत्त्व क्यों है। स्पष्ट है, यह इस बात का प्रतीक है कि देवों ने कन्या पर से अपना पूर्वाधिकार त्याग दिया है, वे अवदान से संतुष्ट हैं और कन्या को मुक्त करने पर सहमत हैं। यदि देव वर और कन्या को सात पग चलने देते हैं तो यह समझा जाता था कि देवों को मुआवजा स्वीकार है और उनका अधिकार समाप्त हो गया है और कन्या दूसरे की पत्नी बन सकती है। सप्तपदी के कोई अन्य अर्थ नहीं हो सकते। सप्तपदी प्रत्येक विवाह में आवश्यक थी, यह तथ्य इस बात का द्योतक है कि ऐसी अनैतिकता देवों और आर्यों में किस हद तक मौजूद थी।

कृष्ण के चरित्र पर अलग से प्रकाश डाले बिना यह सर्वेक्षण पूरा नहीं हो सकता। कलियुग का आरंभ और कृष्ण का देहांत एक-दूसरे से जुड़े हैं, इसलिए उनके चरित्र पर विचार करना महत्त्वपूर्ण है। कृष्ण का चरित्र अन्यों की तुलना में कैसा है? विस्तृत विवरण अन्य स्थान पर

दिया गया है। हम यहां कुछेक बातों के बारे में ही चर्चा करेंगे। यादव बहुपत्नीवादी थे। कृष्ण, वृष्णि (यादव परिवार) से संबंधित थे। यादव राजाओं के बारे में बताया गया है कि उनकी असंख्य पत्नियां और असंख्य पुत्र होते थे। यह कलंक कृष्ण पर भी लगा हुआ है। परंतु इस यादव परिवार और स्वयं कृष्ण के घर पर पुत्री मैथुन का धब्बा लगा है। यादव परिवार में पिता द्वारा पुत्री से विवाह का उल्लेख मत्स्य पुराण में है। मत्स्य पुराण के अनुसार कृष्ण के एक पूर्वज राजा तैत्तिरि ने अपनी पुत्री को ही घर में रख लिया था और उससे नल नाम का पुत्र उत्पन्न किया था। कृष्ण का पुत्र साम्ब अपनी मां से सहवास करता था। मत्स्य पुराण में उल्लेख है कि किस प्रकार साम्ब अवैध रूप से कृष्ण की पत्नियों के साथ रहता था। कृष्ण ने अपने पुत्र साम्ब और पत्नियों को क्रोधित होकर शाप दिया था। महाभारत में भी यह प्रकरण है। सत्यभामा ने द्रौपदी से यह भेद जानना चाहा कि वह पांच पतियों को किस प्रकार नियंत्रण में रखती है। महाभारत के अनुसार द्रौपदी ने सत्यभामा को चेताया कि वह अपने सौतेले पुत्रों के साथ अकेले में न तो बात करे और न उन्हें अकेले में अपने पास ठहरने दे। यही बात मत्स्य पुराण में भी साम्ब के प्रसंग में कही गई है। साम्ब का अकेला उदाहरण नहीं है। उसके भाई प्रद्युम्न ने भी अपनी पालक माता और शम्बर की पत्नी मायावती से विवाह कर लिया था।

कृष्ण के निधन से पहले आर्यों के समाज की नैतिकता ऐसी ही थी। इतिहास को निश्चित युगों में विभक्त नहीं किया जा सकता और यह नहीं कहा जा सकता कि कृत युग में जैसी नैतिकता थी, वैसी त्रेता और द्वापर में थी और वह कृष्ण की मृत्यु पर सहसा समाप्त हो गई। आर्यों के सुधारों की प्रगति के अवलोकन से पता चलता है कि प्रथम युग कृत में वह नैतिकता निम्नतम थी, उससे कुछ बेहतर त्रेता में थी और सबसे कम अनैतिकता द्वापर में थी। कलियुग में स्थिति सर्वोत्तम है।

कोई विचारधारा मानव-समाज के सामान्य विकास से नहीं बनती जैसे कि संसार भर में हम देखते हैं। प्राचीन काल में आर्यों का जो नैतिक पतन था, उन्होंने दृढ़ता से सुधार कर उन सामाजिक दुष्कर्मों को त्याग दिया जिस की जानकारी इतिहास में मिलती है।

सामान्य आर्यों की दृष्टि में देवों और ऋषियों का बहुत सम्मान है और यह नियम है कि हीन जन कुलीन का अनुसरण करता है। आर्यों में जो भी अनैतिकता थी, वह इसी का परिणाम थी कि सामान्य आर्यजन ने देवों और ऋषियों के अनैतिक कार्यों की नकल की। अपने समाज को नैतिक पतन से मुक्ति दिलाने के लिए कुछ आर्यों ने अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सुधार किए। उन्होंने कह दिया कि देवों और ऋषियों के कार्यों का उल्लेख न किया जाए[1]। उन्हें अनुकरणीय माना जाए। इस तरह साहस और दृढ़ता से अनैतिकता के एक कारण तथा उसके स्रोत को समाप्त किया गया।

---

1. गौतम धर्म-सूत्र में नियम निर्धारित है कि ऋषियों के चरित्र को उदाहरण बनाकर अनुगमन नहीं किया जा सकता—"न देवचरितं चरेत्"। इससे यह सीमा बांध दी गई है कि देवों के कार्य उदाहरण नहीं बन सकते। यह एक मुक्त श्लोक है जिसका स्रोत अज्ञात है।

अन्य सुधार भी निर्णायक थे। महाभारत में दीर्घतमस् (दीर्घतमा) और श्वेतकेतु नामक दो सुधारकों का उल्लेख है। श्वेतकेतु ने व्यवस्था दी कि विवाह अटूट बंधन है और उसे तोड़ा नहीं जा सकता। दीर्घतमस् के दो सुधार हैं। उसने बहुपतित्व पर प्रतिबंध लगाया और घोषित किया कि किसी स्त्री का एक समय में केवल एक पति होगा। उसका दूसरा सुधार यह बताया जाता है कि उसने नियोग के विनियमन की कुछ शर्तें निर्धारित कीं। इनमें निम्नलिखित शर्तें अति महत्त्वपूर्ण थीं–

1. (क) विधवा (अथवा विधवा के पति) का पिता अथवा भाई उस गुरु के पास जाए, जिसने मृतक पति और उसके संबंधियों को शिक्षा दी हो अथवा उनके लिए यज्ञ किया हो और मृत के लिए संतान उत्पन्न करने वाला नियत कराए[1]।
   (ख) पति, मृतक अथवा जीवित हो किंतु उसके पुत्र न हो;
2. परिवार के सदस्यों के परामर्श से पति के लिए गुरु संतानोत्पत्ति करने वाला नियुक्त करे,
3. वह पति का भाई अथवा सपिंड अथवा सगोत्र हो या (गौतम के अनुसार) सप्रवर अथवा सजातीय हो,
4. नियत पुरुष और विधवा काम-वासना वश नहीं वरन् कर्तव्य मानकर सहवास करे,
5. नियत पुरुष के शरीर पर घी या तेल मला जाए। (नारद स्त्री पुंस, 82) वह उससे बात न करे, न चुंबन करे, न कामकेलि करे,
6. यह संबंध एक पुत्र के जन्म (कुछ के अनुसार दो) तक सीमित रहेगा,
7. विधवा की आयु अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए। वह अधिक वय की न हो, बंध्या न हो, ऋतुमती होने का समय समाप्त न हुआ हो या रोगी या अनिच्छुक या गर्भवती न हो। (बौधा, ध.सू. II 2.70, नारद, स्त्री पुंस 83.84),
8. पुत्र पैदा हो जाने पर वे एक दूसरे को ससुर और पुत्रवधू मानें, (मनु. 9.62)। यह भी स्पष्ट किया गया है कि यदि देवर या ज्येष्ठ ने भाभी के साथ बड़ों की अनुमति के बिना सहवास किया हो या अन्य परिस्थितियां अनुकूल नहीं होने पर (उदाहरणार्थ, यदि पति से पुत्र पहले ही है) उसने बड़ों की सहमति से ही सहवास किया हो, तो वह परिजन से मैथुन करने का पापी होगा।"

आर्यों के प्राचीन समाज में कुछ अन्य सुधार किए गए, जो नैतिक उत्थान के लिए

1. *काणे ग्रंथ, भाग I, पृ. 60*

थे। विवाह के संबंध में कुछ निषेधात्मक नियम बनाए गए, जिससे पिता, पुत्री, भाई-बहन, मां-बेटे, और दादा-पोती के बीच विवाह वर्जित कर दिए गए, गुरु की पत्नी के साथ संभोग को भी जघन्य पाप घोषित किया गया। जुए पर रोक लगाने की कोशिशों के भी प्रमाण हैं। धर्म-सूत्रों में ऐसे विधान के उल्लेख हैं जिनमें राजा से कहा गया कि उसका यह कर्तव्य है कि वह कठोर दंड देकर जुए पर नियंत्रण करे।

ये सब सुधार कलियुग के आरंभ होने से काफी पहले हो गए थे। यह कहना स्वाभाविक ही है कि कलियुग नैतिक दृष्टि से बेहतर युग है। यह कहना कि कलियुग में नैतिकता का ह्रास हो रहा है, न केवल निराधार है बल्कि स्पष्ट रूप से घोर विकृति है।

V

कलियुग के संबंध में इस विवेचन से बहुत सी पहेलियां उभरती हैं। महायुगों का विचार कब जन्मा? यह सच है कि संसार भर में अतीत को स्वर्णिम समझा जाता रहा है। महायुग की कल्पना यहां भारत में भी की जाए तो कोई अजीब बात नहीं और यह अतीत में हो चुके स्वर्णिम युग जैसी ही है। दुनिया में अन्यत्र यह मान्यता है कि स्वर्णयुग गया तो गया। परंतु हमारे यहां महायुग का मोह अब भी जीवित है। एक चक्र पूरा होने पर स्वर्गयुग फिर आएगा, वह सदा के लिए चला नहीं गया है।

दूसरी पहेली है कि कलियुग का अंत 165 ई.पू. में क्यों नहीं हुआ जबकि खगोलशास्त्रियों के अनुसार इसका अंत हो जाना चाहिए था। तीसरी पहेली कलियुग की संध्या और संध्यांश है। यह स्पष्ट है कि यह बाद की कल्पना है क्योंकि विष्णु पुराण में उनका उल्लेख अलग से किया गया है। यदि ये मूल का अनिवार्य अंश होती तो पृथक से कभी न कही जातीं। ये अतिरिक्त बातें जोड़ी क्यों गईं? चौथी पहेली काल-गणना के संबंध में है। पहले कलियुग का समय सामान्य वर्ष में गिना गया था लेकिन बाद में कहा गया, ये दैवी वर्ष है। इसका अर्थ हुआ कि जो कलियुग 1200 वर्ष में बीत जाना था, उसकी अवधि का विस्तार 4,32,000 वर्ष तक होगा। यह नई खोज क्यों की गई? कलियुग का इतना लंबा विस्तार वैदिक ब्राह्मणों ने क्यों किया? क्या यह कुछ शूद्र राजाओं पर अनुचित दबाव जमाने की चाल थी कि कलियुग की खोज कर ली गई और उसे अनंत बना दिया गया ताकि प्रजा को उनके राज पर विश्वास न रहे?

चौबीसवीं पहेली

कलियुग की पहेली

कालगणना की जो इकाइयां हिंदुओं में प्रचलित हैं, उनकी विशेषताओं की ओर लोगों का यथोचित ध्यान नहीं जाता है। यह ऐसा विषय है जो पुराणों में प्रमुखता से पाया जाता है। उनके अनुसार काल-गणना के पांच माप हैं—1. वर्ष, 2. युग, 3. महायुग, 4. मन्वंतर और 5. कल्प। हम इन इकाइयों के संबंध में विष्णु पुराण को देखेंगे। वर्ष से आरंभ करें। विष्णु पुराण में इसे इस प्रकार गिना गया है—[1]

"हे ऋषि श्रेष्ठ! पंद्रह बार पलक झपकने पर एक काष्ठ पूर्ण होता है। तीस कलाओं से एक मुहूर्त, तीस मुहूर्तों से एक मानवीय दिन और रात। ऐसे तीस दिनों से एक महीना बनता है। उसके दो पक्ष होते हैं, 6 मास से एक अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन) बनता है और दो अयनों से एक वर्ष बनता है।"

विष्णु पुराण में ही एक अन्य स्थान पर यही व्याख्या विस्तार से दी गई है—[2]

पंद्रह बार पलक झपकने (निमेषों) से एक काष्ठ, तीस काष्ठ से एक कला, तीस कलाओं से एक मुहूर्त (अड़तालीस मिनट), तीस मुहूर्तों से एक दिन और रात, उनका समय चाहे घटता-बढ़ता रहे। यह कहा गया है कि संध्या उनके घटने-बढ़ने की दशा में भी वही रहती है। उसका एक ही मुहूर्त होता है। परंतु उस समय से सूर्य पर एक रेखा खींची जाए जो तीन मुहूर्त (2 घंटे 24 मिंट) वह प्रातः कहलाता है, जो दिवस का पंचमांश होता है। अगला भाग अर्थात् प्रातः के पश्चात के तीन मुहूर्त संगव (पूर्वाह्न) होता है। अगले तीन मुहूर्त मध्याह्न होते हैं, उसके पश्चात के तीन मुहूर्त अपराह्न और अगले 3 मुहूर्त संध्या (शाम) होते हैं और दिन के पंद्रह मुहूर्त तीन-तीन मुहूर्तों के पांच समान भागों में विभक्त हैं।

तीस-तीस मुहूर्तों के पंद्रह दिनों से एक पक्ष बनता है। दो पक्षों से एक मास, दो मासों से एक ऋतु, तीन ऋतुओं से एक अयन अर्थात् उत्तरायण अथवा दक्षिणायन, और दो अयनों से एक वर्ष बनता है।

विष्णु पुराण में युग की परिकल्पना इस प्रकार की गई है—[3]

---

1. *विष्णु पुराण, विल्सन, पृ. 22-3*
2. *वही।*
3. *वही, पृ. 23*

"बारह हजार दैवी वर्षों (प्रत्येक में तीन सौ साठ वर्ष होते है) से चार युग बनते हैं, उनका विवरण इस प्रकार है–कृत युग में चार हजार दैवी वर्ष, त्रेता में तीन हजार, द्वापर में दो हजार और कलियुग में एक हजार। यह प्राचीन गणना के समान है।"

"प्रत्येक युग से पूर्व एक संध्या होती है। यह कई सौ वर्षों की होती है क्योंकि एक युग में हजार वर्ष होते हैं। युग के पश्चात संध्यांश आता है। उसकी अवधि भी इतनी ही होती है। संध्या और संध्यांश के बीच युग होता है। जैसे कृत, त्रेता आदि।"

विष्णु पुराण में समय नापने के लिए भी युग का जिक्र आया है। उसमें कहा गया है–[1]

"वर्ष में चार प्रकार के महीने होते हैं, और वर्ष 5 प्रकार के होते हैं। और इन सबको मिलाकर एक युग या चक्र बनता है। वर्ष को संवत्सर, इद्वत्सर, अनुवत्सर, परिवत्सर और वत्सर, कई नामों से पुकारा जाता है। यह समय युग कहलाता है।"

महायुग का अर्थ है युग का विस्तार जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है–[2]

"कृत, त्रेता, द्वापर और कलि मिलकर महायुग अथवा चतुर्युग बनता है। इस प्रकार के हजार चतुर्युग का योग ब्रह्मा का एक दिन होता है।"

विष्णु पुराण में मन्वंतर की व्याख्या इस प्रकार की गई है–[3]

"मध्यांतर मन्वंतर कहलाता है। इसमें इतना समय होता है जितना चार युगों को इकहत्तर से गुना करने पर होता है। उसमें कुछ और वर्ष भी होते हैं।"

कल्प के विषय में विष्णु पुराण में कहा गया है–

"ब्रह्मा का एक दिन कल्प है"

कुछ अवधियां हैं, जिनमें समय का विभाजन किया जाता है। इन अवधियों में कितना समय होता है, यह उल्लेखनीय है।

वर्ष की अवधि सरल है। यह 365 दिन का ही होता है। युग, महायुग, मन्वंतर और कल्प को गिनना टेढ़ी खीर है, फिर भी कल्प के विभाजन में युग और महायुग को समझना कुछ सरल है अपेक्षाकृत इसके कि कल्प को युगों से गुणा किया जाए। कल्प और महायुग के संबंधों को समझने के लिए हमें 71 महायुगों को जोड़ना होगा जबकि एक महायुग में चार युग होते हैं और एक मन्वंतर 71 महायुगों जमा कुछ वर्षों का होता है।

इन इकाइयों के आधार पर काल-गणना करते समय हम युग को आधार मानकर नहीं चल सकते, क्योंकि युगों का समय तो निश्चित है किंतु उनमें समानता नहीं है। गणना का आधार महायुग है जिसका समय निर्धारित है।

---

1. *विष्णु पुराण, विल्सन, पृ. 23*
2. *वही, पृ. 23*
3. *वही, पृ. 24*

महायुग में चार युग होते हैं–1. कृत, 2. त्रेता, 3. द्वापर, और 4. कलि। प्रत्येक युग का समय निश्चित है। प्रत्येक युग के आगे-पीछे संध्या और संध्यांश होते हैं। उनका समय भी निर्धारित है। विभिन्न युगों का अपना समय और उनके साथ संबद्ध संध्या और संध्यांश का समय भिन्न-भिन्न है।

युग	समय	संध्या	संध्यांश	योग
कृत	...4000	400	400	4800
त्रेता	...3000	300	300	3600
द्वापर	...2000	200	200	2400
कलि	...1000	100	100	1200
महायुग	...	...	...	12000

महायुगों की यह गणना दैवी वर्षों के आधार पर है, अर्थात् ब्रह्मा के 12000 दैवी वर्षों से एक महायुग बनेगा। हिसाब यह है कि मानव का एक वर्ष महायुग के एक दैवी दिन के बराबर है। इस प्रकार मानव वर्षों के आधार पर महायुग का हिसाब इस प्रकार बैठता है (360 X 12000)=43,20,000 वर्ष।

इकहत्तर महायुगों से एक कल्प बनता है। यानी कल्प का समय हुआ (43,20,000X71)=3,06,72,000।

मन्वंतर 71 महायुगों तथा कुछ वर्षों का योग है। मन्वंतर का काल कल्प के बराबर बैठता है यानी 3,06,72,000 तथा कुछ और वर्ष। इस तरह मन्वंतर का समय कल्प से कुछ ज्यादा होता है

वर्ष की परिकल्पना खगोलशास्त्र के अनुरूप है। इसलिए वह काल-गणना के लिए जरूरी है।

कल्प की परिकल्पना पौराणिक और ब्रह्मांडोत्पत्ति से संबंधित है और इस विश्वास पर आधारित है कि ब्रह्मांड की सृष्टि और प्रलय ब्रह्मा करते हैं। इन दोनों के बीच का समय कल्प कहलाता है। इस पर सबसे पहले प्रकाश विष्णु पुराण के 'प्रथम अंश' में डाला गया है। वह इसकी सृष्टि से आरंभ होता है। इसकी रचना के दो रूप हैं–1. सर्ग अर्थात् प्रकृति अथवा पदार्थ से ब्रह्मांड की उत्पत्ति और 2. प्रतिसर्ग अर्थात् मूल तत्त्वों से हुआ आरम्भिक विकास अथवा अस्थायी विनाश के बाद उसकी फिर से उत्पत्ति। ये दोनों रचनाएं सावधिक हैं परंतु ब्रह्मा के जीवन अवसान पर पहले का समापन हो जाता है जब न केवल देवतागण अपितु अन्य तत्त्व भी लुप्त हो जाते हैं। परंतु ये तत्त्व पुनः मूल रूप में परिवर्तित होकर उभर आते हैं। उनके साथ तब केवल सूक्ष्म तत्त्व बचता है, वह प्रतिस प्रतिकल्प अथवा ब्रह्मा के दिन घटित होता है। इससे केवल क्षुद्र जीव और निम्न जगत प्रभावित होते हैं। ब्रह्मांड का सार तत्त्व और ऋषि और देवतागण अप्रभावित रहते हैं। यह कल्प की अवधारणा है।

मन्वंतर की अवधारणा यदि ऐतिहासिक नहीं भी तो पौराणिक तो है ही। इसका सूत्र यह है कि ब्रह्मा ने चराचर की सृष्टि रची। परंतु चर की वंश-वृद्धि नहीं हुई, तब ब्रह्मा ने नौ मानस पुत्र उत्पन्न किए। परंतु उनमें कोई आवेग नहीं था। मात्र पवित्र ज्ञान से अभिभूत थे, ब्रह्मांड से विरक्त और प्रजनन के अनिच्छुक। ब्रह्मा को यह देखकर क्षोभ हुआ। तब ब्रह्मा ने स्वयं प्रथम पुरुष मनु स्वायंभुव और प्रथम नारी शतरूपा का रूप धारण किया। मनु स्वायंभुव ने शतरूपा का वरण किया। इस प्रकार प्रथम मन्वंतर आरंभ हुआ जो स्वायंभुव मन्वंतर कहलाया। चौदह मन्वंतरों का विवरण इस प्रकार है–

"तब ब्रह्मा ने सृष्टि पालन हेतु स्वयं को मनु स्वायंभुव बना लिया, अपने वास्तविक रूप के समान अपने नारी भाग से शतरूपा रची, जिसे तपस्या द्वारा पाप से शुद्ध किया जिसे मनु ने अपनी पत्नी बनाया। इन दोनों से दो पुत्र जन्मे, प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो पुत्रियां थीं प्रसूति और आकूति जो अति सुंदर थीं। प्रसूति का विवाह दक्ष से और आकूति का रुचि प्रजापति से हुआ। आकूति से जुड़वां बच्चे उत्पन्न हुए यज्ञ और दक्षिणा, जिन्होंने परस्पर विवाह कर लिया (भाई-बहन के विवाह का एक और उदाहरण)। उनसे बारह पुत्र उत्पन्न हुए। ये देवता स्वायंभुव मन्वंतर में यम कहलाए।"

पहला, मनु[1] स्वायंभुव था, फिर स्वारोचिष, इसके बाद क्रमशः औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षुष। ये छ मनु काल कवलित हुए। सातवें, वर्तमान मन्वंतर का मनु सूर्यपुत्र वैवस्वत है।"

"कल्प के आरंभ में स्वायंभुव मनु के समय का मैं वर्णन कर चुका हूं। उनके देवों, ऋषिगण, अन्य महापुरुषों जो उस समय विद्यमान् थे उनके साथ। "अब मैं स्वारोचिष मनु के पुत्रों, देवताओं और ऋषियों के विषय में बताता हूं। इस काल (द्वितीय मन्वंतर) के देवता थे–पारावत और तुषित। उनका इंद्र था "विपश्चित्"। उनके सप्तर्षि थे ऊर्ज, स्तंभ, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर और अर्वारीवत्। चैत्र और किंपुरुष तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

"तीसरे मन्वंतर के मनु थे औत्तमि। उसके समय के इंद्र थे, सुशांति। देवताओं के नाम हैं–स्वधाम, सत्य, शिव, प्रतर्दन और वशवर्ती और प्रत्येक ये पांच वर्ग थे बारह-बारह देवताओं के। उस समय के सप्तर्षि वसिष्ठ के सात पुत्र, सात ऋषिगण थे और अज, परसु, दिव्य तथा अन्य मनु के पुत्र थे।

"चौथे मनु तापस के काल में पूजनीय देवता थे सुरूप, हरि, सत्य और सुधि। प्रत्येक वर्ग में सत्ताईस देवता थे। शिबि उस काल का इंद्र था। सौ यज्ञ संपन्न करने के कारण उसे शतक्रतु भी कहा जाता है। सप्तऋषि थे–ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक, और पीवर। तामस के बलशाली पुत्र थे राजा नर, ख्याति, संध्य, जानुजंघ आदि।

---

1. *विल्सन, विष्णु पुराण, पृ. 259-64*

"पांचवें मन्वंतर के मनु रैवत थे। उनका इंद्र विभु था। देवतागण, जिनमें प्रत्येक के चौदह देवता होते थे, इस प्रकार थे–अमिताभ, भूतरय, वैकुंठगण, सुमेधागण। तत्कालीन सप्तऋषि थे–हिरण्यरोमा, वेदश्री, उर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुद्युम्न, पर्जन्य और महामुनि। रैवत के पुत्र इस प्रकार थे–बालबंधु, सुसंभाव्य, सत्यक तथा अन्य वीर राजा।

"ये चार मनु–स्वारोचिष, औत्तमि, तामस और रैवत–उस प्रियव्रत के वंशज थे जिसने विष्णु को अपनी उपासना से प्रसन्न करके अपनी संतति के लिए मन्वंतरों का मनु बनाए जाने का वर प्राप्त कर लिया था।

"छठे मन्वंतर का मनु चाक्षुष था। उसका इंद्र मनोजव था। उस काल के पांच वर्ग के देवता थे–आद्य, प्रस्तुत, भव्य, पृथुग और उदारता की प्रतिमूर्ति लेख। उस काल के सप्तर्षि थे–सुमेधा, विरजा, हविष्मत्, उत्तम, मधु, अभिनामन् और सहिष्णु। पृथ्वी के स्वामी चाक्षुष के शक्तिशाली पुत्र थे–उरु, पुरु, शतद्युम्न आदि।

"वर्तमान सातवें मन्वंतर के मनु, श्राद्ध देव, सूर्य की अनुपम संतान (वैवस्वत) हैं और उनके देवता हैं आदित्य, वसु और रुद्र। उनका इंद्र पुरंदर है, सप्तर्षि हैं–वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज। वैवस्वत मनु के नौ धर्मनिष्ठ पुत्र हैं राजा इक्ष्वाकु, नाभागारिष्ट, करूष, पृषध्र और विख्यात वसुमत्।"

अभी सात मन्वंतरों का विवरण दिया गया है जो विष्णु पुराण में उल्लिखित हैं। यह विष्णु पुराण लिखे जाने तक की स्थिति थी। क्या मन्वंतर शासन बाहर से होता था? इस विषय में ब्राह्मण मौन हैं। परंतु विष्णु पुराण के लेखक को पता है कि सात मन्वंतर अभी और आने हैं। उनका विवरण इस प्रकार है–

"विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी थी, उसकी तीन संतानें हुईं–मनु (वैवस्वत) यम और यमी (अथवा यमुना)–अपने पति का तेज झेलने में असमर्थ संज्ञा ने उसे छाया दे दी और स्वयं उपासना के लिए वनों में चली गई। सूर्य ने छाया को अपनी पत्नी संज्ञा जानकर उससे तीन संतानें और पैदा कीं। शनिश्चर (शनि), मनु (सावर्णी) और पुत्री तपती (ताप्ती नदी)। छाया को एक बार यम पर क्रोध आ गया। उसने उसे शाप दिया। साथ ही उसने यम को और सूर्य को यह भी बता दिया कि वह वास्तविक संज्ञा नहीं है। छाया के यह बताने पर कि उसकी पत्नी जंगलों में चली गई है सूर्य ने अपनी दिव्यदृष्टि से देखा कि वह घोड़ी (अश्वी) रूप में उत्तरकुरु इलाके में तपस्यारत है। सूर्य ने घोड़े के रूप में पुनर्जन्म ले लिया और वह अश्वरूपिणी अपनी पत्नी के पास पहुंच गया और उससे तीन अन्य संतानें पैदा कीं–दो आश्विनी कुमारों और रैवत (रेवन्त) को। फिर वह संज्ञा को घर ले आया। विश्वकर्मा ने सूर्य (नक्षत्र) की गहनता कम करने और उसकी दीप्ति घटाने के उद्देश्य से अपनी चक्री पर चढ़ाया और उसे घिसाकर आठवां भाग कर

दिया, क्योंकि इससे अधिक उसे विभाजित नहीं किया जा सकता था। जो दैवी वैष्णव भव्यता सूर्य में थी, वह विश्वकर्मा के घिसाने से धरती पर आ गिरी। शिल्पकार (विश्वकर्मा) ने विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर का शस्त्र और कार्त्तिकेय का शक्ति नामक अस्त्र बनाया और अन्य देवों के शस्त्रों का निर्माण किया। विश्वकर्मा ने इन सबको सूर्य की तेजोपम किरणों से बनाया।

"छाया का पुत्र, जो मनु कहलाता था, बड़े भाई मनु वैवस्वत के वर्ण का था। इस कारण उसका दूसरा नाम सावर्णी पड़ा। वह आठवें मन्वंतर का मनु है। अब मैं उसका विवरण निम्न बातों के साथ देता हूं। जिस काल में सावर्णी मनु बनेंगे, उनके देवगण होंगे सुतप, अभिताभ और मुख्यगण तथा प्रत्येक के 21 देवगण होंगे तथा सप्तऋषि इस प्रकार होंगे–दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप और द्रोणि। मेरा पुत्र व्यास छठा और ऋष्यश्रृंग सातवां ऋषि होगा। विष्णु भगवान की कृपा से पाताल के राजा विरोचन का पुत्र बलि इस युग का इन्द्र होगा। सावर्णी की संतानें होंगी–विरजा, ऊर्वरीवान्, निर्मोह आदि।"

"नौवें मनु दक्ष सावर्णी होंगे। उस समय के तीन प्रकार के देव होंगे–पार, मरीचिगर्भ, और सुधर्मा। प्रत्येक वर्ग में बारह देव होंगे और उनका प्रमुख इंद्र होगा। तब इन्द्र का नाम अद्भुत होगा। सवन, द्युतिमत्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योमिष्मान और सत्य, ये सप्तऋषि होंगे। धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, पंचहस्त, निरामय, पृथुसर्व आदि मनु के पुत्र होंगे।"

"दसवें मन्वंतर में मनु ब्रह्मा सावर्णी होंगे; उनके देवगण होंगे सुधामा, विरुद, शतसंख्यक। उनका इंद्र बलशाली शांति होगा; सप्तऋषि होंगे–हविष्मान्, सुकृत; सत्य, अपांमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु। मनु के दस पुत्र होंगे–सुक्षेत्र, उत्तमौजा, हरिषेण आदि।"

"ग्यारहवें मन्वंतर के मनु धर्मसावर्णी होंगे। उसके समय देव होंगे विहंगम, कामगम और निर्माणरति और प्रत्येक की संख्या तीस-तीस होगी। इस मन्वंतर का इंद्र वृष होगा। सप्तर्षि होंगे–निश्चर, अग्नितेज, वपुष्मान्, विष्णु आरुणि, हविष्मान् और अनघ। पृथ्वीपालक मनु के पुत्र होंगे सावर्ग, सर्वधर्मा, देवानीक और अन्य"

"बारहवें मन्वंतर में रुद्र पुत्र सावर्णी मनु होगा; उस काल का इंद्र होगा ऋतुधामा, देवों के नाम होंगे हरित, लोहित, सुमना और सुकर्मा। प्रत्येक की संख्या पंद्रह होगी। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे–तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोधृति, तपोरति, तपोद्युति और तपोधन और मनु के मेधावी और बलशाली पुत्र होंगे–देव, उपदेव तथा देवश्रेष्ठ आदि।"

"तेरहवें मन्वंतर का मनु रौच्य (रुचि) होगा। देववर्ग होगा–सुधमन्, सधर्मन्, और सुकर्मन्, उनका इंद्र दिवस्पति होगा। सप्तर्षि होंगे निर्मोह, तत्त्वदर्शन, निष्प्रकंप, निरुत्सुक धृतिमान्, अव्यय और सुतपा तथा त्रित्रसेन, विचित्र तथा अन्य नृप होंगे।"

"चौदहवें मन्तंवर का मनु भौत्य (भौम) होगा। शुचि उसका इंद्र होगा। देवताओं के पांच वर्ग होंगे—चाक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिर, और वाचावृद्ध। सप्तर्षि इस प्रकार होंगे—अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, गृध्र, युक्त और अजित। मनु के पुत्रों के नाम होंगे उरु, गंभीर बुद्धि, आदि राजा और इस धरा के शासक होंगे।"

इस प्रकार की है मन्वंतरों की कहानी। आजकल हम सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद की बातें सुनते हैं। ब्राह्मणों का सिद्धांत इसके ठीक विपरीत है। उनका सिद्धांत है सर्वहारा पर स्वर्ग में बैठे पिताओं का अधिनायकवाद।

मन्वंतर की योजना शायद इस इरादे से बनाई गई कि उस काल के लिए कोई सत्ता स्थापित की जा सके। प्रत्येक मन्वंतर में एक स्वामी मनु होता है। पूजा के लिए देव होते हैं, सात ऋषि और एक इंद्र होता है। विष्णु पुराण में कहा गया है—[1]

"विभिन्न वर्गों के देवता और मनु के पुत्र अपने संबंधित मन्वंतरों में आहुतियां प्राप्त करते हैं और उनके वंशज उस काल में पृथ्वी के शासक होते हैं। प्रत्येक मन्वंतर के नियंता होते हैं मनु, सप्तऋषि, देवता, मनु के पुत्र और इंद्र।"

परंतु इसकी क्रम-योजना महायुग कहलाती है जो अत्यधिक जटिल मामला है।

कल्प को महायुग में क्यों विभक्त किया जाए और एक महायुग को चार युगों में क्यों बांटा जाए, जिन्हें कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग कहते हैं? यह एक पहेली है। यह पुराणों पर आधारित है और किसी काल के वास्तविक या कल्पित हिंदू इतिहास से इसका कुछ लेना देना नहीं है।

पहले तो यही पता नहीं चलता कि युग के समय को इतना असीम विस्तार क्यों दिया गया। यह सारा कुछ मनगढ़ंत और बनावटी लगता है।

ऋग्वेद में 'युग' शब्द का उपयोग 38 बार हुआ है। यह काल के रूप में इस्तेमाल हुआ है। साथ ही इसका अर्थ पीढ़ी, जुआ (Yoke) और कबीला भी है। कुछ स्थानों पर यह बहुत थोड़े समय के लिए प्रयुक्त हुआ है। बहुत से स्थानों पर ऐसा लगता है कि यह बहुत ही कम अवधि के अर्थ में लिया गया है। कभी-कभी तो 'युगे-युगे' का अर्थ है 'प्रतिदिन'।

दूसरी बात यह है कि चार युगों को सामाजिक नैतिकता के क्रमशः पतन से जोड़ा गया है। महाभारत के निम्नांकित अंश से यह अवधारणा स्पष्ट होती है—[2]

कृत ऐसा काल है जिसका सदाचार शाश्वत है। इस सर्वश्रेष्ठ युग में प्रत्येक कर्म संपन्न (कृत) हो जाता है और कुछ करने को शेष नहीं रह जाता। तब कर्तव्य उपेक्षित नहीं होते थे। न ही लोग उत्साहहीन होते थे। यद्यपि कालांतर में (समय के प्रभाव से) यह युग क्षुद्रता की ओर अग्रसर हुआ। उस समय न

---

1. विल्सन, विष्णु पुराण, पृ. 269-70

2. मूइर कृत ओरिजिनल संस्कृत टैक्स्ट, खंड 1, पृ. 144-46

वहां देवता थे, न दानव, न गंधर्व, यक्ष, राक्षस, न ही पन्नगगण। और न ही तब क्रय-विक्रय होता था। वेद, साम, ऋक् और यजुस् में विभक्त नहीं थे, व्यक्ति प्रयास नहीं करते थे। सोचने से ही फल मिल जाते थे। धर्मपरायणता और सांसारिक त्याग विद्यमान था। आयु के प्रभाव से न कोई रोग व्याप्त होता था, न ही अंगों में क्षीणता आती थी। उस समय न दुर्भाव था, न विलाप, न दर्प, न प्रपंच और न ही कोई विवाद। वहां कोई अवसाद तो हो ही नहीं सकता था। तब न घृणा थी, न अत्याचार, भय, संताप, ईर्ष्या अथवा वैरभाव था। इस प्रकार परम ब्रह्म उन योगियों को ज्ञानातीत थे। तब सभी नारायण थे, सबकी आत्मा धवल थी। ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो या शूद्र, सभी में कृत युग के गुण थे। उस समय ऐसे जीवों का जन्म हुआ जो अपने कर्म के प्रति निष्ठावान् थे। उनके उद्देश्य, विश्वास, कर्म और ज्ञान एक समान थे। उस काल में जातियां अपने कर्म के अनुसार कर्तव्य पालन करती थीं। सबको एक देवता पर अटल विश्वास था और वे एक मंत्र, एक नियम और एक अनुष्ठान से आबद्ध थे। उनके कार्य तो अलग-अलग थे। वेद एक ही था। एक ही कर्म होता था। अपने-अपने लिए निर्धारित चारों (वर्ण) कार्य में रत रहते थे, समय के पालक थे परंतु निष्काम होकर परमात्मा का ध्यान लगाते थे। कृत युग में चारों वर्णों की यह अटल धर्मपरायणता उस युग का लक्षण था और वे परमात्मा में विलीन होते थे। कृत युग तीन गुणों से मुक्त था। अब त्रेता को समझें। इसमें यज्ञ होते थे। धर्मपरायणता का चतुर्थांश क्षीण हो गया। विष्णु का रंग लाल हो गया और लोग सत्य का पालन करते थे और अनुष्ठानों पर निर्भर धर्माचरण करते थे। तब यज्ञ होते थे। पवित्र कर्म और विभिन्न अनुष्ठानों से। त्रेता में सामान्यजन सोद्देश्य कार्य करते थे। वे अनुष्ठानों और युद्धों से फल-प्राप्ति चाहते थे। तप-साधना से और कर्तव्य-बोध से उनका मन फिर गया था। लेकिन इस युग में उनकी अपने कार्यों और धर्म-कर्म में निष्ठा थी। द्वापर में धर्मपरायणता आधी रह गयी थी। विष्णु पीतवर्ण हो गए और वेदों के चार अंग हो गए। कुछ चारों वेद को पढ़ते थे, कुछ तीन ही, कुछ दो, कुछ एक ही और कुछ तो एक भी नहीं। शास्त्र ऐसे बंट गए, अनुष्ठानों में विविधता आ गई। लोग तप-साधना करने लगे, उपहार पाने लगे और राजसिक हो गए। अज्ञान के कारण एक ही वेद की संख्या बढ़ गई और सतोगुण की क्षीणता के कारण सत्य पर गिने-चुने लोग ही अटल रहने लगे। नर-नारियों के सद्गुण नष्ट हो गए, अनेक रोग, राग और विपत्तियां, उन्हें समय के साथ सताने लगीं, जिनसे वे अत्यधिक त्रस्त हो गए और साधना-मार्ग पर बढ़े। अन्य लोग स्वर्गीय आनंद की कामना और यज्ञों का आयोजन करने लगे। इस प्रकार जब द्वापर आया तो लोगों का धर्माचरण और गिरा। कलियुग में तो वह चौथाई ही रह गया। इस अंधकार युग में विष्णु

का रंग काला हो गया। वेद, व्यवहार, धर्मपरायणता, अनुष्ठान, आयोजन लुप्त होने लगे। विपदाएं, रोग, क्लांति, दोष जैसे क्रोधादि, निराशा, चिंता, भूख, भय, विद्यमान थे। जैसे-जैसे युग बीता धर्मपरायणता क्षीण होती गई। जब ऐसा हुआ तो मानव की भी अवनति हुई। जब वे क्षीण हो जाते हैं तो उन्हें सक्रिय करने वाले संवेगों का भी क्षय हो जाता है। युग के ह्रास के कारण जो प्रवृत्तियां विकसित होती हैं, उनसे मानव के उद्देश्य विफल हो जाते हैं। ऐसा कलियुग है जो थोड़े समय रहा। जो चिरायु हैं, वे युग के अनुरूप ही चलते हैं"।

बेशक, यह बहुत विचित्र है। इन युग वाचक शब्दों का प्राचीन वैदिक साहित्य में भी उल्लेख है। कृत, त्रेता, द्वापर और आस्कन्द शब्द तैत्तिरीय संहिता और वाजसनेयी संहिता में आते हैं। ये ऐतरेय ब्राह्मण तथा शतपथ ब्राह्मण में भी प्रयुक्त हुए हैं। शतपथ ब्राह्मण का कथन है–"कृत वह है जब खेल की गलतियों से लाभ मिलता है, त्रेता वह है जब कोई नियमित योजनानुसार खेलता है, द्वापर वह है जब कोई सामने वाले खिलाड़ी को पछाड़ने की चाल चलता है। आस्कंद का अर्थ है खेलने के कमरे का एक निश्चित स्थल।" ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण में आस्कंद के स्थान पर 'कलि' शब्द का प्रयोग हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कृत का अर्थ है जुआघर का स्वामी, त्रेता का अर्थ है गलतियों से लाभ उठाना, द्वापर अर्थात् बाहर बैठने वाला, कलि का अर्थ है, जो जुआघर को कभी नहीं त्यागता। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है–

> "यहां प्रत्येक सफलता की आशा करता है, अभागे मरते है। कलि सोया पड़ा है, अन्य दो शनैः शनैः चल रहे हैं व आधे गिर चुके हैं परंतु सबसे सौभाग्यशाली कृत में पूरी गति हैं।" यह स्पष्ट है कि ये सभी शब्द जुए के पासों के लिए हैं। मनु ने इनका किस प्रकार प्रयोग किया[1] है? उसे भी देखा जाए। वे कहते हैं–
>
> "कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग वे राजा के कार्यों के रूप हैं क्योंकि राजा युग कहलाता है। जब वह सोता है तो कलि है, जब गतिमान है तो द्वापर है, जब कार्योद्यत होता है तो त्रेता है, जब बढ़ता हुआ है तो कृत है।"

जब मनु की तुलना हम उनके पूर्ववर्तियों से करते हैं तो हमें स्वीकार करना पड़ता है कि इन शब्दों के भावार्थ में स्पष्ट अंतर आ गया। जो जुए की शब्दावली थी वह राजनीतिक बन गई, जिसमें राजा की कर्तव्य परायणता और ऐसे राजाओं की तुलना की गई, जो क्रियाशील हैं, जो काम करना चाहते हैं, जो सचेत हैं और जो सोते रहते हैं–उनके लिए राज्य जाए भाड़ में।

सवाल यह है कि किन परिस्थितियों में ब्राह्मण कलियुग का सिद्धांत प्रतिपादित करने को विवश हुए? ब्राह्मणों ने कलियुग को पतित समाज का पर्याय क्यों बना डाला? मनु ने

1. मनु. 9.301-2

एक सोते हुए राजा को कलियुग क्यों कहा? मनु के समय कौन राजा था? उसे सोता हुआ राजा क्यों कहा गया? ऐसी कुछ पहेलियां हैं जो कलियुग के सिद्धांत से उपजती हैं।

कलियुग संबंधी अन्य पहेलियां भी हैं। पहली यह है कि कलियुग की शुरुआत कब हुई?

कलियुग की शुरुआत कब हुई, इसके संबंध में कई सिद्धांत हैं। पुराणों ने दो तिथियां दी हैं। कुछ के अनुसार यह ईसा पूर्व चौदहवीं शताब्दी में शुरू हुआ। कुछ का कहना है कि यह ई.पू. 18 फरवरी, 3102 से आरंभ होता है, जब कौरव-पांडवों के बीच युद्ध की शुरुआत बताई जाती है। प्रो. इयंगर ने कहा है कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सातवीं शताब्दी ईसवी के पूर्व कलि का युग के तौर पर कोई उल्लेख हुआ हो। सबसे पहले इसका प्रयोग पुलकेशिन् द्वितीय के काल के एक लेख में हुआ है, जिसने 610 से 642 ईसवीं तक बादमी पर शासन किया। इसमें दो तिथियां हैं, शक संवत् 556 और कलि संवत् 3735। इन तिथियों से कलियुग का आरंभ 3102 ईसवीं पूर्व बैठता है। यह गलत है क्योंकि ई.पू. 3102 न तो महाभारत-युद्ध की तिथि है और न ही कलि के आरंभ की। काणे महोदय ने यह अंतिम रूप से प्रमाणित कर दिया है। विभिन्न वंशों के उन राजाओं के विषय में, जिन्होंने पांडव-पुत्र परीक्षित् के काल में शासन किया, सबसे पक्का कथन यह है कि महाभारत की तिथि ई.पू. 1263 थी। यह ई.पू. 3102 नहीं हो सकती। काणे महोदय ने यह भी दर्शाया है कि ई.पू. 3102 कल्प के आरंभ की तिथि है, कलि के आरंभ की नहीं। लगता है गलती से 'कल्पादि' को 'कल्यादि' पढ़ लिया गया। इस प्रकार कोई निश्चित तिथि नहीं है, जिसे ब्राह्मण कलि का आरंभ कह सकें। एक निश्चित तिथि होनी चाहिए थी जिससे इतनी बड़ी घटना की शुरुआत बताई जाती। यह एक पहेली है।

परंतु और भी पहेलियां हैं, जो इस प्रकार हैं–

दो ढकोसले कलियुग के संबंध में हैं। ब्राह्मणों ने इस बात पर अत्यधिक बल दिया है कि कलियुग में दो ही वर्ण हैं, ब्राह्मण और शूद्र। उनका कहना है कि क्षत्रिय और वैश्य का अस्तित्व नहीं है। इस मान्यता का आधार क्या है? इसका अर्थ क्या है? क्या वे दो वर्ण ब्राह्मणों में विलीन हो गए या उनका अस्तित्व खत्म हो गया है?

भारतीय इतिहास का वह कौन-सा काल है जब यह मान्यता आरंभ हुई?

क्या इसका अर्थ है कि इन दोनों वर्णों का ब्राह्मण वर्ण में विलीन होना कलियुग का आरंभ है?

कलियुग के संबंध में दूसरी मान्यता है कलिवर्ज्य; जिसका अर्थ है, कलियुग में किन कार्यों का निषेध है। विभिन्न पुराणों में यहां-वहां उनका उल्लेख है। परंतु आदित्य पुराणों में उनको संहिताबद्ध किया गया है और संग्रहीत कर दिया गया है। कलिवर्ज्य के अंतर्गत जो व्यवहार में आता है, वह निम्नांकित है–[1]

---

1. कलिवर्ज्य, पी.वी. काणे, पृ. 8-16

"1. विधवा से पुत्र उत्पन्न करने हेतु जेठ की नियुक्ति।"[1]

"2. किसी (विवाहित) स्त्री के पति की मृत्यु के बाद उसका पुनर्विवाह[2] (जिसके साथ सहवास न हुआ हो।) और (जिसके साथ सहवास हो चुका हो)।"

"3. तीनों[3] द्विज वर्णों के बीच अन्य वर्ण की कन्या से विवाह[4]।"

"4. आततायी[5] ब्राह्मण का सीधे युद्ध में वध[6]।"

"5. किसी ऐसे द्विज से व्यवहार (उसके साथ खान-पान जैसा व्यवहार) जो समुद्र यात्रा पर जाता है, चाहे उसने प्रायश्चित भी क्यों न कर लिया हो[7]।"

"6. सत्र (=सहपाठी) का उपनयन करना।"

"7. कमंडलु लेकर चलना[8]।"

---

1. *यह नियोग के संदर्भ है जिसे गौतम की मान्यता प्राप्त है 18-9-14, नारद स्त्रीपुंस श्लोक, 58 याज्ञवल्क्य की मान्यता है 1, 64-68 यद्यपि मनु ने इसकी निंदा की है 9, 64-68, बृहस्पति को भी अस्वीकार्य है।*
2. *यह विधवाओं के पुनर्विवाह के संदर्भ में है। नारद (स्त्रीपुंस श्लोक, 98-100) के अनुसार विधवा ब्राह्मण स्त्रियों तक को कुछ स्थितिओं में पुनर्विवाह की मान्यता है। पराशर का भी यही मत है जबकि वसिष्ठ (17.74) और बौधायन धर्म-सूत्र (4, 1.12) के अनुसार प्रथम विवाह विच्छेद बिना पुनर्विवाह कर सकती है। इस परिच्छेद को बालिका क्षतयोनिका के नाम से भी जाना जाता है। इसका अर्थ है एक विवाहित बालिका जिसका विवाह विच्छेद नहीं हुआ है जबकि दूसरे स्थान पर कहा गया है दो प्रकार की विधवाएं (जिसका विवाह विच्छेद हो गया और जिसका न हुआ हो)*
3. *कलिवर्ज्य, पी.वी. काणे, पृष्ठ 8-16*
4. *सबसे पुरानी स्मृति में अनुलोम विवाह की अनुमति है। जैसे—बौधायन धर्म-सूत्र 1.8.-2-5, वशिष्ठ 1.24-27, मनु 3, 14-19, याज्ञवल्क्य 1.56-57*
5. *कलिवर्ज्य, पी.वी. काणे, पृ. 8-16*
6. *धर्म ग्रंथकारों ने इस विषय पर बहुत लिखा है; मनु 8, 350-51, विष्णु 5, 180-80, वसिष्ठ 3. 15-18 में एक आततायी ब्राह्मण और गाय इसके अपवाद हैं।" इन्होंने आततायी ब्राह्मण के वध पर प्रतिबंध लगाया है। देखें, याज्ञ० पर मिताक्षरा 2.21 इस विषय पर विचार।*
7. *बौधायन धर्म-सूत्र 1.1.20 में समुद्रयात्रा की निंदा की गई है जो उत्तरापथ के ब्राह्मणों की विशिष्टता थी। इन्हें पतितों में सबसे पहला स्थान दिया गया है (11.1.41)। कुछ विद्वान कहते हैं कि यह प्रतिबंध बार-बार समुद्र यात्रा के विषय में है। "समुद्रगा" पतित बताए गए हैं (जीवानंद पृ. 525)*
8. *बौधायन धर्म-सूत्र 1.3.4 में स्नातकों के लिए व्यवस्था है कि वे मिट्टी अथवा काठ के पात्र में पानी ले जाएं। वसिष्ठ 12.14 और मनु 4.36 और याज्ञ 1.132 भी यही कहते हैं। जबकि मदन पारिजात पृ. 15-16 में कहा गया है कि कमंडलु धारण का अर्थ है चिर ब्रह्मचर्य परंतु यह सत्य नहीं है क्योंकि नारदीय पुराण में उपर्युक्त का उल्लेख है कि दोनों भिन्न हैं और प्रतिबंधित हैं।*

"8. महायात्रा[1] पर जाना।"

"9. गोमेध[2] में गाय की बलि देना।"

"10. सौत्रामणी यज्ञ तक में मद्यपान[3]।"

"11-12. अग्निहोत्र के पश्चात पुनः प्रयोग हेतु उसमें प्रयुक्त कलछी को चाटना[4]।"

"13. शास्त्रानुसार वानप्रस्थ का जीवनयापन[5]।"

"14. (जन्म और मृत्यु होने पर) व्यवहार और वैदिक ज्ञान के आधार पर अशुचिता की अवधि घटाना[6]।"

"15. प्रायश्चित स्वरूप ब्राह्मण की मौत का विधान[7]।"

---

1. *इसका संदर्भ है वानप्रस्थों के लिए पूर्वोत्तर की ओर प्रस्थान मनु छठा,-31 और याज्ञ, 3.55 और वृद्ध व्यक्तियों द्वारा महायात्रा (आत्महत्या) की प्रथा अर्थात् तब तक चलते रहना जब तक बेदम होकर गिर न जाए। प्रयाग जैसे पवित्र स्थल पर गंगा में जलसमाधि लेना अथवा अग्नि में प्रवेश कर जाना अपरार्क पृ. 536 जहां स्मृति में यह अनुमति दी गई है। उल्लेखनीय है कि मृच्छकटिकम् के रचयिता शूद्रक ने रघुवंश 8,94 के अनुसार अग्नि में प्रवेश किया था। अत्रि श्लोक 218-19 का मेधातिथि ने उल्लेख किया है कि मनु 5.88 के अनुसार राजा प्रयाग में जलसमाधि लेते थे।*
2. *देखें सांख्यायन सूत्र 14.15.1, कात्यायन स्रोत 22, 11.3-4 और मनु 11.74*
3. *यह इंद्र के लिए दी जाने वाली आहुति से मुख्यतः संबंधित है जब आश्विन, सरस्वती और इंद्र को तीन कटोरे मदिरा भेंट करने के लिए एक ब्राह्मण को धन देकर नियुक्त किया जाता था कि वह कव्य प्राप्त करे। देखें तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.8.62, सांख्यायन स्रोत 15.15-1-14 और पूर्वमीमांसा सूत्र 3.5.14-5*
4. *देखें तैत्तिरीय ब्राह्मण 2.1.4. और सत्यसाधस्त्रोत*
5. *आप. धर्म-सूत्र 11.9.21, 18.11.9, 23.2, मनु 1-32 वसिष्ठ 9.1-11 में इस संबंध में विस्तृत नियम दिए गए हैं।*
6. *उपरोक्त में उद्धृत पराशर जिसमें कहा गया है कि जो ब्राह्मण वैदिक ज्ञान और अग्निहोत्र में प्रवीण है केवल एक दिन की अशुचिता (किसी निकट संबंधी की मृत्यु पर) माने जिसका केवल अध्ययन है। वह तीन दिन की अशुचिता माने बृहस्पति ने हरदत्त के अनुसार 14.1 में कहा है कि कलियुग में सभी के लिए समान रूप से 10 दिन की अशुचि का विधान है। याज्ञ पर विश्वरूप का विस्तृत शास्त्रार्थ में कहना है (3.30) कि दस दिन बाद अशुचिता से मुक्ति मिल जाती है। कहा गया है कि केवल अथर्ववेद का अर्थ है कि स्वार्थ के अभाव और सदगुणों की प्रशंसा की गई है। यह समझना युक्तिसंगत नहीं है कि विश्वरूप कोई महत्त्व दिया गया है या उसके कलिवर्ज्य पर ये श्लोक प्रसिद्ध हैं यह पराशर के समक्ष उनकी व्याख्या में विफल न होता।*
7. *मनु (2.89 और 146) ने कहा है कि जान-बूझकर की गई ब्रह्महत्या और मदिरापान का प्रायश्चित मृत्यु है। गौतम 21.7 का भी यही कथन है।*

"16. नैतिक पाप (स्वर्ण) चोरी को छोड़कर और पापियों (महापातकों) के साथ संपर्क होने पर (गुप्त) प्रायश्चित[1]।"

"17. वर, अतिथि और पितरों को मंत्रों के साथ मांस की भेंट[2]।"

"18. औरत[3] तथा दत्तक पुत्र के अतिरिक्त अन्य को पुत्रों के रूप में स्वीकार करना[4]।"

"19. उन व्यक्तियों के साथ प्रायश्चित के उपरांत भी संपर्क जिन्होंने उच्च जाति की महिला के साथ संभोग किया है[5]।"

"20. यदि किसी वृद्ध अथवा संभावित व्यक्ति की पत्नी ने परपुरुष से संभोग किया है और उसके लिए वह प्रताड़ित की गई है तो उसका परित्याग[6]।"

"21. किसी[7] एक व्यक्ति के लिए दूसरे का वध[8]।"

"22. जूठन छोड़ना[9]।"

---

1. *मनु 11.54 उन अपराधियों के सम्यकों की गणना चार महापातकों के साथ पांचवें महापातक के रूप में करता है। गौतम 24 और वशिष्ठ 25 ब्रह्म हत्या के महापातकों तक के लिए गुह्य प्रायश्चित का विधान करता है। इस नियम के अनुसार ब्रह्म हत्या के लिए कलि में गृह्य प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं है, न मदिरा-पान और न निकट संबंधियों के साथ संभोग करने वाले के लिए यह आवश्यक है। देखें अपरार्क पृ. 1212 जिसमें उनका उल्लेख है जो गृह्य प्रायश्चित करें।*
2. *मधुपर्क सम्मानित अतिथियों को दिया जाता है जिसमें वर भी शामिल हैं। देखें गौतम 5.25-35, याज्ञ, 1.109 श्राद्ध में पितरों की संतुष्टि के लिए विभिन्न पशुओं के मांस का उल्लेख है। देखें याज्ञ. 1.258-360 मनु 3,123 आश्वलायन गृह्य-सूत्र के अनुसार (1.24-36) मधुपर्क बिना मांस को न परोसा जाए। देखें वशिष्ठ 6.5-6*
3. *काणे, कलिवर्ज्य पृ. 8-16*
4. *मनु. 9.165-80 याज्ञ 2.128-132 और अन्य 12 प्रकार के पुत्रों का उल्लेख करते हैं।*
5. *गौतम (4.20 और 22-23) निम्न जाति के व्यक्ति द्वारा उच्च जाति की स्त्री के साथ संभोग की निंदा करते हैं और उनके वंशजों को धर्महीन कहते हैं।*
6. *वसिष्ठ ने 21.10 में चार प्रकार की स्त्रियों का उल्लेख किया है जैसे—वह जिसने विद्यार्थी के साथ संभोग किया हो या पति के गुरु से, वह जिसने अपने पति की हत्या कर दी हो और जो निम्न जाति के पुरुष से व्यभिचार करती हो, उन्हें त्याग देना चाहिए।*
7. *काणे, कलिवर्ज्य पृ. 8-12*
8. *स्मृतियों में कहा गया है कि ब्राह्मण और गाय की रक्षा में जान की परवाह न करें, मनु 9. 79 और विष्णु 3,45*
9. *वसिष्ठ 14.20-21 के अनुसार जूठन अथवा उससे छुआ भोजन न खाया जाए। इसका अर्थ है जूठन अन्य को दे देना। कुछ स्मृतियों में उच्छिष्ट, शूद्रों आदि को देने की*

"23. जीवन निर्वाह के लिए (पैसा लेकर) किसी देवता विशेष की मूर्ति की पूजा का संकल्प[1]।"

"24. मृत्यु संबंधी अशुचिता के अधीन फूल चुनने के पश्चात उन व्यक्तियों का स्पर्श[2]।"

"25. ब्राह्मण द्वारा पशु की वास्तविक बलि।"

"26. ब्राह्मण[3] द्वारा सोम पौधे का विक्रय[4]।"

"27. छः समय तक भूखा रहने के उपरांत ब्राह्मण का शूद्र से भोजन ग्रहण करना[5]।"

"28. (ब्राह्मण) गृहस्थ का अपने शूद्र वर्ण के दास के हाथ से बना भोजन ग्रहण करना, गोशाला में और उन व्यक्तियों के हाथ का भोजन करना जो उसकी बटाई पर खेती करते हैं[6]।"

"29.[7] बहुत लंबी दूरी की तीर्थयात्रा पर जाना।"

"30. गुरुपत्नी के साथ वैसा ही व्यवहार जैसा स्मृतियों में गुरु के लिए निर्धारित है[8]।"

"31. ब्राह्मण द्वारा विपरीत परिस्थितियों में जीवनयापन के लिए कल के लिए भोजन की परवाह न करना।"

---

1. *मनु 3.152 धन लेकर पूजा करने वाला ब्राह्मण श्राद्ध अथवा देव कर्म में आमंत्रित न किया जाए। बात है, यहां उस पर प्रतिबंध है, देखें गौतम 10.61 और मनु 10.125*
2. *फूल चुनने का कार्य दाह संस्कार के चौथे दिन किया जाए। विष्णु 19.10-12, वैखानस स्मृतिसूत्र खंड 7., समवर्त श्लोक 38-39*
3. *काणे, कलिवर्ज्य पृ. 13*
4. *कात्यायन सूत्र (7.6:2-4 के अनुसार सोम कौत्य गोत्रीय, ब्राह्मण अथवा शूद्र से खरीदा जाए परंतु मनु 10.88 में अन्य बातों के अतिरिक्त सोम विक्रय का निषेध करते हैं, चाहे वह कृषि कार्य भी करता हो या वैश्य वृत्ति करता हो और मनु 3.158 और 170 के अनुसार सोम विक्रेता ब्राह्मण को श्राद्ध में बुलाने का कुपात्र समझते हैं।*
5. *मनु 9.16 में अनुमति देते हैं कि कोई ब्राह्मण तीन दिन से भूखा हो तो वह निम्न कर्मवालों से भी एक दिन भोजन ले सकता है। याज्ञ. 3.43 के अनुसार यदि 'हीनकर्म' पढ़े तो इसका अर्थ (भिक्षावृत्ति और चोरी जैसा कि नारद अभ्युपेत्य सुश्रुषा 5-7 में वर्णित है) है।*
6. *यदि कोई शूद्र ब्राह्मण का दास है, नाई है, ग्वाला है, बटाई पर खेती करता है या वंशानुगत भिन्न है तो मनु स्मृति के अनुसार ब्राह्मण उसके यहां का पका भोजन भी ले सकता है, देखें गौतम 17.6, मनु 4.253, याज्ञ, 1.166 (इसका पूर्वार्द्ध भी वैसा ही है), अंगिरस 120, पराशर 11*
7. *काणेए कलिवर्ज्य, पृ. 14*
8. *मनु ने 2.210 में व्यवस्था दी है कि गुरु पत्नियां यदि उसी वर्ण की हों जिसका गुरु है तो उनका सम्मान गुरु के समान किया जाए। यदि वे उसी वर्ण की नहीं तो उनकी अगवानी के लिए उठकर प्रणाम किया जाए।*

"32. जातकर्म[1] होम के समय ब्राह्मण द्वारा अरणि स्वीकार करना जिसके अनुसार शिशु के जातकर्म से उसके पाणिग्रहण तक के संस्कार कराने का कार्यक्रम हो[2]।"

"33. ब्राह्मण द्वारा सतत् यात्रा।"

"34. बांस की फूंकनी[3] के बिना आग में फूंक मारना।"

"35. शास्त्रों में वर्णित प्रायश्चित के पश्चात भी किसी ऐसी स्त्री को जाति में सम्मिलित होने की स्वीकृति देना, जो बलात्कार से कलंकित हो चुकी हो[4]।"

"36. संन्यासी[5] द्वारा सभी वर्णों (शूद्रों सहित) से भोजन की भिक्षा ग्रहण करना[6]।"

"37. जमीन से निकाले जाने वाले जल का पान करने हेतु दस दिन तक प्रतीक्षा।"

"38. अध्यापक को दीक्षांत पर (मांगने पर) शास्त्रानुसार दक्षिणा[7]।"

"39. ब्राह्मण[8] और अन्यों के लिए शूद्रों से भोजन बनवाना[9]।"

"40. वृद्धों द्वारा चट्टान से अथवा आग में कूदकर आत्महत्या[10]।"

---

1. *गौतम 7.1-7 आप ध. सू. 1, 7, 20.11-17, 21.4, याज्ञ 3.35,44 और अन्य के अनुसार संकटकाल में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की वृत्ति कर सकता है। मनु 4.7 के अनुसार ब्राह्मण का आदर्श है कि वह तीन दिन से अधिक का अथवा एक ही दिन आवश्यकता से अधिक अनाज संग्रह न करे। यहां ये कठोर सीमाएं प्रतिबंधित हैं।*
2. *काणे, कलिवर्ज्य पृ. 14*
3. *संस्कार कौस्तुभ के गृहपरिशिष्टि में ऐसा उद्धरण है।*
4. *मनुस्मृति 4,53 में भी यह प्रतिबंध है। वैदिक साहित्य के अनुसार अग्नि को मुंह से फूंक मारकर प्रज्वलित करने की अनुमति है। देखें आप. ध.सू. 1.5.15.20 पर हरदत्त।*
5. *इतने बाद में भी एक स्मृति देवला (मंत्र 47) में यदि किसी स्त्री के साथ म्लेच्छ ने भी बलात्कार किया है तो 3 दिन के प्रायश्चित के बाद वह शुद्ध हो जाती है। आदित्य पुराण बेकसूर और अभागी स्त्रियों के प्रति अत्यंत कठोर है।*
6. *काणे, कलिवर्ज्य पृ. 15*
7. *बौधायन धर्म-सूत्र 2.10 में संन्यासी को सभी वर्णों से भिक्षा में भोजन मांगने की छूट है परंतु मनु (4.43) और याज्ञ 3.59 में विधान है कि वह शाम को ही भिक्षा मांगे। वसिष्ठ (10.7) के अनुसार भी बिना पूर्व निर्णय के 7 घरों से भिक्षा मांगे किंतु बाद में वसिष्ठ ने कहा है (10.24) कि उसे ब्राह्मणों के यहां से प्राप्त भिक्षा से ही संतुष्ट हो जाना चाहिए।*
8. *याज्ञ 1.51 के अनुसार ब्रह्मचारी वेदाध्ययन और व्रत के पश्चात गुरु को उसकी मनोवांछित गुरुदक्षिणा दे और पर्वस्नान करे।*
9. *काणे, कलिवर्ज्य पृ. 15*
10. *आप. ध.सूत्र 2.2.3.4 में शूद्रों को अनुमति है कि वे आर्यों की देखरेख में तीन उच्च वर्णों के लिए भोजन बनाएं।*

"41. जूठे पानी का सम्मानित व्यक्तियों द्वारा आचमन, चाहे वह गाय का ही जूठा क्यों न हो[1]।"

"42. पिता और पुत्र के बीच विवाद[2]।"

"43. संन्यासी जहां रात हो जाए वहीं शयन करें[3]।"

इस कलिवर्ज्य संहिता की सबसे विचित्र बात यह है कि इसके महत्त्व को पूरी तरह समझा नहीं गया। इसका उल्लेख केवल इसी रूप में किया जाता है कि यह उन व्यवहारों की एक सूची है, जिन पर कलियुग में प्रतिबंध है। परंतु इन निषेधों की सूची से भी आगे कुछ और है। निश्चय ही कलिवर्ज्य संहिता में वर्णित सूची के व्यवहार प्रतिबंधित हैं। बहरहाल प्रश्न है कि क्या ये व्यवहार अनैतिक हैं, पाप हैं या किसी दृष्टि से समाज के लिए हानिकर हैं? इसका जवाब है नहीं। हम यह जानना चाहेंगे कि अगर यह प्रतिबंध लगाए गए हैं तो क्या वे निंदित कार्य हैं? कलिवर्ज्य संहिता की यही सबसे गूढ़ पहेली है। किसी व्यवहार को निंदित घोषित किए बिना प्रतिबंधित करना पूर्व युगीन परंपराओं के एकदम विपरीत है। एक उदाहरण लें। आपस्तंब धर्म-सूत्र ने ज्येष्ठतम पुत्र को ही सारी संपत्ति देने पर प्रतिबंध लगाया। लेकिन उसने इसकी निंदा भी की। ब्राह्मणों ने यह क्या तरीका खोज निकाला कि किसी बात पर प्रतिबंध तो लगा दें परंतु उसकी निंदा न करें? इस बदलाव के पीछे कोई विशेष कारण होना चाहिए। वह कौन-सा कारण है?

---

1. *वशिष्ठ 3.35 के अनुसार गड्ढे में भरा पानी यदि ऐसा है जो गाय की प्यास बुझा सके तो उसका आचमन किया जा सकता है। देखें मनु 5.128 और याज्ञ. 1.192.*
2. *याज्ञ. 2.239 में विधान है कि पिता-पुत्र विवाद के साक्षी को तीन पण का अर्थदण्ड दिया जाए।*
3. *इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि संन्यासी शाम को बस्ती में रहे।*

परिशिष्ट : 1

राम और कृष्ण की पहेली

वाल्मीकि की लिखी रामायण के नायक हैं राम। रामायण की कहानी बहुत संक्षिप्त है। साथ ही, यह सरल भी है और इसमें कुछ भी सनसनीखेज नहीं है।

राम दशरथ के पुत्र हैं, जो अयोध्या—आधुनिक बनारस के शासक थे। दशरथ की तीन पत्नियां थीं—कौसल्या, कैकेयी तथा सुमित्रा। उनकी कई सौ रखैलें थीं। कैकेयी का दशरथ से विवाह कुछ शर्तों पर हुआ था, जो विवाह के समय निश्चित नहीं की गई थीं और दशरथ वचनबद्ध थे कि कैकेयी जब कोई शर्त उनके सम्मुख रखेगी, वह उन्हें माननी होगी। दशरथ को लंबे समय तक कोई संतान प्राप्त नहीं हुई। वह राज्य के उत्तराधिकारी के लिए अधीर थे। यह देखकर कि उसकी तीनों रानियों में से किसी से भी पुत्र उत्पन्न होने की आशा नहीं है, उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ करने का निश्चय किया और ऋषि-शृंग को यज्ञ के लिए बुलाया। ऋषि ने यज्ञ संपन्न करके एक पिंड (गोला, लड्डू) तैयार किया और दशरथ की तीनों पत्नियों को खाने के लिए दिया। पिंड खाकर तीनों रानियां गर्भवती हो गईं और उन्होंने पुत्रों को जन्म दिया—कौसल्या से राम, कैकेयी से भरत और सुमित्रा से दो पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। बाद में राम का सीता से विवाह हो गया। जब राम वयस्क हो गए तो दशरथ ने राम को राजपाट सौंपकर परिजनों को त्यागने का निश्चय किया। जब यह बात चल रही थी तो कैकेयी ने कहा कि अब वह उस वचन की पूर्ति चाहती है, जो विवाह के समय दशरथ ने दिया था। उससे पूछे जाने पर कैकेयी ने बताया कि राम के स्थान पर उसके पुत्र को राज्य दिया जाए और राम को 12 वर्ष का वनवास। दशरथ बहुत ना-नुकुर करने के बाद मान गए। भरत अयोध्या के राजा हो गए और राम अपनी पत्नी सीता और सौतेले भाई लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान कर गए। जब वे वनों में रह रहे थे तो लंकाधिपति रावण ने सीता का हरण कर लिया और उन्हें अपनी पत्नी बनाने की इच्छा से अपने महल में ले गया। तब राम ने लक्ष्मण को सीता की खोज आरंभ करने को कहा। इस बीच उन्हें वानर जाति के दो प्रमुख सुग्रीव और हनुमान मिले। उन्होंने उनसे मैत्री कर ली। उनकी सहायता से सीता का पता मिल गया। उन्होंने लंका को कूच किया। युद्ध में रावण को हराया और सीता को मुक्त करा लिया। राम सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या वापस आ गए। उस समय तक बारह वर्ष की अवधि बीत चुकी थी और कैकेयी की शर्त पूरी हो चुकी थी। परिणामस्वरूप भरत ने राज्य त्याग दिया और राम अयोध्या के राजा बन गए।

वाल्मीकि के अनुसार रामायण की कथा का सार यही है।

इस कहानी में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे राम को पूजनीय बनाया जा सके। वह मात्र एक आज्ञापालक और कर्तव्यपालक व्यक्ति है। परंतु वाल्मीकि को राम में कुछ विलक्षण लगा, तभी उन्होंने रामायण की रचना की। वाल्मीकि ने नारद से यह सवाल किया[1] :

> "हे नारद! मुझे बताओ कि इस समय सबसे अधिक आज्ञाकारी व्यक्ति पृथ्वी पर कौन है?"

फिर वह विस्तार से बताते हैं कि सबसे अधिक आज्ञाकारी व्यक्ति से उनका आशय क्या है। वह बताते हैं–

> "बलशाली, जो धर्मज्ञ हो, जो कृतज्ञता, सत्य को जानता हो, धर्मपालन के लिए जो विपदा में भी स्वार्थ त्यागने को तत्पर हो, व्यवहार में सद्गुणी हो, सभी के हितों की रक्षा करता हो, आत्मसंयमी और सुदर्शन हो, क्रोध का दमन कर सके, अनुकरणीय हो, अन्य की संपन्नता से ईर्ष्या न करे और युद्ध में देवताओं को भी दहला दे।"

नारद ने सोचने के लिए समय मांगा और काफी सोच-विचार के बाद उन्होंने कहा, जिस व्यक्ति में ये सभी गुण हैं, वह केवल दशरथ-पुत्र राम हैं।

गुणों के कारण ही राम को यह पद प्राप्त है।

परंतु क्या राम देवत्व के योग्य हैं? जो उन्हें देववत् पूजनीय मानते हैं, उन्हें इन तथ्यों पर विचार करना चाहिए–

राम का जन्म ही अप्रत्याशित था और यह सोचा जा सकता है कि सच छिपाने का यह एक प्रतीक बना दिया गया कि उनका जन्म (पिंड) खाने से हुआ था, जो ऋषि शृंग[2] ने तैयार किया था; जबकि सच यह है कि उनका जन्म कौसल्या से ऋषि शृंग के द्वारा हुआ था, हालांकि दोनों पति-पत्नी नहीं थे। जो भी हो, उनका जन्म यदि बदनामी की बात नहीं है तो भी अप्राकृतिक तो है ही।

राम-जन्म से संबंधित अन्य अरुचिकर घटनाएं भी हैं, जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता।

वाल्मीकि रामायण का आरंभ इसी बात से करते हैं कि राम विष्णु के अवतार थे, जो दशरथ के पुत्र के रूप में उत्पन्न होने को तैयार हो गए थे। ब्रह्मा को इस बात का पता चला और वह सोचने लगे कि इस अवतार को पूर्ण सफलता मिले इसलिए उनके बलशाली सहयोगी बनाए जाएं, जो उनकी सहायता और उनसे सहयोग कर सकें। उस समय ऐसा कोई भी नहीं था।

देवता ब्रह्मा का आदेश मानने के लिए तैयार हो गए और वे न केवल अप्सराओं

---

1. *बालकांड सर्ग 1, श्लोक 1-5*
2. *बालकांड सर्ग 1, श्लोक 1-5*

जोकि वेश्याएं थीं बल्कि यक्षों, नागों की कुमारी कन्याओं तथा ऋक्षों, विद्याधरों, गंधर्वों, किन्नरों और वानरों की वैध पत्नियों से भी व्यभिचार में लिप्त हो गए और उन्होंने राम की सहायता करने वाले वानर उत्पन्न किए।

यदि उनका नहीं तो उनके सहयोगियों का जन्म तो कुकर्म से ही हुआ। सीता से उनका विवाह भी निर्विवाद नहीं है। सीता तो बौद्ध रामायण (दशरथ जातक–अनु.) के अनुसार राम की बहन थी। दोनों दशरथ की संतान थे। वाल्मीकि रामायण की सहमति बौद्ध रामायण में दर्शाए गए संबंधों से नहीं है। वाल्मीकि के अनुसार सीता विदेहराज जनक की पुत्री थी, राम की बहन नहीं। यह समझ के बाहर है क्योंकि स्वयं वाल्मीकि के अनुसार वह जनक की सामान्य प्रसूत पुत्री नहीं थी बल्कि अपने खेत में हल चलाते किसान को प्राप्त हुई थी, जो उसने जनक को दे दी थी। इसलिए यह ठोस कथन नहीं है कि सीता जनक की पुत्री थी। बौद्ध रामायण की कथा स्वाभाविक है, जो आर्यों की विवाह-पद्धति[1] से मेल खाती है। यह अगर सही है तो राम और सीता का विवाह आदर्श नहीं था जिसका अनुकरण किया जाए। राम का एक सद्गुण यह भी बताया जाता है कि वे एक पत्नीव्रती थे। यह समझ में नहीं आता कि यह आम धारणा कैसे बन गई। यह तथ्य पर आधारित नहीं है। यहां तक कि वाल्मीकि ने भी उल्लेख किया[2] है कि राम की अनेक पत्नियां थीं।[3] इसके साथ ही उनकी अनेक उप-पत्नियां भी थीं। इस प्रकार वह अपने नामनिहाद पिता के सच्चे पुत्र थे, जिनकी न केवल उपर्युक्त तीन पत्नियां थीं बल्कि उनके अलावा भी अनेक थीं।

अब हम उनके चरित्र की, एक राजा और व्यक्ति के रूप में व्याख्या करें।

उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में हम दो घटनाओं का उल्लेख करेंगे। एक वाली से संबंधित है और दूसरी उनकी पत्नी सीता से। पहले हम वाली को लेते हैं।

वाली और सुग्रीव दो भाई थे। वे वानर जाति के थे और एक राज-परिवार से थे। उनका अपना राज्य था, जिसकी राजधानी किष्किंधा थी। जब वाली राजा था तो उसका मायावी नामक राक्षस से युद्ध छिड़ा हुआ था। द्वंद्वयुद्ध में मायावी अपनी जान बचाकर भागा और एक गहरी खोह में घुस गया। वाली ने सुग्रीव से कहा कि वह गुफा के भीतर जा रहा है, अतः वह बाहर गुफा के मुंह पर प्रतीक्षा करे। कुछ देर बाद गुफा में से रक्त की धारा फूटी। सुग्रीव ने अनुमान लगाया कि वाली मायावी के हाथों मारा गया। किष्किंधा आकर उसने स्वयं को राजा घोषित कर दिया और हनुमान को अपना मंत्री बना लिया।

---

1. आर्यों में भाई-बहन के विवाह को मान्यता थी।

2. हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः।
अप्रहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षयो ॥12॥
अयोध्याकांड सर्ग 8, श्लोक 12

3. अयोध्याकांड सर्ग 8, श्लोक 12

वास्तव में वाली मरा नहीं था बल्कि उसने मायावी को मार गिराया था। वाली गुफा से बाहर आया तो देखा कि सुग्रीव वहां नहीं है। वह किष्किंधा आया तो यह देखकर चकित रह गया कि सुग्रीव राजा बना बैठा है। स्वाभाविक था कि इस दगाबाजी से वाली आग-बबूला हो उठता, क्योंकि इसका कारण भी स्पष्ट था। सुग्रीव को अटकल पर ही निर्भर नहीं करना चाहिए था। उसे देखना था कि वाली मृत है या जीवित। दूसरे वाली का एक पुत्र था अंगद। वह वाली का वैध उत्तराधिकारी था। उसे राजा बनाया जाना चाहिए था। सुग्रीव ने ऐसा कुछ नहीं किया। यह विद्रोह का स्पष्ट मामला था। वाली ने सुग्रीव को खदेड़ दिया और गद्दी पर बैठ गया। दोनों भाई जानी दुश्मन बन गए।

यह घटना तभी घटी थी, जब रावण ने सीता का हरण किया था। राम और लक्ष्मण उनकी खोज कर रहे थे। सुग्रीव और हनुमान किसी मित्र की तलाश में थे, जो उन्हें वाली से राज्य वापस दिला सके। दोनों पक्षों में संयोगवश भेंट हो गई। जब दोनों ने एक-दूसरे की कठिनाइयों को सुना तो उनके बीच एक समझौता हुआ। यह सहमति हुई कि राम वाली का वध करने और सुग्रीव को किष्किंधा का राज्य दिलवाने में मदद करेंगे। यह भी सहमति हुई कि सुग्रीव और हनुमान राम को सीता वापस दिलाने में सहायता करेंगे। वाली वध की योजना को कार्यरूप देने के लिए तय हुआ कि सुग्रीव अपने गले में माला पहन ले, जिससे द्वंद्वयुद्ध के समय आसानी से पहचाना जा सके और राम किसी वृक्ष की आड़ में छिप जाएं और वहां से तीर चलाकर वाली को मार दें। इसी योजना के अनुसार द्वंद्व आयोजित किया गया। जब युद्ध हो रहा था तो सुग्रीव के गले में माला थी। वृक्ष के पीछे छिपे राम ने निशाना साधा। सुग्रीव किष्किंधा का राजा बन गया। वाली की हत्या राम के चरित्र पर बहुत बड़ा धब्बा है। यह एक ऐसा अपराध था, जो एकतरफा था क्योंकि वाली का राम से कोई विवाद नहीं था। यह कायरता भी थी क्योंकि वाली निहत्था था। यह एक सुनियोजित और सुविचारित हत्या थी।

अब हम यह देखते हैं कि उन्होंने अपनी ही पत्नी सीता के साथ कैसा व्यवहार किया। जब सुग्रीव और हनुमान ने सेना एकत्र कर ली, तो राम ने लंका पर आक्रमण कर दिया। यहां भी राम ने वही चाल चली जो वाली और सुग्रीव के बीच चली थी। उन्होंने इस शर्त पर रावण के भाई विभीषण से सहायता ली कि रावण और उसके पुत्रों को मारकर विभीषण को राज्य दे दिया जाएगा। राम ने रावण और उसके पुत्र इंद्रजित् को मार डाला। युद्ध का अंत हो जाने पर राम ने सबसे पहले रावण की विधिवत् अंत्येष्टि की। इसके बाद विभीषण का राज्याभिषेक कराया गया। तब उन्होंने हनुमान को सीता के पास भेजा और सूचित कराया कि वह लक्ष्मण और सुग्रीव सहित सकुशल हैं और उन्होंने रावण को मार दिया है।

रावण को हराने के बाद उन्हें सीता के पास जाना चाहिए था। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्हें राज्य तिलक की ज्यादा चिंता है, सीता की नहीं। यहां तक कि राज्य तिलक के बाद भी वह खुद न जाकर हनुमान को भेजते हैं, और वह संदेश क्या देते हैं? वह हनुमान को सीता को लाने के लिए नहीं कहते। वह सिर्फ यह खबर भेजते हैं कि वे

स्वस्थ और प्रसन्न हैं। यह सीता है जो हनुमान से राम से मिलने की बात कहती है। राम सीता से मिलने गए ही नहीं जो उनकी पत्नी थी, जिसका रावण ने अपहरण कर लिया था और जिसे 10 माह से ज्यादा समय तक कैद में रखा गया था। सीता उनके पास लाई गई। जब सीता राम से मिली तो राम ने क्या कहा? यह विश्वास करना कठिन होता है कि जिस आदमी में जरा सी भी मानवीय करुणा है, वह उन वचनों को अपनी पत्नी से बोलेगा जो राम ने दुख से घिरी हुई अपनी पत्नी सीता को तब कहे थे, जब वह उससे लंका में मिले, यदि हमारे पास साक्षात् वाल्मीकि की गवाही मौजूद न होती। राम[1] ने कहा—

> "मैंने अपने शत्रु, तुम्हारे अपहर्ता को युद्ध में परास्त कर तुम्हें इनाम के तौर पर पाया है। मुझे मेरा सम्मान मिल गया और मैंने दुश्मन को हरा दिया है। मुझे परिश्रम का फल मिल गया है और लोगों ने मेरी सैनिक शक्ति देख ली है। मैं अपनी अपकीर्ति मिटाने आया था। मैंने तुम्हारे लिए यह कष्ट थोड़े ही उठाया है।"

राम के सीता के प्रति किए गए इस व्यवहार से बड़ी क्या कोई और भी कठोरता हो सकती है? वह यहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे कहा—

> "मुझे तुम्हारे चरित्र पर संदेह है। रावण ने तुम्हारा शीलभंग किया होगा। मुझे तुम्हें देखते ही उबाल आ रहा है। मैं तुम्हें स्वतंत्र करता हूं। जहां मन करे जाओ। हे जनक सुता! मुझे तुमसे कोई लेना-देना नहीं। मैंने तुम्हें जीता, इसका मुझे संतोष है। यही मेरा लक्ष्य था। मैं यह नहीं सोच सकता कि तुम जैसी सुन्दर नारी से रावण ने आनन्द नहीं लूटा होगा।"

स्वाभाविक है कि सीता उन्हें पतित और क्षुद्र कहती और स्पष्ट रूप से कहती कि जब हनुमान आए थे, अगर तभी उन्हें यह संदेश भिजवा दिया गया होता कि अपहरण के कारण राम ने उन्हें मन से निकाल दिया है तो वह आत्महत्या कर लेतीं और उन्हें यह कष्ट नहीं उठाना पड़ता। उन्हें कोई अवसर दिए बिना सीता ने अपनी पवित्रता का प्रमाण दिया। वह अग्नि-परीक्षा में सफल हुईं। इससे देवता प्रसन्न हुए और इस परीक्षा के पश्चात उन्होंने सीता को पवित्र घोषित किया। इसके बाद ही राम सीता को अयोध्या ले जाने के लिए सहमत हुए और जब वह उन्हें अयोध्या ले आए तो उन्होंने उनके साथ कैसा व्यवहार किया? वह राजा बन गए और सीता रानी। परंतु राम तो राजा बने रहे और सीता का यह पद जल्दी ही छिन गया। यह कांड राम की सबसे बड़ी अपकीर्ति का कारण है। वाल्मीकि रामायण में कहा गया है कि राम के राज्यतिलक के कुछ समय बाद ही सीता गर्भवती हो गई। ऐसा सुनकर कि सीता गर्भवती है, दुष्ट प्रवृति के लोगों ने विषवमन किया कि ऐसा लगता है कि सीता जब लंका में थीं तो वह रावण से गर्भवती हुईं। उन्होंने राम पर आक्षेप लगाया कि वह एक ऐसी स्त्री को पत्नी के रूप में वापस ले आए। शहर की इस

---

1. *युद्धकांड सर्ग 115, श्लोक 1-23*

कानाफूसी को राम की राजसभा के विदूषक भद्र ने महल में आकर बताया। राम स्वाभाविक रूप से ऐसे लांछन को सुनकर स्तंभित रह गए। वह जुगुप्सा से भर उठे। यह स्वाभाविक भी था। सवाल यह था कि इस अपयश से किस तरह छुटकारा पाया जाए? इस कलंक से मुक्ति का सरलतम उपाय उन्हें यह मिला कि सीता को त्याग दिया जाए। एक गर्भवती स्त्री को अनजान लोगों के बीच, साधनों के बिना, जंगलों में छोड़ देना और वह भी उसे पूर्वसूचना दिए बिना! निश्चित है कि सीता को त्याग देने का विचार अचानक ही उनके मन में नहीं आया होगा। विचार उत्पन्न होने और उसके पनपने और कार्यरूप देने की योजना बनाने में कुछ समय अवश्य लगा होगा। जब भद्र ने उन्हें नगर में होने वाली अफवाहों के बारे में बताया तो उन्होंने अपने भाइयों को बुलाया और उन्हें अपनी भावनाएं बताईं। राम ने कहा, "सीता की पवित्रता और सतीत्व लंका में ही प्रमाणित हो चुके हैं। देवों ने भी इसका अनुमोदन किया था और उन्हें सीता की सच्चाई, पवित्रता और सतीत्व पर विश्वास है। इसके बावजूद प्रजा सीता पर लांछन लगाती है और मुझ पर उंगली उठाती है। ऐसा अपमान कोई नहीं सह सकता। सम्मान सबसे बड़ी संपत्ति है। देवता और महापुरुष उसे क्षति नहीं पहुंचने देते। मैं यह अपमान और अपकर्ष नहीं सह सकता। ऐसी अपकीर्ति से बचने के लिए मैं तुम्हें भी छोड़ सकता हूं। ऐसा न समझना कि मैं सीता को त्यागने में संकोच करूंगा।"

इससे पता चलता है कि उन्होंने सीता को त्यागने का मन बना लिया था, यह विचार किए बिना कि वह जो वह कर रहे हैं, वह सही है या गलत। उन्होंने प्रजा के लांछनों से बचने का सरलतम उपाय ही अपनाया। सीता के जीवन का कोई मूल्य नहीं। मूल्य था तो उनकी अपनी प्रतिष्ठा का। उन्होंने प्रजा में ऐसी अफवाहें रोकने की कोई कोशिश नहीं की, जो राजा के कर्तव्य के अंतर्गत उन्हें करनी चाहिए थीं, जो एक स्त्री के पति के रूप में उनका दायित्व था जिसकी वे परीक्षा ले चुके थे। वे प्रजा की कानाफूसी के आगे झुक गए। हिंदुओं में ऐसे लोगों का अभाव नहीं है, जो यह प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं कि राम एक प्रजातांत्रिक राजा था। किंतु ऐसे लोग पर्याप्त संख्या में हैं, जो उन्हें दब्बू और भीरु राजा मानते हैं।

अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा की यह क्रूर योजना उन्होंने अपने भाइयों को तो बता दी लेकिन सीता को नहीं बताई; जिनसे उसका प्रत्यक्ष संबंध था। क्योंकि वही प्रभावित होनी थीं अतः उन्हीं को बताया जाना चाहिए था, लेकिन उन्हें पूर्ण अंधकार में रखा गया। राम सीता से उस रहस्य को तब तक छिपाए रहे, जब तक उस पर पालन नहीं हो गया। सीता के लिए वह दुखद समय भी आ गया, जब उनकी प्रतीक्षित योजना को अमली जामा पहनाया गया। गर्भवती स्त्रियों के मन में छोटी-मोटी ललक (दोहद) हुआ करती हैं। राम यह जानते थे। इसलिए एक दिन उन्होंने सीता से पूछा कि तुम्हारा किसी वस्तु को मन तो नहीं करता है। उन्होंने कहा, 'करता है'। राम ने पूछा, 'वह क्या है?' सीता ने कहा कि वह गंगा किनारे किसी ऋषि के आश्रम में कंद-मूल खाकर कम से कम एक रात

बिताना चाहती है। राम को और क्या चाहिए था। उन्होंने तपाक से हामी भर दी, "निश्चिंत रहो प्रिये! मेरी कोशिश होगी कि तुम्हें कल ही भेज दूं।" सीता ने इसे सीधे स्वभाव से लिया। लेकिन राम ने क्या किया? उन्होंने सोचा सीता से पिंड छुड़ाने का यह अच्छा मौका है। उन्होंने अपने भाइयों से कहा कि वे सीता के मामले में बीच में न आएं और यदि वे आते हैं तो शत्रु समझे जाएंगे। तब उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि वह सवेरे ही सीता को गंगा के किनारे जंगल में आश्रम में छोड़ आएं। लक्ष्मण किंकर्तव्यविमूढ़ थे कि वह सीता को राम का फैसला कैसे बताएं। उनकी मनोदशा को पहचानते हुए राम ने लक्ष्मण को बताया कि सीता ने स्वयं ही इच्छा प्रकट की है कि वह कुछ समय आश्रम में गंगा किनारे बिताना चाहती हैं। इससे लक्ष्मण को थोड़ा धैर्य बंधा। यह दुरभिसंधि रात को हुई थी। सवेरे कहीं लक्ष्मण ने सुमंत से कहा कि वह रथ के घोड़े तैयार करें। सुमंत ने लक्ष्मण को बताया कि सब तैयार है। तब लक्ष्मण रनिवास में गए और सीता से मिले और बोले कि आप कुछ दिन आश्रम में बिताना चाहती हैं न। राम ने अपना वायदा निभाते हुए, मुझे यह काम करने को कहा है। उन्होंने कहा, 'वह रथ खड़ा है, चलिए।" सीता राम का आभार मानकर रथ पर चढ़ गईं। लक्ष्मण और सीता को बिठाकर सुमंत निर्दिष्ट स्थान की ओर चल दिए। अंत में वे गंगा के किनारे पहुंच गए, केवटों ने उन्हें पार उतार दिया। लक्ष्मण सीता के चरणों में गिर पड़े और आंखों से गर्म-गर्म आंसू टपकाते हुए बोले—"हे निर्दोष रानी! मेरी करनी पर मुझे क्षमा करो। मुझे आदेश है कि मैं तुम्हें यहीं छोड़ जाऊं क्योंकि लोग आपके कारण राम पर आक्षेप करते हैं"।

राम ने सीता को त्याग दिया और उनके हाल पर जंगल में छुड़वा दिया। वह पास ही वाल्मीकि के आश्रम में चली गईं। वाल्मीकि ने उन्हें शरण दी। सीता ने वहीं जुड़वां पुत्रों—लव और कुश—को जन्म दिया। तीनों वाल्मीकि के यहां रहने लगे। वाल्मीकि ने बालकों का लालन-पालन किया और उन्हें रामायण की कथा का गायन सिखाया, जो उन्होंने स्वयं रची थी। राम के राज्य के पास ही वे बालक 12 वर्ष तक जंगलों में ऋषि के आश्रम में पलते रहे। आदर्श पति और प्रिय पिता ने यह जानने की कभी चेष्टा नहीं की कि सीता जीवित है या मर ही गई। राम 12 वर्ष बाद सीता से विलक्षण स्थिति में मिले। राम ने एक यज्ञ किया और उसमें सभी ऋषियों को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। राम ने जान-बूझकर वाल्मीकि को आमंत्रित नहीं किया। हालांकि उनका आश्रम अयोध्या के निकट ही था। लेकिन वाल्मीकि अपने आप ही सीता के दोनों पुत्रों को अपने शिष्यों के रूप में साथ लेकर यज्ञ में पहुंच गए। जब यज्ञ चल रहा था तो दोनों बालकों ने सभा में रामायण का गायन आरंभ किया। राम बड़े आनंदित हुए और बालकों के बारे में पूछा तो उन्हें बताया गया कि वे सीता के पुत्र हैं। तब उन्हें सीता की याद आई। लेकिन, फिर भी उन्होंने क्या किया? वह सीता के पास नहीं गए। उन्होंने अबोध बालकों को बुलाया, जो अपने माता-पिता के पाप के विषय में कुछ नहीं

जानते थे। वे तो एक अत्याचार के शिकार थे। उन्होंने वाल्मीकि से कहा कि "सीता यदि पवित्र और सती हैं तो वह सभा में आएं और अपने ऊपर लगाए गए कलंक को धोकर अपना सतीत्व प्रमाणित करें। आखिर, वह लंका में ऐसा कर चुकी है।" परंतु ऐसा तो उन्हें जंगल में छोड़े जाने से पहले भी कहा जा सकता था। अब भी राम ने ऐसा कोई वचन नहीं दिया कि परीक्षा में खरी उतरने पर वह सीता को फिर से रख लेंगे। वाल्मीकि ने सीता को सभा में प्रस्तुत किया। जब पति-पत्नी आमने-सामने थे, वाल्मीकि बोले, "हे दशरथ के पुत्र, यह सीता खड़ी हैं, जिन्हें तुमने लोगों की कानाफूसी के कारण त्याग दिया था, जिन्हें मैंने अपने आश्रम में पाला है।" राम ने कहा, "मैं जानता हूं कि सीता पवित्र है और ये मेरे पुत्र हैं। इन्होंने लंका में भी अपने सतीत्व का प्रमाण दिया है। मैं इन्हें साथ ले आया लेकिन लोगों को अभी संदेह है। सीता वह परीक्षा यहां भी दें, जिसे ऋषि और प्रजा भी देख ले।"

सीता ने नेत्र भूमि पर गड़ाए। दोनों हाथ जोड़कर प्रण लिया—"यदि मैंने सपने में भी राम को छोड़कर, कभी किसी व्यक्ति का विचार भी किया हो तो धरतीमाता तू फट जा और मुझे अपने में समा ले। यदि मैंने सदा राम को प्यार किया हो, मेरे कार्यों और विचारों में वही बसे हों तो धरतीमाता तू फट जा और मुझे अपने में समा ले।" जब उन्होंने यह प्रतिज्ञा दुहराई तो धरती फट गई। एक स्वर्ण सिंहासन उभरा। वह उस पर बैठ गईं और धरती में समा गई। आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई। सभी देखकर आनन्दविभोर हो गए।

इसका अर्थ है कि सीता ने राम के पास वापस जाने के बजाय मर जाना बेहतर समझा। जिस राम ने उनके साथ कसाई से अच्छा व्यवहार नहीं किया था यह है उन सीता की त्रासदी और राम भगवान का अपराध था।

राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है। क्या इससे यह प्रमाणित होता है?

सच तो यह है कि राम ने कभी राजपाट ठीक से किया ही नहीं। वह तो सांकेतिक राजा थे। वाल्मीकि के अनुसार शासन-कार्य भरत देखते थे। राम ने राज-काज और प्रजा की चिंताओं से मुक्ति पा ली थी। राम के राजा बनने के बाद की दिनचर्या का वाल्मीकि ने बहुत बारीकी से वर्णन किया है।[1] उनके अनुसार पूरा दिन पूर्वाह्ण और अपराह्न में विभाजित रहता था। सवेरे से मध्याह्न तक वह पूजा पाठ में व्यस्त रहते थे। अपराह्न वे क्रमशः दरबारी विदूषकों के साथ और अंतःपुर में बिताते थे।[2] जब वह रंगमहल से ऊब जाते थे, तो विदूषकों की संगति करते थे और जब विदूषकों से ऊब

1. *पूर्वाह्णे धर्मकार्याणि कृत्वा धर्मेण धर्मवित्।*
शेषं दिवसभागार्धमन्तःपुरगतोऽभवत् ॥27॥
उत्तरकांड, सर्ग 42, श्लोक 27

2. *उत्तरकांड सर्ग 43, श्लोक।*

जाते थे, तो रंगमहल में चले आते थे। वाल्मीकि विस्तार से बताते हैं कि राम रनिवास में कैसे समय बिताते थे। यह रंगमहल अशोक वन में था। वहीं राम भोजन करते थे। वाल्मीकि के अनुसार उनके भोजन में अनेक स्वादिष्ट व्यंजन होते थे। उसमें मांस, फल और मदिरा सम्मिलित थी। राम, मद्य-त्यागी नहीं थे। वे काफी मात्रा में पीते थे और सीता को भी उसमें सहभागिनी बनाते थे।[1] राम के अंतःपुर का जैसा वर्णन वाल्मीकि ने किया है, वह कोई मामूली बात नहीं है। नाच-गाने में अप्सराएं, उरग और किन्नर बालाएं सम्मिलित होती थीं। अन्य क्षेत्रों से भी सुंदर औरतें लाई जाती थीं। राम सुरा और सुंदरियों के बीच विराजते थे। वे राम को आनंदित करतीं और राम उन्हें माला पहनाते थे। वाल्मीकि ने राम को 'स्त्रियों के प्रिय पुरुषों का राजकुमार' कहा है। यह उनकी एक दिन की जीवनचर्या नहीं थी। यह उनके जीवन की नियमित गति थी।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, राम ने प्रजा-कार्यों से हाथ खींच रखा था। वह अन्य भारतीय राजाओं की तरह प्रजा का दुख-दर्द सुनकर उसके निवारण का कोई प्रयास नहीं करते थे। वाल्मीकि के अनुसार मात्र एक अवसर पर उन्होंने व्यक्तिगत रूप से किसी की शिकायत सुनी। किंतु खेद है कि वह घटना बहुत दुखांत सिद्ध हुई। उन्होंने किसी की एक गलती के लिए स्वयं इतना बड़ा अपराध किया, जिसकी इतिहास में मिसाल नहीं है। यह घटना थी—एक शूद्र—शंबूक—की हत्या। वाल्मीकि ने लिखा है—"राम-राज्य में किसी की अकालमृत्यु नहीं होती थी। लेकिन एक बार किसी ब्राह्मण के पुत्र की अकालमृत्यु हो गई। दुखी पिता मृत पुत्र के शव को राजमहल के सिंह द्वार पर ले आया और वहीं रख दिया और जोर-जोर से विलाप करने लगा तथा अपने पुत्र की मृत्यु के लिए राम को तरह-तरह से कोसने लगा। वह कह रहा था कि यह उनके राज्य में हो रहे किसी पापाचार का परिणाम है और यदि राजा अपराधी को दंड नहीं देगा, तो राजा उसके पुत्र की हत्या का अपराधी होगा। अंत में उसने धमकी दी कि वह राम के द्वार पर अनशन करेगा और अन्न-जल लिए बिना अपने प्राण त्याग देगा। राम ने आठ विद्वान ऋषियों की सभा बुलाई। उनमें से नारद ने कहा कि आपकी प्रजा में से कोई शूद्र तपस्या कर रहा है। यह धर्म विरुद्ध है, क्योंकि तपस्या करने का अधिकार मात्र द्विजों को है। राम समझ गए कि धर्म का उल्लंघन करके वह पाप कर रहा है। उसी कारण ब्राह्मण का पुत्र मर गया है। इसलिए राम ने अपना पुष्पक विमान मंगाया और राज्य के आंतरिक भागों में अपराधी को खोजा। अंत में घने जंगलों में सुदूर दक्षिण में उन्होंने एक व्यक्ति को कठोर तपस्या करते देखा। वह उसके पास गए और उसके यह बताने पर कि वह शम्बूक नाम का शूद्र है और वह सशरीर स्वर्ग जाने के लिए तपस्या कर रहा है, उन्होंने उसे चेताया तक नहीं,

---

1. कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च नानावर्णैश्च पक्षिभिः।
शोभितां शतशश्चित्रां चूतवृक्षावतसकैः ॥8॥

उत्तरकांड सर्ग 42, श्लोक 8

अनधिकृत कार्य न करने के लिए समझाया भी नहीं। बस! बेझिझक उसका सिर काट दिया। देखा! उसी समय दूर अयोध्या में ब्राह्मण पुत्र की सांस चलने लगी। जंगल में देवताओं ने पुष्प वर्षा की कि राजा ने एक शूद्र को आकाश में उनकी नगरी में आने से रोक दिया, जो तपस्या के बल पर वहां पहुंच जाता जिसे तपस्या का अधिकार ही नहीं है। वे राम के सम्मुख प्रकट हुए और उन्हें बधाई दी। जब राम ने ब्राह्मण के पुत्र को जीवित करने का अनुरोध किया तो उन्होंने बताया कि वह जीवित हो चुका है। फिर वे चले गए। राम तब पास ही अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुंचे। उन्होंने शंबूक को दी गई सजा पर उनकी प्रशंसा की और उन्हें एक ताबीज भेंट किया। राम राजधानी लौट आए।" ऐसे थे राम!

II

अब कृष्ण की बात करते हैं।

वह महाभारत के नायक हैं। वास्तव में तो महाभारत का मुख्य संबंध कौरव और पांडवों से है। यह उस युद्ध की कहानी है, जो दोनों पक्षों ने अपने पूर्वजों के राज्य पर अधिकार प्राप्त करने के लिए किया। वही मुख्य चरित्र होने चाहिएं। लेकिन ऐसा नहीं है। इस महाकाव्य के नायक कृष्ण हैं। यह थोड़े आश्चर्य की बात है। लेकिन इससे भी अधिक चकित करने वाली बात शायद यह संभावना है कि वह कौरव-पांडवों के समकालीन ही नहीं थे। कृष्ण पांडवों के मित्र थे और उनका अपना साम्राज्य था। कृष्ण कंस के शत्रु थे। उसका भी साम्राज्य था। यह संभव नहीं लगता कि दोनों राज्य साथ-साथ विद्यमान थे। महाभारत में ऐसा संकेत कहीं नहीं मिलता कि दोनों राज्यों के बीच कोई संपर्क था। बाद में कृष्ण को इस नाटक में और बड़ी भूमिका देने के लिए कृष्ण और पांडवों की कहानियों को मिश्रित कर दिया गया। इन दोनों कहानियों को जोड़ने का करिश्मा व्यास का था, जिसमें कृष्ण को गौरवांवित करने के लिए उन्हें सबसे ऊपर बैठा दिया गया।

व्यास ने कृष्ण को मानवों में देवता बना दिया। इसी कारण उन्हें महाभारत का नायक बना दिया गया। क्या कृष्ण सचमुच भगवान कहलाने योग्य हैं? उनकी संक्षिप्त जीवनी से इस सवाल का जवाब मिल जाएगा। कृष्ण भाद्रपद की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मध्यरात्रि में मथुरा में पैदा हुए थे। उनके पिता यदुवंश के वसुदेव थे। उनकी माता देवक की पुत्री देवकी थीं, जो मथुरा के राजा उग्रसेन का भाई था। उग्रसेन की पत्नी के सौभराज द्रुमिल दानव के साथ अवैध संबंध थे। उसी का जारज पुत्र कंस था। एक प्रकार से वह देवकी का भाई था। कंस ने उग्रसेन को बंदी बनाकर राज्य पर अधिकार कर लिया। नारद अथवा देववाणी से यह आकाशवाणी सुनकर कि देवकी की आठवीं संतान उसका वध करेगी कंस ने देवकी और उसके पति को बंदी बना लिया और उनकी छह संतानों को जन्म लेते ही मार डाला। सातवीं संतान को देवकी के गर्भ से वसुदेव की दूसरी रानी रोहिणी के गर्भ में चमत्कारी ढंग से पहुंचा दिया गया, जो बलराम कहलाया। जब

आठवीं संतान कृष्ण ने जन्म लिया तो उनके पिता उन्हें चुपके से ब्रज में ले गए जहां नंद और यशोदा रहते थे। दैवी बालक को पार पहुंचाने के लिए यमुना का पानी उतर गया। नागराज अनंत ने अपना फन फैलाकर वर्षा से उनकी रक्षा की। पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वसुदेव ने नंद की नवजात कन्या योगींद्रा अथवा योगमाया से उन्हें बदल लिया और उसे अपना आठवां शिशु बताकर कंस को सौंप दिया। परंतु वह बालिका आकाश में उड़ गई और बोली कि नंद और यशोदा के यहां पल रहा बालक कृष्ण तुम्हारा संहार करेगा। इसके बाद कंस ने बालक कृष्ण की हत्या की लगातार कोशिशें कीं जो कामयाब नहीं हुईं। इस उद्देश्य से उसने विभिन्न रूपों में कई असुर ब्रज में भेजे। कृष्ण की बाल-लीलाओं के संबंध में पुराणों में इन असुरों के संहार और सामान्य बालक के लिए असंभव वीरता-प्रदर्शन का वर्णन कृष्ण की महिमा बढ़ाने के उद्देश्य से किया गया है। इनमें कुछ का महाभारत में भी उल्लेख है। जैसी कि आशा की जा सकती है, विद्वान इन वर्णनों से असहमत हैं। हम उनमें से कुछ का ही उल्लेख करते हैं विशेषतः परवर्ती विद्वानों का अनुसरण करते हुए।

इनमें से पहला है पूतना वध। वह कंस के यहां धाय थी और कंस ने उसे हरिवंश (पुराण) के अनुसार एक गिद्धनी के रूप में भेजा था। भागवत के अनुसार वह एक सुंदरी के भेष में गई थी। उसने कृष्ण को दूध पिलाने के बहाने अपने विषयुक्त स्तन उनके मुंह में डाल दिए। उन्होंने उसके स्तनों को इतने जोर से चूसा कि उसके प्राण ही खीच लिए और वह धराशायी हो गई।

केवल तीन मास का होने पर ही कृष्ण ने एक अन्य आश्चर्यजनक कर्म कर दिखाया। यह एक शकट अथवा गाड़ी को तोड़ना था, जिसमें अनेक बर्तन लदे हुए थे। उनमें दूध-दही भरा था और लदी हुई गाड़ी उन पर चढ़ गई। 'हरिवंश' के अनुसार शकट कंस द्वारा भेजा गया असुर था, जिसे उन्हें कुचलने के लिए भेजा गया था। बहरहाल, यशोदा ने कृष्ण को गाड़ी के नीचे लिटा दिया और यमुना में स्नान करने चली गई। जब वह लौटकर आई तो उसे लोगों द्वारा बताया गया कि कृष्ण ने ठोकर मारकर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जो भूमि पर बिखरे पड़े थे। यशोदा इस घटना से भयभीत और चकित रह गई। उसने अनहोनी टालने के लिए पूजा कराई।

जब कृष्ण की हत्या के लिए पूतना और शकट की कोशिशें नाकाम हो गईं, तो कंस ने अपना एक और दूत तृणावर्त्त भेजा। वह एक पक्षी के रूप में आया और उन्हें उड़ाकर आकाश में ले गया। कृष्ण तब मात्र एक वर्ष के थे परंतु तृणावर्त्त निष्प्राण होकर धरती पर गिर पड़ा। कृष्ण उसकी गर्दन कसकर पकड़े हुए थे।

अगला चमत्कार दो अर्जुन वृक्षों को उखाड़ना था, जो पास-पास खड़े थे। ये दोनों यक्षों के शरीर थे, जो शापवश वृक्ष बन गए थे और जिन्हें कृष्ण ने शापमुक्त किया। जब कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे और नित नया उत्पात करने लगे तो यशोदा ने एक रस्सी लेकर उन्हें ओखली से बांध दिया और अपने काम में लग गई। जब आंखों से ओझल हुई

तो कृष्ण ने उस ओखली को घसीटना शुरू कर दिया। वह उक्त दो वृक्षों के बीच फंस गई। कृष्ण ने तब भी उसको खींचना जारी रखा। इस पर वे वृक्ष उखड़कर गिर गए और भयानक शोर करते हुए गिर पड़े परंतु कृष्ण को आंच भी न आई। यह सब देखकर नंद भयभीत हो गए और ब्रज छोड़कर कहीं दूसरी जगह जाने का विचार करने लगे। जब वह विचार कर रहे थे, भेड़ियों ने आतंक मचा दिया। वे पशुओं को उठाकर ले जाते थे। उन्होंने पूरी अव्यवस्था और असुरक्षा का माहौल बना दिया। इससे उन खानाबदोशों ने ब्रज छोड़ने का इरादा कर लिया और वे सुंदर स्थान वृंदावन में चले आए। तब कृष्ण मात्र सात वर्ष के थे।

नए स्थान पर आकर, कृष्ण ने अनेक असुरों का संहार किया। उनमें से एक अरिष्ट था, जो एक वृषभ के रूप में आया। दूसरा था—केशिन्, जिसने घोड़े का रूप धरा। पांच अन्य थे, वृत्रासुर, वकासुर, अघासुर, भौमासुर और शंखासुर और अंत में यक्ष। इन सबमें खास था कालिय, सर्पों का राजा, जो अपने परिवार सहित यमुना की एक दह में रहता था और जिसने यमुना का जल दूषित कर रखा था। एक दिन कृष्ण कालिय के फन पर चढ़ गए और इतने जोर से नाचे कि उसने खून का वमन किया। कृष्ण उसे मार ही डालते परंतु नाग-परिवार के अनुनय-विनय पर उन्होंने उसे छोड़ दिया और दूसरी जगह चले जाने दिया।

कालिय विजय के बाद वस्त्रहरण की घटना आती है, जिसने पौराणिक कृष्ण के उपासकों और प्रशंसकों के लिए एक धर्म-संकट खड़ा कर दिया है। पूरा वर्णन इतना अश्लील है कि उसका संकेत मात्र भी देना कठिन है क्योंकि वह पढ़ने योग्य नहीं है। परंतु हम उसे यथासंभव शिष्ट रूप में उद्धृत कर रहे हैं जिससे कि कृष्ण के जीवन की झांकी मिल सके। देश के कुछ भागों में अभी भी प्रचलित रीति के अनुसार, कुछ गोपियां यमुना के किनारे वस्त्र छोड़कर नदी में नहा रही थीं। कृष्ण ने उनके कपड़े उठा लिए और नदी के किनारे एक वृक्ष पर चढ़ गए। जब उन्होंने अपने वस्त्र मांगे तो उन्होंने उस समय तक वस्त्र देने से इंकार कर दिया जब तक अपने वस्त्र लेने वे नग्नरूप में वृक्ष तक स्वयं चलकर न आएं। जब वे आ गईं तो कृष्ण प्रसन्न हुए और वस्त्र लौटा दिए। यह कथा भागवत में है।

कृष्ण की दूसरी महिमा गोवर्धन पर्वत उठाने से संबंधित है। गोप वर्षा के देवता इंद्र की वार्षिक पूजा की तैयारी कर रहे थे। उसके लिए भारी आयोजन हो रहा था। कृष्ण ने कहा कि हम तो चरवाहे हैं, कृषक नहीं हैं, हमारे वास्तविक देवता गोधन, पर्वत और जंगल हैं, हमें इनकी ही पूजा करनी चाहिए, इंद्र जैसे देवता की नहीं, जो वर्षा कराते हैं। गोप मान गए और उन्होंने इंद्र की पूजा के स्थान पर नाच-गाकर गोवर्धन पर्वत की पूजा की, जो गौओं का पालक है। इंद्र को तो इससे क्रुद्ध होना ही था और उन्होंने उन्हें दंड देने के लिए सात दिन तक रात-दिन वर्षा की। कृष्ण ने पर्वत को उखाड़ लिया और गांव के ऊपर छतरी की तरह तान दिया और इंद्र के कोप से हुई वर्षा से होने वाली बर्बादी से पशुओं और गायों को बचा लिया। मैं अपने पहले व्याख्यान में इंद्र और ऋग्वेद के कृष्ण और बाद में शतपथ ब्राह्मण के कृष्ण और विष्णु के बीच वैमनस्य के बारे में बता ही चुका हूं।

कृष्ण की युवावस्था में रासलीला के माध्यम से वृंदावन की गोपिकाओं के साथ उनके अवैध संबंधों की भरमार है। इस लीला में स्त्री-पुरुष, एक-दूसरे के हाथों में हाथ डालकर नृत्य करते हैं। देश की कुछ वन्य जनजातियों में यह नृत्य अब भी प्रचलित है। यह कहा गया है कि कृष्ण वृन्दावन की युवा गोपियों के साथ अक्सर इसी तरह नाचकर मनोविनोद किया करते थे। विष्णु पुराण, हरिवंश पुराण और भागवत पुराण में ऐसे नृत्य का वर्णन है। इन सब लेखकों ने यह समझाने की चेष्टा की है कि कृष्ण के प्रति गोपिकाओं का प्रेम भक्तिभाव के कारण था, उसमें वासना रंच मात्र भी नहीं थी। अन्य व्यक्तियों के संदर्भ में इन्हीं लेखकों ने इस तरह के संबंध में अत्यधिक निंदित बताया है। दृश्य, समय और ऋतु, मधुर संगीत के बीच स्त्रियों का मेल, नृत्य और कृष्ण तथा उनकी कामुकता और उनके हावभाव इन सामान्य बातों पर सब सहमत हैं। परंतु विष्णु पुराण में कुछ हद तक शिष्टता है। वैसे कहीं-कहीं वह भी विचलित हो जाता है। 'हरिवंश' में स्पष्ट रूप से अशिष्टता है परंतु भागवत तो नितांत अशोभनीय है।

इन सब अशिष्ट कर्मों से बढ़कर हैं कृष्ण के साथ राधा नामक गोपी के अवैध संबंधों की कहानी।

ब्रह्मवैवर्त राधा जगाम वाराहे गोकुलं भारते सती।
वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूवह ॥36॥
अतीते द्वादशाब्दे तु दृष्ट्वा तां नवयौवनाम्।
सार्धं रायणवैश्येन तत्संबंध चकार सः ॥37॥
कृष्णस्य माता यशोदा या रायणस्तत्सहोदरः।
संबंधे कृष्णमातुलः ॥40॥

ब्रह्मवैवर्त पुराण, प्रथम खंड, अ. 49

पुराण में इन अवैध संबंधों का चित्रण है। रुक्मिणी कृष्ण की ब्याहता और पत्नी है। राधा का विवाह रायण से हुआ था। कृष्ण ने अपनी विवाहिता पत्नी रुक्मिणी को त्याग दिया और किसी अन्य की पत्नी राधा को बहकाया और उसके साथ खुल्लमखुल्ला रहने लगे।

कृष्ण एक योद्धा भी थे और बाल्यकाल से ही राजनीतिज्ञ भी थे। उस समय उनकी आयु बारह वर्ष बताई जाती है। उनका प्रत्येक कार्य, चाहे युद्ध हो अथवा राजनीति, सब अनैतिक था। उनका सर्वप्रथम कार्य था अपने मामा कंस की हत्या। इसके लिए 'हत्या' शब्द कोई कठोर अभिव्यक्ति नहीं है। कंस ने यद्यपि उन्हें बार-बार क्रोध दिलाया तो भी उसे उन्होंने युद्ध में अथवा द्वंद्व में पराजित नहीं किया। आख्यान इस प्रकार है कि वृंदावन में कृष्ण की वीरताओं को सुनकर कंस आशंकित हो गया और उसने निश्चय किया कि एक प्रदर्शन युद्ध में उसका वध किया जाए। इसी के अनुसार उसने धनुर्यज्ञ का आयोजन किया। उसने कृष्ण, बलराम और उनके साथी गोपों को इसके लिए आमंत्रित किया।

कृष्ण का एक अनुयायी परंतु कंस का एक अधिकारी अक्रूर दोनों भाइयों को मथुरा लाने के लिए भेजा गया। वे सब कंस वध के लिए कटिबद्ध होकर आए थे। उसने उन्हें और अन्य यादवों को मथुरा छोड़ने को विवश किया था। दोनों भाइयों ने एक षडयंत्र रचा। मथुरा आने पर उन्होंने साधारण गोपों के वस्त्र त्यागकर अच्छे वस्त्र धारण करने की इच्छा की और कंस के धोबी से वस्त्र मांगे, जो उन्हें गलियारे में मिल गया था। उस धोबी ने उनके साथ अशिष्टता दिखाई। उन्होंने उसे मार डाला और मनचाहे वस्त्र ले लिए। तब वे कुब्जा से मिले, जो एक कुबड़ी स्त्री थी और कंस के यहां इत्र (गंधी) बनाती थी। उनके अनुरोध पर उसने उनका चंदनलेपन किया। इसके बदले में कृष्ण ने उसका कूबड़ ठीक कर दिया। भागवत में कहा गया है कि कृष्ण उससे अक्सर मिलने जाते थे। उनके मिलन को भागवत में अशिष्ट कोटि का बताया गया है। फिर कृष्ण उस समय कुब्जा के चंदनलेपन से सुगंधित, सुदामा नामक माली से हार पहनकर यज्ञशाला में घुस गए और जिस धनुष को यज्ञ के लिए रखा गया था, उसे तोड़ डाला। भयभीत कंस ने कुवलयापीड नामक हाथी को उन्हें कुचलने के लिए भेजा। कृष्ण ने हाथी को मार डाला और मल्लशाला में घुस गए। वहां दोनों भाइयों ने कंस के विख्यात मल्लयोद्धा चाणूर, मुष्टिक, तोशलक और आंध्र से मुकाबला किया। चाणूर और तोशलक का संहार कृष्ण ने किया और शेष दो को बलराम ने मारा। कृष्ण-वध की अपनी योजना से विचलित होकर कंस ने दोनों भाइयों और उनके साथियों को खदेड़ने के आदेश दिए। उसने कहा, "इनके पशु जब्त कर लो और वसुदेव, नंद और उग्रसेन को मार दो।" इसे सुनकर कृष्ण मंच पर आ गए जहां कंस बैठा था। उन्होंने उसके बाल पकड़ उसे नीचे खींच लिया और धरती पर पटक कर उसे मार डाला। कंस की बिलखती रानियों को सांत्वना देकर कृष्ण ने उसका राजकीय ढंग से दाह-संस्कार कराया। उग्रसेन ने उन्हें राज सौंपना चाहा। उन्होंने इंकार कर दिया और उसी (उग्रसेन) को राजा बनाया और उसके छिपे हुए संबंधियों को मथुरा बुला लिया।

कृष्ण का दूसरा संग्राम कालयवन और जरासंध से हुआ, जो मगध का राजा था। जरासंध कंस का दामाद था। जब उसने यह सुना कि कृष्ण ने कंस को मार दिया है तो उसने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। कहा जाता है कि उसने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया लेकिन हर बार कृष्ण ने उसे मार भगाया। अगले आक्रमण को और विनाशकारी समझकर कृष्ण मथुरा त्याग कर और यादवों को लेकर गुजरात प्रायद्वीप के पश्चिमी छोर पर स्थित द्वारका चले गए। यादवों के मथुरा से चले जाने पर जरासंध के कहने पर कालयवन ने मथुरा को घेर लिया। जब वह निश्शस्त्र कृष्ण का पीछा कर रहा था तो मुचुकुंद के नेत्रों से निकली ज्वाला से वह भस्म हो गया। उस समय मुचुकुंद गुफा में सो रहा था जिसे कालयवन ने कृष्ण समझकर लात मारी थी। कृष्ण ने कालयवन की सेना को परास्त कर दिया। लेकिन जब वे लूट का माल लेकर भाग रहे थे तो जरासंध ने उन्हें घेर लिया। वे एक पहाड़ी पर चढ़ गए और वहां से कूदकर द्वारिका की तरफ भाग गए।

अब कृष्ण का पहला विवाह हुआ। उन्होंने विदर्भराज, भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। रुक्मिणी का पिता जरासंध के कहने पर कृष्ण के फुफेरे भाई चेदि राज, शिशुपाल से उसका विवाह रचा रहा था। परंतु विवाह के एक दिन पहले ही रुक्मिणी का हरण कर लिया गया। भागवत के अनुसार, रुक्मिणी को कृष्ण से प्रेम हो गया था और उन्होंने कृष्ण को एक प्रेमपत्र लिखा था। यह सच नहीं लगता क्योंकि कृष्ण तो रुक्मिणी के सच्चे और निष्ठावान पति नहीं रहे थे। धीरे-धीरे रुक्मिणी की सौतों की कतार बढ़ती गई और वह संख्या सोलह हजार एक सौ साठ हो गई। उनकी संतान की संख्या एक लाख अस्सी हजार थी। उनकी पटरानियां भी आठ थीं—रुक्मिणी, सत्यभामा, जांबवती, कालिंदी, मित्रविंदा, भद्रा सत्या, और लक्ष्मणा। शेष सोलह हजार एक सौ के साथ उन्होंने एक ही दिन विवाह किया था। वे प्राग्ज्योतिष के राजा नरक की पत्नियां थीं, जिसका कृष्ण ने इंद्र के आह्वान पर वध कर दिया था। नरक उनकी मां के कुण्डल ले आया था। युद्ध के बाद कृष्ण जब सत्यभामा के साथ स्वर्ग में इंद्र के पास गए तो उनकी पत्नी को पारिजात वृक्ष भा गया। अपनी पत्नी का मन रखने के लिए कृष्ण को उसी वैदिक देवता से युद्ध करना पड़ा, जिसकी उन्होंने सहायता की थी। लेकिन भगवान के अवतार से लोहा लेना बहुत कठिन था। इसलिए इंद्र को पारिजात वृक्ष देना पड़ा, जिसे द्वारिका में लगा दिया गया। उन्होंने आठ पटरानियों से कैसे विवाह किया, यह भी बड़ी दिलचस्प कहानी है। रुक्मिणी से उन्होंने कैसे विवाह किया, यह तो बताया जा चुका है। सत्यभामा सत्राज़ित् की पुत्री थी, जो एक यादव राजा था और जिसने डरकर अपनी कन्या का विवाह कृष्ण से कर दिया था। जांबवती एक ऋक्ष प्रधान जांबवान् की कन्या थी, जो यादवों से एक बहुमूल्य मणि लेकर भाग गया था और लंबी लड़ाई के बाद उसने पराजित होकर अपनी कन्या उन्हें दे दी थी। कालिंदी ने कृष्ण से विवाह करने के लिए अनेक तपस्याएं कीं और अंत में सफल रही। मित्रविंदा कृष्ण की फुफेरी बहन (Cousin) थी और उसे स्वयंवर में जीतकर उन्होंने विवाह किया। सत्या अयोध्या के राजा नग्नजित् की पुत्री थी। उन्होंने वीरता दिखाकर और कई बिगड़ैल बैलों को एक साथ मार कर नग्नजित् की कन्या से विवाह किया। भद्रा उनकी एक और फुफेरी बहन (Cousin) थी और उससे उनका विवाह सामान्य परिस्थितियों में हुआ। लक्ष्मणा मद्र देश के राजा बृहत्सेन की पुत्री थी, जिसे उन्होंने स्वयंवर से उठाया था।

बलराम की सहोदरा और कृष्ण की सौतेली बहन सुभद्रा के साथ अर्जुन के विवाह में कृष्ण की भूमिका उल्लेखनीय है। अर्जुन अपनी यात्रा के समय तीर्थस्थान प्रभास पहुंचे। कृष्ण ने रैवतक पर्वत पर उनकी अगवानी की। वहां वह सुभद्रा पर अनुरक्त हो गया और कृष्ण से पूछा कि वह उसे कैसे मिल सकती है। कृष्ण ने उसे सलाह दी कि वह एक वीर क्षत्रिय की तरह स्वयंवर से पहले ही उसका हरण कर ले। उसके ऐसा ही करने पर पहले

तो यादव आग-बबूला हो गए, लेकिन जब उन्हें कृष्ण ने समझाया कि अर्जुन सुभद्रा का उत्तम पति होगा और उसका हरण करके अर्जुन ने कुछ अनहोनी भी नहीं की है तो वे मान गए। वे और कर भी क्या सकते थे? कृष्ण ने हम जैसे मामूली लोगों की तरह केवल तर्क ही नहीं दिए थे, बल्कि स्वयं ऐसा करके उदाहरण भी प्रस्तुत कर चुके थे।

यह भी दिलचस्प तथ्य है कि कृष्ण ने जरासंध और शिशुपाल से कैसे जान छुड़ाई जिन्होंने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में विघ्न डाला था। जरासंध ने रुद्र की बलि चढ़ाने के लिए अनेक राजाओं को बंदी बना रखा था। जब तक उसका वध न किया जाता और बंदी राजा मुक्त न कर लिए जाते, और वे युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार करने न आते तो उनका चक्रवर्ती सम्राट होने का दावा पूरा न होता। इसलिए कृष्ण ने भीम और अर्जुन को साथ लेकर जरासंध की राजधानी राजगृह को प्रस्थान किया और चुनौती दी कि वह इनमें से किसी एक के साथ द्वन्द्व युद्ध कर ले। क्षत्रिय और जरासंध जैसा कोई व्यक्ति ऐसी चुनौती को अस्वीकार नहीं कर सकता था। उसने प्रतिद्वंद्वी के हाथों अपने वध का अनुमान लगाकर अपने पुत्र सहदेव को अपना उत्तराधिकारी चुना और भीम से लड़ने की घोषणा की। मल्लयुद्ध तेरह दिन तक चलता रहा और अंत में जरासंध का दुखद वध हुआ। जरासंध के पुत्र सहदेव को गद्दी पर बैठाकर और मुक्त किए राजाओं को युधिष्ठिर के यज्ञ में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित करके, कृष्ण मित्रों सहित इंद्रप्रस्थ चले आए।

समय पर राजसूय का आयोजन हुआ। उत्सव की अनेक रीतियों में से ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य कृष्ण को सौंपा गया। महाभारत में अपेक्षाकृत आधुनिकता का यह स्पष्ट संकेत था। प्राचीन काल में यद्यपि ब्राह्मणों की क्षत्रियों पर श्रेष्ठता स्थापित हो चुकी थी किंतु क्षत्रिय उन्हें ऐसा सम्मान नहीं देते थे। बहरहाल, जब यज्ञ समाप्त हो गया और सभा में उपस्थित राजाओं, पुरोहितों और अन्यों को सम्मानित करने का समय आया तब यह सवाल उठा कि सबसे पहले किसका सम्मान किया जाए। युधिष्ठिर ने जब भीष्म से पूछा तो उन्होंने परामर्श दिया कि सर्वप्रथम कृष्ण का सम्मान किया जाए। उसी के अनुसार, युधिष्ठिर के कहने पर सहदेव ने कृष्ण का सम्मान करने के लिए उन्हें अर्घ्य चढ़ाया और उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। इससे शिशुपाल भड़क उठा। उसने कृष्ण को सम्मानित करने को चुनौती देते हुए, अपने लंबे भाषण में पांडवों को अपशब्द कहे और कृष्ण को लताड़ा कि उन्होंने सम्मान को स्वीकार कर अनधिकृत कर्म किया है। इसके पश्चात भीष्म उठे और उन्होंने कृष्ण के कार्यों और उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए उनके देवत्व का वर्णन किया। शिशुपाल फिर उठ खड़ा हुआ। भीष्म की एक-एक बात का खंडन करते हुए उसने कृष्ण को भरपूर गालियां दीं। कृष्ण के आधुनिक जीवनीकार इस बात को रेखांकित करते हैं कि शिशुपाल ने जो दोष उन पर लगाए उनमें उनके वृंदावन की गोपियों के साथ संबंधों का कोई संकेत नहीं है, जो इस बात का द्योतक है कि जब महाभारत बना तब कृष्ण से संबंधित ऐसी कहानियां

नहीं गढ़ी गई थी, हालांकि पुराणों और परवर्ती कवियों की रचनाओं में इन कहानियों को बहुत महत्व दिया गया है। बहरहाल, शिशुपाल के वक्तव्य के अंत में भीष्म फिर उठे और उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर शिशुपाल और उनके सहयोगियों से आशंकित हैं कि कहीं वे उत्सव में बाधा न डालें। इसलिए उन्होंने चेताया कि यदि वे अपना वध चाहते हैं तो कृष्ण को चुनौती दें और उस दैवी पुरुष से युद्ध कर लें। इस पर शिशुपाल ने कृष्ण को चुनौती दी और कृष्ण के अनेक कुकर्मों का बखान किया। तब कृष्ण ने कहा, "अपनी बुआ को दिए गए वचनानुसार मैंने शिशुपाल की एक सौ गालियों के लिए उसे क्षमा कर दिया है परंतु अब जो अपशब्द उसने भरी सभा में मेरे विरुद्ध बोले हैं, उनके लिए मैं उसे क्षमा नहीं करूंगा। मैं आप सबके सामने इसका वध करता हूं।" उन्होंने अपना सुदर्शन चक्र चलाया और शिशुपाल का सिर काट दिया।

अब यह देखें कि महाभारत युद्ध में कृष्ण ने क्या कारनामे किए। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

1. जब कृष्ण के मित्र सात्यकि पर सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवा भारी पड़ रहा था तो कृष्ण ने अर्जुन को उकसाया कि उसकी भुजा काट दे। इस प्रकार उन्होंने भूरिश्रवा का वध करने के लिए सात्यकि का रास्ता साफ कर दिया।
2. जब सात कौरव महारथियों ने अभिमन्यु को घेरकर मार डाला तब अर्जुन ने प्रण किया कि यदि वह सूर्यास्त से पूर्व उन सातों के सरगना जयद्रथ का वध नहीं कर देंगे, तो अग्नि में कूदकर प्राण दे देंगे। जब सूर्यास्त का समय था और जयद्रथ जीवित बच गया तो कृष्ण ने माया से सूर्य को छिपा दिया। इस पर जब जयद्रथ बाहर आ गया तो कृष्ण ने माया हटा ली और सूर्य निकल आया और अर्जुन ने जयद्रथ का वध कर दिया।
3. जब द्रोण धर्मयुद्ध में पराजित नहीं हो रहे थे तो कृष्ण ने उन्हें अधर्म युद्ध में पराजित कराया। यदि उनके शस्त्र रखवा दिए जाते तो उन्हें सरलता से समाप्त किया जा सकता है। यह तभी संभव है, जब उनसे कहा जाए कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया। भीम ने बताए तरीके के अनुसार अश्वत्थामा नामक हाथी को मार डाला। द्रोण यह सुनकर निराश तो हुए किंतु उन्हें विश्वास नहीं आया। इस अवसर पर अनेक ऋषियों ने उन पर दबाव डाला कि वे शस्त्र डाल दें और ब्रह्म में ध्यान लगाकर स्वर्गगमन करें। इस पर उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर से अपने पुत्र के विषय में सही सूचना लेनी चाही। जब कृष्ण ने देखा कि युधिष्ठिर झूठ बोलने के लिए तैयार नहीं है तो उन्होंने उन्हें बहुत समझाया। इसी दौरान उन्होंने असत्य भाषण का औचित्य वसिष्ठ स्मृति का उदाहरण

देते हुए बताया—"विवाह में, प्रेम में, मृत्यु भय के समय, सर्वस्व विनाश की आशंका होने पर और तब जब ब्राह्मण का हित दांव पर हो—इन पांच अवसरों पर असत्य भाषण पाप नहीं है।"[1]

युधिष्ठिर का संशय दूर हो गया और उन्होंने कहा "अश्वत्थामा मारा गया है।" फिर दबे स्वर से कहा, "नर नहीं, कुंजर (हाथी)।" वाक्य का अंतिम भाग द्रोण नहीं सुन पाए। वह पूरी तरह टूट गए और भीम की ललकार सुनकर उन्हें विश्वास हो गया। उन्होंने हथियार डाल दिए और जब वे समाधिस्थ थे तो धृष्टद्युम्न ने उनका वध कर दिया।

4. जब भीम द्वैपायन सरोवर पर दुर्योधन से युद्ध कर रहे थे और उसे पराजित करने में असफल थे, तो कृष्ण ने अर्जुन के माध्यम से बताया कि वह उसकी जंघाओं पर प्रहार करें। तगड़ी के नीचे वार करना वर्जित होता था। परंतु यदि अधर्म युद्ध से उसकी जंघाएं न तोड़ी जातीं तो दुर्योधन का वध नहीं हो सकता था। कृष्ण ने भीम से वहीं प्रहार कराया।

कृष्ण का देहावसान उनके चरित्र पर प्रकाश डालता है। कृष्ण का देहांत द्वारिका के राजा के रूप में हुआ। द्वारका कैसी थी और उनका निधन कैसे हुआ?

द्वारका की स्थापना करते समय कृष्ण ने वहां हजारों 'पतिताओं' को बसाया। 'हरिवंश' कहता है—"हे शूरवीर! दैत्यों की नगरी पर यादवों की सहायता से विजय प्राप्त कर भगवान ने सहस्रों वारांगनाओं को द्वारका में बसा दिया।" नाचते-गाते और मदिरा पीते पुरुषों और विवाहित स्त्रियों तथा वेश्याओं (Prostitutes) से द्वारका भर गई। हमें सागर क्रीड़ा का वर्णन मिलता है जिसमें ये स्त्रियां आनन्द का प्रमुख स्रोत थीं। उनके नृत्य और गायन से कृष्ण और बलराम भी अपनी पत्नियों सहित आमोद-प्रमोद में सम्मिलित हुए। उनके साथ ही अन्य यादव सरदार, अर्जुन और नारद भी मिल गए। फिर एक नया उत्साह फैल गया। नर-नारी समुद्र में घुस गए और कृष्ण के कहने पर पुरुष नारियों के साथ जल-क्रीड़ा में लग गए। कृष्ण इस खेल में एक दल के नायक थे और बलराम दूसरे दल के, जबकि गणिकाओं ने इस मनोरंजन में अपना संगीत भी जोड़ दिया। इसके बाद खाना-पीना हुआ और फिर संगीत की विशेष झंकारें निकलीं जिसमें नायकों ने विभिन्न वाद्यों पर अपने कौशल दिखाए। इससे पता चलता है कि यादवगण कितने रंगीले थे और ब्राह्मणों अथवा आधुनिक परिष्कारवादियों को वे कैसा उत्तर देते जो नृत्य मंडलियों और लोकमंचों से नाक-भौं सिकोड़ते हैं। ऐसी ही रंगरेलियां नशे-की तरंग थीं, जिन्होंने यादवों को बरबाद कर दिया। कहा जाता है कि अपने ऐसे ही बचकाने-पन से उन्होंने और बाद

---

1. उद्वाहकाले रतिप्रसंगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे।
विप्रस्य चार्ये ह्यनृतंवदेयुःपंचानृतान्याहुरपातकानि॥

(वसिष्ठ स्मृति 16/31)

में उनके वंशजों ने ऋषियों को अप्रसन्न कर दिया। इन चुहलबाज युवकों ने कृष्ण के एक पुत्र साम्य को स्त्री के ऐसे वस्त्र पहना दिए, जिससे लगे कि उसको गर्भ ठहरा हुआ है। उसकी नाभि के नीचे लोहे की मूसली लटका दी और ऋषि से पूछा, "यह स्त्री क्या जनेगी?" क्रोध से भरे ऋषि ने कहा, "यह स्त्री मूसली जनेगी, जिससे यादवों का विनाश होगा।" शाप से भयभीत होकर वे मूसली को समुद्र के किनारे ले गए और उसे घिस-घिसकर बुरादा बना दिया। परंतु इसके कणों से धारदार सरकंडे (एरक) पैदा हुए जिसकी उन्होंने संटिया बना लीं। इन्हीं संटियों से मार-मारकर यादवों ने परस्पर संहार कर डाला। मूंसल का अंतिम हिस्सा, जो उन्होंने समुद्र में फेंक दिया था, वह बाद में एक शिकारी को मिल गया और उसने अपने तीर के आगे लगाकर उसे नुकीला बना लिया। वे आमोद-प्रमोद के लिए प्रभास गए। वहां उन्होंने सुरापान किया और यही उनके विनाश का कारण बना। सुरापान की लत इतनी फैल गई कि कृष्ण और अन्य यादव प्रमुखों ने इसे मौत का पैगाम बताकर इसे प्रतिबंधित कर दिया। लेकिन इसका कोई असर नहीं हुआ। नशे में धुत्त यादवों में झगड़ा हुआ और फिर मारपीट हुई। इससे उन्होंने एक-दूसरे को मार गिराया। जब कृष्ण के अपने पुत्र मारे गए तो वह भी लड़ाई में कूद पड़े और बहुत से अपने ही लोगों को मौत के घाट उतार दिया। फिर बलराम की खोज में गए। उन्होंने देखा कि वह समाधि में बैठे हैं और शेषनाग के रूप में उनकी आत्मा, जिसका वह अवतार थे, शरीर छोड़ रही है। कृष्ण ने विचार किया कि अब उनके भी प्रयाण का समय आ गया है। तब उन्होंने अपने पिता और पत्नियों से विदा ली और उनसे कहा कि अर्जुन उनकी देखभाल करेंगे। तब वह एक वृक्ष के नीचे बैठ गए और पत्तियों वाली शाखाओं में छिपकर ध्यानमग्न हो गए। जब वह इस प्रकार बैठे थे, तो जरा नामक शिकारी ने उन्हें भूल से हिरन समझ लिया और उन पर वही तीर चला दिया, जो मूसली की बची हुई कील से उसने बनाया था। अपनी गलती जानकर जरा उनके पैरों पर गिर पड़ा। कृष्ण ने उसे क्षमा कर दिया और एक ज्योति-पुंज बन कर आकाश में विलीन हो गए। अर्जुन आकर बचे-खुचे यादवों को हस्तिनापुर ले गए। लेकिन उस अनुपम धनुर्धर का तेज नष्ट हो गया और उनकी भुजाओं की शक्ति जाती रही। कुछ लाठीधारी अहीरों ने उन पर आक्रमण कर दिया और बहुत सारी स्त्रियों को छीनकर ले गए और वह थोड़े-बहुत लोगों को ही हस्तिनापुर ला सके। अर्जुन के जाने के बाद द्वारका समुद्र में डूब गई और यादवों और उनका वैभव, उनके पारिवारिक विवाद और उनकी रंगरेलियां सभी का नाम-निशान मिट गया।

अतिरिक्त परिशिष्ट

शूद्रों की रिडल

'शूद्रों की रिडल' बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर कृत प्रसिद्ध ग्रंथ 'शूद्रों की खोज' में एक अध्याय के रूप में सम्मिलित है। अपने पाठकों की सुविधा के लिए उस रिडल को भी यहां सम्मिलित कर लिया गया है।

यह हर कोई जानता है कि शूद्र लोग भारतीय-आर्य समुदाय का चौथा वर्ण थे। किंतु बहुत कम लोगों ने यह पता करने का कष्ट किया है कि ये शूद्र थे कौन और वे चौथा वर्ण कैसे बने। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार का अन्वेषण सर्वोच्च महत्त्व का है; क्योंकि यह बात जानने योग्य है कि शूद्र चौथे स्थान पर कैसे आए, इसका कारण उद्‌विकास था अथवा क्रांति।

शूद्र कौन थे और वे चौथा वर्ण कैसे बने, इसे जानने के लिए सबसे पहले भारतीय-आर्य समुदाय में चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति के विषय में जानना होगा। और चातुर्वर्ण्य के अध्ययन के लिए सबसे पहले ऋग्वेद के दसवें मंडल के नब्बेवें सूक्त का अध्ययन करना होगा—यह पुरुष सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है।

यह सूक्त क्या कहता है? यह कहता है[1]—

"1. विराट पुरुष के हजार शीर्ष, हजार आंखें और हजार चरण हैं, वह धरती को चारों ओर से घेरकर उससे दस अंगुल अधिक स्थित है।

2. जो कुछ हो चुका है अथवा होने वाला है, वह सब विराट पुरुष ही है, वह अमृत का स्वामी है, क्योंकि वह कारण अवस्था छोड़कर जगत अवस्था को धारण करता है, इस प्रकार प्राणी उसको भोगते हैं।

3. यह सारा ब्रह्मांड विराट पुरुष की महिमा है। वे स्वयं इससे बड़े हैं। सभी प्राणी उसके चौथाई अंश हैं। इनके तीन मरणरहित अंश दिव्यलोक में रहते हैं।

4. तीन चरणों वाले विराट पुरुष ऊपर उठे, उनका केवल एक चरण यहां स्थित रहा। इसके पश्चात वे भोजन करने वाली एवं भोजन न करने वाली वस्तुओं के रूप में व्याप्त हुए।

---

1. ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 90 : 1-16

5. उस आदि पुरुष से ब्रह्मांडरूपी विराट उत्पन्न हुआ। ब्रह्मांडरूपी विराट से अनेक पुरुष उत्पन्न हुए। उत्पन्न होने के पश्चात वह ब्रह्मांड से बड़ा हुआ। इसके बाद उसने भूमि बनाई और भूमि से जीवों का शरीर बनाया।

6. जब पुरुषरूप काल्पनिक हवि से देवों ने यज्ञ का विस्तार किया, उस समय वसंत ऋतु को घी, ग्रीष्म को काष्ठ तथा शरद ऋतु को हवि बनाया।

7. सारी सृष्टि से पहले उत्पन्न पुरुष को यज्ञसाधन के रूप में बलिपशु बनाकर देवों ने काल्पनिक यज्ञ किया। इस साधन से देवों, साध्यों और ऋषियों ने यज्ञ किया।

8. जिस काल्पनिक यज्ञ में उस सर्वात्मक पुरुष का हवन किया जाता है, उससे दही से मिला हुआ घी उत्पन्न हुआ। उसी से वायुदेव से सम्बंधित जंगली और ग्रामीण पशु भी उत्पन्न हुए।

9. उस सर्वात्मक पुरुष के काल्पनिक होम वाले यज्ञ से ऋक् और साम उत्पन्न हुए। उसी से छंद उत्पन्न हुए और यजु की उत्पत्ति हुई।

10. उसी यज्ञ से घोड़े उत्पन्न हुए, जिनके मुंह में ऊपर-नीचे दोनों ओर दांत थे। उसी से गाएं, बकरियां और भेड़ें उत्पन्न हुईं।

11. प्रजापति के प्राणिरूप देवों ने जब विराट पुरुष को संकल्प से उत्पन्न किया, तब उन्हें कितने प्रकार से उत्पन्न किया? उनका मुख, भुजाएं, जंघाएं (=ऊरु) और चरण कौन से कहलाते हैं?

12. ब्राह्मण इनका मुख हुआ। क्षत्रिय को भुजाएं बनाया गया। इनकी दोनों जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुए।

13. पुरुष के मन से चंद्रमा, आंखों से सूर्य, मुख से इंद्र व अग्नि तथा प्राण से वायु उत्पन्न हुए।

14. पुरुष की नाभि से अंतरिक्ष, शीश से द्योलोक, चरणों से भूमि व कान से दिशाएं और लोक उत्पन्न हुए।

15. देवों ने जिस समय काल्पनिक यज्ञ का विस्तार करते हुए विराट पशु को बलि पशु के रूप में बांधा, उस समय यज्ञ की सात परिधियां और इक्कीस समिधाएं बनाई गईं।

16. देवों ने मानसिक यज्ञ के द्वारा भौतिक यज्ञ विस्तृत किया, उससे सभी विकारों को धारण करने वाले धर्म सबसे पहले उत्पन्न हुए। जिस स्वर्ग में प्राचीन साध्य एवं देव हैं, उसे उपासक महापुरुष प्राप्त करते हैं।''

'पुरुष सूक्त' विश्व की उत्पत्ति का सिद्धांत है। दूसरे शब्दों में, यह एक सृष्टि मीमांसा है। चिंतन की उन्नत अवस्था तक पहुंचे प्रत्येक राष्ट्र ने किसी न किसी प्रकार की

सृष्टि-मीमांसा विकसित की है। मिस्रियों की सृष्टि-मीमांसा कुछ-कुछ वैसी ही थी जैसी पुरुष सूक्त में प्रस्तुत की गई है। इसके अनुसार[1] 'रूपकार' देवता ख्नूमू ने ही जीवधारियों को कुम्हार के चाक पर बनाया, "जो कुछ भी है उसका सृजन किया, जो कुछ भी अस्तित्व में है उसे बनाया, वह पिताओं का पिता और माताओं की माता है... उसने मनुष्यों को गढ़ा, उसने देवताओं को बनाया, वह आरंभ से ही पिता था...वही स्रष्टा है स्वर्ग, पृथ्वी, अधोलोक, जल, पर्वतों का...उसी ने बनाया समस्त पक्षियों, मछलियों, वन्य पशुओं, मवेशियों और समस्त कीड़ों को नर और मादा (के जोड़े) में।" इसी से बहुत कुछ मिलती-जुलती सृष्टि-मीमांसा (बाइबिल के) पुराना नियम की (पहली पुस्तक) 'उत्पत्ति' के प्रथम अध्याय में मिलती है।

सृष्टि-मीमांसाएं सदैव शैक्षिक रुचि का विषय ही रही हैं और उन्होंने केवल शिक्षार्थियों की जिज्ञासा को शांत करने और बच्चों का मनोरंजन करने से अधिक और कुछ नहीं किया है। यह बात पुरुष सूक्त के कुछ अंशों के संदर्भ में तो सही हो सकती है, किंतु यह पूरे पुरुष सूक्त के बारे में सही नहीं हो सकती। इसका कारण यह है कि पुरुष सूक्त के सभी मंत्र समान रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं और उनकी सार्थकता भी समान नहीं है। मंत्र 11 और 12 एक श्रेणी में आते हैं और शेष मंत्र अन्य श्रेणी में आते हैं। मंत्र 11 और 12 को छोड़ अन्य मंत्रों को शैक्षिक रुचि का माना जा सकता है। कोई उन पर निर्भर भी नहीं करता। कोई हिंदू उन्हें याद भी नहीं रखता। किंतु 11 और 12 मंत्रों की बात अलग है। पहली दृष्टि में देखने पर ये मंत्र बस यह बताते हैं कि चार वर्गों अर्थात (1) ब्राह्मण अथवा पुरोहित, (2) क्षत्रिय अथवा सैनिक, (3) वैश्य अथवा व्यापारी, और (4) शूद्र अथवा दास की उत्पत्ति स्रष्टा (ब्राह्मण) के शरीर से किस प्रकार हुई। कितु सत्य यह है कि इन मंत्रों को मात्र एक ब्रह्मांडीय परिघटना की व्याख्या के रूप में नहीं समझा जाता है। यह मानना भयंकर भूल होगी कि भारतीय-आर्य लोग इन्हें एक कवि की कपोल-कल्पना मानते थे। उन्हें स्रष्टा के इस अपरिहार्य आदेश के रूप में देखा जाता है कि समाज का गठन सूक्त में उल्लिखित चार वर्गों के आधार पर ही किया जाना चाहिए। उपर्युक्त मंत्रों की रचना में प्रयुक्त भाषा शायद उसके अनुकूल न हो। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि पारंपरिक रूप में इन मंत्रों को इसी अर्थ में लिया गया है, और यह कहना सचमुच मुश्किल होगा कि यह पारंपरिक रचना सूक्त के लेखक के अभिप्राय से मेल नहीं खाती है। इसलिए पुरुष सूक्त के मंत्र 11 और 12 मात्र सृष्टि मीमांसा (विश्व की उत्पत्ति का सिद्धांत) नहीं हैं। उनमें यह दैवीय अथवा ईश्वरीय आदेश निहित है कि समाज का गठन एक विशिष्ट रूप में होना चाहिए।

पुरुष सूक्त में समाज के गठन के जिस स्वरूप का निर्देश दिया गया है उसे चातुर्वर्ण्य के रूप में जाना जाता है। एक दैवीय निर्देश के रूप में यह स्वाभाविक

---

1. एनसाइक्लोपीडिया ऑव रिलीजन ऐंड एथिक्स, खंड चार, पृष्ठ 145

तौर पर भारतीय-आर्य समुदाय का आदर्श बन गया। चातुर्वर्ण्य के आदर्श का यही सांचा था जिसमें भारतीय-आर्य समुदाय अपनी प्रारंभिक अथवा तरल अवस्था में ढला था। यही वह सांचा है जिसने भारतीय-आर्य समुदाय को उसका विशिष्ट रूप और ढांचा प्रदान किया।

चातुर्वर्ण्य के इस आदर्श सांचे के प्रति भारतीय-आर्य समुदाय की यह जो श्रद्धा थी वह संदेह से तो परे है ही, यह अवर्णनीय भी है। भारतीय-आर्य समुदाय पर इसका गहरा और अमिट प्रभाव रहा है। पुरुष सूक्त द्वारा निर्दिष्ट सामाजिक व्यवस्था पर बुद्ध के अतिरिक्त और किसी ने कभी कोई सवाल खड़ा नहीं किया। बुद्ध भी इसे हिला नहीं पाए, क्योंकि बौद्ध धर्म के पतन के बाद और बौद्ध काल के दौरान भी ऐसे अनेक विधिकार थे जिन्होंने पुरुष सूक्त के आदर्श का बचाव करने और उसे प्रचलित तथा व्याख्यायित करने को भी अपना धंधा बना लिया था।

पुरुष सूक्त के समर्थन में किए गए इस प्रचार के कुछ उदाहरणों के संदर्भ में 'आपस्तम्ब धर्मसूत्र' और 'वसिष्ठ धर्मसूत्र' का उल्लेख किया जा सकता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है–

> "चार जातियां (वर्ण) हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनमें, पहले उल्लिखित प्रत्येक (जाति) अपने बाद वाली जाति से जन्म के आधार पर श्रेष्ठ है।[1]
>
> शूद्रों और उन लोगों को छोड़ जिन्होंने बुरे कर्म किए हैं, सभी को (1) उपनयन (अथवा पवित्र जनेऊ पहनने का), (2) वेदों के अध्ययन का, और (3) पवित्र अग्नि प्रज्वलित करने (यज्ञ करने) का अधिकार है।[2]
>
> यही कथन वसिष्ठ धर्मसूत्र में भी दोहराया गया है, जिसमें कहा गया है–
>
> "चार जातियां (वर्ण) हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।
>
> तीन जातियां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज (कहलाती हैं)।
>
> उनका पहला जन्म उनकी मां से होता है; दूसरा पवित्र सूत्र धारण करने (यज्ञोपवीत) से। उस (दूसरे जन्म) में मां सावित्री होती है, किंतु शिक्षक को पिता बताया जाता है।
>
> वे शिक्षक को पिता कहते हैं, क्योंकि वह उन्हें वेद की शिक्षा देता है।[3]
>
> चारों जातियों में जन्म और संस्कार के आधार पर अंतर होता है।

---

1. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 4-5
2. प्रश्न 1, पटल 1, खंड 1, सूत्र 6
3. अध्याय II, श्लोक 1-4

वेद का यह अंश भी है, ''ब्राह्मण उसका मुख था, क्षत्रिय उसकी भुजाएं, वैश्य उसकी जंघाएं; शूद्र उसके पैरों से जन्मा।"

आगामी अंश में यह घोषित है कि "शूद्र संस्कारों को प्राप्त नहीं करेगा।''

अन्य अनेक विधिकारों ने तोते की तरह पुरुष सूक्त के कथ्य को ही दोहराया है और इसकी पवित्रता की पुनरुक्ति की है। यहां उनके कथन को दोहराना अनावश्यक है। जिन्होंने पुरुष सूक्त में निर्धारित आदर्श की पवित्रता का थोड़ा भी विरोध किया था, उन्हें अंततः हिंदू समाज के निर्माता मनु ने शांत कर दिया। क्योंकि मनु ने दो काम किए। पहले तो, उसने पुरुष सूक्त के आदर्श को दैवीय आदेश के एक अंग के रूप में नए सिरे से प्रतिपादित किया। उसने कहा–

''लोकों की समृद्धि के लिए, उसने (स्रष्टा ने) अपने मुख, भुजाओं, जांघों और पैरों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की रचना की।[1]

ब्राह्मण, क्षत्रिय (और) वैश्य तीन द्विज जातियां हैं; किंतु चौथी (जाति) शूद्र का केवल एक जन्म होता है।''[2]

अपने इस कथन में मनु निस्संदेह अपने पूर्ववर्तियों का ही अनुसरण कर रहा था। किंतु उसने एक कदम और बढ़ते हुए एक अन्य प्रतिपादन किया जिसमें उसने कहा–

''वेद ही धर्म का एकमात्र और अंतिम विधान है।''[3]

यदि इस बात को ध्यान में रखा जाए कि पुरुष सूक्त ती वेद का ही एक हिस्सा है, तो यह आसानी से समझ में आ जाएगा कि मनु ने पुरुष सूक्त में निहित चातुर्वर्ण्य के सामाजिक आदर्श को दिव्यता और अमोघत्व का पुट दिया जो पहले उसमें नहीं था।

II

इसलिए पुरुष सूक्त की समालोचनात्मक विवेचना निहायत जरूरी हो जाती है।

हिंदू लोग यह दावा करते हैं कि पुरुष सूक्त अनूठा है। निस्संदेह यह उस विचार के विषय में बढ़-चढ़ कर किया गया दावा है जिसका प्रादुर्भाव तब हुआ था जब मनुष्य का मस्तिष्क आदिम अवस्था में था और उसे आज के जमाने के विविध चिंतन उपलब्ध नहीं थे। किंतु इस दावे को स्वीकार करने में अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए बशर्ते कि यह समझ लिया जाए कि यह किस मायने में अनूठा है।

पुरुष सूक्त को अनूठा मानने का मुख्य आधार यह है कि सामाजिक संगठन के जिस

---

1. *मनु, अध्याय I, श्लोक 31*
2. *मनु, अध्याय X, श्लोक 4*
3. *मनु, अध्याय II, श्लोक 6*

आदर्श अर्थात चातुर्वर्ण्य के आदर्श का समर्थन यह सूक्त करता है वह अपने आप में अनूठा अथवा बेजोड़ है। क्या पुरुष सूक्त को बेजोड़ मानने का यह पर्याप्त आधार है? पुरुष सूक्त तब सचमुच बेजोड़ होता यदि इसने वर्गहीन समाज को एक आदर्श समाज के रूप में प्रस्तुत किया होता। किंतु पुरुष सूक्त ने किया क्या है? यह तो वर्गों में विभाजित समाज को अपना आदर्श बताता है। क्या इसे बेजोड़ माना जा सकता है? केवल एक राष्ट्रवादी और एक राष्ट्रभक्त ही इसका उत्तर 'हां' में दे सकता है। वर्गों की विद्यमानता उस प्रत्येक समाज की वास्तविकता रही है जो नितांत आदिम नहीं है। यह समूचे विश्व में समाज की सामान्य अवस्था रही है जहां समाज अपेक्षाकृत उन्नत अवस्था में है। इसे इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो पुरुष सूक्त में क्या अनूठापन हो सकता है जबकि यह उस वर्गीय संरचना को मान्यता देने से अधिक और कुछ नहीं करता जो भारतीय-आर्य समुदाय में विद्यमान थी?

इसके बावजूद, पुरुष सूक्त को अनूठा मानना ही चाहिए, किंतु बिलकुल अलग कारणों से। इसका दुर्योगपूर्ण पक्ष यह है कि अनेक लोगों को उन असली कारणों की जानकारी नहीं है जिनके आधार पर पुरुष सूक्त को अनूठा मानना चाहिए। किंतु जब असली कारण का पता चल जाएगा, तो लोगों को यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होगा कि पुरुष सूक्त मानव बुद्धि की एक अनूठी उपज है, किंतु उन्हें यह जानकर शायद धक्का लगेगा कि यह मानव चतुरता की कितनी विलक्षण उपज है।

पुरुष सूक्त के सामाजिक आदर्श की वे कौन-सी विशेषताएं हैं जो इसे अनूठा अथवा बेजोड़ बनाती हैं? हालांकि वर्गों का विद्यमान होना प्रत्येक समाज की तथ्यपरक शर्त है, फिर भी किसी समाज ने इस तथ्यपरक स्थिति को एक आदर्श समाज की दिशा में वैधानिक जामा नहीं पहनाया। पुरुष सूक्त की योजना ही एक मात्र ऐसा उदाहरण है जिसमें यथार्थ को आदर्श की गरिमापूर्ण ऊंचाई तक ले जाया गया है। पुरुष सूक्त में प्रस्तुत योजना की यह पहली अनूठी विशेषता है। दूसरी बात, किसी समुदाय ने वर्गीय गठन की तथ्यपरक स्थिति को कानूनी प्रभाव देने के लिए उसे एक आदर्श समाज के वैधानिक अभिधार्थ के रूप में स्वीकार नहीं किया। यहां यूनानियों का उदाहरण प्रासांगिक होगा। वर्ग-व्यवस्था को एक आदर्श सामाजिक संरचना के रूप में अफलातून (प्लेटो) जैसे महान पक्षकार ने प्रस्तुत किया था। किंतु यूनानियों ने कानून सम्मत बनाकर इसे वास्तविक बनाने के बारे में कभी नहीं सोचा। पुरुष सूक्त ही ऐसा एक मात्र उदाहरण है जिसमें कानून की स्वीकृति के माध्यम से आदर्श को यथार्थ बनाने का प्रयास किया गया। तीसरी बात, किसी भी समाज ने यह स्वीकार नहीं किया है कि वर्ग व्यवस्था एक आदर्श है। अधिक से अधिक, उन्होंने इसकी स्वाभाविकता को स्वीकार किया है। पुरुष सूक्त तो इससे भी बढ़ कर है। यह वर्ग व्यवस्था को केवल स्वाभाविक और आदर्श ही नहीं मानता, बल्कि इसे पवित्र और दैवीय भी मानता है। चौथी बात, किसी भी ज्ञात समाज में वर्गों की संख्या हठधर्मिता पर आधारित नहीं रही। रोमन समाज में दो वर्ग थे। मिस्रियों के

विचार से उनके लिए तीन वर्ग पर्याप्त थे। भारतीय-ईरानी लोगों में भी तीन से अधिक वर्ग नहीं थे–[1] (1) अथर्वन् (पुरोहित), (2) रथेश्तर (सैनिक), और (3) वस्त्र्य फ्शूयत (किसान)। पुरुष सूक्त की योजना समाज के चार वर्गों में विभाजन को हठधर्मिता का मामला बना देती है। इसके अनुसार इससे न अधिक हो सकता है और न कम। पांचवीं बात, प्रत्येक समाज एक वर्ग को छोड़ देता है जिससे समाज में इसके महत्त्व के अनुसार अन्य वर्गों के बरक्स उसकी स्थिति का पता लगाया जा सके, जिसका निर्धारण समय-समय पर काम करने वाली शक्तियों द्वारा किया जाता है। किसी भी समाज में आधिकारिक तौर पर कोई ऐसा वर्गीकरण अथवा श्रेणी विभाजन नहीं किया जाता जो निश्चित और स्थायी हो और जिसमें ऊंचे पायदान पर अवस्थित वर्ग को सम्मान और निचले पायदान पर अवस्थित वर्ग को घृणा अथवा अवमानना मिले। पुरुष सूक्त की योजना इस मायने में अनूठी है कि यह विभिन्न वर्गों अथवा वर्णों को ऊंच-नीच के आधार पर एक स्थायी श्रेणी में जड़ीभूत कर देती है जिसे न समय बदल सकता है और न ही परिस्थितियां। यह चार वर्गों के बीच वर्गीकृत असमानता के सिद्धांत पर आधारित है, जिसके अनुसार ब्राह्मण सर्वोपरि होता है, क्षत्रिय उससे नीचे किंतु वैश्य और शूद्र से ऊपर होता है, वैश्य तो क्षत्रिय से नीचे किंतु शूद्र से ऊपर होता है, और शूद्र सबसे नीचे होता है।

III

पुरुष सूक्त के बेजोड़ होने के यही असली कारण हैं। किंतु, पुरुष सूक्त केवल बेजोड़ ही नहीं है, यह असाधारण भी है। यह असाधारण इसलिए है क्योंकि इसमें जटिलताओं की भरमार है। बहुत कम लोग इन जटिलताओं से अवगत हैं। किंतु यदि छानबीन की जाए तो यह पता चलेगा कि ये जटिलताएं कितनी वास्तविक और कितनी विचित्र हैं। पुरुष सूक्त में सृष्टि की रचना का जो सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है वह ऋग्वेद में उपलब्ध विश्वोत्पत्ति का एक मात्र सिद्धांत नहीं है। ऋग्वेद के दसवें मंडल के 72वें सूक्त में एक अन्य सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ है। इसमें लिखा है–[2]

"1. हम स्पष्ट शब्दों में देवों की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं। ये देव भविष्य में स्तोत्रों के उच्चारण के समय स्तोता को देखेंगे।

2. लोहार जिस प्रकार धौंकनी चलाता है, उसी प्रकार ब्रह्मणस्पति ने देवों को उत्पन्न किया। देवों से पूर्व के समय में असत् से सत् उत्पन्न हुआ।

3. देवों की उत्पत्ति से पहले के समय में असत् से सत् उत्पन्न हुआ। इसके बाद दिशाएं उत्पन्न हुईं। दिशाओं से वृक्ष उत्पन्न हुए।

---

1. *गाइगर : सिविलाइजेशन ऑव दि ईस्टर्न ईरानियन्स इन एनशिएंट टाइम्स, खंड II, पृष्ठ 64*
2. *विल्सन कृत ऋग्वेद, खंड VI, पृष्ठ 129*

4. वृक्षों से भूमि उत्पन्न हुई एवं भूमि से दिशाएं उत्पन्न हुईं। अदिति से दक्ष उत्पन्न हुए और बाद में दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई।
5. हे दक्ष! तुम्हारी पुत्री अदिति ने देवों को उत्पन्न किया। अदिति के पश्चात प्रशंसनीय एवं अमृत के बंधु देवों ने जन्म लिया।
6. हे देवो! जब तुम इस जल में रहकर अपने को जानते हुए स्थित थे, तब तुम नृत्य सा करने लगे। इससे बहुत धूल उड़ी।
7. बादल जिस प्रकार वर्षा द्वारा संसार को भरते हैं, उसी प्रकार देवों ने संसार को ढक लिया। उन्होंने सागर में ढके हुए सूर्य को चमकने के लिए बाहर निकाला।
8. अदिति के शरीर से आठ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें से सात के साथ वह देवलोक में चली गई। आठवां सूर्य आकाश में स्थित हुआ।
9. प्राचीनकाल में अदिति सात पुत्रों के साथ देवलोक में चली गई। केवल सूर्य को प्रजाओं के जन्म-मरण के लिए आकाश में स्थिर किया।"

सृष्टि की उत्पत्ति से सम्बंधित ये दोनों सिद्धांत बुनियादी तौर पर और विस्तार रूप में भी परस्पर भिन्न हैं। पहले सिद्धांत में सृष्टि की उत्पत्ति 'पुरुष' नामक सत्ता से बताई गई है। दूसरे सिद्धांत में असत् से सत् की सृष्टि बताई गई है। एक ही ग्रंथ में इस तरह के दो विरोधी सिद्धांत क्यों प्रतिपादित किए गए? पुरुष सूक्त के लेखक ने यह क्यों जरूरी समझा कि पहले एक 'पुरुष' को स्थापित किया जाए और सारी सृष्टि को उससे उत्पन्न कराया जाए?

पुरुष सूक्त को पढ़ने वाला कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि इसका आरंभ गधों, घोड़ों, बकरों आदि की रचना से होता है, किंतु यह सूक्त मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में सर्वथा मौन है। जहां मनुष्य की उत्पत्ति की बात करना स्वाभाविक था, वहां आकर यह कड़ी टूट जाती है और आर्य समुदाय में वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या की जाने लगती है। वास्तव में, लगता तो यही है कि पुरुष सूक्त का मुख्य सरोकार आर्य समुदाय के चार वर्गों अथवा वर्णों की व्याख्या ही रही है। इस प्रक्रिया में पुरुष सूक्त केवल अन्य धर्मशास्त्रों के ही नहीं बल्कि ऋग्वेद के अन्य भागों के भी बिलकुल विपरीत चला गया है।

किसी भी धर्मशास्त्र ने समाज में विद्यमान वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या को अपना उद्देश्य नहीं बनाया है। (बाइबिल के) पुराना नियम की (प्रथम पुस्तक) 'उत्पत्ति' के प्रथम अध्याय को भी अभिप्राय और उद्देश्य की दृष्टि से पुरुष सूक्त के सदृश ही कहा जा सकता है, किंतु उसमें भी केवल मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में समझाया गया है, उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा गया। ऐसा नहीं है कि प्राचीन यहूदी समाज में वर्गों का वजूद नहीं था। सामाजिक वर्ग तो सभी समाजों में थे। भारतीय आर्य लोग भी इसका अपवाद नहीं थे। फिर भी, किसी धर्मशास्त्र ने कभी यह बताना जरूरी नहीं समझा कि वर्गों की उत्पत्ति कैसे हुई। फिर पुरुष सूक्त ने ही सामाजिक वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या करने को अपना मुख्य सरोकार क्यों बनाया?

ऋग्वेद में केवल पुरुष सूक्त ही ऐसा एकमात्र स्थल नहीं है जहां सृष्टि की रचना के विषय में चर्चा की गई है। ऋग्वेद में ऐसे अन्य स्थल भी हैं जहां इसी विषय का उल्लेख हुआ है। इस सम्बंध में, ऋग्वेद के निम्नलिखित अंश का उल्लेख किया जा सकता है–[1]

"अग्नि ने वायु की पूर्वकाल कृत एवं गुणनिष्ठ स्तुति को सुनकर इस मानवीय प्रजा को उत्पन्न किया है एवं आच्छादक तेज के आकाश को व्याप्त किया है। ऋत्विजों ने धनदाता अग्नि को धारणा किया है।"

इसमें, वर्णों के अलग निर्माण का बिलकुल भी उल्लेख नहीं है, हालांकि इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऋग्वेद के समय में भी भारतीय-आर्य समुदाय में विभिन्न वर्णों का विभेद हो चुका था। फिर भी, ऋग्वेद के उपर्युक्त अंश में वर्णों का उल्लेख न करते हुए केवल मनुष्य की रचना का वर्णन किया गया है। फिर पुरुष सूक्त में और भी आगे जाकर वर्णों की उत्पत्ति की बात क्यों कही गई?

पुरुष सूक्त एक और संदर्भ में ऋग्वेद के विरुद्ध जाता है। ऋग्वेद तो भारतीय-आर्यों की उत्पत्ति के विषय में एक लौकिक सिद्धांत का प्रतिपादन करता है, जैसा कि निम्नलिखित अंशों से स्पष्ट है–

(1) "अथर्वा ऋषि, समस्त प्रजा के पिताओं के तुल्य मनु एवं अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि ने जितने भी यज्ञ कर्म किए, उनमें प्रयुक्त हवि रूप अन्न एवं स्तोत्र प्राचीन यज्ञों की तरह इन्द्र को ही प्राप्त हुए थे।"[2]

(2) "हे रुद्र हमारे निमित्त तुम सुखकारक बनो एवं हमें सुख प्रदान करो। हम नमस्कारपूर्वक वीरनाशक रुद्र की सेवा करते हैं। पिता मनु ने जो रोगशांति और निर्भयता प्राप्त की थी, हे रुद्र! तुम्हें नमस्कार करने पर हम भी उन्हें प्राप्त करें।"[3]

(3) "हे अभीष्टवर्षक मरुद्गण! तुम्हारी जो औषधियां शुद्ध एवं अत्यधिक सुख देने वाली हैं, जिन्हें हमारे पिता मनु ने पसंद किया था, रुद्र की उन्हीं सुखदायक व भयानक औषधियों की हम इच्छा करते हैं।"[4]

(4) "प्रमुख एवं पूजनीय यजमानों के यज्ञकर्मों में सुंदर इंद्र आते हैं। देवों के मध्य में प्रजाओं के पालक मनु ने ही इंद्र को पाने का द्वार प्राप्त किया था।"[5]

(5) "यज्ञ को सिद्ध करने वाले देवों तथा ऋत्विजों के साथ यज्ञकर्म द्वारा यजमान के भांति-भांति के यज्ञों को पूर्ण करने वाले, सारे लोक के

1. *ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 96.2*
2. *ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 80.16*
3. *ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 114.2*
4. *ऋग्वेद, मंडल 2, सूक्त 33.13*
5. *ऋग्वेद, मंडल 8, सूक्त 52.1*

नेता, शीघ्र काम करने वाले, दानशील एवं शत्रुनाशक अग्नि धरती और आकाश के बीच जाते हैं।''[1]

(6) ''हे सुंदर ऋभुओ एवं वाजगण! जिस प्रकार तुम दिवसों को शोभन बनाने के लिए मनुष्यों का यज्ञ धारण करते हो, उसी प्रकार देवमार्गों द्वारा हमारे यज्ञ में आओ।''[2]

(7) ''अग्नि ही उत्तम ज्ञानसंपन्न है, वह यज्ञ कर्मों के कुशलतम कर्ता एवं सबके द्रष्टा हैं। यजमानों के ऋत्विज यज्ञों में अग्नि को देवों का बुलाने वाला बताकर स्तुति करते हैं।''[3]

इन पाठों से यह तो बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि ऋग्वेद के स्तोत्रों के रचयिता ऋषिगण मनु को भारतीय-आर्यों का जनक मानते थे। मनु के भारतीय-आर्यों का जनक होने सम्बंधी इस सिद्धांत का आधार इतना गहरा था कि इसे ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों ने भी आगे बढ़ाया। इसका प्रतिपादन ऐतरेय ब्राह्मण[4] में, विष्णु पुराण[5] और मत्स्य पुराण[6] में हुआ है। यह सच है कि उन्होंने ब्रह्मा को मनु का जनक बताया है, किंतु मनु के जनक होने सम्बंधी ऋग्वेद के सिद्धांत को उन्होंने स्वीकार किया है और उसका पोषण भी किया है।[7] पुरुष सूक्त में मनु का कोई उल्लेख क्यों नहीं है? यह विचित्र है क्योंकि यह प्रतीत होता है कि पुरुष सूक्त के लेखक को इस तथ्य का ज्ञान था कि मनु स्वयंभुव को विरज कहा जाता है और विरज को आदि पुरुष कहा जाता है,[8] क्योंकि वह भी सूक्त के पांचवें स्तोत्र में विरज आदि पुरुष की बात करता है—**विरजो अधि पुरुषाः।**

एक तीसरी बात और है जिसे लेकर पुरुष सूक्त ऋग्वेद से भी आगे चला गया है।

---

1. *ऋग्वेद, मंडल 3, सूक्त 3.6*
2. *ऋग्वेद, मंडल 4, सूक्त 37.1*
3. *ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 14.2*
4. *मूइर द्वारा उद्धृत, खंड 1, पृष्ठ 108, ओरिजिनल संस्कृत टेक्स्ट्स (मूल अंग्रेजी)*
5. *मूइर द्वारा उद्धृत, खंड 1, पृष्ठ 105-107*
6. *मूइर द्वारा उद्धृत, खंड 1, पृष्ठ 110-112*
7. *बहरहाल, इसके विस्तार में जाने पर अत्यधिक भ्रम की स्थिति बनती है। विष्णु पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने स्वयं को दो भागों में विभक्त किया—आधे भाग से वह नर बना, आधे भाग से नारी। वह नारी शतरूपा कहलाई और उसने निरंतर घोर तपस्या करके मनु स्वयंभुव नामक नर को पति रूप में प्राप्त कर लिया। विष्णु पुराण में ब्रह्मा द्वारा अपनी पुत्री के साथ सहवास करने का कोई संकेत नहीं मिलता। दूसरी ओर, ऐतरेय ब्राह्मण और मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने अपनी पुत्री शतरूपा के साथ सहवास किया जिससे मनु उत्पन्न हुआ; मत्स्य पुराण में यह भी कहा गया है कि मनु ने तप के बल पर अनंता नाम की एक सुंदर पत्नी को प्राप्त किया। रामायण के अनुसार (देखिए मूइर, 1, पृष्ठ 117) मनु एक नर नहीं अपितु नारी थी, और वह दक्ष प्रजापति की पुत्री और कश्यप की पत्नी थी।*
8. *मत्स्य पुराण, मूइर, खंड 1, पृष्ठ 111 F.n.*

वैदिक-आर्य सभ्यता के स्तर पर काफी उन्नत थे और यह स्वाभाविक है कि उन्होंने श्रम-विभाजन का सूत्रपात किया होगा। वैदिक आर्यों के समुदाय में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न व्यवसाय करते थे। वे लोग इससे अवगत थे, इसका प्रमाण निम्नलिखित ऋचा में मिलता है–

"उषा किसी को धन के लिए, किसी को अन्न के लिए, किसी को महायज्ञ के लिए एवं किसी को अभीष्ट वस्तु प्राप्ति के लिए जगाती है। वह नानारूप जीविकाओं के निमित्त समस्त विश्व को प्रकाशित करती है।"[1]

ऋग्वेद में इतना ही कहा गया है। किंतु पुरुष सूक्त इससे भी आगे की बात करता है। यह श्रम-विभाजन की धारणा को कामगारों के विभाजन की योजना में परिणत कर देता है; जिसमें व्यावसायिक श्रेणियां नियत और स्थायी हैं। पुरुष सूक्त ऐसा विकृत कृत्य क्यों करता है?

एक और बिंदु है जहां पुरुष सूक्त ऋग्वेद से अलग चला गया है। ऐसा नहीं है कि ऋग्वेद केवल मनुष्य की बात करता है। यह भारतीय-आर्य राष्ट्र की बात भी करता है। यह राष्ट्र पांच जनजातियों से बना था जो एक साझा भारतीय-आर्य कौम के रूप में घुल-मिल गई थीं। निम्नलिखित स्तोत्रों में इन पांच जनजातियों के एक राष्ट्र के रूप में ढलने का उल्लेख है–

(1) "बुद्धिमान एवं तेजस्वी अग्नि भली प्रकार प्रकाशित होते हैं, जिसमें पांच जन द्रव्य डालते हैं। हे अग्नि! तुम विस्तृत धरती व आकाश की हव्य से पूजा करो। लोग जिस प्रकार अतिथि की पूजा करते हैं, उसी प्रकार यजमान हव्य द्वारा अग्नि को प्रसन्न करते हैं।"[2]

(2) "बुद्धिमान एवं युवा गृहपालक अग्नि पंच-जनों के प्रत्येक घर में स्थित होते हैं।"[3]

इस विषय में कुछ मतभेद है कि ये पांच जनजातियां कौन-सी हैं। यास्क ने अपने निरुक्त में कहा है कि ये गंधर्व, पितृ, देव, असुर और राक्षस हैं। उपमन्यु का कहना है कि इसमें चार वर्णों और निषादों की ओर संकेत है। ये दोनों ही व्याख्याएं बेतुकी मालूम होती हैं, क्योंकि इन पांचों जनजातियों की प्रशंसा सामूहिक रूप में हुई है, जैसे निम्नलिखित स्तोत्रों में–

(1) "हे अग्नि! हम तुम्हारे दिए हुए अन्न, अश्व आदि से शोभन सामर्थ्य प्राप्त करके सबसे श्रेष्ठ बन जाएंगे। इससे हमारा अनंत धन पंच जनों के मध्य प्रकाशित होगा जो दूसरों को प्राप्त होना कठिन है।"[4]

---

1. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 113.6
2. ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 11.4
3. ऋग्वेद, मंडल 7, सूक्त 15.2
4. ऋग्वेद, मंडल 2, सूक्त 2.10

(2) "हे इंद्र! नहुष नामक जनजाति में जो बल एवं धन है अथवा पांच जनजातियों में जो यश है, वह सब महान शक्तियों के साथ हमें दो।"[1]

प्रशंसा के ऐसे शब्द उस स्थिति में तो नहीं कहे जा सकते थे यदि इन पांच जनजातियों में शूद्र भी शामिल होते। इसके अतिरिक्त, यहां शूद्र शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। जन शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें चार वर्णों और निषादों की नहीं, बल्कि पांच जनजातियों की बात कही गई है, यह ऋग्वेद के निम्नलिखित मंत्र से बिलकुल स्पष्ट हो जाता है—

"हे कामवर्षक इंद्र और अग्नि! यदि तुम यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु एवं पुरुजन समूहं के बीच स्थित हो, तब भी इन समस्त स्थानों से आओ और निचोड़ा हुआ सोम रस पियो।"[2]

इन पांच जनजातियों से एक आर्य कौम का गठन हुआ था, यह अथर्ववेद (3, 24.2) से भी स्पष्ट हो जाता है, जिसमें कहा गया है—

"ये पांच क्षेत्र, पांच जनजातियां मनु से उत्पन्न हुई हैं।"

ऋग्वेदिक स्तोत्रों के ऋषियों ने इन पांच जनजातियों का उल्लेख इस प्रकार क्यों किया, इस प्रश्न का उत्तर केवल एकता की भावना में और सामूहिक चेतना में ही मिल सकता है। प्रश्न ये हैं—पुरुष सूक्त ने पांचों जनजातियों की इस एकता को क्यों नहीं पहचाना और उनकी उत्पत्ति की मिथकीय व्याख्या क्यों की? इसने जनजातियों के भीतर सांप्रदायिक विभाजनों को मान्यता क्यों दी? पुरुष सूक्त में राष्ट्रवाद की अपेक्षा संप्रदायवाद को अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों माना गया?

पुरुष सूक्त की ये कुछ उलझाने वाली बातें हैं, जो तब उजागर होती हैं जब इस सूक्त की तुलना ऋग्वेद से की जाती है। इसमें कुछ और भी जटिलताएं अथवा उलझाने वाली बातें हैं, जो उस समय सामने आती हैं जब पुरुष सूक्त की विवेचना समाजशास्त्रीय दृष्टि से की जाती है।

प्रतिमानों (Norms) के रूप में आदर्श अच्छे होते हैं और आवश्यक भी। प्रतिमान के अभाव में किसी भी समाज अथवा व्यक्ति का काम नहीं चल सकता। किंतु प्रतिमानों को समय और परिस्थितियों में होने वाले बदलावों के साथ बदलना ही चाहिए। किसी भी प्रतिमान को सदा-सदा के लिए नियत नहीं किया जा सकता। हमारे प्रतिमानों के मूल्यों के पुनः आकलन के लिए हमेशा ही गुंजाइश रहनी चाहिए। मूल्यों के पुनः आकलन की संभावना केवल तभी बनी रह सकती है जब संस्था में पवित्रता न आरोपित की जाए। पवित्रता इसके मूल्यों के पुनः आकलन के आड़े आ जाती है; क्योंकि एक बार जिस पर पवित्र होने का

---

1. ऋग्वेद, मंडल 6, सूक्त 46.7

2. ऋग्वेद, मंडल 1, सूक्त 108.8

ठप्पा लग गया वह हमेशा के लिए ही पवित्र हो जाता है। पुरुष सूक्त ने चातुर्वर्ण्य को एक पवित्र संस्था, एक दैवीय विधान, का रूप दे दिया है। पुरुष सूक्त ने एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को इतना पवित्र क्यों बना दिया कि वह आलोचना से और परिवर्तन से भी परे हो गई? इसने ऐसा क्यों चाहा कि इसे एक ऐसा स्थायी आदर्श बना दिया जाए जिसकी न तो आलोचना की जा सके और न ही उसमें कोई परिवर्तन किया जा सके? पुरुष सूक्त की यह पहली जटिलता है जिसकी ओर समाजशास्त्र के विद्यार्थी का ध्यान जाता है।

चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत प्रतिपादित करने की प्रक्रिया में पुरुष सूक्त ने दोहरी चाल चली है। पहले तो इसने यथार्थ को, अर्थात भारतीय-आर्यों के समाज में मौजूद चार वर्गों (अथवा वर्णों) के अस्तित्व को, एक आदर्श के स्तर तक उठा दिया है। यह एक धोखाधड़ी है क्योंकि आदर्श किसी भी प्रकार से विद्यमान वास्तविकताओं से भिन्न नहीं है। यथार्थ को ही आदर्श के उच्च स्तर पर ले जाने के बाद वह उसे लागू करने का दिखावा करता है, जिसे वह आदर्श मानता है। यह प्रवंचना ही है क्योंकि आदर्श तो पहले से ही यथार्थ में मौजूद है। यथार्थ को आदर्श बनाने और आदर्श को यथार्थ बनाने का पुरुष सूक्त का यह प्रयास एक प्रकार की राजनीतिक बाजीगरी है, और मेरा विश्वास है कि ऐसी बाजीगरी अन्य किसी भी धर्म ग्रंथ में नहीं मिलेगी। अगर यह धोखाधड़ी और प्रवंचना नहीं है तो फिर और क्या है? यथार्थ को आदर्श का रूप देना, जो बहुधा ही अन्यायों से परिपूर्ण है, बहुत ही स्वार्थपूर्ण कृत्य है। जब किसी व्यक्ति को यथास्थिति में ही व्यक्तिगत लाभ मिलता दिखाई देता है तभी वह यथार्थ को आदर्श का रूप देने का प्रयास करता है। इस प्रकार के आदर्श को यथार्थ का रूप देना अपराध से कम नहीं है। इसका मतलब होता है अन्याय को इस आधार पर चलाते रहना कि एक बार जो स्थापित हो गया वह हमेशा के लिए स्थापित हो गया। यह दृष्टिकोण तमाम नैतिकता के विरुद्ध है। सामाजिक विवेक रखने वाले किसी समाज ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया। इसके विपरीत, इतिहास में व्यक्तियों और वर्गों के बीच संबद्ध जीवन की शर्तों को बेहतर बनाने की दिशा में जो भी प्रगति हुई है वह पूरे तौर पर इस नैतिक सिद्धांत की मान्यता के कारण है कि जो कुछ गलत ढंग से स्थापित हुआ है वह कभी स्थापित नहीं हुआ और उसे फिर से स्थापित किया ही जाना चाहिए। इसलिए, पुरुष सूक्त में अंतर्निहित सिद्धांत अभिप्राय से आपराधिक है और उसके परिणाम समाज-विरोधी रहे हैं; क्योंकि, इसका लक्ष्य एक वर्ग द्वारा अर्जित अवैध लाभ को और एक अन्य वर्ग के विरुद्ध की गई गलती को आगे चलाते रहना है। पुरुष सूक्त की इस बाजीगरी का क्या उद्देश्य हो सकता है? यह दूसरा जटिल प्रश्न है।

इन तमाम पहेलियों में अंतिम और जटिलतम पहेली वह है जो पुरुष सूक्त की

समाजशास्त्रीय छानबीन से सामने आती है और जिसका सम्बंध शूद्र की स्थिति से है। पुरुष सूक्त ने वर्णों की उत्पत्ति से सरोकार रखा है, और यह कहा है कि इनकी रचना ईश्वर ने की है। यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसे प्रतिपादित करने को किसी भी धर्मशास्त्र ने बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं माना। यह अपने आप में एक विचित्र बात है। किंतु चकित करने वाली बात तो यह है कि विभिन्न वर्णों की तुलना स्रष्टा के विभिन्न अंगों से की गई है। विभिन्न वर्णों को शरीर के विभिन्न अंगों के समान बताना मात्र संयोग नहीं है। ऐसा जान-बूझकर किया गया है। इस योजना के पीछे संभवतः यह विचार रहा होगा कि एक ऐसा सूत्र खोजा जाए जिससे दो समस्याओं का समाधान हो जाए, पहली तो चारों वर्णों के कार्यों को नियत करने की समस्या और दूसरी एक पूर्व-विचारित योजना के अनुसार चारों वर्णों के वर्गीकरण अथवा श्रेणीकरण की समस्या। विभिन्न वर्णों को स्रष्टा के शरीर के विभिन्न अंगों के समतुल्य बताने के सूत्र का यही लाभ है। अंग विशेष के अनुसार सम्बंधित वर्ण की श्रेणी नियत हो जाती है और श्रेणी के अनुसार उस वर्ण का कार्य नियत हो जाता है। ब्राह्मण की उत्पत्ति स्रष्टा के मुख से बताई गई है। मुख क्योंकि शरीर का श्रेष्ठतम अंग होता है, इसलिए ब्राह्मण चारों वर्णों में सर्वश्रेष्ठ हो जाता है। क्योंकि इस सोपान में वह श्रेष्ठतम है, इसलिए उसे श्रेष्ठतम कार्य दिया जाता है, अर्थात ज्ञान और विद्या के पालक का कार्य। क्षत्रिय की उत्पत्ति स्रष्टा की भुजाओं से बताई गई है। शरीर के अंगों में भुजाओं का स्थान मुख के ठीक नीचे होता है। परिणामतः, क्षत्रिय को ब्राह्मण के तुरंत नीचे स्थान दिया गया है और ऐसा कार्य दिया गया है जो केवल ज्ञान के बाद आता है, अर्थात लड़ने का कार्य। वैश्य की उत्पत्ति स्रष्टा की जांघों से बताई गई है। शरीर के अंगों की श्रेणी में जांघों का स्थान भुजाओं के नीचे है। परिणामतः, वैश्य को क्षत्रिय के ठीक नीचे स्थान दिया गया है और उसे उद्योग तथा व्यापार का कार्य सौंपा गया है जो नाम एवं यश में एक योद्धा से नीचे है या यों कहिए कि प्राचीनकाल में था। शूद्र की उत्पत्ति स्रष्टा के चरणों से बताई गई है। पैर तो मनुष्य के शरीर के निम्नतम और निकृष्टतम अंग होते हैं। इसके अनुसार, शूद्र को सामाजिक व्यवस्था में सबसे अंतिम स्थान पर रखा गया है और उसे सबसे गंदा कार्य दिया गया है अर्थात दास अथवा भृत्य के रूप में सेवा करने का।

पुरुष सूक्त ने चार वर्णों की उत्पत्ति की व्याख्या का यही तरीका क्यों चुना? इसने शूद्र की उत्पत्ति पैरों से क्यों बताई? इसने चार वर्णों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने का कोई और तरीका क्यों नहीं चुना? ऐसा नहीं है कि सृष्टि की व्याख्या के लिए केवल पुरुष को उपमान बनाया गया है। छांदोग्य उपनिषद में दी गई वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या को देखें। इसमें कहा गया है—[1]

"प्रजापति ने ब्रह्मांड में उष्णता उत्पन्न करके उसमें से तत्व निकाले

1. मूइर, खंड 3, पृष्ठ 5 से उद्धृत

यानी पृथ्वी से अग्नि, हवा से वायु तथा आकाश से सूर्य निकाले। उस प्रजापति ने फिर तीन आराध्य देवों में उष्णता उत्पन्न की जिसके सार स्वरूप अग्नि से ऋग्वेद की ऋचाएं, वायु से यजुर्वेद के मंत्र और सूर्य से सामवेद की ऋचाएं उत्पन्न कीं। उसने इन तीनों (वेदों) को उष्णता प्रदान की और इस प्रकार उष्ण हुए वेदों से उत्पन्न तत्व से ऋग्वेद की ऋचाओं से 'भूः' शब्द, यजुर्वेद के मंत्रों से 'भुवः' और सामवेद से 'स्वः' शब्दों की रचना की।''

यहां विभिन्न देवों से वेदों की उत्पत्ति होने की व्याख्या की गई है। जहां तक भारतीय-आर्यों का सवाल है, तो उनमें इन देवों की कोई कमी नहीं थी। उनकी संख्या तीस करोड़ थी। यदि चार वर्णों की उत्पत्ति चार देवों से बताई जाती तो इन सभी वर्णों को जन्म से सम्मान और समानता का आधार दिया जा सकता था। पुरुष सूक्त ने इससे व्याख्या क्यों नहीं की?

फिर, पुरुष सूक्त का लेखक क्या यह नहीं कह सकता था कि विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति पुरुष के विभिन्न मुखों से हुई? इस प्रकार की अवधारणा कठिन नहीं थी, क्योंकि पुरुष सूक्त में वर्णित पुरुष के एक हजार सिर हैं, और ये इतने काफी हैं कि सृष्टि की एक प्रजाति का श्रेय उसके एक सिर को दिया जा सकता है। सृष्टि की व्याख्या का यह तरीका पुरुष सूक्त के लेखक के लिए अनजाना नहीं रहा होगा; क्योंकि विष्णु पुराण में इसका प्रयोग विभिन्न वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या के लिए हुआ है, जैसा कि निम्नलिखित अंश से स्पष्ट है–[1]

> ''अपने पूर्वी मुख से ब्रह्मा ने गायत्री, ऋग्वेद की ऋचाओं, त्रिवृत्, साम रथांतर और यज्ञों (अग्निष्टोम आदि) की रचना की। अपने दक्षिणी मुख से उन्होंने यजुर्वेद के स्तोत्रों, त्रिष्टुभ् छंद, **पंचदश स्तोम, बृहत्साम** और **उकथ्य** की रचना की। अपने पश्चिमी मुख से उन्होंने सामवेद के स्तोत्रों, जगती छंद, सप्तदश स्तोम, वैरूप, और अतिरात्र की रचना की। अपने उत्तरी मुख से उन्होंने एकविंश, अथर्ववेद, और अनुष्टुप् और विरज छंदों में **अप्तोर्यमन्** की रचना की।''

हरिवंश में वेदों की उत्पत्ति की व्याख्या कुछ और ही ढंग से प्रस्तुत की गई है। इसके अनुसार–[2]

> ''स्रष्टा ने ऋग्वेद और यजुर्वेद की रचना अपनी आंखों से, सामवेद की रचना अपनी जीभ के अग्र भाग से और अथर्ववेद की रचना अपने सिर से की।''

---

1. *मूइर, खंड 3, पृष्ठ 11 से उद्धृत*
2. *मूइर, खंड 3, पृष्ठ 13 से उद्धृत*

अगर यह मान भी लिया जाए कि पुरुष सूक्त चार वर्णों की उत्पत्ति और उनके सम्बंध को स्पष्ट करने के लिए स्रष्टा के शरीर और उसके विभिन्न अंगों का प्रयोग करने से किसी कारणवश नहीं बच पाया, तो भी यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि उसने विभिन्न वर्णों को पुरुष के विभिन्न अंगों के समान बताने का यही ढंग क्यों अपनाया।

इस सवाल का महत्त्व तब और भी अधिक बढ़ जाता है जब हमें यह एहसास होता है कि पुरुष सूक्त एकमात्र ऐसा उदाहरण नहीं है जहां समाज में विभिन्न वर्गों की उत्पत्ति की व्याख्या के लिए स्रष्टा के शरीर के विभिन्न अंगों को माध्यम बनाया गया है। वैशम्पायन ऋषि ने यज्ञों को संपन्न कराने में लगे पुरोहितों के विभिन्न वर्गों की उत्पत्ति को स्पष्ट करने के लिए यही व्याख्या प्रस्तुत की है। किंतु कितना अंतर है दोनों में। वैशम्पायन की यह व्याख्या हरिवंश में इन शब्दों में मिलती है–[1]

> "इस प्रकार तेजस्वी भगवान हरि नारायण समूचे सागरों को अपनी शक्तिशाली भुजाओं में घेर इस विश्व पर सो गए जो रजों के बृहद् विस्तार के मध्य एक सागर समान हो गया, भगवान स्वयं विरज थे। ब्राह्मण उन्हें अजर जानते हैं। तप के बल पर स्वयं के ही प्रकाश से आच्छादित और तीन कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) से आवृत, भगवान तब सो गए। जो सर्वोच्च घोषित है वह पुरुषोत्तम (विष्णु) हैं। पुरुष ही यज्ञ हैं और वह सर्वस्व हैं जिसे पुरुष नाम से जाना जाता है। यहां यज्ञ को समर्पित तथा ऋत्विज कहलाने वाले ब्राह्मणों को उन्होंने अपने ही शरीर से यज्ञ संपन्न करने हेतु औपचारिक रूप में उत्पन्न हुआ। भगवान ने अपने मुख से ब्राह्मण को उत्पन्न किया, जो कि प्रमुख है और उद्गातृ है जो सामवेद (के मंत्रों) का उच्चारण करता है; अपनी भुजाओं से उन्होंने होतृ और अध्वर्यु को उत्पन्न किया। तब उन्होंने... प्रस्तोतृ, मैत्रावरुण, और प्रतिष्ठातृ को, अपने उदर से, प्रतिहर्ति और पोतृ को अपनी जंघाओं से; अच्छवाक् और नेश्तृ को, अपने हाथों से अग्निध्र और याज्ञिक ब्राह्मण्य को, अपनी भुजाओं से ग्रावण और याज्ञिक उन्नेतृ को उत्पन्न किया। इस प्रकार संसार के दिव्य स्वामी ने समस्त यज्ञों के उच्चारक सोलह श्रेष्ठ ऋत्विजों को उत्पन्न किया। इसलिए यह पुरुष यज्ञ से निर्मित है और इसे वेद कहते हैं; और वेदांगों, उपनिषदों तथा संस्कारों सहित समस्त वेद उसके सार तत्त्व से निर्मित हैं।"

एक यज्ञ को संपन्न करने हेतु कुल सत्रह भिन्न-भिन्न वर्गों के पुरोहितों की

---

1. मूइर, खंड 1, पृष्ठ 154-155 से उद्धृत

आवश्कता होती थी। यह किसी के लिए भी संभव नहीं है कि प्रत्येक की उत्पत्ति की व्याख्या के प्रयास में स्रष्टा के शरीर के एक अलग अंग का उल्लेख करे और पुरुष के चरणों का प्रयोग पुरोहितों के एक वर्ग के उत्पत्ति स्थल क्रे रूप में करने से बच जाए, क्योंकि पुरुष के अंगों की संख्या इतनी कम है और पुरोहितों की संख्या इतनी अधिक है। फिर भी वैशम्पायन ने क्या किया? उसे स्रष्टा के शरीर के एक ही अंग से पुरोहितों के एक से अधिक वर्गों की उत्पत्ति बताने से कोई गुरेज नहीं हुआ। इस चालाकी से वह किसी भी पुरोहित की उत्पत्ति चरणों से बताने से बच गया है।

यह स्थिति तब नितांत षडयंत्रसूचक हो जाती है जब हम यह तुलना करने बेठते हैं कि उत्पत्ति के सम्बंध में हरिवंश में ब्राह्मणों को सम्मान के साथ प्रस्तुत किया गया है और पुरुष सूक्त में शूद्रों के प्रति ओछापन दिखाया गया है। क्या इसके पीछे विद्वेष की भावना है कि पुरुष सूक्त ने यह कहने में संकोच नहीं किया कि शूद्र की उत्पत्ति पुरुष के चरणों से हुई और उसका कार्य सेवा करना है? यदि यह सच है तो फिर इस विद्वेष का कारण क्या है?

IV

शूद्रों से सम्बंधित जिन जटिल प्रश्नों का उल्लेख ऊपर किया गया है वे पुरुष सूक्त के समाजशास्त्रीय विवेचन से सामने आते हैं। शूद्र की स्थिति से सम्बंधित अन्य जटिल प्रश्न वे हैं जो चातुर्वर्ण्य के आदर्श में आए परवर्ती परिवर्तनों से उत्पन्न होते हैं। इन परिणामों को समझने के लिए पहले इन परवर्ती परिवर्तनों पर ध्यान देना आवश्यक है। चातुर्वर्ण्य में बाद में होने वाले परिवर्तन मुख रूप में दो हैं। पहला है शूद्रों से भी नीचे पंचम वर्ग बनाना। दूसरा है प्रथम तीन वर्णों से शूद्र को अलग करना। ये परिवर्तन पुरुष सूक्त की मूल योजना में इतने एकीकृत हो गए हैं कि उनसे ऐसी विचित्र अभिव्यक्तियां और शब्द निकल आए हैं जो इतने सुविदित हैं कि हर कोई जानता है कि इनका मतलब क्या है। ये शब्द हैं—सवर्ण, अवर्ण, द्विज, गैर-द्विज और त्रैवर्णिक। ये शब्द मूल चार वर्णों के उप-विभाजनों, और उनके बीच पृथकता के परिमाण के परिचायक हैं। इन वर्णों की तुलनात्मक स्थिति पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि ये एक नए जटिल प्रश्न (पहेली) को उजागर करते हैं। यदि यह जटिल प्रश्न लोगों की दृष्टि में नहीं चढ़ा है तो इसके दो कारण हैं। पहला, क्योंकि विद्यार्थियों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि ये नाम मात्र नाम ही नहीं हैं, बल्कि ये निश्चित अधिकारों और विशेषाधिकारों के सूचक हैं, और दूसरा, क्योंकि उन्होंने यह पता लगाने का प्रयास नहीं किया है कि इन अधिकारों और विशेषाधिकारों के संदर्भ में, क्या इन नामों के अंतर्गत बनाए गए समूहों में कोई तर्कशीलता भी है।

इसलिए हमें यह देखना होगा कि इन शब्दों का, इन नामों का, कानूनी दृष्टि से क्या

अर्थ निकलता है। सवर्ण की तुलना सामान्य तौर पर अवर्ण से की जाती है। सवर्ण का अर्थ होता है वह व्यक्ति जो चार वर्णों में से किसी एक का सदस्य है। अवर्ण वह व्यक्ति होता है जो इन चारों में से किसी भी वर्ण का सदस्य नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सवर्ण हैं। अछूतों अथवा अतिशूद्रों को अवर्ण कहा जाता है, अर्थात जिनका कोई वर्ण नहीं है। तर्क के स्तर पर देखा जाए तो ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों की गिनती चातुर्वर्ण्य के अंदर होती है। तर्क के स्तर पर, अछूतों अथवा अतिशूद्रों का स्थान चातुर्वर्ण्य के बाहर है। द्विज की तुलना सामान्य तौर पर गैर-द्विज से होती है। द्विज का शाब्दिक अर्थ होता है दोबारा जन्मा और गैर-द्विज ऐसा व्यक्ति होता है जिसका जन्म केवल एक बार हुआ है। यह भेद उपनयन के अधिकार पर आधारित है। उपनयन को दूसरा जन्म माना जाता है। जिन लोगों को पवित्र सूत्र (जनेऊ) पहनने का अधिकार प्राप्त है वे द्विज कहलाते हैं। जिन्हें यह अधिकार नहीं है उन्हें गैर-द्विज कहा जाता है। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को जनेऊ धारण करने का अधिकार है। तर्क की दृष्टि से, वे द्विज हैं। शूद्रों और अतिशूद्रों को जनेऊ धारण करने का अधिकार नहीं है। तर्क की दृष्टि से ये दोनों ही गैर-द्विज हैं। त्रैवर्णिक की तुलना शूद्र से की जाती है। किंतु इस तुलना में कुछ विशेषता नहीं है। इनमें वही अंतर है जो द्विजों और गैर-द्विजों में होता है, सिवाय इसके कि यह तुलना शूद्र तक ही सीमित है और अतिशूद्र इसमें नहीं आते। इसका कारण शायद यह है कि यह शब्दावली अतिशूद्रों के पृथक वर्ण के अस्तित्व में आने से पहले ही प्रचलन में आ गई थी।

यदि यह ध्यान में रखें कि शूद्र और अतिशूद्र दोनों ही गैर-द्विज हैं, तो प्रश्न उठता है कि फिर शूद्र को सवर्ण और अतिशूद्र को अवर्ण क्यों माना जाता है? शूद्र जन चातुर्वर्ण्य के अंदर हैं और अतिशूद्र उससे बाहर क्यों? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी चातुर्वर्ण्य के चारों कोनों में स्थित हैं, ये सभी सवर्ण हैं, तो फिर शूद्र को ही त्रैवर्णिक के अधिकार से क्यों वंचित रखा गया?

क्या शूद्रों के इस जटिल प्रश्न से बढ़कर कोई और जटिल प्रश्न हो सकता है? निश्चय ही, इसकी पड़ताल और व्याख्या होनी चाहिए कि वे कौन थे और आर्यों के समाज का चौथा वर्ण कैसे बने?

अनुक्रमणिका

अ

अंगरखा 172
अंगिरस् 68
अंगिरा 194
अंगुष्ठ 162
अंगुष्ठ लिंग का ही द्योतक 163
अंतर्यामी पुरुष 79
अंधकार 75, 165
अंबिका 102, 296
अंबिका रुद्र की भगिनी 102
अंश रूपिणी 176
अक्रूरासुर 80, 168
अक्षय 28
अक्षय काल 92
अक्षरों में ओंकार 92
अग्नयी 101
अग्नि 25, 84, 85, 101, 160, 276
अग्नितेज 309
अग्नि वृत्तिका 85, 160
अग्निष्टोम 28, 131
अग्नि से ऋग्वेद 25
अग्निहोत्र 43
अछूत 286
अजीविक 159
अण्डज 25
अतापस 69
अतिरात्र 28
अत्रि 194, 308
अत्रि ऋषि-पत्नी अनसूया 163
अत्रि स्मृति 63
अथर्वन् 131, 236
अथर्वन् और अँगिरस् की वाणी 24
अथर्ववेद 26, 28, 50, 68, 69, 128, 146, 220
अदिति 91, 101, 194
अदिति—वैदिक देवी 101, 134
अध्वर्यु 25
अनघ 309
अनन्त 95
अनला 195
अनश्वर तत्त्व 27
अनसूया के साथ अवैध संभोग 164
अन्नपूर्णा 102, 103
अनार्य जातियां 211
अनुपलब्ध श्रुति 62
अनुलोम 70, 212
अनुलोम और प्रतिलोम 153, 212
अनुवत्सर 288
अनुशासन पर्व 93, 96
अनुष्टुप और विराज छंद 131
अनुष्ट्प छन्द 28
अनेनस् 198
अनैतिकता की दुर्गंध 164
अपतोर्यमन् 131
अपनी पुत्री का पति 46
अपरार्क 62
अपराजेय यवन 290
अपराधों के लिए दंड-व्यवस्था 173
अप्रजातांत्रिक 282
अप्रतिमौजा 309
अपांमूर्ति 309
अपौरुषेय 133
अप्सरा 101
अबेद-नगो 12, 13, 171, 172
अभिनामन् 308
अमृतमय दिव्य सरोवर 95
अमृतमय चंद्रमा 92
अमरता 266
अमरता का केन्द्र बिन्दु 130
अम्बष्ठ 219, 220
अम्बे अम्बिका आदि का मंत्र 123
अमात्य 12
अमिताभ 308
अमूर्त परमेश्वर 37
अयास्य 34
अयोध्या 320
अयोनिजा 298
अय्यर 78
अरण 266
अरामती 101
अरिष्टनेमि 194
अरुणा 177
अर्जुन के पांव द्रौपदी-सत्यभामा की गोद में 111
अर्थशास्त्र 79
अर्यमा, पित्रेश्वर 92
अलौकिक पुरुष 59, 146
अल्तेकर प्रो. 60, 61, 63
अल्ला हू अकबर 93
अवतार का सिद्धांत 74, 79
अवतारवाद का आविष्कार 165
अवरुद्धक 85
अवरुद्ध (श्रावक) 85, 159
अविराम चक्र 74

अविवाहित जीवन 249
अविवाहित देवियां 174
अविनाशी जीवात्मा 93
अविनाशी देव 95
अविनाशी परब्रह्म 98
अविनाशी परमात्मा 93
अविनाशी पितामह (ब्रह्मा) 94, 148
अवैदिक देवताओं को नमन 11
अवैध संभोग 177, 222
अशुद्ध मांस 119
अश्रुति 58
अश्लील पूजा 44
अश्व 160
अश्वत्थामा 97
अश्वपति 72, 156
अश्व बलि 120
अश्वमेध यज्ञ 44
अश्वरूपिणी 277
अश्व वृत्तिका 85, 160
अश्विनी देवता 98
अश्वों के सारथी 34
असुर 86, 160
असुर अंधक 102
असुरों का संहार 108
असुर वृत्तिका 86, 160
अहं ब्रह्मास्मि 285
अहिंसा 111
अहिंसा की पहेली 11

आ

आंध्र 220
आकाश 25
आकूति 275
आगम 65
आचार्य 112, 211
आजानुबाहु कृष्ण 96
आजीवक श्रावक 85, 159
आठ पिशाचिनियां 177
आठ प्रकार के विवाह 223
आठवां रुद्र 98
आठ वसु 83, 92
आध्यात्मिक उत्थान 49
आध्वर्यव (यजुर्) 141
आध्यात्मिक विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या 92
आत्मज्ञान 72, 73
आत्महत्या का निषेध 62
आत्मा 266
आत्मा और ब्रह्म एक ही 285
आत्मा उपभृत् है 179
आत्मा का ज्ञान 70
आत्मा का मनोरथ स्वर्ग प्राप्ति 156
आत्मा देह से भिन्न है 71
आत्रेयी 33
आदि ऋषि 24, 128
आदिकाल से पूजा 83
आदित्य 134
आदित्य पुराण 230
आदिम जातियां 286
आदिम जीवन का चित्रण 142
आदिम जीवन की प्रतिच्छाया 50
आदिवक 75, 165
आनकदुंदभि के वंशज 94
आपस्तंब 32, 145
आपस्तंब धर्म-सूत्र 31, 60
आपस्तंब प्राचीनतम 145
आप्तोर्यामण 28
आफरेच्ट प्रो. 179
आभीर 219
आयुर्वेद वेद का अंग 36
आरंभिक धर्मशास्त्र 61
आरण्यक 58, 68, 150
आरण्यक और उपनिषद 58
आराधक 134
आर्द्र काठ 26
आर्य ऋषि 42
आर्य एक जुआरी प्रजाति 109
आर्य एक पियक्कड़ जाति 293
आर्य जाति 211
आर्य देवी 101
आर्य स्त्रियां बेची जाती थीं 296
आर्यों को सहवास का अधिकार 299
आर्यों के सामाजिक जीवन पर प्रकाश 142
आवन्त्य 211
आश्रम 252
आश्रम-धर्म 202, 249
आश्रम प्रणाली 205, 252
आश्वलायन गृह्य-सूत्र 125
आश्विनी कुमारो 277
आर्ष विवाह 296
आर्षेय ब्राह्मण 33
आस्कंद 312

इ

इंद्र 11, 84, 86, 160, 275
इंद्र अर्जुन का वास्तविक पिता 295
इंद्र एक वैदिक देवता 161
इंद्र की उपासना 236
इंद्र की मिली-भगत 104
इंद्र दिवस्पति 309
इंद्र वृत्तिका 86, 160
इंद्राणी 101, 176, 177
इंद्राणी इंद्र की पत्नी 101
इंद्रियनिग्रह 98
इंद्रियों में मन 91
इकतरफा पाठ्यपुस्तकें 44
इकहत्तर महायुगों का एक कल्प 23
इगलिंग प्रो. 288
इतिहास 58, 146
इतिहास पुराण 26, 69

इद्वत्सर 288
इला पुत्र तरिश्वा 196
इस्लाम में यकीन 19

ई

ईशानी 177
ईश्वर 28
ईश्वर अमूर्त है 41
ईश्वर की पूजा 179
ईसाई 19, 20
ईसाई देवताओं को सिजदा 20
ईसाई देवी मांट मौली की पूजा 20
ईसा ईश्वर-पुत्र कैसे 101
ईसा परमात्मा के पुत्र 101
ईसा मसीह 19

उ

उक्थ्य 28, 131
उच्च जाति की महिला से संभोग 316
उच्चैश्रवा 92
उत्कल 116
उत्तमौजा 309
उत्तरयुगानि 287
उत्तर युगे 287
उत्तरायण 304
उत्तरी मुख 131
उत्तानपाद 275
उत्पात ज्ञान 69
उद्गातृ 25
उद्दालक की पत्नी 297
उर्ध्वबाहु 308
उपदेव 309
उपनिषद 26, 58, 66, 67, 71, 73, 146, 149, 201
उपनिषद् और वेद अलग-अलग 151
उपनिषद और सूत्र 58
उपनिषद का वास्तविक अर्थ 150
उपनिषद की व्युत्पत्ति 67
उपनिषद वैदिक साहित्य का अंग 158
उपनिषद शब्द का मूल 68
उपनिषदों की स्थिति 66
उपमन्यु 97
उपासना मंत्र 34
उपेंद्र (वामन) 98
उपेंद्र (विष्णु) 88
उमा 176
उरु 308
उशना 219
उषा 101
उषा आकाश की पुत्री 101

ऊ

ऊर्जावान मंत्र 135
ऊर्वरीवान् 277
ऊष्मा का संचार 25

ऋ

ऋक् 24, 27, 28, 128
ऋक् (ऋचाएं) 24, 128
ऋग् मंत्र 131
ऋग्वेद 24, 26, 28, 35, 68, 69, 101, 130, 146
ऋग्वेद-काल 83
ऋग्वेद की उत्पत्ति अग्नि से 26
ऋग्वेद की ऋचाएं मधु 181
ऋग्वेद की सर्वानुक्रमणी 33
ऋग्वेद की सात अनुक्रमणियां 33, 133
ऋग्वेद के दसवें मंडल में 90वें सूक्त 233
ऋग्वेद के सिद्धांत 199, 201
ऋग्वेद में यतियों का उल्लेख 251
ऋचाएं 28
ऋण लेकर भी घी पिएं 43
ऋतधाम नामक वसु 98
ऋतुओं में वसंत ऋतु 92
ऋत्विज् 112
ऋभु 88
ऋभुक्षण् 237
ऋषभ 75, 165
ऋषि कश्यपपुत्र 57
ऋषि दधीचि 161
ऋषि पराशर 199
ऋषि पौलस्त्य 114
ऋषियों की आशाएं 141
ऋषि वेदों के रचयिता 135
ऋष्यऋंग 277, 309

ए

एक दाढ़ वाले पृथ्वी-धारी वाराह 98
एकमेव परमदेव 165
एकविंश 131
एकविंशतिस्तोम 28
एक स्त्री कई पुरुषों से 109
एकादश रुद्रों में शंकर 91
एकादशी के दिन व्रत रखेगा 19
एकेश्वरवाद 20
एकेश्वरवादी 19

ऐ

ऐतरेय ब्राह्मण 25, 128, 289, 312
ऐन्द्र-बृहस्पत्य 188
ऐरावत 92
ऐहिक 244
ऐहिक अंड 197, 244

ओ

ओ उमा 103
ओ कराली 103
ओ कृष्ण की अनुजे 103

ओ कैटभ हंत्री 103
ओ जया 103
ओमकार-पूर्विका 27
ओऽम् 132
ओऽम् से वेद का आरंभ 66, 150
ओल्ड टैस्टामैंट 12
ओ विद्या 103
ओ विजया 103

औ

औघड़ (मूर्ख) 80
औत्तमि 276, 307, 308

क

कंदर्प (कामदेव) 104
कई पुरुष एक स्त्री को भोगते 109
कठ संहिता 234
कठोर उपासना 26
कठोपनिषद् 69, 153
कण्वों ने 34
कपाल भूमि 121
कपाली 103
कपिल 75, 165
कपिला 103
कबीलाई देवता 14
कमल-चिह्न 81
कमल नाल 76, 169
कमलाकर 60
कमलात्मिका 176
कमलासिनी 103
करण 211
करूष 308
कर्तव्य परायणता 312
कर्दम 194
कर्म-कांड 71-73, 156, 157
कर्मकांड व्याकरण 68
कर्ममार्ग 65
कलिंग 116
कलिंग राज 89
कलि 306
कलियुग 22, 230, 287, 292
कलियुग एक हजार वर्ष का 291
कलियुग कब समाप्त होगा 287
कलियुग का अंत कब होगा 290
कलियुग का अंत ही नहीं होगा 292
कलियुग का आरंभ कब हुआ 287
कलियुग का मनोवैज्ञानिक प्रभाव 287
कलियुग क्या 287
कलियुग नैतिक दृष्टि से बेहतर युग 303
कलिवर्ज्य 230
कलिवर्ज्य संहिता 232, 319
कलिवर्ज्यों की सूची में कुछ प्रथाएं 230
कल्कि 75, 165
कल्प 22, 304
कल्प शास्त्र 69
कल्पित हिंदू इतिहास 310
कल्योज वह विषम संख्या 289
कवियों में शुक्राचार्य 92
कश्मीरी पंडित 116
कश्यप 308
कसदी पंडित 171
कांतिमय 28
काक 160
काक वृत्तिका 85, 160
काजल जैसे वर्ण का अथर्वन् 131
काणे पी.वी. 63, 70, 153, 230
काणे मेमोरियल वाल्यूम 60
कात्यायन 33
कात्यायन सूत्र 317
कात्यायनी 102
कानून-व्यवस्था 282
कामदेव 92
कामधेनु 92
कामरूप 116
कामवासना 174
कामेश्वरी 177
काम्बोज 212
कारुष 211
कार्तिकी 176
कार्तिकेयी 177
कार्त्तिकेय 92, 277
कार्त्तिकेय का शक्ति-अस्त्र 309
कालका 194
काल-रात्र्य मंत्र 120
काल रूपिणी 176
कालांश रूपिणी 176
कालिका पुराण 125
काली 19, 65, 102, 103, 176
काली और दुर्गा 104
काली पुराण 118, 124
काली वंदना 120, 124, 127
काष्ठ का पात्र 120
किरात 212
कुक्कुर 160
कुक्कुर वृत्तिका 85, 160
कुटुंब-विधान 223
कुदाली 26, 119
कुमारिल भट्ट 62
कुमारी 103
कुरुश्रेष्ठ 91
कुलीनतंत्र 281
कुल्लूक 23
कुल्लूक भट्ट 22, 23, 65, 116
कुल्हाड़ी 120
कुल्हाड़ी पर चंदन का लेप 123
कुसुमध्वज (पटना) 290
कूर्म 75, 165

कूर्म अवतार 80, 168
कृत 306
कृतयुग 22, 292
कृत युग चार हजार वर्ष का 291
कृतयुग्म 289
कृत्रिम ईश्वर 97
कृप 309
कृष्ण 19, 74, 75, 165
कृष्ण और ब्रह्मा की परंपरा 86
कृष्ण और शिव 166
कृष्ण का दूसरा संग्राम 333
कृष्ण का देहांत 289
कृष्ण का पद शिव से नीचे 93
कृष्ण का पहला विवाह 334
कृष्ण की सौतेली बहन सुभद्रा 334
कृष्ण की हत्या 330
कृष्ण के साथ राधा 176, 331, 332
कृष्णक्रोड़ा 102
कृष्ण नाम के चार व्यक्ति 89
कृष्ण पिंगला 103
कृष्ण यजुर्वेद 234, 235
कृष्ण यजुर्वेद की तीन संहिताएं 187
कृष्ण से महान कोई देव नहीं 93
केवल आठ शक्तियां 176
कैकेयी 320
कैलाश 89
कैलाश पर्वत 102
कोलाहल 75
कोल्हाहल 165
कौल संप्रदाय 115
कौशिक सूत्र 112
कौषीतकि 70, 153
कौषीतकि गृह्य-सूत्र 110, 293
कौषीतकि ब्राह्मण 25, 128, 129
कौसल्या 320
क्रांतिकारी बदलाव 265
क्रूर व रक्तपिपासु देवी 127
क्रोधवशा 195
क्षत्रवृद्ध 198
क्षय रोग निवारण 57, 142
क्षुरिकोपनिषद् 67, 150

ख

खगोल-शास्त्र 68, 306
खगोलशास्त्री 303
खतना 20
खस 211
ख्याति 276

ग

गंगावतरण 168
गंधर्व 86, 160
गंधर्व वृत्तिका 86, 160
गंधर्वों में चित्ररथ 92
गणनाकारों में मृत्यु का स्वामी 92
गणिकाएं 109
गणित 69
गणित की शब्दावली 289
गणेशजननी 102
गया 34, 220
गरुड़ 92
गर्भ का नाश 48
गर्भपात 48
गर्भ में ही पति-पत्नी 46
गर्भाशय 47
गाय 85
गाय का मुख विकृत 169
गायत्री 27, 28, 29, 117, 131
गायत्री-छंद 48
गारुड़ 69
गारुड़विद्या 69
गालव 277, 309
गुजराती में कुरान 20
गुडाकेश (अर्जुन) 91
गुमनाम मुस्लिम पीरों के मुरीद 20
गुरु (प्रभाकर) 38, 136
गुह्यज 228
गृत्समद 34, 198
गृत्समद का पुत्र शुनक 245, 247
गृहस्थ 205, 252, 263
गृहस्थाश्रम 202, 249
गृह्य-सूत्र 112
गेय श्रुतियों में बृहत्साम 92
गो 160
गोपाल अय्यर 290
गोविन्द 94
गो वृत्तिका 85, 160
गौतम 36, 308
गौतम का मंत्र 34
गौतम धर्म-सूत्र 30, 67, 143, 151, 205, 252, 265
गौतम संहिता 221
गौरांग 103
गौरी 102, 176
ग्राम्य देवताओं के उपासक 21
ग्यारह रुद्र 83

घ

घी की आहुति 180
घोड़ा 85
घोर आंगिरस 90

च

चंड 103
चंडी 102, 103, 176
चंचल भृत्या 177
चंपारन जनपद 221
चक्र 81

चचेरे-ममेरे बहन-भाइयों में वैवाहिक संबंध 21
चढ़ावा बटोर 11
चतुर्भुजा 177
चतुर्मुख ब्रह्मा 28
चतुर्मुख स्रष्टा 131
चतुष्पाद नर 28
चन्द्र 86, 160
चन्द्रचूड़ 78
चन्द्रलोक 88
चन्द्र वृत्तिका 86, 160
चन्द्रहास 119
चरवाहा जनजाति 219
चराचर विश्व 81
चांडाल 69
चांडाल की बलि 122
चाक्षुष 276, 307
चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति 244
चातुर्वर्ण्य की कहानी 201
चातुर्वर्ण्य व्यवस्था 198, 221
चातुर्वर्ण्य सिद्धांत 63, 161
चामुंडा 176
चारणों का गेय काव्य 43
चार वषट्कार 180
चार विभिन्न विशेषज्ञों की सहमति 32
चारायणी 33
चारों वर्ण, मनु की संतान 194
चार्वाक 42, 44, 154
चार्वाक और बृहस्पति 153, 155
चालडीआ निवासी 12
चावल से बनी शराब 117
चित्रगुप्त 173
चिरायु 42
चीन 212
चुल्ल निद्देश 84, 86, 170
चैत्र 276
चोल 212
चौदह रत्न 80
चौबीस परगना का डिप्टी कलेक्टर 124

छ

छंद 27, 69
छंदों में गायत्री छंद 92
छल करने वालों में जुआ 92
छांदोग्य 67
छांदोग्य उपनिषद 26, 68, 89, 130, 151, 298
छाले से ब्रह्मा की उत्पत्ति 90
छिन्नमस्तिका 102, 103, 176

ज

जंगम पथ 116
जंगली सांड 121
जगज्जननी 65, 174
जगतपालक ब्रह्मा 68, 151
जगति मंत्र 131
जगति छन्द 28
जगदंबा 174
जगदीश्वर 28
जगद्गौरी 102, 103
जगद्धात्री 102, 103
जटाजूट 78
जटायु 194
जटा से बहती गंगा 78
जटिल 159
जटिल गौतमी 297
जटिल श्रावक 85, 159
जनक 156
जनक की पुत्री 99
जनमेजय 199, 245, 297
जन्म और मृत्यु के पात्र 45
जपयज्ञ 92
जमदग्नि 308
जयद्रथ का वध 94
जयिनी 177
जरथूस्त्र 19
जरायम पेशा जातियां 286
जरासंध मगध का राजा 220
जर्भरी 44
जल के अधिपति वरुण 97
जल देवता 92
जादवेश्वर तर्करत्न महामहोपाध्याय 116
जादूगरों और शत्रुओं को शाप 52
जानुजंघ 276
जाम्बुनद नामक स्वर्ण 93
जारज संतान 219, 220
जिओ और जीने दो 172
जिह्वा के छोर से सामवेद की रचना 28
जीव-जंतु 27
जीवित-प्राणियों को अन्नदान 179
जुआ 109
जुआ एक विद्या का रूप 109
जैनोफेनीज 81
जैमिनि 37-40, 42, 45, 71-73, 136, 137, 155, 156
जैमिनि और बादरायण 155
जैमिनि की शब्दावली 155
जैमिनि के भाष्य 155
ज्येष्ठतम पुत्र अथर्वा 68
ज्योतिर्धामा 276
ज्योतिष 69
ज्योतिषशास्त्री 288
ज्योतिषाचार्य गर्गाचार्य 290
ज्योतिष्टोम यज्ञ 43, 154
ज्ञान-कांड 71, 72, 156
ज्ञान के दो प्राथमिक स्रोत 182
ज्ञानमार्ग 65

ट

टोने-टोटके 50

ड

डाकिनी और शाकिनी 177
डेमोक्रेसी एंड एजूकेशन 281
डेवी प्रो. 281

त

तंत्र-पूजा को प्रोत्साहन 116
तंत्र-स्थल 121
तत्त्व ज्ञान का भंडार 95
तत्त्वदर्शन 309
तनवर्धन 163
तपस्वी 309
तपोद्युति 309
तपोधन 309
तपोधृति 309
तपोमूर्ति 309
तपोरति 309
तर्कशास्त्र 69
तांत्रिक धर्म 64, 174
तांत्रिक नारी देवकुल 175
तांत्रिक पूजा 116
तांत्रिकों की कई शाखाएं 65
तानाशाही 281
तापस-वृत्ति 43, 154
तामस 276, 307, 308
ताम्रपात्र में शहद 123
ताम्रा 195
तारा 102, 176
तारिणी 103
तीन पगों से तीनों लोक नापे 99
तीन लोकों के स्वामी 93
तीनों लोकों के आदिकर्ता 98
तीन वेदों की उत्पत्ति 25
तीनों वेदों के स्रष्टा 44
तुर्फरी 44
तुलसी का पौधा 19
तुषित 276
तेजधार कुदाली 26
तेजस्वी कश्यप 194
तेजोमय तत्त्व 25
तेरह प्रकार के पुत्र 224
तैंतीस देवता 83, 195
तैत्तिरीय उपनिषद 68, 149
तैत्तिरीय आरण्यक 66, 150
तैत्तिरीय ब्राह्मण 25, 26, 128, 130, 190, 247, 312
तैत्तिरीय संहिता 161, 188, 235
त्रयी विद्या 25, 129, 145
त्रिकांडशेष 67
त्रिकालदर्शी 95
त्रित्रसेन 309
त्रिदंड धारण 154
त्रिदंड धारणा 43
त्रिदेव 170
त्रिनेत्र शिव 77
त्रिनेत्रधारी तेजस्वी वृषभवाहन महादेव 97
त्रिपदा गायत्री 27
त्रिपुरारी 75, 165
त्रिमूर्ति 78, 164, 167
त्रिमूर्ति की पहेली 159
त्रिमूर्ति के सिद्धांत 74
त्रिवृत् 28, 131
त्रिवेद में आस्था 173
त्रिवेद विद्या 146
त्रिविक्रम 99
त्रिशूल धारी 177
त्रिष्टुप् 131
त्रेता 109, 306
त्रेता तीन हजार वर्ष का 291
त्रेता युग 22, 292
त्रैष्टुप छन्द 28
त्र्यम्बक (वीरभद्र अथवा शिव) 89

द

दंडाधिकारी 170
दक्ष 87, 194
दक्षयानी 195
दक्षिण मुख 28
दक्षिणाग्नि की आहुति 88
दक्षिणाचारियों के कर्म-कांड 65
दक्षिणात्य 116
दक्षिणायन 304
दक्षिणी मुख 131
दत्तक पुत्र की व्यवस्था 62
दत्तक-प्रथा 62
दत्तात्रेय 64, 75, 163, 165
दधि अन्न 39, 137
दधीचि 236
दध्य अन्न 39, 137
दनु 194
दरगाह का पीर 11
दरियाई घोड़े के मांस 119
दर्शनशास्त्र 286
दशरथ 76, 99
दशरथ की तीन पत्नियां 320
दशरथ-पुत्र राम 76, 98
दसभुजा 102, 103
दहकती भट्टी में झोंक 13
दांडेकर प्रो. 162, 163
दिति 101, 194
दिव्य ब्रह्मा हिरण्यगर्भ 197, 244
दिव्य ब्रह्मांड 132
दिशा 86, 160
दिशा वृत्तिका 86, 160
दीर्घतमस् (दीर्घतमा) 302
दीप्तिमत् 277
दीप्तिमान् 309
दुख-दारिद्र्य 121
दुर्गा 65, 102, 103, 108, 176
दुर्गा के वीरोचित कार्य 106
दुग्ध की आहुति 191
दुरात्मा 44, 47, 48
दुष्टात्मा स्वामी 88

देव 86, 160, 237, 309
देवताओं का अज्ञात आवास 142
देवताओं का अपमान 108
देवताओं की पूजा 101
देवताओं के रक्षक 93
देवताओं से असम्मानजनक व्यवहार 100
देवता दुर्भाग्य नाशक 57
देवता-स्वामी सहस्र नेत्रधारी इंद्र 97
देव-पत्नियां 104
देवमूभट्ट 61
देवर्षियों में नारद मुनि 92
देव वृत्तिका 86, 160
देवशास्त्र 69
देवश्रेष्ठ 309
देव-सभा 89
देव सेनापति 98
देवाधिदेव की महिमा 96
देवानीक 309
देवियां शक्ति कहलाने लगीं 107
देवी-उमा 102
देवी दक्ष की पुत्री 102
देवी दुर्गा 103
देवी-पूजा 108
देवी-पूजा असामान्य-सी बात 101
देवी सरस्वती की जिह्वा 99
देवी सती 88
देवों में इंद्र 91
देह त्याग के पश्चात 43
दैत्यराज बलि 99
दैत्यों में प्रह्लाद 92
दैवी मातृ शक्ति 20
दैवीय व्यवस्था के तीन आधार 185
दैवी वाक्य 37, 136
दैवी वैष्णव 309
दैहिक संवेदनाएं 28
दो ढकोसले कलियुग के 313
द्यूत क्रीड़ा 46, 142
द्रविड़ 211, 212
द्रोण पर्व 95
द्रोणि 309
द्रौपदी पर कटाक्ष 297
द्वंद्व युद्ध 106
द्वापर 22, 109, 306
द्वापर दो हजार वर्ष का 291
द्वापरयुग 292
द्वापरयुग्म 289

ध

धधकती हुई अग्नि की भट्टी 171
धर्म के तीन अंग 284
धर्म के स्रोत 60
धर्म जाए भाड़ में 11
धर्म निरपेक्ष 173
धर्मपरायण श्रीकृष्ण 95
धर्म-परायणता 78, 167
धर्म में नैतिकता का समावेश 178
धर्म-सूत्र 32, 70, 79
धर्म-सूत्रों के रचयिता 30
धर्माचार्य गैर-ब्राह्मण 21
धन का स्वामी कुबेर 91
धनुर्वेद 69
धनुष बाण 95
धन्वंतरी 75, 165
धार्मिक वेश्यावृत्ति 21
धूमवती 176
ध्वज 165
ध्वनि सनातन 138
ध्वूज 75
ध्यानस्थ 25

न

नई पूजा परंपरा 86
नक्षत्र का अधिपति चंद्रमा 91
नक्षत्रों और ताराओं 93
नट 211
नदियों में भागीरथी गंगा 92
नपुंसक परमात्मा 36
नबूकदनेस्सर 12, 13, 170-172
नबूकदनेस्सर द्वारा स्थापित स्वर्ण मूर्ति 170
नमाज 20
नर 276
नरक अथवा तरतारस 173
नर और नारायण 95
नरक का स्वामी 173
नरदेव 75, 165
नरनारायण 75, 165
नर-नारियों के सद्गुण नष्ट हो गए 311
नरबलि 125
नरमुण्ड पहनता 87
नरमेध यज्ञ 292
नरसिंगे 171
नरसिंह 75, 165, 176
नवगव ऋषि 35
नवीनतम मंत्र 134
नहुष 198
नाग 78, 85, 160
नागरिकों के अधिकार व कर्तव्य 173
नाग वृत्तिका 85, 160
नाभाग 309
नाभागारिष्ट 289, 308
नाभि से कमल 75
नारद 68, 69, 195
नारायण 74, 163
नारायणीय उपनिषद 66, 150
नारायणीय आख्यान 75
नारियल का पानी 123
नारी का सतीत्व 21

नारी की रति-क्रिया 163
नारी प्रतिरूप 20
नाशवान का प्रणेता 93
निर्ऋति 102
निगंठ 159
निगंठ श्रावक 85, 159
निधिज्ञान 69
नियोग के विनियमन की कुछ शर्तें 302
निरुक्त 45, 69, 162
निरुत्सुक धृतिमान् 309
निर्मोह 277, 309
निर्लज्ज शिव 87
निर्वस्त्र होकर भोजन परोसे 164
निशाचर 44
निश्चर 309
निश्तिग्री 101
निषाद 69
निषाद-राज 220
निष्प्रकंप 309
नीतिशास्त्र 69
नीलकंठ 60
नीलकंठ और विष्णु के बीच घमासान 77
नीलकंठ (महादेव) 77
नीलाभ दिव्य सुंदरी 102
नोधस् 34
नेत्र ध्रुव हैं 179
नैयायिक 136, 137
नैयायिकों के मत 38
न्याय तथा अष्ट प्रमाण 64
न्यायदर्शन के प्रणेता गौतम 44
न्यायवैशेषिक 37, 44
न्यायाधीश 12, 170

प

पंच-गौड़ 111
पंचदश स्तोम 28, 131
पंच द्रविड़ पूर्ण शाकाहारी 111
पंचप्रिय पंथ 20
पंच मकार 114, 178
पंचम वेद 69
पगड़ियां 172
पटना 220
पतित जातियां 211
पतित-पावनी गंगा 80, 168
पत्नी द्रौपदी दांव पर लगा दी 109
पद्मपुराण 78
परमपुरुप 132
परमात्मा 83, 143
परमात्मा से मिलाप 79
परमेश्वर अमूर्त है 136
परवर्ती अंतर्बोध 49
परशुराम 75-77, 99, 100, 165
पराक्रमी बहुपुत्र 194
परिवत्सर 288
परिवर्तनशील लिंग 162
परिव्राजक 205, 252
परिव्राजक श्रावक 85, 159
पर्जन्य 308
पर्जन्य की पत्नी 101
पर्वत-पुत्री 116
पल्लव 212
पशुओं में मृगराज 92
पशुधन 35, 42
पशु-पक्षी बलि योग्य नहीं है 122
पशु-बलि 118, 127
पश्चिम मुख 28
पश्चिमी मुख 131
पांचवां साध्य 98
पांचाल 290
पांडवों में धनंजय 92
पांडुपत्नी कुंती 109
पाणिग्रहण 87
पाताल के राजा विरोचन 309
पाप-पुण्य का लेखा-जोखा 173
पाप-मुक्ति 42
पापों का प्रायश्चित 173
पारद 212
पारसी 19
पारावत 276
पार्वती 19, 88, 102, 103
पार्वती दक्ष प्रजापति 103
पार्वती शिव की 103
पाशुपत 116
पाशुपत अस्त्र 95
पाशुपत नामक घोर अस्त्र 96
पासों की गोटियां विभीतक वृक्ष के फल 288
पिंगल 68
पितरों को दान 179
पितरों सहित यमराज 97
पिता की बलि क्यों नहीं 43
पिता के अधिकार के नियम 229
पिता के कुकर्म 77
पितृ-कर्म 61
पितृ-तर्पण 61
पितृत्व विधान 223
पितृ-सावर्ण्य 229
पीपल का वृक्ष 92
पीर बाबा मलंगशाह की दरगाह 11
पीराना संत इमाम शाह 20
पीवर 276
पुंगव 35
पुंडरीक 67
पुंसत्व का हरण 48
पुत्री के साथ बलात्कार 86
पुत्री के साथ व्यभिचार 77
पुनर्जन्म 142
पुनर्जन्म में विश्वास 20
पुनर्जन्म सिद्धांत 49
पुनरुक्ति दोष 44
पुरंदर 35

पुराण 58, 146
पुराण ब्रह्मा के मुख से 64
पुराणों की विषय-सामग्री 63
पुरु 308
पुरुरवा का संवाद 196
पुरुरवा नामक पुत्र 198
पुरुष की बलि 128
पुरुष सूक्त 24, 128, 187, 234, 235
पुरुषों का ईश्वर 81
पुलस्त्य 194
पुलह 194
पुल्कस 69
पुष्टिमार्गी 79
पुष्पध 211
पूजा-अर्चना की विधियां 63
पूजा-परंपरा 91
पूर्णभद्र 85, 160
पूर्णभद्र वृत्तिका 85, 160
पूर्णशक्ति 176
पूर्व मुख 28, 131
पूर्वानि युगानि 287
पूषा देवता 89
पृथापुत्र अर्जुन 95
पृथि 75
पृथु 276
पृथुवंश का संस्थापक 294
पृथ्वी 24, 25, 101, 128, 165
पृथ्वीपालक मनु 309
पृश्नि 101
पृश्नी मारुत की माता 101
पृषध्र 308
पैतृक देवता 42
पौंड्रक 212
पौराणिक आख्यान 181
पौराणिक काल 102
पौराणिकता इतिहास 248
पौराणिक देव कितने दुर्बल थे 108
पौराणिक देवियां 107
पौराणिक देवों में शक्ति 108
पौराणिक धर्म 173
पौराणिक पुरुष के यज्ञ 24
पौराणिक विधि-विधान 174
प्रगतिशील सिद्धांत 63
प्रचेता 194
प्रचेता के दस पुत्र गुणी 195
प्रजातंत्र 281
प्रजातंत्र में विश्वास 285
प्रजातंत्र-विरोधी 284
प्रजातांत्रिक ढंग से गठित समाज 281
प्रजातांत्रिक ब्रह्मवाद 286
प्रजातांत्रिक मानसिकता 283
प्रजातांत्रिक व्यवस्था 283
प्रजातांत्रिक समाज 283
प्रजातांत्रिक सरकार 281, 282
प्रजापति 25, 26, 74, 129, 245
प्रजापति के मुख से ओम् की ध्वनि 28
प्रजापति दक्ष की साठ पुत्रियां 194
प्रजापतियों के प्रमुख 88
प्रजापतियों के स्वामी 96
प्रजापति वेदों का जनक 27
प्रजापति वेदों के रचयिता 130
प्रजापति शर्म से गड़ गए 78
प्रजापति से वेदों की उत्पत्ति 25
प्रतिपदा के दिन संभोग 45
प्रतिलोम 70, 212
प्रत्यंगिरी 103
प्रत्यंगिरा 102
प्रथम जन्मी गाय 76, 169
प्रदेशों के क्षत्रप 170
प्रद्युम्न 301
प्रधाना 176
प्रभावोत्पादक मंत्र 133
प्रमुख ज्योतिषाचार्य 291
प्रशासनतंत्र 282
प्राकृतिक बुभुक्षा 174
प्राचीन आर्य पियक्कड़ भी थे 110
प्राचीन आर्यों की आदतें 109
प्राचीन कवि 42
प्राचीन पौराणिक देव 90
प्राचीन संस्कृत साहित्य 133
प्राण-प्रतिष्ठा 125
प्राणवान् आशीर्वाद 135
प्राणशंसितम् 90
प्रांतों के शासक 12
प्रार्थनाएं और मंत्रोच्चारण 21
प्रायश्चित 28
प्रायश्चित के लिए अनुष्ठान 56
प्रियव्रत 275
प्रियव्रत के वंशज 276
प्लाति पुत्र 34

फ

फ्रांस की राज्यक्रांति के कर्णधार 283

ब

बंगाल की पटसन संस्कृति 124
बंधुत्व का सिद्धांत अज्ञात 284
बंधुत्व प्रजातंत्र की जड़ 283
बंध्या (बांझ) नारी 137
बकरी की बलि 119
बक्ले महोदय 13
बगुला 176
बत्तीस भुजाएं 174
बनियों के वंशज 20
बबर प्रवाहणि 45
बर्ध्रिनासा 119
बलदेव 85, 160
बलदेव वृत्तिका 85, 160
बलराम की सहोदरा 334

बलि-पशु की पूजा 122
बलि-पात्र 123
बलियां 43
बहिन से संभोग 47
बहुभाषाविद 12
बहुदेववाद 20
बहुदेववाद अमान्य है 81
बहुदेववादी 19, 82
बहने वालों में वायु 92
बहुपतित्व और बहुपत्नीत्व प्रथाएं 296
बांस की फूंकनी 318
बांसुरी 171
बाजियां 109
बाद की रचनाएं 59
बादरायण 71, 73, 155
बादरायण सूत्र 72-73, 156-157
बाबू हेमचन्द्र केर 124
बारह आदित्य 83
बारह प्रकार की मदिरा 114
बारह प्रकार के पुत्र 226
बालक का वर्ण निर्धारण 227
बालिनी 177
बिकाऊ माल 108
बिना नाखून का अंगूठा 162
बिहार 220
बुद्ध 75, 165
बुद्धिवादी ग्रंथ 147
बूढ़ा बैल 45
बृहत्-सर्वानुक्रमणी 33
बृहदारण्यक उपनिषद 26, 69, 70, 130, 152, 153
बृहस्पति 34, 43, 44, 62, 92, 154, 198
बृहस्पतिसव यज्ञ 88
बेताल 118
बेबीलोन 12
बेबीलोन प्रांत 12, 170, 171
बेबीलोन साम्राज्य 170
बेलवल्कर प्रोफेसर 155
बेल वृक्ष 19
बैकुंठ (विष्णु के निवास) 80
बौधायन 60, 70, 219
बौधायन का मत 144
बौधायन के धर्म-सूत्र 32, 145
बौधायन के विचार 31
बौधायन गृह्यसूत्र 112
बौधायन ही युग 32
ब्रह्म 11, 266
ब्रह्मऋर्षि 94
ब्रह्म अजेय है 285
ब्रह्मचर्य 204, 249, 251, 263
ब्रह्मचर्य आश्रम 202
ब्रह्मचर्य विद्यार्थी जीवन है 263
ब्रह्मचारी 252
ब्रह्म-ज्ञान 117
ब्रह्मज्ञान की उत्पत्ति 28
ब्रह्मणस्पति 57, 188
ब्रह्मतेज-संपन्न देवताओं 88
ब्रह्मन् बृहस्पति 188
ब्रह्म बुद्धि 69
ब्रह्मरात 64
ब्रह्मलीन 182
ब्रह्म वाक्य 38, 137
ब्रह्मवाद 284, 286
ब्रह्मविद्या 69
ब्रह्मविद्या की शिक्षा 68
ब्रह्मवैवर्त पुराण 64, 148, 221
ब्रह्म-वृत्तिका 160, 170
ब्रह्मसूत्र 71
ब्रह्म-सूत्रों का रचयिता 155
ब्रह्महत्या 121
ब्रह्म-हत्यारा 119
ब्रह्मांड 78, 143
ब्रह्मांड की उत्पत्ति 306
ब्रह्मा 27, 74, 76, 86, 160
ब्रह्मा उभयलिंगी 275
ब्रह्मा का पांचवां मुख काट डाला 76
ब्रह्मा का दावा झूठा था 169
ब्रह्मा की उपासना 63
ब्रह्मा की कहीं पूजा नहीं 76
ब्रह्मा की पूजा का निषेध 87
ब्रह्मा के नथुनों से सूकर 169
ब्रह्मा के माथे पर कलंक 86
ब्रह्मा जगत का प्रथम प्रजापति 165
ब्रह्मा जगत का स्रष्टा 173
ब्रह्मानंद 72
ब्रह्मा ने अपनी पुत्री शतरूपा से विवाह 294
ब्रह्मा ने अपनी पुत्री सरस्वती से बलात्कार 166
ब्रह्मा ने चराचर की सृष्टि 307
ब्रह्मा पूजनीय नहीं रहे 77
ब्रह्मा मुक्ति 77
ब्रह्मा, विष्णु और महेश 74, 91, 99, 102, 161, 163, 164, 173
ब्रह्मा, विष्णु और शिव 64, 90, 91, 107
ब्रह्मा, विष्णु और शिव के बीच संघर्ष 103
ब्रह्मा वृत्तिका 86
ब्रह्मा से भी बड़ी अनैतिकताएं 86
ब्रह्मा स्रष्टा 164
ब्राह्मण अपनी पत्नियां बेचते थे 296
ब्राह्मण को भूदेव बना दिया 14
ब्राह्मण को सिर्फ दक्षिणा से गरज 11
ब्राह्मण ग्रंथ 24, 59, 60, 128, 146, 147, 191

ब्राह्मण-दर्शन 37
ब्राह्मण द्वारा सतत् यात्रा 318
ब्राह्मण-प्रिय 94
ब्राह्मण मौन 308
ब्राह्मणवाद 284
ब्राह्मणवादी व्याख्या 211
ब्राह्मण श्रुति 63
ब्राह्मण साहित्य 107, 237
ब्राह्मण-सेवी 94
ब्राह्मणी 176
ब्राह्मी अथवा ब्राह्मणी 177

भ

भक्तिमार्ग 65
भगवत् पूजा 179
भगवद्गीता 67, 151, 248
भगवान प्राचेतस् 200
भगवान वासुदेव 94
भद्रकाली 103
भद्रे मंदरावासिनी 103
भयंकर दांतों वाली देवी 120
भयंकर रूप काली 177
भरद्वाज 308
भर्ज्जकौतुक 221
भवति भिक्षाम् देहि 254
भवदेव (शिव) 88
भव भव पुनर्भव 25, 129, 146
भस्म मलना 154
भस्मासुर 80, 81, 169
भागवत 90
भागवत पुराण 64, 75, 77, 87, 88, 131, 148, 200, 246
भारतीय ब्रह्मज्ञानी 59, 147
भारद्वाज की संतति सत्यवह 68
भारद्वाज पुत्र सृबिन्द ऋषि 57
भावी सृष्टि से पूर्व जन्मा 76
भाष्य 68
भिक्षाम् देहि भवति 254
भिक्षाम् भवति देहि 254
भुने अनाज खाना 114
भुवनेश्वरी 176
भुवः यजुर्वेद से 25
भूः ऋग्वेद से 25
भूः भुवः स्वः 27
भूत-पिशाच 87, 88
भूतरय 308
भूतविद्या 69
भूतशास्त्र 69
भूर्ज (भृज्ज) कंटक 211
भृगु 88, 196
भैरव 118
भैरवर 118
भैरवी 176
भैरवों की पूजा के उपयुक्त पदार्थ 118
भ्रमजाल 73
भ्रूण हत्यारा 69

म

मंत्रों की संख्या 33
मंत्रों के स्रष्टा 26
मंत्रोच्चारक 34, 134
मंदराचल पर्वत 80, 168
मछलियों में मगरमच्छ हूं 92
मछली-भक्षण 114
मजारों, दरगाहों की जिआरत 20
मज़ारों पर चादरें 20
मणिभद्र वृत्तिका 85, 160
मत्स्य 74, 75, 165
मत्स्य पुराण 64, 148
मथुरा 290
मदिरा धार्मिक कृत्यों का अनिवार्य अंग 110
मदिरापान 110
मदिरा-पान उनका धर्म 293
मदिरा-पान से पूर्व सूर्यापासना 293
मदिरा पीने को आस्था 116
मद्य और नैवेद्य 177
मधवन् 35
मधु की शुद्ध मदिरा पिलाई 294
मधुपर्क 112
मधुसूदन 94, 98
मन है यजुर्वेद 27
मनु 22, 60, 195, 219, 228
मनु का पागलपन 211
मनु के वंश के 94
मनुष्य की बलि पूर्वी दिशा में दी जाए 121
मनुष्य-बलि 124
मनुष्यों की चार श्रेणियां 240
मनुष्यों को दान 179
मनुस्मृति 22, 65, 202, 247
मन्वंतर 22, 304
मन्वंतर 71 महायुगों के बराबर 23
मन्वंतर का आशय देश की राजनीतिक सत्ता 275
मन्वंतर का सिद्धांत 275
मन्वंतर शासन 308
मन्वंतरों का आभास 275
मयूरी 177
मरणोपरांत देह 43
मरीचि 91, 194
मरीचिगर्भ 278
मलकान 20
मल्ल 211
महर्षियों में भृगु 92
महाकाल 92
महाकाली 103
महादेव की लीलाएं 96
महान योगी विष्णु 200
महाभाग्ये कल्याणी 103
महाभारत 77, 87, 93, 94, 96, 103, 109, 195, 201
महाभारत की दूसरी व्याख्या 242

महाभारत की व्याख्या 241
महाभारत के आदिपर्व में एक वंशावली 295
महाभारत के 'उद्योग पर्व' 110
महाभारत के वन पर्व 290
महाभारत के शांति पर्व 196
महाभारत के शांति पर्व में तीसरी व्याख्या 242
महाभारत युद्ध 94, 289
महामाया (दुर्गा का दूसरा नाम) 106, 108
महामुनि 308
महायुग 22, 292, 304, 305, 310
महाराज वृत्तिका 86, 160
महिषारक्त पायिनी 103
महिषासुरमर्दिनी 102, 103
महीनों में मार्गशीर्ष 92
महेश प्रकट हुए 76
मांस की आहुतियां 181
मांस-भक्षण 44, 114
मांसाहारी 111
मार्कण्डेय पुराण 104, 106, 108, 113, 131
मागध 220
मातंगी 176
माता-पिता का वर्ण भिन्न 212
मातृका भेद तंत्र 116
मातृ-सावर्ण्य 229
माधवाचार्य 43, 153, 154
माध्यंदिन 33
माननीय भट्ट 67
मानव की हड्डियों के आभूषण 87
मानव-जाति का रक्त 119
मानव-बलि 123
मानव-मित्र 83
मानव-रक्त की भेंट 121
मानवेतर शक्ति 133
मानस-पुत्र 148
मारीचिपुत्र कश्यप 195
मालती माधव 38, 136
माहेश्वरी 176
मित्र, अर्यमन् और वरुण 101
मित्र, डॉ. राजेन्द्रलाल 124
मित्र देवता 11
मित्रमिश्र 60, 61
मित्र राजेन्द्र लाल 115
मिथिला 116, 221
मिथ्याधर्म 73
मिथ्यावाद 44
मिथ्याशास्त्र 73
मिश्रित जातियों की उत्पत्ति 211
मुंडक उपनिषद 66
मुंडमाला 177
मुक्तकेशी 102
मुण्डकोपनिषद् 68
मुण्डकोपनिषद् का कथन 151
मुनियों में वेद व्यास 92
मुर्गों की कुर्बानी 20
मुर्दा गाय का मांस 111
मुर्दों को दफनाते 20
मुसलमान 19
मुसलमान पीरों जैसी पोशाक 11
मुसलमानों के सखी सरवर 20
मुस्लिम पीर 20
मुस्लिम पीरों के मुरीद 11
मूर्तिपूजा का दोषी 82
मृगनयनी पुत्री 87
मेगस्थनीज 220
मेदिनी 177
मेधावान ऋषि, मंत्रों के स्रष्टा 130
मेधावी ऋषि 26
मेधावी मानस 36
मेधावी राजा 83
मेयने 223
मेशक 12, 13, 171, 172
मैक्स मूलर 33, 59, 66-68, 83, 133, 145, 146, 149, 150
मैत्र 211
मैत्रायणी संहिता 234
मैत्रेय 199
मैथुन के संबंध में स्वच्छन्दता 109
मैथुन धार्मिक कर्म-कांड का एक अंग 114
मोक्ष कुछ नहीं 43
मोहमाया 73
मोहिनी 75, 165
मौर्य शासक 290

य

यक्ष 85, 160
यक्षराज कुबेर 97
यक्ष वृत्तिका 85, 160
यजमान 112
यजमान की गाय 288
यजमान गृह 88
यजु 28, 128
यजुर्वेद 24, 26, 33, 68, 69, 130, 146, 221
यजुर्वेद की दो शाखाएं 187
यजुर्वेद की वायु से 26
यजुर्वेद में ही असमानता 188
यजुर्वेद संहिता 292
यजुस की अमृत 181
यजुस् 24, 27
यजुस् का मंत्रोपचार 88
यजुस् मंत्र 131, 181
यज्ञ 27, 28, 75, 165
यज्ञकर्ता 34, 134
यज्ञ की सिद्धि 27
यज्ञकुंड 88

यज्ञ के हव्य 89
यज्ञ पशु 89
यज्ञ-पात्र 88
यज्ञ-मंडप 88, 89
यज्ञ विध्वंसक 89
यज्ञशाला 88
यज्ञ सूत्र 141
यति भी ऋग्वेद में एक घृणित चीज 251
यम मृतकों का न्याय 173
यम-यमी संवाद 46, 139
यमराज 92
यमी 177
यवन 212
यह ब्रह्म है 69
यहूदियों 11
यहूदियों पर दोषारोपण 12
यहूदी पुजारियों 170
याज्ञवल्क्य 219
यातुधान 141
यातुधानी 45
यास्क 45
यास्क से प्राचीन 170
युग 22, 304
युगे-युगे 287
युधिष्ठिर और भीष्म का संवाद 96
यूनानियों का विनाश 290
यूरोपीय विद्वान 11, 67
योगिनियां 177
योनि शक्ति 89

र

रंगाचार्य प्रो. 287
रंभ 198
रंभा और तिलोत्तमा 104
रणचंडी 104
रजि 198
रहस्यविद् 70
रहूगण 34
राका 101
राक्षस 88
राक्षस-पैशाच विवाह 228
राक्षसियां 177
राक्षसों का विनाश करने वाली अग्नि 47
राघव (राम) 97
राजकार्य संबंधी जादू-टोने 54
राजकुमार 12
राजनीतिक तंत्र 283
राजसूय 335
राजसूय यज्ञ 112, 198
राजेन्द्र मित्र 150
राज्यपाल 170
राधा कुमुद मुकर्जी 266
राम 19, 75, 77, 165, 309
राम और सीता दोनों ने मदिरापान किया 110
राम की पत्नी सीता 221
राम के साथ सीता 176
रामचंद्र ने सीता को शुद्ध 294
राम दशरथ के पुत्र 320
राम ने प्रजा-कार्यों से हाथ खींच रखा था 328
राम ने सीता को त्याग दिया 324, 326
राम मर्यादा पुरुषोत्तम 327
राम मिश्र शास्त्री भागवताचार्य महामहोपाध्याय 116
राम से विवाह 99
रामायण 76, 99, 113, 195, 201, 220, 320
रामायण और महाभारत 240
रामायण और महाभारत से मत की तुलना 194
रामायण की कथा का सार 321
रामायण के उत्तरकांड 110, 294
रावण ने अपहरण कर लिया 324
रावण-वध 97
राष्ट्रीय काव्य रचना 146
रुचि प्रजापति 275
रुद्र 74, 101, 198
रुद्र और नारायण 166
रुद्र की स्तुति 161
रुद्रीय पाठ 95
रुधिर अध्याय 118
रूपवान देवता 46
रैवत (रेवन्त) 276, 307, 308
रोदसी 101
रौद्र और भैरव मंत्र 123
रौद्री 176

ल

लंकापुरी 97
लंबी नाक 174
लंबे दांत 174
लक्ष्मी 19, 102, 176, 177
लक्ष्मी विष्णु की 103
लाल आंखें 174
लालबुझक्कड़ 44
लिंग पुराण 104
लिंग पूजा 81, 162, 163, 293
लिच्छवी 211
लोक स्वामी अग्नि 237
लौह-पात्र 120

व

वज्र 81
वत्सर 288
वदरंग पाठ 123
वनक 276
वन्य जंतु का मांस 112
वपुष्मान् 309
वरिष्ठ प्लीनी 220
वरुण 11, 101

वरुणानी 101
वर्गवादी 282
वर्ण-धर्म 233
वर्ण-निर्णय संबंधी विधान 227
वर्ण-व्यवस्था का शास्त्रीय सिद्धांत 234
वर्ण-व्यवस्था की ऋग्वैदिक उत्पत्ति 197
वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या 234
वर्ण-व्यवस्था के औचित्य 247-48
वर्ण-व्यवस्था पर पुराण क्या 197
वर्ण-व्यवस्था को वैज्ञानिक स्वरूप 249
वर्ण-व्यवस्था में अनेक खामियां 228
वर्ण-व्यवस्था हिंदू धर्म की आत्मा 185
वर्णाश्रम-धर्म 69, 233
वर्णों की उत्पत्ति के विषय में 189
वर्ष 22, 304
वशिष्ठ 32, 76, 219, 308
वशिष्ठ धर्म-सूत्र 31, 143, 265
वसुओं के प्रजापति 98
वाच और आत्मा 27
वाच की रचना 26
वाज 237
वाजसनेयक 113
वाजसनेयी संहिता 187, 234, 235, 293
वाटधान 211
वाणी जुहू है 179
वाणी है ऋग्वेद 27
वाद्य-यंत्रों का स्वर 171
वाद्यवृंद 12
वानप्रस्थ 205, 249, 252, 263, 265
वानप्रस्थ आश्रम 202
वानप्रस्थ और संन्यासी की तुलना 263
वानप्रस्थ के लिए संहिता 205
वानप्रस्थी 69, 252
वानर नयन 87
वामन 75, 165
वामन अवतार 91
वामनावतार 99
वामाचारियों के कर्मकांड 65
वायु देवता 91
वायु पुराण 64, 75, 176, 201, 247
वायु से यजुर्वेद 25
वारांगना 109
वारावारुणी 103
वाराह 74, 75, 165, 169
वाराह अवतार 76, 169
वाराह पुराण 75, 102, 103
वाराही 176, 177
वाल्मीकि 320
वाल्मीकि की गवाही 324
वासना की पूर्ति 47
वासुदेव 85, 94, 160
वासुदेव वृत्तिका 85, 160
विख्यात वसुमत् 308
विजन्मन् 211
वितथ 245
विदेह के राजा जनक 71
विद्या ब्रह्मांड 129
विद्यार्थी 205, 252
विधर्मी मत 181
विधिपूर्वक संन्यास आश्रम 261
विपश्चित् 276
विभाजित अंडे 131
विमला 177
विरजा 277, 308
विराट पुरुष 185
विराट पुरुष नारायण 99
विरुद 309
विल्सन प्रोफेसर 49, 142
विवस्वत 194
विवाह अनिवार्य 263
विवाह-पद्धति 70
विवाह-बंधन 102
विवाह स्त्री-पुरुष के बीच स्थायी बंधन नहीं 109
विवाहित देवियों 174
विश्वकर्मा 277
विश्व की बार-बार सृष्टि 142
विश्वनियंता 68, 83, 95, 151
विश्व-व्यवस्थापक 246
विश्वात्मा ब्रह्म 117
विश्वामित्र 61, 100, 308
विषादि का शमन 36
विष्णु 19, 20, 74, 76
विष्णु आरुणि 309
विष्णु और राम 91
विष्णु इन द वेदाज 162
विष्णु का अवतार 166
विष्णु का चक्र 309
विष्णु का मोहिनी रूप 81
विष्णु की पचास शक्तियां 176
विष्णु के अवतार 75
विष्णु के चार चिह्न 78
विष्णु के सहस्र नाम 78
विष्णु के साथ लक्ष्मी 176
विष्णु को प्रथम जन्मा 76, 169
विष्णु निषिक्तप 163
विष्णु पालक 164
विष्णु पालनहार 173
विष्णु पुराण 131, 199, 219, 243-44, 275, 280, 304
विष्णु पुराण में एक और भिन्न कथन 198
विष्णु पुराण में युग की परिकल्पना 304

विष्णुप्रिया लक्ष्मी 103
विष्णु ब्रह्मा के स्रष्टा बन गए 77
विष्णु-भक्त 74
विष्णु भगवान 309
विष्णु मंत्र 116
विष्णु मूर्ख 80
विष्णु वृत्तिका 170
विष्णु वैदिक देव हैं 90
विष्णु, शिव और राम की उपासना 86
विष्वकसेन (विष्णु) 98
विस्तीर्ण नितंबा 163
वीर राजा 308
वीर्य संरक्षक 163
वृंदावन 116
वृत्तिका 85
वृत्रहंता इंद्र 35, 135
वृर्त 165
वृषाकपि मंत्र 163
वृषाकपि विष्णु 163
वृष्णि वंशियों में वासुदेव 92
वृहत्साम 28, 131
वृहन्नील तंत्र 125
वेद 32, 58
वेद अपौरुषेय नहीं 34, 134
वेद अपौरुषेय हैं 30, 35
वेद और तंत्र 65
वेद के ज्ञाता 97
वेद तो अचूक हैं 30
वेद-द्रोही 149
वेद पवित्र विधान के उद्‌गम 143
वेद-पाठ 179
वेद पौरुषेय नहीं है 136
वेद पौरुषेय हैं 133
वेद प्रजापति की दाढ़ी से 26
वेद प्रमाण नहीं हैं 44
वेदबाहु 308
वेद ब्रह्मवाक्य नहीं हैं 139
वेद-मंत्र 83
वेद मानव-रचित नहीं 135
वेद में तीन दोष 154
वेदरूप महावृषभ 98
वेद विद्या 69
वेद विरोधियों के विचार 45
वेदविरोधी 87
वेद व्यास 75, 165
वेदश्री 308
वेद सनातन नहीं 45
वेदांग ज्योतिष 288
वेदांत 66, 67, 73, 284
वेदांत का कर्ता 93
वेदांत की एक पहेली 153
वेदांत की शिक्षा 71
वेदांत-दर्शन 36, 149
वेदांत-मर्मज्ञ 67
वेदांत सूत्र 73
वेदों का अंतिम मनोरथ 66
वेदों का अध्ययन सर्वोच्च 180
वेदों का कर्ता ब्रह्मा है 130
वेदों का ज्ञाता 93
वेदों का प्रस्फुटन 131
वेदों का वेद व्याकरण 69
वेदों की उत्पत्ति 23, 25
वेदों की उत्पत्ति की अनेक व्याख्याएं 24, 29
वेदों की उत्पत्ति की खोज 24
वेदों की दिव्य उत्पत्ति 22
वेदों की प्रामाणिकता 44
वेदों—की यह दुर्दशा 65
वेदों की रचना मनुष्य ने की 135
वेदों की श्रेष्ठता 62
वेदों की सत्ता 135
वेदों की सत्ता को चुनौती 44
वेदों के कर्ता प्रजापति 26, 130
वेदों के पतन की कथा 64
वेदों के प्रणेता इंद्र 24
वेदों के प्रति कर्तव्य 179
वेदों के संदर्भ 205
वेदों के संबंध में अनेक पहेलियां उपजती हैं 148
वेदों मानव-रचित 34
वेदों में तीन दोष 43
वेदों में सामवेद 91
वेश्यावृत्ति प्रचलित थी 109
वैकुंठगण 308
वैतानसूत्र 292
वैदिक आर्यों का धर्म बर्बर और अश्लील 292
वैदिक आहुति 180
वैदिक उपासना 90
वैदिक कर्म-कांड 163
वैदिक काल 102
वैदिक ज्ञान 32
वैदिक देव 107
वैदिक देवता 11
वैदिक देवताओं की पूजा 11
वैदिक देवताओं को किनारे कर दिया 11
वैदिक देवता मदिरा पीते थे, दैवी मदिरा... 110
वैदिक देवियां 104, 107
वैदिक परंपरा के दास 132
वैदिक ब्राह्मण 22, 33, 58, 70, 291
वैदिक ब्राह्मण का सिद्धांत 30
वैदिक मंत्र-कारों 162
वैदिक यज्ञ 71
वैदिक संस्कृति 161
वैदिक साहित्य 145, 162, 180, 288
वैयाकरण पाणिनि 220

वैराज छन्द 28
वैरूप 28
वैरूप और अतिरात्र की रचना 131
वैवस्वत मनु 289
वैशंपायन 199
वैशेषिक दर्शन 36
वैश्वानर अग्नि 92
वैष्णव ब्राह्मण 116
वैष्णवी 176, 177
वैष्णवी तंत्र 118
व्याकरण 69
व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा 170
व्यास 309
व्यास ने कृष्ण को मानवों में देवता बना दिया 329
व्युत्पत्ति शास्त्र 220
व्रती 85
व्रात्य क्षत्रिय 221
व्रात्य जातियां 211

श

शंकर 149
शंकराचार्य 71, 72, 155, 286
शक 212
शक्ति-पुत्र अग्नि 35, 135
शक्ति मंत्र 116
शक्तिमान देव 134
शक्तिशाली क्रतु 194
शतक्रतु 276
शतद्युम्न 308
शतपथ 32
शतपथ ब्राह्मण 25, 26, 83, 86, 128-130, 145, 179, 181, 189, 288, 312
शतपथ ब्राह्मण की व्याख्या 237
शतरूपा 307
शतरूपा को रचा 275
शतरूपा मनु की पत्नी 294
शतसंख्यक 309
शत्रुओं को संताप देने वाले 93
शत्रु पर विजय 42
शत्रुबलि 125
शत्रु-विजय 141
शत्रु विनाश 48
शद्रक 12, 13, 171, 172
शनिश्चर 277
शपथ और शाप 45
शब्दप्रमाण 44
शराब पीना आर्यों का धार्मिक कर्तव्य 110
शस्त्रधारियों में राम 92
शहद की आहुतियां 180
शहनाई 171
शांखायन 292
शांख्यायन के गृह्य-सूत्र 163
शांतस्वरूप पद्मनाभ 98
शांति पर्व में चौथी व्याख्या 197
शाकंभरी 103
शाकाहार और अंहिसा 112
शाकाहारी 111
शाक्त 116, 174
शादी-व्यवहार 21
शासक जनजाति 219
शास्त्री, डॉ. श्याम 290
शिक्षाकल्प 69
शिपिविष्ट 162
शिल्पकार (विश्वकर्मा) 309
शिल्पशास्त्र 69
शिव 19, 20, 65, 74, 78
शिव औघड़ (मूर्ख) 169
शिव और विष्णु की उपासना 167
शिव का त्रिशूल 309
शिव का धनुष 77
शिव का प्रभामंडल 175
शिव की नारी प्रवृत्ति 176
शिव की नारी-शक्ति 175
शिव की पत्नी 65
शिवकुमार शास्त्री महामहोपाध्याय 116
शिव के साथ दुर्गा 176
शिव को आहुति 105
शिव कौन थे 161
शिव ने तीन पुत्र 118
शिव पशु-बलि पर निर्भर थे 125
शिव-पूजा 127
शिव भार्या 175, 177
शिवमंत्र 116
शिवरात्रि का व्रत 19
शिव-लिंग पूजा 162
शिव वृत्तिका 170
शिव वेद विरोधी थे 87, 89
शिव संहारक 164, 173
शिश्न पूजा 162
शिष्ट व्यवस्था 32
शुंभ-निशुंभ 104, 105, 106
शुक्ल यजुर्वेद 234
शुनःशेप 61
शूद्रों के पुत्र ब्राह्मण बन सकते थे 228
शृंगमय बृहस्पति 57
शृंगवेरपुर 220
शेष 194
शेषनाग 80, 92
शेषनाग को रस्सी 168
शैख 211
शैवमत की दीक्षा 97
शौनक 33, 68, 198
श्मशान 121
श्मशान की राख 87
श्मशानवासिनी 177
श्यामल मधुमक्खियां 131
श्याम शास्त्री 287, 289, 291
श्राद्धकल्प 69

श्राद्ध क्रिया 70
श्राद्ध देव 276
श्री 90
श्रीकृष्ण के पांव अर्जुन की गोद में 111
श्रीकृष्ण ब्रह्माजी से भी श्रेष्ठ 93
श्रीवत्स का चिह्न 93
श्रीवत्स चिह्न 99
श्रुति 58, 60
श्रुति का अर्थ है वेद 147, 182
श्रुतियों को दैवी मान्यता 61
श्रुति साहित्य 61
श्रेष्ठता-संघर्ष 77
श्रेष्ठ परमात्मा 98
श्वसुर-दामाद के बीच शत्रुता 88
श्वास 27
श्वास प्रक्रिया 26
श्वास है सामवेद 27
श्वेतकेतु 297, 302
श्वेत यजुर्वेद 201
श्वेत यजुर्वेद में मात्र एक संहिता है 187

ष

षोडशी 176

स

संकर जातियां 211, 212
संकलन-कर्ता ऋषि 33
संग्राम 75, 165
संतति 42
संन्यास 205, 249, 263
संन्यास आश्रम 202
संन्यास के पूर्व विवाह की शर्त 267
संन्यासी 252
संन्यासी के लिए संहिता 205
संपत्ति के अधिकार 229
संपूर्ण जगत के स्रष्टा ब्रह्मा 97
संपूर्ण पूजा-विधि 122
संपूर्ण पृथ्वी के स्रष्टा 93
संपूर्ण यज्ञ 180
संवत्सर 288
संश्रय 194
संसार का शासक 168
संसार के स्वामी 95
सगोत्रता विधान 223, 226
सती 102
सती-प्रथा 62
सत्ताधारी वर्ग 282
सत्य अर्पण 179
सत्यकेतु 309
सत्यवती (मत्स्यगंधा) के साथ सहवास 298
सत्यार्थ प्रकाश 90
सधर्मन् 309
सनत्कुमार 68, 69, 75, 165
सनातन 22, 23, 28
सनातन पुरुष श्रीहरि 93
सपिण्डगोत्र में विवाह 21
सप्तऋषि 275-76, 308-9
सप्तदशस्तोम 28, 131
सप्तपदी 300
सप्त शीर्ष सूक्त 34
सबका स्रष्टा 95
सब में ओतप्रोत 93
सभी देवों से उत्तम 93
समरथांतर 131
समवेत ध्वनि 39, 137
समाजीकरण 283
समासों में द्वंद्व 92
समिधा 26
समीप सदन 67
समुद्र-तल से चौदह रत्न 168
सरदण्डया 297
सरस्वती 101, 103, 176
सरस्वती ब्रह्मा की पत्नी 103
सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती 163
सर्पराज वासुकि 92
सर्वज्ञ 93
सर्वज्ञ रचयिता 38
सर्वदर्शनसंग्रह 153, 154
सर्वधर्मा 309
सर्वप्रथम धर्म-सूत्र 143
सर्वप्रथम विधिग्रंथ 143
सर्वव्यापी 93, 95
सर्वव्यापी महेश्वर 93
सर्वशक्तिमान 83
सर्वशक्तिमान ऊर्जा 102
सर्वश्रेष्ठ वृषभ 162
सर्वसमर्थ नारायण देव 98
सर्वांग तप 181
सर्वानुक्रमणी 133
सर्वेश्वरवाद 20
सर्वेश्वरवादी 19
सर्वेश्वरी 177
सहगामिनी नारी 174
सहज प्रसूति में सहायक 163
सहवास 114
सहिष्णु 308
सहोढ 228
सांख्य की गुण-धर्म 249
सांख्य दर्शन का अनुमोदन 199
सांख्य दर्शन के संस्थापक कपिल 36
सांस्कृतिक भेद 161
साकेत 290
सागर-मंथन 80
सात अधोभुवन 246
सात पति 297
सात्वत 211
सादृश्यवाद 155
साम 24, 27, 128
साम छंद 131

साम मंत्र 24, 128
सामवेद 24, 26, 68, 69, 130, 146
सामवेद की सूर्य से 26
सामवेद के मंत्र 187
सामाजिक क्रांति 109
सामाजिक प्रगति 14
सायण 66
सार्थक उपासना मंत्र 133
सार्वजनिक मैथुन 110
सार्वभौम सत्ता 220
सावर्ग 309
सावर्णी 277, 278
सावर्णी मनु 309
सावित्री 27, 132
सावित्री जैसी पुत्री 87
साष्टांग दंडवत् 12
साहचर्य 174
सिंहवाहिनी 102
सिकुड़ता हुआ लिंग 162
सिद्ध सेनानी 103
सिद्धों में कपिल मुनि 92
सिनीवाली 101, 163
सिर से अथर्ववेद रचा 28
सीता की पवित्रता पर संदेह 97
सीमित आत्मा 72
सुकर्मन् 309
सुकृत 309
सुक्षेत्र 309
सुग्रीव 105
सुतपा 309
सुद्युम्न 198, 308
सुधन्वन् 211
सुधमन् 309
सुधामा 309
सुन्नत 20
सुनहोत्र 198
सुपर्ण 85, 160
सुपर्ण वृत्तिका 85, 160
सुब्राह्मण्यम् शास्त्री महामहोपाध्याय 116
सुमज्जनी 163
सुमित्रा 320
सुमेधा 308
सुमेधागण 308
सुमेरु पर्वत 92
सुरा घटिया पेय था 110
सुरुबिंद औद्दालकि 45
सुशांति 307
सुसंभाव्य 308
सूत का मत 219
सूत्र 26, 58, 146
सूर्य 25, 86, 101, 160
सूर्य और इंद्र की उपासना 86
सूर्य की उपासना 63
सूर्यपुत्र वैवस्वत 307
सूर्य वृत्तिका 86, 160
सूर्य से सामवेद 25
सूर्या सूर्य की पुत्री 101
सृष्टि एवं प्रलय के कारण 98
सृष्टि कब हुई 143
सृष्टि चक्र 49
सृष्टि-पालन 275
सृष्टि रचना 103, 266
सेतुमाहात्म्य 287
सेनापति धूम्रलोचन 105
सोने की एक विशाल मूर्ति 170
सोभरी 35, 135
सोम 26, 84
सोम के दस पिता 295
सोम (चंद्रमा) के पुत्र बुध 198
सोम पान 49, 188
सोम रस 48
सोम-यज्ञ 110
सोमरथंतर 28
सौत से छुटकारा 57
सौत्रामणी 112
सौप्तिक पर्व 97
सौम्य मूर्ति 175
स्कंद (कार्तिकेय) जननि 103
स्कंद पुराण 75
स्कंभ (मुख्य सहायक) 24
स्त्रियों को भी यह लत 110
स्त्रियों में स्वच्छंदता 109
स्त्री-पुरुष के अंग 81
स्त्री-विषयक जादूटोना 53
स्थाणु 194
स्मार्त धर्म 64, 173
स्मृति 32, 58, 60
स्मृति का अर्थ है विधान 147, 182
स्मृति-चंद्रिका 61
स्रुव या स्रुच् 120
स्वः सामवेद से 25
स्वच्छंद संभोग 294, 296
स्वजनों की समृद्धि हेतु जादू-टोना 55
स्वराधात 68
स्वर्ग की कोई सत्ता नहीं 43
स्वर्ग प्राप्ति 71
स्वर्ग लक्ष्यसिद्धि 179
स्वर्ग-सुख 42
स्वर्गीय देव 34, 134
स्वर्गीय पुरुष 28
स्वर्ण मूर्ति 12
स्वर्ण-मूर्ति की पूजा 13
स्वायंभुव मनु 280
स्वायंभुव मन्वंतर 275, 307
स्वारोचिष 276, 308
स्वारोचिष मनु 276, 307
स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनाएं 52

ह

हंस 75, 165
हरदत्त 67, 151

हरिवंश 28, 75, 131-32, 245
हरिवंश पुराण 199, 201
हरिषेण 309
हलाहल 75, 165
हवनकुंड 88
हविष्मान् 308, 309
हस्ति 85, 160
हस्ति वृत्तिंका 160
हाकिम 170
हाथी 85
हाथी की बलि 120
हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था 185
हिंदू 19
हिंदू तंत्रों का तिरस्कार 20
हिंदू त्रिमूर्ति 64
हिंदू देवकुल 83, 174
हिंदू देवों का उत्थान और पतन 82
हिंदू-धर्म को लौहस्वरूप 249
हिंदू धर्म में नैतिकता का क्या स्थान 178
हिंदू धर्म संप्रदायों से मिलकर बना 159
हिंदू धार्मिक ग्रंथ 30
हिंदू नामधारी 20
हिंदू पेनथियन 80
हिंदू मनीषा 14
हिंदू विधान 223
हिंदू विवाह 223, 300
हिंदू सभ्यता 14
हिंदू समाज व्यवस्था अप्रजातांत्रिक 284
हिंसा की ओर वापसी 114
हिंसा से अहिंसा 114, 127
हिन्दूधर्म सनातन नहीं 11
हिन्दू सभ्यता सनातन 11
हिन्दू सभ्यता समय-समय पर बदलती रही है 11
हिमालय 105, 106
हिमालय पर एक यज्ञ 161
हिमालय पर्वत 92
हिरण्यकशिपु, ने अपनी पुत्री रोहिणी से विवाह 294
हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र 112
हिरण्यगर्भ 28, 96, 163
हिरण्यगर्भ की रचना 132
हिरण्यरोमा 308
हिस्ट्री ऑफ सिविलाइजेशन 13
हृदय से वषट्कार 29
हृषीकेश 93, 98
हृषीकेश यानी इंद्रियों के स्वामी 93
हेरुक 121
हैमवती 102
होतृ पुरोहित 198

सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित आंबेडकरी वांगमय

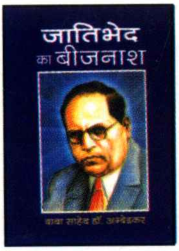

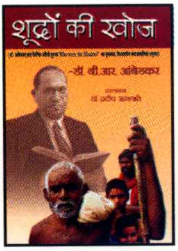

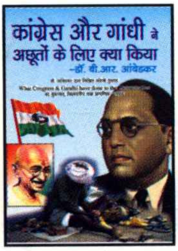

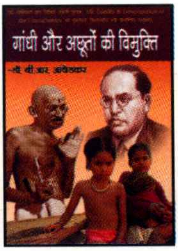

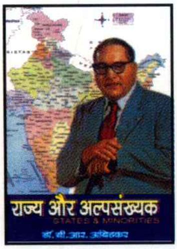

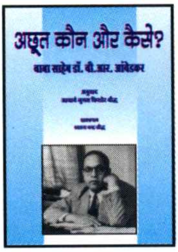

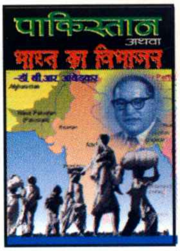

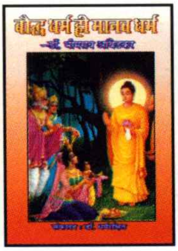

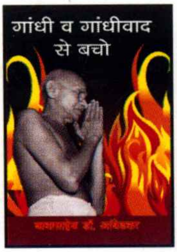

सम्यक प्रकाशन

32/3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली—110063-08

मो. : 9810161823, 9810249452

email : budhdharam@bol.net.in

web : www.samyakprakashan.com

ISBN : 978-93-80688-94-7 (PB)

ISBN : 978-93-80688-95-4 (HB)